।। जय गौर।।

श्रीश्रीगौरांगलीलामृत

(तृतीय भाग)

प्रणेता–

स्वामी श्रीप्रेमानन्दजी

प्रकाशक

ब्रज रासलीला संस्थान

गोविन्द विहार ● ५३५/२ रमणरेती ● वृन्दावन

★ जय निताई–गौर ★

निवेदन

कलियुगपावन प्रेमावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के 'श्रीगौरांगलीला ग्रन्थ' का तीसरा भाग प्रिय पाठकों की सेवा में उपस्थित है। पहले भाग में महाप्रभु- अवतार–प्रयोजन, उनका आविर्भाव, बाललीला, विद्या–विलास एवं विवाह तक की २० वर्ष की अवस्था तक की नदिया लीला की झाँकियाँ हैं।

दूसरे भाग में गया गमन को निमित्त बनाकर महाप्रभु में भक्तिभाव का प्रकाश, महा पण्डित महाप्रभु का महाभागवत रूप में परिवर्तन, नदियाँ में संकीर्तन भक्ति का प्रचार। राज–अधिकारी दुर्दान्त जगाई–मधाई को निष्किंचन निरीह भक्त बनाना नगर–शासक विधर्मी यवन काजी को संकीर्तन प्रेमी बनाना तथा भक्ति–परिकर सहित श्रीकृष्णलीला का आस्वादन पर्यन्त २० वर्ष से २४ वर्ष तक की अवस्था तक की नदिया लीला का दिग्दर्शन है।

अब इस तीसरे भाग में महाप्रभु की परमोदार करुण–करुणा कथा है—संन्यास ग्रहण की। नदिया बिहारी नटनागरवर रूप का सम्वरण तथा कौपीन–कन्था–काषाय वस्त्रधारी कपट संन्यासी रूप का प्रकाशन!!

प्रथम परिवर्तन हुआ तो विद्या–विलासी से भक्ति–विलासी बने। द्वितीय परिवर्तन हुआ तो संन्यासी बने! क्यों भला? प्रयोजन क्या?

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम वनवासी तपस्वी क्यों बने? अयोध्या में ही राजकुमार बने बैठे रहते तो क्या होता? यही होता कि अयोध्या का राम विश्व का राम न बन पाता! अयोध्या–वासियों के स्वामी महाराजाधिराज अवश्य बन जाते पर जग–जन–मानस के परमाराध्य सर्वस्व नहीं बन पाते! राम–भक्ति की संजीवनीधारा जटाशंकरी ही बनी रहती, त्रिभुवन तारिणी भागीरथी नहीं बन पाती—अवधरूपी शंकर की जटाओं में ही अटकी रह जाती, त्रिभुवन के तापित–शापित प्राणियों की सहज वत्सला जगज्जननी नहीं बन पाती!

रावण–वध तो श्रीराम के संकल्प मात्र से ही हो जाता परन्तु सर्वशास्त्र सम्मत सिद्धान्त–

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभो।'
(भाग० ५-१९-५)

[भगवान् का मनुष्य लोक में अवतार मनुष्यों की शिक्षा के लिये होता है, केवल राक्षस–वध के लिए ही नहीं] कैसे चरितार्थ होता? अवतार–प्रयोजन ही निरर्थक हो जाता।

इसीलिये श्रीराम वनवासी बने और इसीलिये गौर संन्यासी बने।

नदिया बिहारी गौरसुन्दर ने नदिया को तो कृष्ण–नाम–प्रेमभक्ति की प्रबल धारा से प्लावित कर ही दिया था, बहा दिया था और शान्तिपुर डूबा जा रहा था–

"नदिया भेसे जाय, शान्तिपुर डुबु डुबु हय।"

परन्तु–और बहुत बड़ा परन्तु–

'पृथ्वी ते आछे जतो नगर आदि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार होइवो मोर एइ नाम॥'

"कैसे सत्य सफल होता? अचेत जगत् को कृष्ण–चेतना में कौन कैसे जगाता?" "अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्ण: कलौ"–एक दीर्घकाल से अनर्पित कृष्णनाम प्रेमभक्ति को प्रदान करने के लिये ही तो "करुणा परवश" होकर कलियुग में गौर करुणावतार है।

तो क्या यह "करुणा" केवल नदियावासियों के लिये ही है? नहीं, यह तो विश्व के प्राणीमात्र के लिये है–देश, काल पात्र से अपरिच्छित है, सर्वदेश, सर्वकाल, सर्व प्राणियों के लिये यह गौर–करुणा है–"अति विमर्यादपरमाद्भुत औदार्य" है (श्रीचै० चन्द्रामृत)। इस परमोदार करुणा का सम्यक् विस्तार सर्वत्याग- रूप संन्यासावस्था में ही सम्भव है, गृहाबद्ध अवस्था में नहीं। संन्यास के बिना अवतार–प्रयोजन अपूर्ण है। अतएव संन्यास गौरचरित्र का एक अविभाज्य अंग है, अपरिहार्य है।

इस प्रकार महाप्रभु के २४ वर्ष तक की आयु का चरित्र गार्हस्थ्य की नदिया लीला है तथा २४ से ४८ वर्ष तक का चरित्र संन्यास लीला है–एक पूर्वार्द्ध, दूसरा उत्तरार्द्ध।

प्रेम संन्यास? वैष्णव संन्यास? कपट संन्यास?

महाप्रभु का संन्यास प्रचलित अद्वैतमार्गी संन्यास से सर्वथा भिन्न है। एक बाह्यलिंग अर्थात् भेष में ही समानता है। अन्यथा आदि, मध्य, अन्त में महान् अन्तर है उदाहरणतः—

१—संन्यास के मूल में सद्सद् विवेक होता है, उससे असत् संसार से वैराग, सत् ब्रह्म की जिज्ञासा एवं सत्प्राप्ति के लिये सर्वत्याग अर्थात् संन्यास-ग्रहण होता है। परन्तु महाप्रभु के संन्यास में विवेक जन्य वैराग्य नहीं अनुराग जन्य वैराग है। जिस क्षण गया धाम में श्रीकृष्ण से आँखें लड़ीं, उसी क्षण हृदय की गाँठ श्रीकृष्ण में बँध गई और लोक-वेद के धर्म-कर्म की समस्त गाँठें एक-एक करके प्रेम की प्रबल धारा में बह गई। वैराग सध गया, विचार करना नहीं पड़ा, अपने आप हो गया, कब हुआ, कैसे हुआ, यह स्वयं वैरागी महाप्रभु को भी पता नहीं चला। उन्होंने जाना तो यह जाना कि आँखों से बरसात होने लगी, पलक काल कलप लगने लगा और इतना बड़ा जगत् सब शून्य हो गया—"शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे।" अब विचारा 'सद्सद्विवेक' कहाँ रहा!!!

२—संन्यासी में यह अभिमान होता है कि 'अहं ब्रह्माऽस्मि' 'सोऽहम्' 'शिवोऽहम्' और महाप्रभु में 'दासोऽहम्' गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासानु-दासः'।

३—संन्यासी वेदान्त ग्रन्थों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन में सतत् सजग सचेष्ट रहता है और महाप्रभु रसग्रन्थों के आस्वादन में निमग्न रहते हैं। उनका स्वाध्याय है श्रीकृष्णकर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द, विद्यापति, चण्डीदास की पदावली।

४—संन्यासी आसन-प्राणायाम आदि क्लेश-कर साधनों के द्वारा समाधि के लिये बहु आयास-प्रयास करता है और महाप्रभु—"हे देव! हे दयित! हे कृष्ण! हे चपल! हे नयनाभिराम! कब तुम्हारे दर्शन होंगे?" कहते-पुकारते-रोते-बिलखते सहज भाव-समाधि को प्राप्त होकर नित्यलीला राज्य में प्रवेश कर जाते हैं।

५—संन्यासी की प्रकृति धीर-गम्भीर शान्त होती है। महाप्रभु तो श्रीकृष्ण विरह की 'विषामृत' ज्वाला में बाह्य चेतना शून्य मूर्च्छित प्रायः हो जाते हैं।

६—किम्बहुना, संन्यासी का ध्येय, ज्ञेय, लक्ष्य है ब्रह्म-साक्षात्कार-ब्रह्म- स्वरूपता-प्राप्ति। महाप्रभु का है श्रीराधाकृष्ण लीला रसास्वादन।

इन्हीं कारणों से महाप्रभु का अद्वैतमार्गी संन्यास से महान् अन्तर है। अतएव सुधीजन इसे 'प्रेम-संन्यास' 'वैष्णव-संन्यास' 'कपट-संन्यास' रूप से स्मरण करते हैं।

महाप्रभु के पादांगुष्ठ लेहन करके आशु कवित्व शक्ति को प्राप्त करने वाले महाकवि कर्णपूर गोस्वामी स्वरचित 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक' ग्रन्थ में लिखते हैं कि संन्यास पश्चात् जब महाप्रभु और अद्वैताचार्य जी का मिलन होता है तो आचार्य जी शंका करते हैं कि 'संन्यास तो अद्वैत सिद्धि के निमित्त लिया जाता है पर आपके प्रेम में तो द्वैतभाव का लेशमात्र भी नहीं है फिर आपके संन्यास का प्रयोजन क्या है?' तो महाप्रभु उत्तर देते हैं कि—"यह मेरा संन्यास अद्वैत-सिद्धि के लिये नहीं यह तो केवल सर्वत्याग के लिये है। सर्वत्याग के बिना श्रीकृष्ण-प्राप्ति असम्भव है। और यह सर्वत्याग भी श्रीकृष्ण ने ही करा दिया—मुझे पागल बनाकर यह साज सजा दिया—

"श्यामामृत स्त्रोतसि पातित वपुः।"

(पूरा श्लोक एवं पूरा प्रसंग इस ग्रन्थ के पृष्ठ १७९-१८२ पर देखने की कृपा करें)।

"श्याम प्रेम तरंगिनी, उमड़ि चल्यौ हिय माँहि।
बहाय चली काया कहाँ, जानूँ मैं कछु नाहिं॥
शुभ - अशुभ जानूँ नहीं, नहीं धर्म अधर्म।
प्रेम नचावै ज्यों नचौं, जानूँ यह प्रेम कर्म॥"

तथापि संन्यास-संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए जो-जो निमित्त कारण बने हैं उनका भी यथामति वर्णन ग्रन्थारम्भ में ही "संन्यास भूमिका" में कर दिया गया है। अलमति-विस्तरेण।

कामधेनु पेय सदृश गौरचरितामृत में मैले ग्वाले के मैले हाथों से मैला जल न जाने कितना कुछ मिल गया है। क्षीर-नीर-विवेकी सत्पुरुष अदोषदर्शी गुणग्राही होते हैं। इसी आशा भरोसा के साथ भूल-भ्रांतियों के लिये—

क्षमाकृपा प्रार्थी भिक्षुक
प्रेमानन्द
मौनी अमावस्या, माघ २०४७

प्रकाशकीय

कलियुग पावनावतार महाप्रभु श्रीश्रीकृष्णचैतन्यदेव नित्यानन्द प्रभुपाद के लीलाग्रन्थ 'श्रीगौरांगलीलामृत' का तृतीय भाग सुधी पाठकों के करकमलों में प्रस्तुत है।

जैसा कि पूर्व निर्णीत है ग्रन्थ को ४ भागों में प्रकाशित किया जाना है। शेष १ खण्ड भी पाठकों की सेवा में शीघ्र ही प्रस्तुत किया जायगा।

इस अद्‌भुत रसवर्षकारी ग्रन्थ की रचना परमादरणीय पूज्य सन्त श्रीस्वामी प्रेमानन्दजी द्वारा की गयी है, जो कि महाप्रभु लीलाभिनय के आधुनिक जनक हैं। आज जितनी भी गौरांगलीला विभिन्न मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं, उनके पार्श्व में स्वामीजी का कुशल निर्देशन एवं प्रस्तुतिकरण ही उनमें रसाभिवृद्धि करता है। उन्होंने बड़ी कृपा करके इस ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान की है।

जनसाधारण को सहज में यह ग्रन्थ उपलब्ध हो सके, इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुये ग्रन्थ की न्यौछावर लागत मात्र रखी है। इससे प्राप्त धनराशि अन्य प्रकाशनों में ही व्यय की जायगी।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोगी सभी सज्जनों की हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। त्रुटि विच्युति की क्षमा प्रार्थना के साथ—

—स्वामी हरिगोविन्द

विषय-सूची

संन्यास-भूमिका

प्रेमानामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य, नाम्नां महिम्नः-
को वेत्ता, कस्य वृन्दावनविपिन महामाधुरीषु प्रवेशः।
को वा जानाति राधां परमरसचमत्कार माधुर्य सीमा-
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परमकरुणया सर्वमाविश्चकार॥

(चै० चन्द्रा०)

प्रेम को स्वरूप कहा, भाव महाभाव कहा
कहा नाम महिमा ए, कैसे कोई जानतो।
वृन्दावन देश महा—माधुरी विशेष कहा
मारग प्रवेश कहा, कौन ए बखानतो।
राधा रसखानी वृन्दा-वन महारानी कहा
रस की सीमनि कहा, कैसे मन भामतो।
आप दोउ गौर श्याम, एक वपु एक नाम
कृष्ण चैतन्य धाम, जो न प्रगटामतो॥

जय जय नित्यानन्द नित्य भंडारी।
जय जय महाप्रभु प्रेम अवतारी॥
जय जय अद्वैत प्रेम आचारी।
जय जय गदाधर प्रेम अवधारी॥
जय जय श्रीवासादि भक्त सुखकारी।
द्रवहु दीन 'प्रेम' पर द्वार भिखारी॥

समाज (दोहा)—

हरि संकीर्तन कल्पतरु, किये नदिया प्रकाश।
विश्व जीवहू फल चखै, ता हित गौर संन्यास॥
मूल हेतु हरीच्छा ही, निमित्त बनै बहु आय।
कहौं गूँथि इक ठौर सब, यथामति जु बनाय॥

(१) श्रीवास पुत्र मृत्यु-प्रसंग

नित कीर्तन नित उत्सव, श्रीवास गृह द्वार।
वर्ष दिवस लौं गौर जहँ, कीन्हे चरित अपार॥
भक्तन संग श्रीवास गृह, नाचत वैकुंठराय।
कीर्तन रस लूटत सकल जो वैकुंठहु नाय॥

(प्रवेश संकीर्तनकारी महाप्रभु, निताई, अद्वैत, श्रीवास, गदाधर, मुरारि, हरिदास आदि भक्त मण्डली)

संकीर्तन—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण०। हरे राम हरे राम०॥
श्रीवास हृदय अधिक हुलासा। जाके गृह संकीर्तन रासा॥
हरबराई आयी इक दासी। लै श्रीवासहिं गई इकासी॥

दासी—(प्रवेश कर श्रीवास को संकेत से) पण्डितजी! भीतर पधारौ। बालक की दशा बहुत ही बिगर गई है वे सब रोय रही हैं (ले जाती हैं)

समाज—

साँचे प्रभु के साँचे दासा। पुत्रहिं तजि नाचत श्रीवासा॥
सुनि कुदशा अन्तर गृह आये! पुत्र समय अन्त लखि पाये॥

(महीन पर्दे के अन्दर श्रीवास-स्त्री मालिनी गोद में बालक। अन्य स्त्रियाँ बस रो रही हैं)

श्रीवास—सुनो! तुम तो सब भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा कूँ जानवे वारी हो। उनकी कृपापात्री हो। फिर क्यूँ रोय रही हो? सोचो तो सही कि यदि—

अन्तकाल कहूँ कान महँ, कृष्ण नाम परि जाय।
चल्यौ जाय वैकुंठ सो, रोकि सकै यम नाय॥

जिन भगवान् के नाम को ही यह प्रभाव है—

वे ही प्रभु हमरे गृह, स्वयं विराजे आय।
हरे कृष्ण हरे राम धुनि, मंगल रही घर छाय॥

उनके ही श्रीमुख सों निकसे भये उनके ही मंगलमय हरे कृष्ण राम नाम या बालक के कानन में बारम्बार प्रवेश कर रहे हैं फिर बताओ या बालक को कहा कोई अमंगल है सकै है। अहा—

या बालक के भाग्य कूँ, हौं हूँ तरसौं हाय।
मरनो नहीं तरनो महा, मिलनो हरि सों जाय॥

यासों सावधान! रोयवे को कोई काम नहीं। जो तुम कोई रोयीं और भगवान् और भक्तन को संकीर्तन—रंग-भंग भयो तो मैं जायकै गंगाजी में कूद मरूँगो यासों चुप रहौ, कृष्ण-कृष्ण कहौ और संकीर्तन सुनौ।

(बाहर आ संकीर्तन करने लगते हैं)

महाप्रभु—(संकीर्तन नृत्य करते-करते ठहर कर) अहो! आज मेरे चित्त में यह कहा होय है। मेरे आनन्द कूँ दु:ख को भाव आय-आयकै क्यूँ दबावे है। श्रीवास जी! आपके घर में कोई दु:ख तो नहीं है?

श्रीवास—

कहा दुख है प्रभु घर मोरे। सब दुखहारी जहाँ पद तोरे॥

समाज—

भक्तन तब सब कथा सुनाई। पंडित पुत्र परलोक सिधाई॥

भक्त १—प्रभो! श्रीवास जी को एकमात्र कुल-दीपक शान्त है गयो।

महाप्रभु—हैं! यह बात! कितेक देर भई?

भक्त १—चार घड़ी रात्रि बीतवे पै। अब तो ढाई पहर रात बीत चुकी है।

महाप्रभु—ओह श्रीवास जी! आपने मोते कही क्यूँ नहीं।

श्रीवास—संकीर्तन को आनन्द भंग है जातो प्रभो! अब आज्ञा होय तो वाकी दाह क्रिया कर दी जाय।

समाज बंगला (चै० भा०)—

प्रभु बोले 'हेनो संग छाडिवो केमते।'
एतो बोलि महाप्रभु लागिला काँदिते॥

महाप्रभु—(रोते हुये) हाय! ऐसो संग कैसे छोड़ जाऊँ! ऐसी साँची-प्रीति त्रिभुवन में दुर्लभ है। अहो! मेरे सुख के आगे पुत्र-शोक जैसे घोर दु:ख कूँ हू कछुई नहीं मानैं हैं! कैसे छोड़ जाऊँ इनकूँ? कैसे तोड़ दऊँ इनके निर्मल प्रेम कूँ? हृदय फटै है! (रुदन)

समाज (चौपाई) —

धीरज बाँध सब गयो बहाई। रोवन लागै गौर निमाई॥
भक्तहु रोवहिं सुनि प्रभु वचना। हमहिं तजि प्रभु करिहैं गमना॥

श्रीवास—(महाप्रभु के आँसू पौंछते हुये) प्रभो! शान्त होओ! मैं एक पुत्र कहा सौ पुत्रन को शोक सह सकूँ हूँ परन्तु आपके इन नेत्रन में आँसू नहीं देख सकूँ हूँ। शान्त होओ नाथ!

महाप्रभु—चलौ भीतर आपके पुत्र के समीप।

(प्रस्थान। पर्दा खुलता है। पुत्र समीप आगमन)

समाज (चौपाई) —

प्रभु ढिंग बालक के चलि आये। परम कृपा करि बोल सुनाये॥
बूझत प्रश्न बोलन सो लाग्यौ। मानौ होय नींद सों जाग्यो॥

प्रश्नोत्तर (महाप्रभु छन्द) —

श्रीवास घर काहे तजत हो।

बालक—शिशु कहत आज्ञा तुव प्रभो!

कर्म डोर महँ बाँधि जीवहिं, तुम नचावहु बहु विभो॥
कौन काको तात मात, अरु कौन काको सुत हरे।
कर्म भोगन हित जुरैं सब, भोगि निज निज पथ धरें॥
या देह को श्रीवास के संग, आज लौं सम्बन्ध हो।
अब चल्यौ मैं धाम तुम्हरे, जहाँ न कोई बन्ध हो॥
भक्त परिकर सहित तुम्हरे, अभय चरनन नमो नमः।
देओ विदा अपराध क्षमा सब, प्रेम पुनि पुनि नमो नमः॥

(सबको हाथ जोड़ सिर झुका लुढ़क पड़ना)

महाप्रभु—हरिबोल! हरिबोल!

(महाप्रभु श्रीवासादि सब बाहर चले जाते। पर्दा)

महाप्रभु—श्रीवास! कोई दुःख मत करौ। सुनौ—

गाना छन्द—

एक बोल हौं देत तुमकों, मेरे प्रानन परम मीत।
एक सुत तुम आज खोये, लेऔ द्वै द्वै हम विनीत॥
नित्यानन्द अरु मैं तुम्हारो, तनय प्रेमके भये पुनीत।
दूर करौ उरकी व्यथा सब, मिथ्या मोह यह जगकी रीत॥

भक्त मण्डली—हरिबोल! जय हो दयामय! आपकी कृपा की जय हो जय हो भक्त के प्रेम की जय हो। (प्रस्थान)

समाज (दोहा)—

भक्त प्रेम और हरि कृपा, इनके न्यारे खेल।
जीत हार नहिं काहु को, नित ही नये रंग रेल॥

गजल कव्वाली—

जो हरि की कृपा निराली है, तो भक्त का प्रेम भी निराला है।
यहाँ जीत हार है हार जीत है, यह जग से खेल निराला है॥
यह निराला है, यह निराला है० ॥
दिलमें अपना कोई दुःख नही, बस दर्द प्यारे का ही भरा हुआ।
न सुख की अपनी चाह कहीं, सुख प्यारे का ही प्यारा हुआ।
यही प्रेम की सच्ची निशानी है, यह प्रेम का पंथ निराला है।
यहाँ जीत हार है, हार जीत है, यह जग से खेल० ॥
चाह मिटी दिल खाली हुआ, वह तबही पूरा भरा गया।
जब बरस पड़ी हरि की कृपा, वह तबही हरि का प्यारा हुआ।
पिता पुत्र तो पुत्र पिता बने, चला उलटा पंथ निराला है।
यहाँ जीत हार है, हार जीत है० ॥२ ॥
भूल गया सब कुछ सबको ही, तबही भक्त की जीत हुई।
भूल गये भगवान् भी सब कुछ, तब उनकी भी जीत हुई।
जब भूले दोनों खेल चला 'प्रेम' नया नया निराला है।
यहाँ जीत हार है हार जीत है० ॥३ ॥

पयार (चै० भा०)—

हेनो मते नवद्वीपे श्रीगौरसुन्दर।
विहरये संकीर्तन सुखे निरन्तर॥
प्रेम रसे प्रभुर संसार नाहिं स्फुरे।
अन्येर कि दाय, विष्णु पूजिते ना पारे॥

इत संकीर्तन रंग बढ़्यौ, उत बाढ़्यौ हिय प्रेम।
दरस लालसा प्रबल भई, छूटन लागै नेम॥

(२) केशव भारती का आगमन

न्हाय गंग निज मन्दिर आये। तुलसी पूजन हित मन लाये॥

(पर्दा खुलता है। विष्णु मन्दिर। श्रीसेवा मूर्त्ति। शालिग्राम। तुलसी वेदिका इत्यादि)

महाप्रभु—(प्रवेश—हाथ में गंगाजल पात्र, पीछे-पीछे गदाधर माला-पुष्प- डलिया लिये हुये)

कृष्ण! कृष्ण-कृष्ण! हा वृन्दावन! वृन्दावन बिहारी
कृष्ण कृष्ण हा मोहन मदनगोपाल हा मुरलीधर

गदाधर—प्रभो! तुलसी महारानी कूँ स्नान कराओ।

महाप्रभु—(स्नान-मंत्र-पाठ) गोविन्दवल्लभां देवी............ गोविन्दवल्लभां देवीं देवीं.....राधे-राधे वृन्दावनेश्वरि! कृष्ण प्राणाधीश्वरि! (रुदन)

समाज (दोहा)—

गोविन्दवल्लभा कहत ही, चित्त गयो भरमाय।
भूल गये तुलसी प्रिया, रटत राधिका गाय॥
मंत्र पाठ करै कौन अब, लियो भाव दबाय।
कृष्ण भाव जाग्यौ हिय, रोवत राधा गाय॥

गदाधर—प्रभो! मैं मन्त्र बोलूँ हूँ! आप स्नान कराओ—

गोविन्दवल्लभां देवीं भक्तचैतन्यकारिणीं।
स्नापयामि जगद्धात्रीं, विष्णुभक्तिप्रदायिनीम्।

महाप्रभु—हा हा विष्णुभक्ति प्रदायिनि! तुम विष्णु भक्ति प्रदान करवे वारी हो! मैं भक्तिहीन दीन दुखिया हूँ! मोकूँ हू कृष्णभक्ति प्रदान करौ। यह गंगाजल स्वीकार करौ (स्नान कराते हुये) बस एक बूँद—एक बूँद कृष्णभक्ति प्रदान करौ।

गदाधर—लेओ प्रभो! यह माला धराय देओ!

महाप्रभु—(माला लेकर तुलसी को धारण कराते हैं)

गदाधर—अब परिक्रमा देओ प्रभो! मैं मन्त्र बोलूँ हूँ।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तत्सर्वं विलयं याति, तुलसि! त्वत् प्रदक्षिणात्॥

महाप्रभु—हे तुलसी! हे वृन्देरानी! भक्ति, कृष्णभक्ति मिलै इतनी कृपा करौ। और मैं कछु नहीं चाहूँ हूँ।

गदाधर—प्रभो! अब प्रणाम करौ! मैं मन्त्र बोलूँ हूँ।

वृन्दायै तुलसी देव्यं प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः॥

महाप्रभु—(प्रणाम करते हुये) हा हा विष्णुभक्तिप्रदे! कृष्णभक्ति केवल कृष्णभक्ति! हा कृष्ण! प्राणकृष्ण! कृष्ण!

समाज—

अति अधीर विरह मति पागी। कृष्ण कृष्ण रट कृष्ण लागी॥
नैंनन धार बहैं अधिकाई। भीजैं वसन जल धरनहु जाई॥
कहत गदाधर पुनि समझाई। होत अवार हरि पूजन तांई॥

महाप्रभु—हाँ गदाधर हाँ! चल भैया! अच्छी याद दिवाई।

गदाधर—प्रभो! यह वस्त्र तो आँसुन सों भीज गयो। पहले दूसरो वस्त्र बदल लेओ।

महाप्रभु—हाय गदाधर! नित्य ही वस्त्र बदलने परैं हैं! तौहू सेवा ठीक नहीं बन पावै है। यह सेवा तो बड़ी ही सावधानी का काम है। मैं तो सावधान रह नहीं सकूँ। मेरी तो सुध-बुध बस कृष्ण ने हरलीनी है। गले से लिपटकर—

मेरी कृष्ण देओ मिलाय। कृष्ण दरस हित जिय अकुलाय॥
तुम तो कृष्णभक्त सदाई। वृथा दियो मैं जन्म गँवाई॥
मिलिहैं कृष्ण कृपा कहा करिहैं। दीन दुखीजन पै कब ढरिहैं॥
जैहौं वृन्दावन अब जैहौं। कृष्ण दरस वृन्दावन पैहौं॥

गदाधर—प्रभो! श्रीकृष्ण तो सदा आपके हृदय-वृन्दावन में ही विहार कर रहे हैं।

महाप्रभु—अच्छो! श्रीकृष्ण मेरे हृदय में ही हैं! तो अबही पकरूँ हूँ। अब कहाँ जायँगे भागकै।

समाज (दोहा)—

दुहुँ करसों हृदय गहि, लगै विदारन गौर।
गदाधर लखि हा हा करि, गह्यौ धाय कर जोर॥

गदाधर—(महाप्रभु के हाथों को पकड़) हाय हाय! यह कहा करौ हौ प्रभो! देखो तो आपके सुकोमल हृदय के ऊपर नखन के चिह्न उछरि आये हैं। हाय प्रभो! आप ऐसे करौगे तो हम कैसे जीयेंगे। चलौ भीतर विश्राम करौ। पूजन मैं करै दऊँ हूँ।

नेपथ्य में से ध्वनि—नारायण! नारायण!

गदाधर—कोई संन्यासी महात्मा पधारे हैं प्रभो।

महाप्रभु—जाओ सादर लै आओ।

गदाधर—(जाता है और केशव भारती को ले आता है)

समाज (दोहा)—

कृष्णभक्त न्यासी प्रवर, केशव भारती नाम।
बसत गंगा पार जहाँ, काटोआ इक गाम॥

महाप्रभु—(दौड़कर चरणों में पड़) भगवन्! कृपा करौ। मो दीन-दुखिया पै कृपा करौ। प्यारे कृष्ण कूँ मिलाय देओ। आप श्रीकृष्ण-अनुरागी महापुरुष हैं। मोकूँ श्रीकृष्ण के समीप लै चलौ। हाय! मैं कब आप जैसो भेष धारण करकै श्रीकृष्ण कूँ ढूँढूँगो। वृन्दावन जाऊँगो। कहा वे मोकूँ दर्शन देंगे? हा कृष्ण!

समाज—

गद्‌गद् कंठ रुद्ध भये वैना। प्रेम धार बरसत दोउ नैना॥
लखि लखि भारती भारती विसरे।
विधि गति समुझि कछुक पुनि उचरे॥

केशव भारती—अहा वत्स! तुम्हारो दर्शन पायकै मेरो नवद्वीप आमनो सफल भयो। तुम्हारो यह कृष्णानुराग परम अद्‌भुत है। मेरो मन तो कहै है कि तुम साक्षात् शुकदेव अथवा प्रह्लाद हौ। अथवा स्वयं......

महाप्रभु—हा हा भगवन्! ऐसे स्तुति वाक्य के योग्य यह दास नहीं है। मैं तो भक्तिहीन दीन दुखारी हूँ कृपा, एक कृपा को ही भिखारी हूँ। कृपा करौ, बताओ प्यारे कृष्ण कैसे मिलैंगे?

केशव भारती—गौरसुन्दर! धीरज धरौ। श्रीकृष्ण की कृपा भई तो तुम्हारो हमारो मिलन शीघ्र ही होयगो। श्रीकृष्ण तुम्हारो मंगल करैंगे। अब मोकूँ आज्ञा होय।

महाप्रभु—आज मो दीन दासकों ही आपकी सेवा को सौभाग्य मिलै।

केशव भारती—कहा करूँ, श्रीवास जी ने मोते वचन लै लियो है यासों वहाँ जानौ ही परैगो। वे मेरी बाट देख रहे होंगे।

महाप्रभु—जैसी आज्ञा! दास कूँ भूलनो नहीं भगवन्! जाओ गदाधर! आपकूँ श्रीवास भवन पहुँचाय आओ। ॐ नमो नारायणाय।

केशव भारती—श्रीकृष्णे मतिरस्तु! नारायण! (प्रस्थान)

शची—(प्रवेश कर) क्यूँ बेटा निमाई! आज फिर यह कौन नयो संन्यासी आयो हो?

महाप्रभु—माँ! यह गंगा-पार काटौआ गाम रहै हैं। बड़े कृष्णभक्त हैं। इनको नाम है श्रीश्रीकेशव भारती।

शची—बेटा! तू इन संन्यासी महात्मान सों इतनो प्रेम क्यूँ करै है? कोई न कोई तेरे पास आमते रहै हैं।

महाप्रभु—माँ! ये परमहंस होय हैं। श्रीकृष्ण सों प्रेम करैं हैं इनके सत्संग सों मोकूँ बड़ी शान्ति-सुख मिलै है।

शची—परन्तु मोकूँ तो बड़ो भय होय है। इनकूँ देखकै तेरे बड़े भैया की याद आय जाय है। पुरानो घाव हरो है जाय है और तेरीहू चिन्ता आय दबावे है।

महाप्रभु—माँ मेरी कोई चिन्ता मत करौ। मैं तुम्हारी आज्ञा बिना कछु नहीं करूँगो।

शची—अच्छो चल! अब नारायण को प्रसाद पायलै। आज बहुत देर है गई है। (दोनों का चले जाना)

समाज (चौपाई)—

विषय सुख की कहा चलावै। हरि सेवा हू होन न पावै॥
प्रेमसिंह जब तन महँ गरजै। धर्म कर्म सब मृग ज्यूँ लरजै॥
बरजत अँखियाँ जात न बरजै। छिन छिन नेहकी ढरत हैं तरजै
लीलाधर लीला रचत, जब जैसी जिय होय।
योग-वियोग घटावहिं, समुझि सकै न कोय॥

भक्तन घर घर नदिया महँ, कीर्तन-उत्सव घोर।
निन्दक पाखंडिन उदर, उठत व्यथा मरौर॥
धूप संग रहै नित छाया। ब्रह्म संग जैसे रहै माया॥
अग्नि संग धूप रहै कारो। दीपक तरे होय अँधियारो॥
कमल जहाँ तहाँ होवै कीच। साधुन के पीछे त्यों नीच॥
मोती जहाँ तहाँ होवै सीप। अन्न संग बहु होवै कीट॥
पुष्पन संग बहु तीखे कंटक। सन्तन पीछेहू बहु निन्दक॥
चारौं युग देखौ परमाना। गुण दोषमय सृष्टि रचाना॥

(3) विद्वेषी पण्डित-दल

राम-द्वेषि कृष्ण-द्वेषि के, चरित जानैं सब कोय।
गौर-द्वेषि के चरित सुनौ, लीला हित सब होय॥

(प्रवेश न्यायाचार्य लोकपाल, तंत्राचार्य कृष्णानन्द एवं भक्त मुरारि गुप्त)

लोकपाल—मुरारि! निमाई की वर्तमान दशा को मूल कारण है तुम वैष्णव भावुकन की संगति। अद्वैत-श्रीवासादि की गोष्ठी में जाय-जायकै वाकी मति भ्रष्ट है गई है। दिग्विजयी-विजयी पण्डित शिरोमणि निमाई कूँ लोगन ने नाचवे-गावे वारो एक कीर्तनिया बनाय दियौ है।

मुरारि—तो कहा बुरो कियो। भगवान् को नाम गुण कीर्तन करनो तो मनुष्य को परमधर्म है, समस्त धर्म-कर्म को फल है—यही श्रीमद्भागवत को निर्णीत सिद्धान्त है—'योगिनां नृप-निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्'।

लोकपाल—और स्त्रिन की तरह रोमनोहू कहा भागवत को निर्णीत सिद्धान्त है—परम धर्म है?

मुरारि—निश्चय—

एवं व्रतो स्वप्रियनाम कीर्त्या
जातानुरागो द्रुत चित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः॥

अपने प्यारे प्रभु को प्यारो नाम कीर्तन करते-करते भक्त जब प्रेम में विभोर है जाय है तब वाको चित्त द्रवीभूत है जाय है। तब वह उच्चस्वर सों हँसै है, रोवै है, पुकारै है, गावै है, नाचै है, उन्मत्त है जाय है। लोकलाज और

शास्त्र-मर्यादा सब बह जायँ है। ऐसी प्रेमभकित मुक्ति हू ते श्रेष्ठ है—'भक्तिः सिद्धेर् गरीयसी' (भाग०) अतएव भगवान् के प्रेम में रोमनो स्त्रिन को कर्म नहीं, परम सिद्धन को कर्म है, सर्व-धर्म-कर्म को फल है, सर्वसाधन को साध्य है प्रेमी-भक्त के आँसू प्राकृत जल नहीं, दिव्य-अग्नि है जो वाके सूक्ष्म और कारण देह तक कूँ जराय करकै वाकी काया कूँ निर्गुण चिन्मय बनाय देय है।

जरयत्याशु या कोषं निगीर्ण मनलो यथा। (भा०)

लोकपाल—(व्यंगपूर्वक) ओ हो! तबही निमाई की हू काया पलट गई है और वह नर सों नारायण बन गयो है। क्यों?

कृष्णानन्द—(चौंककर) कहा कहौ न्यायाचार्य जी! निमाई नारायण है?

लोकपाल—हाँ कृष्णानन्दजी! हमारो तुम्हारो सहपाठी निमाई हमते दस-बारह वर्ष छोटा—वह तो द्वै दिना में ही पाठशाला बन्द करते ही भगवान् बन गयो और हम तुम पाठशाला पढ़ामते-पढ़ामते, पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस वर्ष तक शास्त्र घोंटते-घोंटते हू आचार्य तक ही बन पाये। तुम तो तन्त्र-मन्त्रन सिद्ध करते-करते सूख गये और मैं न्याय की फक्किकान में ही फुक गयौ, और वह निमाई नारायण बन गयो! वाह रे भाग्य 'भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्।

कृष्णानन्द—भाई लोकपाल! हाँसी छोड़ौ और साँची बताओ। यह तो बड़ी गुरु गम्भीर बात है।

लोकपाल—मैं कहा बताऊँ या मुरारि ते ही पूछ लेओ कि याकूँ निमाई ने बाराह रूप एवं राम रूप सों दर्शन दियौ कै नहीं।

मुरारि—अवश्य दियौ यामें छिपायवे की बात ही कहा!

कृष्णानन्द—स्वप्न में कै जागृत में?

मुरारि—जागृत में—ठीक ऐसे जैसे मैं तुमकूँ देख रह्यौ हूँ।

कृष्णानन्द—(सिर हिलाते हुये) ऊँ हूँ! यह तो गुरु ही नहीं गुरुतर रहस्य है।

लोकपाल—और सुनो! श्रीवास कूँ निमाई में नृसिंह रूप के दर्शन भये और द्विभुज ही नहीं, चतुर्भुज, षड़भुज, अष्टभुज तक के हू दर्शन भये।

कृष्णानन्द—अष्टभुजा कौन के?

लोकपाल—तुम्हारी इष्ट देवी दुर्गा मैया के और कौन के! एक समय कहैं हैं कि निमाई ने जगदम्बा को रूप प्रगट करकै बूढ़े-बूढ़े भगतन कूँ गोदी में बैठार कै स्तन पान करायौ हो। अरे यार! तुम स्वयं माँ के घर के पूत है करकै हू टापते ही रह गये और बाहर वारे आयकै दूध पी गये माँ को! भगतजी! अबके दुर्गा मैया आवै तो इनकूँ हू बुलवाय कै दूध अवश्य चुसवाय दीजौ! ये तो सात पीढ़ीन सों देवी भक्त हैं।

कृष्णानन्द—(आश्चर्य पूर्वक) दुर्गा दुर्गा दुर्गा! यह तो गुरुतर नहीं गुरुतम रहस्य है।

लोकपाल—गुरुतर-गुरुतम कछुई नहीं—सब वैष्णवन की पोप लीला है—सम्प्रदाय चलायवे के हथकंडे हैं। परन्तु भगतजी! यह तिहारे अवतार की नौका हमारे नवद्वीप में नहीं चलैगी। हमारे न्याय और मीमांसा को गढ़ तुम्हारे भाव के पटाखे और फुलझरिन सों सर नहीं होयगो—समझ गये न?

मुरारि—लोकपाल! यह तुम्हारो सर्वथा भ्रम है। निमाई के भाव कूँ समझे बिना उनके ऊपर मिथ्या लाञ्छन लगामनो तुम जैसे न्यायाचार्य के लिये शोभा नहीं देय है। निमाई के समान वैष्णव और कोई दूसरो मिलनो दुर्लभ है। एक दिना एक ब्राह्मण ने अनजानेहू उनकूँ भगवान् श्रीकृष्ण कह दियौ हो तो वे मर्माहत है के गंगाजी में कूद परै है। तबसों हम सब बहोत ही सावधान रहै हैं। उनके सम्मुख उनकूँ भगवान् कहवे को साहस कोई नहीं करै है।

लोकपाल—तो फिर वह मन्दिर में विष्णु सिंहासन के ऊपर बैठ करके भगवान् क्यूँ बनै है, अपनी पूजा क्यूँ करवावै है, और वरदान कैसे देय है?

मुरारि—यह तो उनके स्वरूप-प्रकाश की लीला है। आगे पीछे तो वे दीनातिदीन भक्त बने भये स्वयं पूजा करैं हैं।

लोकपाल—स्वरूप-प्रकाश सों तुम्हारो कहा अभिप्राय है?

मुरारि—सुनौ ध्यानपूर्वक! उनके चरित में तीन प्रकार के भाव दिखाई देय हैं—सहज भाव, भावावेश एवं स्वरूप प्रकाश जब वे अपने सहज भाव में रहैं हैं तो वे अपने कूँ कृष्णदास समझैं हैं और तृण ते हू अति तुच्छ अपने कूँ जानकर भक्तन की चरण-रज लेय हैं, भक्ति की याचना करै हैं एवं श्रीकृष्ण की यथोचित सेवा पूजा करैं हैं। यह उनकौ जीव भाव है।

लोकपाल—और भावावेश सों कहा तात्पर्य है?

मुरारि—भक्तन के भावन को आवेश ही भावावेश है। उनमें कबहु-कबहु, प्रह्लाद, उद्धव, गोपी जैसे महाभागवतन के भाव को उदय होय है। तब वे वैसो ही आचरण करैं हैं। यह भावावेश की अवस्था जानौ।

लोकपाल—ठीक है। यहाँ तक तो समझ्यौ परन्तु यह स्वरूप प्रकाश कहा है।

मुरारि—स्वरूप-प्रकाश माने स्वरूप को प्रकाश। जैसे आग को गोला है। वाकूँ भुस में लाख दबाय कै राखौ। वह देर-सबेर भुस कूँ जराय कै अपनो स्वरूप प्रगट कर ही देय है। दबाय नहीं दबै है, प्रगट है ही जाय है। ऐसे ही अनुकूल परिकर एवं परिस्थिति कूँ पायकै गौरसुन्दर हू अपने कूँ जीवभाव के भीतर छिपाय नहीं सकै हैं। जीव भाव को आवरण भेद करके स्वरूप प्रगट है ही जाय है। यही है स्वरूप-प्रकाश। समझ गये?

लोकपाल—तो कहा निमाई को स्वरूप स्वयं भगवान् है।

मुरारि—निश्चय! निस्सन्देह!

लोकपाल—प्रमाण-शास्त्र-प्रमाण?

मुरारि—प्रमाण तो पुराण, संहिता, आगम तंत्र ग्रन्थन में भरे परे हैं।

लोकपाल—सब प्रक्षिप्त हैं, बनावटी हैं।

मुरारि—ऐसे कहवे वारे विक्षिप्त हैं, दिवान्ध हैं। सूर्य दर्शन के लिये दीपक माँगवे वारे हैं। प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण की कहा आवश्यकता है। तुम्हारी आँख होयँ तो चल करकै देख लेओ और बुद्धि होय तो परख करके देख लेओ! चलौ।

कृष्णानन्द—हाँ ठीक है लोकपाल! वाद-विवाद छोड़ो। चलौ निमाई के पास चलैं। तुम न्यायाचार्य और मैं तन्त्राचार्य! हम द्वै-द्वै आचार्य शिरोमणि और फिर वाके पुराने सहपाठी। हमते वाको भाव कछु गुप्त नहीं रह सकैगो। वाको भाव, अभाव, कुभाव, सुभाव सब प्रगट है जायगो।

लोकपाल—ठीक है। दाई के आगे कहा पेट छिप सकै है। चलौ अभी निर्णय करै लेयँ हैं। (तीनों का प्रस्थान)

समाज (दोहा)—

भाव रससागर गौर मधि, उठत तरंग अपार।
मत्त शान्त विह्वल कभु, अद्‌भुत प्रेम विकार।।

बंगला (चै० भा०) —

आपनार रसे प्रभु आपनि विह्वल।
आपनी पासरि जेनो कहेन सकल।।

आपन रस में आपही, निशिदिन रहैं विभोर।
आपन भूलिकै प्रेममयी, लीला उघटत गौर।।

(पर्दा खुलता है। महाप्रभु राधाभाव में विह्वल वाम हस्त पर कपोल। शोकमुद्रा में अवस्थान। गदाधर-नरहरि सखा समीप)

समाज (दोहा) —

भूल मूल है खेल को, भूल बिना नहीं खेल।
जीव भूलै जब कर्म करै, हरि भूलैं करैं खेल।।

बैठ गौर भाव मधि भूले। राधाभाव महँ तन मन झूले।।
माथुर विरह भाव उमगायौ। गहि गहि कंठ विलाप सुनायौ।।

महाप्रभु (पद-पटमंजरी) —

नैन सलोने श्याम हरि कब आवहिंगे।।
वे जो देखत राते-राते फूलन फूले डार।
फूलझरी सी लागत मोकूँ झरि झरि परत अंगार।
हरि कब आ०।।
फूल बिनन नहिं जाऊँ सखीरी, हरि बिन कैसे फूल।
सुनरी सखी मोहिं राम दुहाई, लागत फूल त्रिशूल।।
हरि कब आ०।।
जब ते पनघट जाऊँ सखीरी, वा यमुना के तीर।
भरि भरि यमुना उमड़ि चलत है, इन नैनन के नीर।।
इन नैनन की नीर सखीरी, सेज भई घर नाऊँ।
चाहति हौं ताहि में चढ़िकै, हरिजू के ढिंग जाऊँ।।
लाल पियारे प्रान हमारे, रहै अधर पै आय।

समाज—

सूरदास प्रभु कुंजबिहारी (महा०) मिलत नहीं क्यूँ धाय।।

महाप्रभु—हाय हाय सखियो! प्यारे तो नहीं आय रहे हैं और ये प्राण जानौ चाह रहे हैं। मैं ही क्यूँ न वहाँ चली जाऊँ। लै चलो सखियो! मोकूँ

प्यारे के दर्शन कराय दैओ। प्राण तो अवश्य जायँगे परन्तु वा मुखचन्द्र के दर्शन करते-करते जायँ। यासों लै चलौ। सामने तो ही है मथुरा—

पद (गौड मल्हार)—

देख सखी उत है वह गाऊँ।
जहाँ बसत नन्दलाल हमारो, मोहन मथुरा नाऊ।।
कालिन्दी के कूल वसत है, परम मनोहर ठाऊँ।
जो तन पंख होय तो सजनी, आज अबहिं उड़ि जाऊँ।।
(जो तुम मथुरा नहीं लै जाओगी तो)

समाज—

सूरदास नन्दनन्दन सों रति (महा०) लोगन कहा डराऊँ।।

सखियो प्यारे के मुखचन्द्र के दर्शन किये बिना अब मैं अन्न जल मुख में नहीं दऊँगी। मेरे तन को आहार श्याम, मन को आहार श्याम, प्राणन को आहार श्याम और इन नैनन को आहार हू श्याम ही है। यासों मेरी इन इन्द्रियन को कहा दोष जो ये सब श्याम ही श्याम माँगे हैं।

पद (आसावरी)—

कहा इन नैनन को अपराध।
रसना रटत सुनत यश श्रवनन, इतनी अगम अगाध।
भोजन किये बिन भूख क्यूँ भाजै, बिनु खाये सब स्वाद।
इकटक रहत छूटत नहिं कबहू, हरि देखन की साध।
यह दृग दुखी बिना वह मूरति, कहौ कहा अब कीजै।।

समाज—

एक बेर ब्रज अति कृपा करि, सूर सो दर्शन दीजै।।

सखियो। लै चलौ मोकूँ, प्यारे सों मिलाय देओ। दूर ही सों दर्शन कराय देओ (रुककर) अरे अक्रूर! अरे क्रूर! ठहर ठहर! तू मेरे धन कूँ कहाँ लिये जाय है। प्यारे! प्यारे! तुम ही उतरि आओ। मैं तिहारे हा हा खाऊँ हूँ। उतरि आओ न रथ ते! नहीं उतरौ हो। तुमहू क्रूर के संग क्रूर है गये कहा? चले ही जाओगे? तो जाओ! जाओ! मैं हू तुम्हारो नाम नहीं लऊँगी। श्याम रंग नहीं देखूँगी! श्याम कथा नहीं सुनूँगी! तुम बड़े क्रूर हो, कपटी हो, कृतघ्नी हो। बेचारी भोरी भारी गोपिन कूँ मार गये! अहा गोपी! गोपी! प्रेममयी गोपी!

(प्रवेश लोकपाल और कृष्णानन्द)

समाज (बंगला चै० भा०)—

एक दिन गोपी भावे जगत ईश्वर।
वृन्दावन गोपी गोपी बोले निरन्तर।।

महाप्रभु—गोपी गोपी! वृन्दावन वृन्दावन! गोपी गोपी!

लोकपाल—सुन लेओ मित्र नयो मन्त्र गोपी गोपी गोपी! वाह वाह वाह! यह गोपी-भजन कब ते चल पर्यौ?

कृष्णानन्द—पहले वदे ने इन्द्र, रुद्र, वरुण, पवन आदि देवता बनाये। फिर वेदान्त ने सब देवतान को तत्त्व खैंच करकै एक निर्गुण ब्रह्म बनाय दियौ। निर्गुण ते काम न चल्यौ तो पुराणन ने सगुण ब्रह्म प्रगट कर दियो। बाते हू पूर्ति न भई तो भये ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

लोकपाल—फिर भये देवी, सूर्य, गणेश।

कृष्णानन्द—फिर भये कच्छ, मच्छ, बाराह।

लोकपाल—फिर आये नरसिंह, राम, कृष्ण।

कृष्णानन्द—तौहू पूरौ नहीं पर्यौ, माँग बढ़ती गई! तो एक राम के अनेक भेद भये और एक कृष्ण के अनेक भेद है गये।

लोकपाल—और जब देवतान ते काम न चल्यौ, तो देवी चल परीं सीता राम, राधा कृष्ण! गौरी शंकर।

कृष्णानन्द—और हमारे तन्त्र ने दुर्गा, काली, तारा, भैरवी, चामुण्डा, षोडशी, छिन्नमस्तका देविन की फौज प्रगट कर दई। जितने देवता उतनी देवी। जितने गाँव उतनी देवी। तुम्हारे दस अवतार तो हमारी दस महाविद्या।

लोकपाल—हमारो सनातन धर्म कहा है अवतारन को टकसार है। धड़ाधड़ घड़ते जाओ और फटाफट चलाते जाओ! और अब तंत्राचार्य जी! तुम्हारी समस्त देविन के ऊपर आय बैठी है सन्तोषी मैया! सास के सिर पै बहू! बोल सन्तोषी मैया की जय!

महाप्रभु—गोपी गोपी! प्रेममयी गोपी! कृष्णमयी गोपी।

लोकपाल—और अब यह गोपी-भजन और चल पर्यौ है।

महाप्रभु—गोपी! गोपी! गोपी!

लोकपाल—निमाई पण्डित! यह गोपी कौन-सो अवतार है कौन-से शास्त्र में लिख्यौ है यह गोपी-उपासना। गोपी गोप नाम को कहा फल है? अरे कृष्ण कृष्ण कहो! कृष्ण नाम को अनन्त फल है।

कृष्णानन्द—कृष्ण न कहौ तो 'काली-कौल' कहौ और मोते वीर मन्त्र लैकै भैरवी-साधना करौ। मर्द बनौ मर्द! यह कहा स्त्रिन की नांई बैठे-बैठे रोय रहे हो और अहीरिनी ग्वालिनी को नाम रट रहे हो।

महाप्रभु—कौन बोल्यौ? दूत है दूत! वा कपटी को दूत? मथुरा ते आयौ है। मोकूँ लैवे? अरे जा चल्यौ जा! मैं नहीं जाऊँगी! वाकी एकहू बात नहीं सुनूँगी। वह क्रूर है, कपटी है, तस्कर है, बधिक है! खबरदार! जो मेरे आगे वाको नाम हू लियौ!

लोकपाल—अरे पण्डित! अपने भगवान् कूँ गारी देओ हो?

कृष्णानन्द—और भगवान् तो तुम्हीं हो! फिर तुम कौन को भजन करौ हो? कौन के लिये रोओ हौ?

महाप्रभु—अरे तू गयो नहीं? वाको नाम लै लैकै मो जरी कूँ जराय रह्यौ है? निकस मेरे कुंज में ते।

लोकपाल—तंत्राचार्य जी! समझाओ ना! करौ न शास्त्रार्थ।

कृष्णानन्द—कौन सों करैं! याकी तो बुद्धि ही ठिकाने नहीं है यह तो निपट बावरो बन गयौ है।

महाप्रभु—हाँ हाँ! वह मोकूँ बावरी बनाय गयौ है। और मेरो उपचार करवे तू भेज्यौ है! निकस यहाँ ते। ठहर जा! मैं ही निकास बाहर करूँ हूँ (एक डंडा उठाकर खड़े हो जाते हैं)

कृष्णानन्द—अरे बाप रे बाप! मारैगो कहा? ब्राह्मणन कूँ मारैगो? लै मार तो मार! नदिया में तेरो ही राज है न?

लोकपाल—(पकड़ कर खींचते हुये) रहन देओ शास्त्रार्थ! यह सोटाराम शास्त्री बड़ो जबर है। खोपड़ी खिल जायगी बेल जैसी! भागो यार (खींचते हुये ले जाता है)

कृष्णानन्द—(पीछे हटते-हटते) या अपमान को बदलो न लऊँ तो मेरो नाम कृष्णानन्द नहीं। तू गुसांई बन बैठ्यो है। मैं तंत्राचार्य हूँ तंत्राचार्य!

लोकपाल—तू जगन्नाथ को छोरा तो मैं ब्रह्मनाथ को बेटा भट्टाचार्य हूँ। हममें कहा ब्रह्म-तेज नहीं है।

कृष्णानन्द—(जाते-जाते) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ फट् स्वाहा।

लोकपाल—(खींचते हुये) अरे यहाँ नहीं श्मशान में। सोठाराम के आगे नहीं। एकान्त में आधीरात में—(भाग जाते हैं)

समाज (दोहा)—

पकरि गौर कर सखन ने, बैठारे पुनि लाय।
तब कछु आई देह सुध, बोलत अचरज पाय॥

महाप्रभु—(सचेत हो हाथ में डंडा को देख) क्यों भैयाओ! यह सोठा मेरे हाथ में कैसे आय गयो? (फेंक देते हैं)

सखा—(चुप खड़े रहते हैं)

महाप्रभु—(कुछ सोचते हुये) ओह! यह मैं कहा कर बैठ्यो?

बंगला (चै० भा०)—

कोरिलो पिप्पलि खंड कफ निवारिते।
उलटिया आरो कफ बाढिलो देहते।।

ओह! कफ् दूर करवे कूँ पीपर खायौ परन्तु कफ् तो और बढ़ गयो। रोग ते औषधि बुरी निकसी।

नरहरि—गदाधर! गदाधर! यह प्रभु ने कहा पहेली कही? कैसो रोग और कैसी औषधि?

गदाधर—भैया! मैंने जो कछु समझयौ वासों तो बड़ो भय होय है। प्रभु कहैं हैं कि संसार में मैं आयो तो याके तांई कि जीव कृष्णभक्ति करकै पार होवैं। परन्तु यह तो उल्टो मोसों ही द्वेष करैं हैं! हाय हाय नरहिर! कहीं प्रभु हमकूँ छोड़कै नहीं चले जायँ। श्रीवास के पुत्र की मृत्यु के समय हू प्रभु के मुख ते ऐसी ही बात निकस परी ही! हाय कहा करैं? कौन सों कहैं?

नरहरि—भैया गदाधर! चलौ नित्यानन्द प्रभु सों निवेदन करैं। यह उनको बड़ो आदर-सम्मान करैं हैं। वे ही इनकूँ समझाय सकैं हैं।

महाप्रभु—(मौन चिन्तामग्न बैठे हैं)

नेपथ्य—निमाई पण्डितजी घर में हैं कहा?

गदाधर—प्रभु! आपकूँ कोई बोल रह्यौ है।

महाप्रभु—जाओ सादर लै आओ।

(४) महाप्रभु द्वारा धर्म-व्याख्या

गदाधर—(बाहर जाकर एक ब्राह्मण को लेकर आता है)

ब्राह्मण—मैं गौड़ देश ते आय रह्यौ हूँ! आप मेरो प्रणाम स्वीकार करैं।

महाप्रभु—(हाथ जोड़ खड़े हो) नमस्कार ब्रह्मन्! पधारौ! विराजौ।

ब्राह्मण—(बैठकर) मैं आपके समीप एक निमित्त विशेष सों आयो हूँ।

महाप्रभु—आज्ञा करौ देव!

ब्राह्मण—मैं गौड़ देश के भूतपूर्व राजा सुबुद्धिराय के आश्रय में रहवे वारो हूँ। यह तो आपकूँ ज्ञान ही होयगो कि हमारे राजा कूँ विदेशी यवन शत्रुन ने राज्यच्युत ही नहीं कियौ है, उनकूँ जाति भ्रष्ट हू कर दियौ है। उनके मुख में बलपूर्वक यवनोच्छिष्ट जल डार दियौ है। अतएव हिन्दू समाज ने उनकूँ बहिष्कृत कर दियौ है।

महाप्रभु—हाँ! यह तो मैंने हू सुन्यौ है। या समय राजा कहाँ हैं?

ब्राह्मण—वे मेरे घर में मुँह छिपाये परे हैं। राज्यच्युत एवं जाति-च्युत है कै वे विचारे घोर संकट में परे भये हैं।

महाप्रभु—तो आपको यहाँ नवद्वीप में आयवे को प्रयोजन कहा है?

ब्राह्मण—यहाँ के धर्माचार्य ब्रह्म समाज सों राजा के लिये प्रायश्चित की व्यवस्था लैवे आयो हूँ। कारण कि देश को राजा भले ही कोई होय, धर्म के रक्षक तो ब्राह्मण समाज ही होय हैं। अतएव मैं उनके निकट यह जानवे के तांई आयौ हो कि राजा अबहू हिन्दू है कै नहीं। यदि वे अब हिन्दू नहीं रहे तो अब उनके लिये प्रायश्चित कहा है कि जासों शुद्ध हैकै वे पुनः अपनी जाति-अपने धर्म में आय सकैं।

महाप्रभु—तो उननै कहा व्यवस्था दई?

ब्राह्मण—यह देखौ उनको व्यवस्था पत्र। यामें स्मार्त-शिरोमणि पं० रघुनन्दन, नैयायिक शिरोमणि पं० रघुनाथ, तन्त्राचार्य कृष्णानन्द, भागवती पण्डित देवानन्द, भवानन्द आदि अठारह मुख्य-मुख्य पंडितन के हस्ताक्षर हैं।

महाप्रभु—इननै व्यवस्था कहा दई सो सुनाओ।

ब्राह्मण—यही व्यवस्था दई कि राजा तो जाति-भ्रष्ट है गयौ है। वह अब पुनः हिन्दू धर्म में काहू प्रकार सों नहीं आय सकै है। वाको यह लोक तो बिगर ही गयो है। हाँ वे चाहैं तो परलोक कूँ बचाय सकै हैं। वाके लिये वे तप्त घृत पान करकै अथवा तुषानल में जरकै प्राण-त्याग कर देवैं। उनकी शुद्धि के लिये बस यही एकमात्र प्रायश्चित है। अन्य कोई उपाय नहीं है।

महाप्रभु—कहा गर्म-गर्म घी पी करकै अथवा भुस की अग्नि में धीरे-धीरे जर मरवे की व्यवस्था और धर्म-व्यवस्था ?

ब्राह्मण—हाँ भगवन्! यही व्यवस्था है। आप बाँच करकै देख लेओ। यह है व्यवस्था पत्र (बढ़ाता है)

महाप्रभु—बस रहन देओ। बाँचनो कहा! ओह! धर्म के नाम पै धर्मान्धता ? उदारता की ठौर पै यह क्रूरता, हृदय हीनता ? रोग दूर करवे के लिये रोगी को ही संहार ? परन्तु आपको मेरे पास आयवे को प्रयोजन कहा ?

ब्राह्मण—आपको आसन नवद्वीप के पण्डित समाज में सर्वोपरि है। आप दिग्विजयी-विजयी पण्डितराज हैं। अतएव आपकी सम्मति हू परमावश्यक है।

महाप्रभु—मैं पण्डित नहीं हूँ। मैंने तो शास्त्रन कूँ गंगाजी में बहाय दिये हैं और भक्तिहीन, हृदय विहीन विद्या कूँ नमस्कार कर दियौ है। यासों मैं पण्डित नहीं मैं तो एक दीनहीन कंगाल निमाई हूँ।

ब्राह्मण—धन्य है। यह दैन्य आपकूँ ही शोभा देय है। परन्तु या समय राजा के धर्म-संकट एवं प्राण-संकट की ओर दृष्टि करकै आप संकोच कूँ त्याग करैं और अपनी हार्दिक सम्मति प्रगट करवे की कृपा करैं। यही मेरी विशेष प्रार्थना है। मोकूँ निराश न करैं।

महाप्रभु—तो मेरी सम्मति यह है कि स्मार्त्त-व्यवस्था ते वैष्णव-व्यवस्था सर्वथा भिन्न है - विपरीत है।

ब्राह्मण—सो कहा व्यवस्था है भगवन्!

महाप्रभु—वही जो श्रीमद्भागवत में अजामिल के प्रसंग में सुप्रसिद्ध है।

ब्राह्मण—वा अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को नाम लियो हो।

महाप्रभु—तो राजा पुत्र को नहीं स्वयं भगवान् को नाम लेवै 'नारायण' कहै 'राम' कहै 'हरि कृष्ण' कहै। भगवन्नाम ही सर्वोपरि प्रायश्चित है। श्रीशुकदेव जी ने यहाँ तक व्यवस्था दै दीनी है कि भगवान् कहा, भगवान् के दास के दास को आश्रय लैवे वारो नीच सों नीच जाति को होय, पापी सों सों पापी होय, भील कोल किरात होय, यवन म्लेच्छ आभीर होय, और हू कोई होय, कैसोइ होय, वह हू शुद्ध है जाय है।

किरात हूणान्ध्र पुलिन्द पुल्कसा
आभीरकङ्काः यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः।।

ब्राह्मण—धन्य है भगवन्! यथार्थ कथन है आपकौ।

महाप्रभु—और विप्रदेव! भगवान् श्रीकृष्ण के गीताजी के 'अपि चेत्सुदुराचारो' वचन के अनुसार तो राजा भ्रष्ट नहीं, साधु है, धर्मात्मा है।

ब्राह्मण—सो कैसे भगवन्?

महाप्रभु—जब सुदुराचारी हू भगवान् के भजन करवे के दृढ़ संकल्प मात्र सों ही साधु-धर्मात्मा पद को अधिकारी बन जाय है तो राजा न तो दुराचारी है, न भ्रष्टाचारी हैं, न धर्म त्यागी पतित ही है। वह तो अपने धर्म में जैसे पहले सुदृढ़ हो, वैसे ही अबहू सुदृढ़ निष्ठावान है।

शेर—

धर्म का प्रेम गर दिल में सही है
तो न धर्म हो गया न जाति ही गई है।
(और) धर्म ही का प्रेम गर दिल में नहीं है
तो न धर्म ही रहा, न जाति ही रही है।।

प्रेम ही है रस वह जो जाति को जोड़े रखता है खड़ा रखता, बना रखता, नित्य रखता है अमर रखता है।

अतएव जब राजा के हृदय में अपने हिन्दू धर्म के प्रति इतनो अनन्य प्रेम है तो—

कौन उसकी जाति भला लेने देने वाला है।
कृष्ण कहे वहीं कृष्ण की ही जाति वाला है।।
और सब बेजाति हैं एक वही जाति वाला है।
कृष्ण कहो कृष्ण बिना सबका मुख काला है।।

बंगला (चै० भा०)—

मुचि होय शुचि होय जदि कृष्ण भजे।
शुचि होय मुचि होय जदि कृष्ण तजे।।

अतएव राजा आनन्द सों जीवै और कृष्ण कूँ भजे। प्राण नहीं प्रेम देवे। यही भागवत धर्म की सर्वोपरि व्यवस्था है।

ब्राह्मण—जय हो निमाई पंडित! आपकी सदा जय हो आप समान आपही हैं। आपकी जैसी प्रशंसा सुनी ही वैसी ही प्रत्यक्ष देखहू लीनी। आपकी या निर्भीकता, सुहृदयता तथा परमोदारता ने न केवल राजा ही कूँ जीवन-दान दियौ अपितु मृतप्रायः हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जाति कूँ हू नवीन जीवन-दान दियो। मेरी नवद्वीप-यात्रा सफल भई। मोकूँ चूड़ान्त सुव्यवस्था, यथार्थ धर्म-व्यवस्था प्राप्त है गई। भगवान् आपको सदैव मंगल करैं। अब मोकूँ आज्ञा होय। मेरो सादर प्रणाम स्वीकार करैं।

महाप्रभु—(हाथ जोड़ खड़े हो) नमस्कार देव! विजयताम्।

ब्राह्मण—(जाते-जाते लौट) भगवन्! यदि राजा आपके दर्शन कूँ आमनो चाहै तो लै आऊँ?

महाप्रभु—नहीं अबही नहीं। मैं काशी में उनसों मिलूँगो। वे जायकै काशी-वास करैं!

ब्राह्मण—जैसी आज्ञा! प्रणाम! (प्रस्थान)

(प्रवेश संकीर्तन करते हुये भक्तजन)

हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल

इति संन्यास भूमिका लीला सम्पूर्ण।

संन्यास-सूचना

(भक्त-अनुमति ग्रहण)

मंगलाचरण—

जय शची गर्भ-रत्न-करुणा सागर।
जय नित्यानन्द प्रभु जय विश्वम्भर।।
भक्त-गोष्ठी सहित गौरांग जय जय।
सुने ते चैतन्यकथा भक्तिलक्ष्य होय।।

समाज बंगला (चै० भा०)—

शुनो शुनो आरे भाई प्रभुर संन्यास।
जे कथा शुनिले कर्मबन्ध जाय नाश।।

विद्वेषी पंडितों का षड्यन्त्र

नित्यानन्द—(प्रवेश गाते हुये)

पद (माँड़)—

रंग ले प्यारे ले चोला, गौरहरि रंग लाये हैं।
जो रंग नहीं है राजमहल में।
जो रंग नहीं है गिरि जंगल में।
जो रंग नहीं है पंडित दल में।
सो रंग देने रंग रंगीले गौरहरि मेरे आये हैं।।
जो रंग नहीं है देव लोक में।
जो रंग नहीं है सिद्ध लोक में।
जो रंग नहीं है ब्रह्मलोक में।
सो रंग देने-रंगीलो ब्रज को आप रंगीले आये हैं।।
पापी कहाँ हो पाप ले आओ।
हृदय में संताप ले आओ।
जिह्वा पैहरि नाम ले आओ।
टेरो 'प्रेम' से हरि रंगोले गोर श्याम अब आये हैं।।

(गाते-गाते प्रस्थान। दूसरी तरफ से प्रवेश विद्वेषी पण्डित तारापद एवं कालीपद)

तारापद—(कहते हुये आता है) मारकै, घर जराय कै भगाय दैनो परैगो, घर जराय कै। न सारे जगाई-मधाई कुछ कर सकै और न काजी-पाजी ही कुछ कर सक्यौ सब सारे वाही के दल में जाय मिले। न जानै कहा जादू जानै है यह निमाई!

कालीपद—परन्तु वाको यह जादू मूर्खन के ऊपर ही चल सकै है। हम पण्डित के ऊपर नहीं। वह कल को छोरा अब हम पण्डितन सों टक्कर लैवे लग्यौ है हमारी व्यवस्था कूँ उलट दियो वाने! वा राजा सुबुद्धिराय कूँ जाति में मिलाय लैनो चाहै है! देखैं कैसे मिलाय लेय है। नवद्वीप के पण्डित अबही मरे नहीं है।

(प्रवेश—तांत्रिक चापाल। लाल वस्त्र, सिन्दुर का टीका। नशा में धुत्त लड़खड़ाता हुआ। नाक, हाथ-पैर की अँगुलियाँ लाल-लाल फुली हुई)

चापाल—वेशक! चापाल गोपाल जब तक जीवित है तब तक मरै नहीं हैं काली.....कौल! काली......कौल!

तारापद—(कालीपद से धीरे) याकूँ मिलाय लैओ। यह सब कुछ कर सकै है। पक्को तान्त्रिक है! तन्त्र-मन्त्र बहुत कछु जानै है।

चापाल—(लड़खड़ाती बोली) कही मैंने वाते। अरे मू-मूर्खन की ट-ट-टोली छोड़। नाचनौं गानौ छोड़। मन्त्र सीख तन्त्र पकर-जन्त्र में बैठ करकै साधन कर। प प पंच म म मकार सेवन कर। अहा प्रसाद खा! आ-आ-नन्द पी (बोतल का भाव बता) कु कु कु डलिनि खट्ट जाग करकै झट्ट सहस्रार में पहुँच जाय है। जीव शिव वन जाय है। परन्तु म म मान्यौ नहीं। पागल है गयो! बिल्कुल पागल! दुर्गा ३

तारापद—कौन है गयो पागल चापाल?

चापाल—अरे वही निमाई छोरा, और कौन?माँ दुर्गा। काली

तारापद—अरे वाकूँ तो तुम्हारे गुरूजी हू समझायवे गये रहे सो वह तो तुम्हारे गुरूजी पै ही लाठी लैके अर्राय पर्यौ है। या बात की हू तुमकूँ खबर है कै नहीं।

चापाल—(सक्रोध) अच्छो यह बात! यह छाती वाकी तो याको मजा न चखाऊँ तो मैं अपने गुरू को चेला ही नहीं। मेरो नाम है च च चापाल गोपाल।

कालीपद—तो कहा करैगो तू-कहा मजा चखावैगो?

चापाल—श्मसान काली पूजा! याही अमावस कूँ। श्मसान में एक-एक बेलपत्र को होम्—ह्रां ह्री ह्रूँ फट् स्वाहा और उतमाहुँ उनकी एक-एक खोपड़ी पटा पट्। कचा कच्! कचा-कच्। काली कौल! काली कौल! समझ गये?

कालीपद—अरे रहन दै या ढोंग कूँ। तैने ही तो श्रीवास के दरवाजे के आगे मांस-मदिरा, सिन्दूर आदि न जानै कहा-कहा टौना-टोटका धर दियो हो परन्तु वाके घर की तो एक माखी हू नहीं मरी। हाँ, तेरी नाक और हाथ-पाँव की अँगुरिया फूल जरूर गई हैं और लाल है रही हैं। यह उल्टो फल तो भयो हैं।

चापाल—अरे चुप रहौ बेवकूफो! तुम तन्त्र जानते ही क्या हो! यह मेरी देह की शुद्धि है रही है शुद्धि! पूर्ण शुद्धि हैवे पै पूर्ण सिद्धि मिलै है और जीव शिव बन जाय है। माँ काली! ब्रह्ममयी!

तारापद—यह तो बड़ी अच्छी बात है तू सिद्ध बनवे जाय रह्यौ है तो हमारो हू काम सिद्ध है जायगो। कर दैगो न हमारो काम?

चापाल—जरूर! चापाल गोपाल को तो काम ही यही है—मरघट जगामनो। होम करनौ। बलि दैनो—आनन्द पीनौ! पंचमुडिन पै बैठनो और भै-भै-भैरवी (प्रवेश गाते हुये नित्यानन्द)

निताई (पूर्वपद)—

रंग ले प्यारे,रंग ले चोला....।।

चापाल—अरे ओ ओ ओ बा-बा जी!

निताई—कहा है?

चापाल—है-है कहा?

निताई—कहा?नाम तो बता।

चापाल—अरे वही-वही! आ-आ-नन्द। तुम जरूर पीते हो। तभी तो मस्त बने नाच गा रहे हो। वह....वह.....वह कहाँ से आता है तुम्हारे पास? तुम तो हो नंगाझाड़ अवधूत बाबा!

निताई—तुमकुँ चाहिये कहा?

चापाल—हाँ हाँ खूब चाहिये। लाल-ला-लाओ दो।

निताई—तो चलौ मेरे साथ। भंडार दिखाय दऊँगो। दिन-रात पियौ करनो। बेरोक-टोक। चलौ (हाथ पकड़ने बढ़ते हैं)

चापाल—(डरकर पीछे हटता हुआ) ना बाबा ना! तुम्हारो कोई भरोसों नहीं। तुम अवधूत हो या भूत हो—कौन जाने! कहीं मरघटे में ले जायकै 'जय काली' कर देओ। तुम्हें तो दूर ते ही दंडवत् (खिसक जाता है)

तारापद—सुनो निताई! तुम अच्छे मिल गये। वा निमाई सों कह दैनो कि बहुत ढोंग कर लियो। अब और अधिक अपनी दुकान न फैलावे। नहीं तो हम वाकूँ मार-मारकै नवद्वीप ते भगाय देंगे!

निताई—(जोरों से हँसते हुये) हा हा हा! तुम लोगन के हाथन में खुजाहट उठ रही है तो मरी पीठ पै चल रही है आओ तो नेक खुजाय देओ (पीठ करते हुये) आओ-आओ! खुजाय देओ न!

कालीपद—तारा बाबू! खिसक चलौ। यह साँड़ है साँड़ बिना बिना मालिक को! यह सब कुछ कर सकै है। चापाल हू याते डरपकै भाग गयौ। हमहू भागैं। ऐसे नंगेन सों तो बचकै चलवे में ही भलाई है (जाने लगते हैं)

निताई—अरे ठहरो ठहरो! यह कहा?मैं आयौ और तुम चल दिये।

तारापद—बस हमारो काम है गयौ। कह दैनो वा निमाई सों! सावधान रहै—(दोनों चले जाते हैं)

निताई—(उनकी तरफ देखते हुये) ओह! तुम जैसे अकारण द्रोही, असूयावान, निन्दक, धमध्वजी पाखंडिन के कारण ही मेरे दयालु प्रभु गौरचन्द्र कूँ महान् कष्ट है रह्यौ है। तबही उनके श्रीमुख सों यह वचन निकसे कि पिपरी के सेवन सों कफ नाश न हैके वृद्धि ही है रही है। न जानै उनकी कहा इच्छा है। वे कहा करनौ चाहैं हैं। परन्तु धन्य है प्रभो तेरी माया कूँ कि ये अभागे जीव गौरचन्द्र जैसे अमृत फल सों बैर करके विष फल खाय रहे हैं, गंगा के तट पै प्यासे ही मर रहे हैं—

गाना (ति०का मोद-३)—

जल में मीन पियासी, देखो।
जल में बसै जल पी न सकै, यह क्रूर करम की हाँसी।। देखो०

खावैं नीम बबूर चबावैं,आम रसाल मीठो ना भावै।
गौर कल्प तरूवर तजि, चाबें कंटकरासी।।देखो०
सूँघैं आक ढाक पलासा,चम्पा चमेलीको लेयँ न वासा।
गौर अमर फल छाँड़िकै सेवैं सेमर कुश ओ कासी।।देखो०
काठकूँ चूसैं इक्षु ठानैं, जरैं अगिनि विच शीतल मानैं।
गौरचन्द्र चन्द्रिका पीयूष, तजि पीवैं विषरासी।। देखो०
पहरैं कंठन सर्पन माला, आनन्द मानैं काल के गाला।
गौर पदप्लव 'प्रेम' तजिकै, चढैं शिला डुबि जासी।।
देखो,जल में मीन०।।

(गाते-गाते प्रस्थान)

(पर्दा खुलता है। महाप्रभु शान्त गम्भीर बैठे हैं)

महाप्रभु (सोरठ-केहरवा) —

पीर पीर क्या करता रे तेरी पीर न जाने कोय।।
तेरी दिल की लागी कोई क्या जाने,
तन भीर परी कोई क्या जानै।
घायल की गति घायल जानें, और न जाने कोय।। पीर पीर०।।
एक प्रेम की पीर हैं, दूजी दया की पीर।
यह तो जीव पुकार हैं, वह वंशी धुनि तीर।।
पीर पीर०।।
जीव कहैं उद्धार करौ, लेओं रस कहै प्रेम।
एक म्यान में खड्ग द्वय, निबहे कैसे छेम।।
पीर पीर०।।

हाय! एक ओर तो श्रीकृष्ण मेरे ह्रदय कूँ खीचै हैं और कहैं हैं 'वृन्दावन कूँ आ' और दूसरी और जीव कहैं है 'हमारो उद्धार करौ'। एक ओर 'श्रीकृष्ण-प्रेम' तो दूसरी ओर 'जीव-दया'। एक म्यान में द्वै तरवार कैसे रह सकैं हैं! कहा करूँ (सोचते हुये) हाँ बस यही उपाय ठीक हैं।

दया दासी श्रीकृष्ण की, सदा गुरू है प्रेम।
गुरू सेवा आपही करै, यह दासी को नेम।।
दया धर्म सब पात हैं, हरि प्रेम है मूल।
मूल रहै पै सब रहैं, मूल बिना सब धूल।।

अतएव प्रेम-पंथ पै चलनो ही जीव को एकमात्र कर्त्तव्य है। दया, परोपकार आदि लोक धर्म तो दास-दासिन की भाँति आपही पीछे-पीछे चलै हैं। यासों मेरो हू एकमात्र यही एक निश्चित कर्त्तव्य है—संन्यास!

(प्रवेश गाते हुये निताई)

निताई—

भजो गौरांग कहो गौरांग लहो गौरांग नाम रे।
जे जान भजे गौर गौर सो है मम प्राण रे।।

महाप्रभु—श्रीपाद! शान्त होओ। आज यह तुम कहा गाओ हौं

निताई—(भाव विभोर महाप्रभु के चिबुक को पकड़े)

भजो गौरांग कहो गौरांग....।।

महाप्रभु—(निताई को झकोरते हुये) चेत करौ श्रीपाद! आज आप मोकूँ यह कहा उपदेश कर रहे हो?

निताई—(सचेत हो) हैं! आप हैं प्रभो! मैं तो कोई अभागो जीव समझ करकै उपदेश कर रह्यौ हो।

महाप्रभु—तो श्रीकृष्ण के भजन को उपदेश करयौ करौ!

निताई—तो मैं कहा कर रह्यौ हो?

महाप्रभु—मेरे भजन को उपदेश कर रहे हे!

निताई—(जोरों से हँसते हुये) तो आप कौन हो? श्रीवास के घर में या एक ही गौर देह में राम, कृष्ण और गौर रूप की षड्भुज मुर्त्ति कौ दर्शन मोकूँ कौनने करायौ हो।

महाप्रभु—(बात टालते हुये) मोकूँ कहा खबर? परन्तु अहा धन्य है आपके तन्मयता-भाव कूँ । नाम लैनो और लिवा-वनौ तो एक आपही जानौ हो। हाय!मोते कछु न भयो। न श्रीकृष्ण-भजन ही भयो, न लोक-सेवा ही भई! जीवन-जन्म व्यर्थ गयो!

निताई—आज आपकी यह कैसी अटपटी बोलन है प्रभो?

महाप्रभु—अटपटी नहीं, सूधी बात है, साँची बात है! कहा आपने यह नगर-चर्चा सुनी नहीं कि कुछ लोग मोकूँ मारवे-पीटवे ताई षड़यन्त्र रच रहे हैं?

निताई—सुनी तो है परन्तु वे महामूढ़ हैं, घोर अपराधी हैं।

महाप्रभु—अपराधी वे नहीं,अपराधी तो मैं ही हूँ।

निताई—आप और अपराधी! यह कैसे?

महाप्रभु—ऐसे कि जब मैं 'हरिबोल' कह-कहकै कीर्तन करूँ। हूँ, नृत्य करूँ हूँ तो वे लोग मेरे शरीर पै ये सुन्दर —

सवैया —

पटपीत मनोहर तन लखिकै, अंगुरी उठाय बतावैं हैं।
कुसुम कनक स्त्रक्चन्दन भूषन, इन प्रति नैन नचावैं हैं।
माखन दूध मलाई षट्रस, भोग पै हाँसि उड़ावैं हैं।
मोकूँ पाखंडी जानि रिसावैं, प्रेम ये पाप कमावैं हैं।।
यह भूल न उनकी भूल है मेरी, मैं उनकूँ भरमायो है।
मैं मन सों योग कमावन चाहूँ, तन भोगन विरमायो है।
यहा नातो जगको छोड़े बिना,मन हरि अपनावन धायो है।
फिर क्यूँ न हँसे जब मैं ही हँसाये,राग व रंग दिखायो है

अतएव उनके अपराध में कारण मैं ही हूँ मेरो यह ठाठ-बाट है, यह भोग-विलास है। इनकूँ अब मैं अवश्य ही तजि दऊँगो।

निताई—तो कहा सुन्दर वस्त्र पहिरवे और सुन्दर भोजन करवे में कोई दोष है?

महाप्रभु—दोष होय न होय परन्तु जीव को स्वभाव कछु एसोई ऐसो है कि त्यागी-वैरागी को धर्मोपदेश ही वापै विशेष प्रभाव डारै है। भोगी-विलासी के वचन कूँ वह ग्रहण नहीं करै है। यासों मैं हू सर्वत्यागी संन्यासी बनूँगो।

निताई—तो कहा ऐसो करवे सों दुष्टजन अपने बैर भाव कूँ त्याग देंगे और हरिनाम बोलवे लग जायँगे।

महाप्रभु—आशा तो है। कारण कि—

गाना (गजल-भैरवी) —

मुड़ा के शीश जब मैं कौपीन पहन लूँगा।
तब उनके दिल को पत्थर से मोम कर मैं दूँगा।
घर से निकल कर उनके दर पर खड़ा जब हूँगा।
तब उनकी आँखों को मैं आँसू से भर ही दूँगा।
मारो भले पर मुख से हरि नाम लो कहूँगा।
तो रसना पै बैरियों के, हरि को नचा ही दूँगा।

बनकर संन्यासी अब तो हरदिल प्रिय बनूँगा।
लुट करके 'प्रेम' अब मैं, हरि को लुटा ही दूँगा।

निताई—(मर्माहत हो) हा हा दीनबन्धो! इतने निष्ठुर मत बनौ। दुष्टन के पीछे भक्तन कूँ मत हनौ। दुष्टन कूँ अवश्य तारैं परन्तु भक्तन कूँ न मारैं। सत्तर (७०) वर्ष की वृद्धा विधवा माता और चौदह वर्ष की बालिका धर्मपत्नी की कहा दशा होयगी! नेक विचारौ तो दयानिधे!

महाप्रभु—खूब विचार लियौ है—

गाना (पीलू)—

बहैगी जो उनके नैनों से धारा।
वह धो देगी दुष्टों के दिल को सारा।।
जो हँसते हैं वे भी बहायँगे धारा।
हरि बोल हरि बोल गायँगे प्यारा।।
लाखों दुखी बह रहे बीच धारा।
हरि नाम बिन कैसे होवें वे पारा।।
देखूँ इन दो को या देखूँ हजारा।
क्यूँ मानूँ घर एक,जब घर है संसारा
जो मुझसे और जीवों से है 'प्रेम' तुम्हारा।
तो दूख को बहाकर लगाओ सहारा।

अतएव श्रीपाद बाधा मत डारौ। सहायता करौ। मोकूँ हू अपनो जैसो बनाय लैलो।

निमाई—

तुम स्वामी हो मेरे,मैं सेवा करूँगा।
न इच्छा में तुम्हारी मैं बाधक बनूँगा।।
यह सुख मूल पदकूल मैं ना तजूँगा।
जाओगे जहाँ तुम,वहीं मैं चलूँगा।।
सफल 'प्रेम' जीवन, सभी मैं गिनूँगा।
नचाओगे जैसे मैं तैसे नचूँगा।।

बंगला (चै० भा०)—

स्वतंत्र परमानन्द तोमार चरित।
तुमि जे कोरबे सेई होइबे निश्चित।।

तथापि प्रभो! जो आपके निज भक्तजन हैं उनको हू विचार जान लैनो चाहिये।

महाप्रभु—हाँ श्रीपाद! ऐसो ही करूँगो। उनकी अनुमति अवश्य ही लऊँगो। चलो उनके समीप चलैं।

भक्त-अनुमति ग्रहण

(प्रदेश श्रीवास, गदाधर, मुकुन्द और मुरारि)

महाप्रभु—(उठते हुये) आओ आओ! भले आये। मैं स्वयं आप सबन के समीप आय रह्यौ हौ।

श्रीवास—क्यूँ प्रभो? ऐसी कहा कोई विशेष बात है?

महाप्रभु—हाँ एक विशेष बात है। बहुत दिना सों कह नहीं पाय रह्यौ हूँ परन्तु आज तो कहूँगो ही। मैं अब गृह-त्याग करकै वृन्दावन जानौ चाहूँ। याके लिये सबन की अनुमति चाहूँ हूँ।

श्रीवास—हाय! जा बात को हमकूँ भय होय सोई आप साँची करकै दिखामनो चाहौ हो और वाके लिये हमारी अनुमति चाहो हो। पहले या हृदय कूँ पाषाण बनाय देओ और जिह्वा कूँ काष्ट की बनाय देओ तो फिर हम अनुमति दैंगे। हाय गौरसुन्दर! और हम कहा कहैं (रूदन)

महाप्रभु—श्रीवास जी! मोपै दया करौ। मैं बड़ो दीन हूँ, कृष्ण-प्रेम के बिना कंगाल हूँ। कंगाल अपने कुटुम्ब-परिवार कुँ कहा सुख दै सकै है यासों—

कवित्त—

जाऊँगो वृन्दावन मैं लाऊँगो कमाय प्रेम
दऊँगो तुमहीं धन, सुखी बहु करिहौं।

श्रीवास—

सुखी तो करौगे जब, प्रान यह रहैं बचि
उड़ि गये प्रान यदि, सुखी कहा करिहौ।।
कौन कूँ देओगे धन, लाओगे कमाय जब
अपनो सो धन लैके, आप सुखी रहियो।
दैन चहौ सुख यदि, दीजौ यह सुख 'प्रेम'
लैके सो धन श्राद्ध, पिंड हमरो भरियो।।

महाप्रभु—श्रीवास जी! आप तो मेरे पिता तुल्य हैं। आप ही मेरे उत्साहकूँ भंग करौगे तो मैं धर्म-पथ पर कैसे चल सकूँगो। आपही की कृपा सों इतने दिवस तक हम सब हरिनाम संकीर्तन करते भये भक्तिरसामृत को आस्वादन करते रहे। अब एक महान् कर्त्तव्य मेरे सम्मुख उपस्थित है। मोकूँ साहस देओ,बल देओ विजय-आशीष देओ! मैं आपके चरण छीऊँ हूँ। मेरे शीश पै मंगल हस्त धर देओ। निराश मत करौ।

(चरण पकड़ना चाहते हैं)

श्रीवास—(हृदय से लगा रूदन पूर्वक) प्यारे गौरसुन्दर! आप हमारे जीवन-प्राण हैं। आपको मंगल ही हमारौ मंगल है। आपको सुख ही हमारो सुख है। आपकूँ सुखी करनो ही हमारो परम धर्म है। आप सदा सुखी रहौ, प्रसन्न रहौ, हम.....हम ही (रोने लगते हैं)

महाप्रभु—मुकुन्द! मेरे प्यारे गायक! तुमहु अपनी अनुमति दैओ! अब मैं गृहस्थ छोड़ूँगो। शिखा सूत्र के बन्धन सों मुक्त होऊँगो।

मुकुन्द—(रोते हुये) हे मेरे दयालु देव! आज आप इतने कठोर कैसे है गये जो हम गरीबन के ऊपर बज्र पटक रहे हो। आपकूँ तो कहवे में कछुइ कष्ट नहीं भयो परन्तु हमारे तो सुनवे में प्राण जाय रहे हैं। अच्छो तो कहौ—

मन आवै कहौ,सुख जामें लहौ,हियो पत्थर करि सुनिहैं।
जी चाहै करौ, निज रंग ढरौ, हम मारि मरिकै सहिहैं सहिहैं।।
जिन हाथन प्रेम पिवायौ सदा, विषहु प्याऔ तो पीहैं।
हम जीव तिहारे जिवाये जियै, जो मारहु तो मरिहैं मरिहैं।।

(चरणों पर पड़ रुदन)

महाप्रभु—(उठाकर हृदय लगाते हुये) मेरे प्यारे मुकुन्द! इतने अधीर मत बनौ तुम तो प्यारे कृष्ण के गुण गायवे वारो मेरे प्राणप्यारे सखा हो। तुम्हारे गीत जैसे मैं अब सुनूँ हूँ वैसे ही तबहू सुन्यौ करूँगो! धीरज धरौ। दु:ख मत करौ। शान्त होऔ।

समाज (चौपाई)—

गौर गदाधर ओर निहारे। नाम मधुर मृदुल उचारे।।

महाप्रभु—गदाधर! मेरे प्राणबन्धो सुन रहे हौ न?

समाज (दोहा) —

चेत अचेत दशा बिच, बैठयौ गदाधर मौन।
तन नियरे मन दूर अति, उडयौ प्रेम के पौन।।

महाप्रभु—(कन्धे पर हाथ रख हिलाये हुये) गदाधर! प्यारे सखा! तुमहू मोकूँ अपनी अनुमति प्रदान करौ।

समाज (दोहा) —

कछु वाह्य पाई सुधि, देखत नैन उघार।
नैन नैन के मिलत ही, पर्यौ चरन पछार।।

महाप्रभु—(उठाकर हृदय से लगाते हुये) इतने दूखी होओगे गदाधर तो मैं कैसे तुम्हारे कृष्ण को भजन कर सकूँ गौ तुम तो बालपने सों ही श्रीकृष्ण को भजन करौ हो। अब मोकूँ हू कर लैन देओ। इतनी आयु तो मेरी वृथा ही गई। मौकूँ अब वृन्दावन जायवे की अनुमति देओ।

गदाधर—(महाप्रभु से लिपटा रोता रहता है)

समाज (दोहा) —

प्रनय रोष अभिमान भर, करत विलाप प्रलाप।

गदाधर—

जाऔ मारि जननी प्रिया, लै सिर गठरी पाप।।

तो जाऔ और अनाथिनी वृद्धा माता और बालिका भार्या की हत्या की गठरी हू सिर पै लैते जाओ। कहा गृहस्थ में रह करकै श्रीकृष्ण को भजन नहीं होय हैं परन्तु याकि मूढ़ मुढायवे सों ही श्रीकृष्ण मिलैं है तो जाओ अपनी इच्छा पूरी करौ। श्रीकृष्ण पाओ। हम कौन होय हैं जो आपकूँ रोकै (नतमस्तक रुदन)

महाप्रभु—(सस्नेह कंधे पर हाथ रखकर) गदाधर। यह न रोष करवे को समय हैं और न दोष देखवे को ही। यह तो सुहृद बन्धु की भाँति धर्म में सहायता करवे को समय है। मैं घर ही तो छोडूँगो, तुमकूँ तो नहीं छोडूँगो। तुम तो मेरे संग हू रह सकौगे। यासों बाधा मत डारौ। अनुमति देओ।

गदाधर—(दैन्यात्ति सह) प्राणानाथ! मैं बहुत ढीठ्यौ बौल्यौ मर्माहत हैकै उद्दण्ड बन गयो। क्षमा करौ दीनबन्धो! और अनुमति तो मेरे मुख सों आपने पहले ही निकसवाय लीनी! अब दुबारा क्यों बुलवावनो चाहौ हो!

नहीं बोल सकूँ गो! नहीं बोल सकूँगो। क्षमा क्षमा! (चरण पकड़ रूदन)

महाप्रभु—शान्त होओ गदाधर! श्रीकृष्ण जो कुछ करैं हैं, सब मंगल ही करैं हैं। और मुरारि! तुम मेरे बड़े भाई के समान हो। तुमहू या धर्म-कार्य में मेरी सहायता करौ। अपनी अनुमति दैओ।

मुरारि—हे सर्वसमर्थ प्रभो! आप तो अपनो संकल्प पूरो करौगे ही। वामें कौन बाधा डार सकै है। यासों—

नहीं बात कछु हम बोलि सकैं,नही हाथ हियो जाहि खोलि सकैं
नहीं डोर कछु तुम्हें बाँधि सकैं, नहीं जोर कछु प्रान त्यागि सकैं
नहीं ठौर कहूँ हम जाय सकैं, नहीं और कोई 'प्रेम' देखि सकैं
ठुकराओ भुलाओ रूलाओ भले,पद पंकज छोड़ि न छोड़ि सकैं
(चरणों को पकड़ रुदन)

भक्तवृन्द सम्मिलित गायन (आसावरी-दादरा)—

हा हा प्राणनाथ गौर ऐसे जिन बोलौ।
अमृत रस प्याय प्याय, विष अब जिन घोलौ।।१।।
शची के तुम एक लाल, भक्तन के प्राणपाल।
हे हे नदिया भूपाल, घर तजि जिन डोलौ ।।२।।
चन्द वदन हमें दिखाय, कृष्ण कीर्तन सिखाय।
करूना-गोदी बिठाय, (अब) मारौ काहे बोलौ।।३।।
(हम सों यदि कोई अपराध बन गयो होय तो)
दैओ दंड हमर्हि दैओ, दंड आप काहे लेऔ।
रूंड-मुंड काहे होओ, भेद कहा खोलौ।।४।।
केशपाश हम तिहारे, छिनछिन वहुविधि सँवारें।
सुमन माल सों सिंगारे, इनकूँ जिन छोलौ।।५।।
घुं घरारी तेरी लटपै, भक्तन के प्रान अटकै।
मरिहैं सब 'प्रेम' कटिकै, हत्या जिन मोलौ।।६।।

महाप्रभु—हाय! सबन कूँ अपनी-अपनी सूझै है परायी पीर कूँ कौन बूझै है। नि:स्वार्थ प्रेम कहूँ नहीं है (सोचकर) नहीं नहीं। है। स्वार्थ गन्धहीन प्रेम ब्रज-वृन्दावन में है! अरे मन! चल, वहीं चल।

पद-म्हाड़—

पहन के कफनी बन के जोगिन, चलूँ वृन्दावन प्रिय जहाँ हैं।
रंग ढंग जग के लागत फीके, श्याम रंग मेरो हाय कहाँ है।।

कहाँ विशाखा ललिता सखी सब, कहाँ कालिन्दी कुंज कहाँ है।
कहाँ गोवर्धन राधाकुंड कहाँ, ब्रज नटनागर श्याम कहाँ है।।

हा कृष्ण! हा वृन्दावन (दौड़ते लड़खड़ाते-भक्त लोग सम्हाल लेते हैं)

श्रीवास—हा हा प्रभो! इतने व्याकुल न बनौ। नेक शान्त होऔ।श्रीकृष्ण आपसों दूर थोरेई हैं। वे तो आपके हृदय वृन्दावन में ही हैं।

महाप्रभु—(प्रेमोन्मत्त) अच्छो! हृदय में हैं, हृदय में? तो अब कहाँ जाय सकैं हैं! अबही पकरूँ हूँ!

(हृदय को दोनों हाथों से चीरने की चेष्ठा। भक्तों द्वारा हाथों को पकड़ लेना)

गदाधर—हाय हाय! प्राणनाथ! आपके नखन के आघात सों हृदय में सों रुधिर निकसि आयौ है। शान्त होओ नाथ! आप ऐसी चेष्ठा करैंगे तो हम कैसे जीयेंगे!

महाप्रभु—(प्रेमोन्मत्त)अरे यज्ञोपवीत! तू ही संसरी को चिह्न है। तैंने ही मोकूँ अटकाय राख्यौ है। यासों जा तू (जनेऊ तोड़ फेंकना) और अब मैं जाऊँ हूँ! वृन्दावन जाऊँ हूँ! कृष्ण! हा कृष्ण! (दौड़ना। भक्तों का पकड़ लेना)

श्रीवास—प्रभो! हम आपकूँ रोकैंगे नहीं, परन्तु साथ हू नहीं छोडैंगे। संग ही चलैंगे। नहीं तो हमारे प्राण अवश्य ही चले जायँये।

नेपथ्य में—पंडित निमाई घर में हैं कहाँ?

श्रीवास—आइये! भीतर पधारिये!

(प्रवेश एक उग्रमूर्त्ति वृद्ध तपस्वी ब्राह्मण)

ब्राह्मण—कहाँ है पण्डित निमाई?

श्रीवास—ये ही हैं!आज्ञा करैं।

ब्राह्मण—कल रात्रि तुम्हारे घर में संकीर्तन भयौ हो?

श्रीवास—हाँ भयो हौ। नित्य ही होय है!

ब्राह्मण—तो द्वार बन्द करकै काहे कूँ संकीर्तन कयौं?

श्रीवास—प्रभु की आज्ञा सों। हमारे संकीर्तन में जब पद-गायन के द्वारा लीलारस को आस्वादन होय है तब वामें अन्तरंग जनन के अतिरिक्त अन्य सबन को निषेध है। और जब केवल नाम-संकीर्तन होय है तब वासें

काहु को रोक-टोक नहीं हैं। नाम-श्रवण को अधिकार सबको है। लीला संकीर्तन के अधिकारी सब नहीं हैं। अतएव प्रभु हू—

अन्तरंग संग कोरे रस आस्वादन।
बहिरंग संग कोरे नाम-संकीर्तन।।

ब्राह्मण—(उत्तेजित हो) यह नियम कौन ने बनायौ है।

महाप्रभु—(हाथ जोड़) दास ने ही बनायौ है।

ब्राह्मण—(क्रोध पूर्वक) ओह! मीठी-मीठी वस्तु सब तुमही खाओगे न? तुम ही तो प्रेमरस के अधिकारी हो और तो सब अनधिकारी ही हैं। क्यों? ओह! इतने स्वार्थी तुम! यह अहंकार तुम्हारो! तो भोगो फल! मैं ब्राह्मण तपस्वी तुमकूँ स्त्रप दऊँ हूँ (जनेऊ हाथ में ले) अपनो जनेऊ तोड़कै तुम्हारे पाँमन पै पटक करकै यह स्राप दऊँ हूँ (तोड़कर फेंकना)कि जैसे तुमने मोकूँ संकीर्तन के आनन्द सों वंचित कियो वैसे ही तुमहू जीवन भर के लिये संसार के विषय-सुख सों वंचित रहो! वंचित रहो! जाओ (चल देता है)

महाप्रभु—(जनेऊ के टुकड़ों को उठा सिर पर रखते हुये) ऐसो ही होयगो विप्रदेव! ऐसो ही होयगो! आपको स्राप मोकूँ स्वीकार है! सहष स्वीकार है!

श्रीवास—हाय हाय! ब्राह्मण! यह तुमने कहा कर डायौ बिना विचारे कौन कूँ स्राप दै डायौं! माँ शची के संसार के ऊपर वज्राघात कर डायौं।

निताई—(जो एक ओर चुपचाप खड़े हैं) धन्य लीला-कौतुकी! तेरे कौतुक कूँ! रोमनौ हू आवै है और हँसी हू आवे है! संन्यास की इच्छा तो भई आपकूँ और निमित्त बनाय रहे हैं बेचारे जीव कूँ! कहाँ ते एक ब्राह्मण तपस्वी कूँ पकरि लाये, वाके भीतर क्रोध-चंडाल कूँ घुसाय दियो, वाकी बुद्धि-शुद्धि सब हर लई और वाके मुख सों स्राप निकसवाय लियौ। संकल्प आपको, वहानो स्राप को! वाह! धन्य है तुम्हारी नाटय-चातुरी।

श्रीवास—हाय श्रीपाद! यह कैसो बिना बादर को वज्रपात है।

निताई—यह संन्यास को सूत्रपात है।

मुरारि—और हमारो सौभाग्य-सूर्यास्त है।

पद (सोहनी)—भक्तों द्वारा सम्मिलित गायन।

अब भाग्य हमारे फूट गये, बस रह गया रोना रोना है।
इस दर्द की कोई दवा नहीं, दम् दम् तक ढोना है।।

बिन माली बाग रहा तो क्या, बिन नीर तड़ाग रहा तो क्या।
बिन स्वामी सुहाग रहा ही क्या, निष्फल सब सूना सूना है।।
बिन ज्योति के आँख रही तो क्या,
बिन चाँद के रात रही तो क्या।
बिन आत्मा के देह रही तो क्या, सब अँधेरा कोना कोना है।।
बिन गौर के गंगा बही तो बही,
बिन गौर के नदिया रही तो रही।
बिन गौर दो अवला कहीं न रही,
हाय 'प्रेम' में खोना खोना है।।

(आर्त्त क्रन्दन पूर्वक गौर चरणों पर पतन)

महाप्रभु—प्रिय बन्धुओं! उठौ, धीरज धरौ। यह हमारो तुम्हारो परीक्षा-काल है। भूल-भ्रम में मत परौ। बलिदान की बेला है—दुर्बल मत बनौ। धर्म की कसौटी है—खरे बनौ और मोकूँ खरो बनाओ। मेरी लाज तुम्हारे ही हाथन है। राखौ चाहे डुबोय देओ।

श्रीवास—(हाथ जोड़ रोते-रोते) हा हा नाथ! ऐसे वचन मत कहौ। बहुत कही-बहुत सुनी। अब हमसें कछु और अधिक कहवे-सुनवे की सामर्थ्य नहीं है। हम आपकी कहा बरोबरी कर सकै हैं। हम हारे, आप जीते। बस हमकूँ कोई आधार दै जाओ। निराधार मँझधार में डूबवे के लिये मत छोड़ जाओ। बोलौ बताओ हम आपके बिना कैसे जी सकेंगे।

महाप्रभु—हरिनाम, कृष्णनाम के आधार सों।

काहारो ह्रदये नाहिं रैबे दु:ख शोक।
संकीर्तन समुद्रे भासिबे सर्वलोक।।
किवा विष्णुप्रिया किवा मोर माता शची।
जे भजये कृष्ण तार कोले आमि आछी।।

गाना (वागेश्री)—

करौ नित्य कीर्तन,गाओ कृष्ण नाम।
रहैगो न शोक और दुख को नाम।।
चाहे माँ शची हो चाहे विष्णुप्रिया।
मैं गोदी नित उनकी, जो लें कृष्णनाम।।
न समझो कि तुमकों मैं छोड़ रह्यौ हूँ।
न छोडूँ मैं छिनभर, तुम हो मेरे प्रान।।

न एक ही जनम के, तुम जन्म जनम के।
सदा मेरे संगी, संकीर्तन ही काम।।
मेरे द्वय अवतार, सुनो और होंगे।
संग आओगे तुम सब, गाओगे सुनाम।।
जगत के लिये ही, यह खेल है संन्यास।
तुम तो हो मेरे ही, फिर दुख को कहा काम।।
है वियोग के भीतर सदा 'प्रेम' योग।
सभी दु:ख संहारक, गाओ कृष्ण नाम।।

संकीर्तन—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।
हरिबोल।

इति संन्यास सूचना एवं भक्त-अनुमति-ग्रहण लीला सम्पूर्ण।

श्रीवनामृत लहरी **एकविंशति कणामृत**

मातृ-आज्ञा ग्रहण
विष्णुप्रिया-आज्ञा ग्रहण

मंगलाचरण—

जय जय गौरचन्द्र जय कृपासिन्धु।
जय जय शचीसुत जय दीनबन्धु।।
जय जय नित्यानन्द जयाद्वै तचन्द्र।
जय श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।।

पद (यथाराग)—

गौर चरित की धार, चली अब बीच नदी की धार।
सम्हल मुसाफिर सम्हल बैठियो, बड़ी विकट मँझधार।।
करूणा नीर अथाह गहरावै, बीर धीर वल्ली छुटि जावै।
डूबि जहाँ सुमेरूहू जावै, दिग्गज वहैं हजार।।
चली अब बीच नदी की धार।।
भग्न हृदय के भँवर भयंकर भरि भरि बेग सों आवत घिर घिर
चूर्ण होय पाषाण बज्जर, आँसुन के प्रहार,चली अब।।

हाय हुताश लुफान तुमुल तहाँ,

गरजत घन घन उमड़ि घुमड़ि महा।

उड़ि उड़ि गये बड़भागी बहु जहाँ,रहिगौ प्रेम छार,चली अब।।

वचन बोध प्रवोध करि, बार बार उर लाय।

कछु थिर करि भक्तन मति, रहै गौर घर आय।।

घर घर भक्त विकल दुख पाये। भाव दुरात न जात दुरायै।।

शोक विषाद रहै उर छाई। ना जानैं कब जायँ पलाई।।

कहत न मात सों राखें दुराई। भनक तौहु परी कानन जाई।।

सुनि शची मात रही मुरझाई। लपट अनल लागी मृगि आई।।

अति आकुल जित तित उठि धावहिं

बूझति पार परौसनि ठाँवहिं।।

विष्णुप्रिया बधू ओर निहारहिं।

समुझि समुझि द्दगधार बहावहि।।

छिन छिन सुधबुध जात हिराई। कौन करैं अबलान सहाई ।।

एक दिवस साहस करि, बूझि सुत ढिंग बात।

सो लीला वरनूँ जथा, पाई आयसु मात।।

(महाप्रभु महा-भावविभोर निज गृह में बैठे हैं)

पद (मालकोष)—

यह बाढ़त है छिन ही छिन, मेरो अ शा तृष्णा दरस बिन।

कहा करौं वह तो नहिं आव, कासों कहौं दुख कहो न जावै।

ऐसो को दुख मेरो मिटावै, दोसत ना कोई कहुँ त्रिभुवन।।

हाय! श्रीकृष्ण के दर्शन तो नहीं हैं रहे हैं और आशा-तृष्णा बढ़ती ही जाय है। कहा करूँ! कौन सों कहूँ! कौन मेरे दु:ख कों मिटाय सकैगो (ठहर) हाय! कितनो रोयौ। कितनो मनायौ। स्तुति गाई। प्रार्थना करी! सब व्यर्थ! वह तो रूवावनौ ही जानै है—आँसू पौंछ दैनो तो जानै ही नहीं है! अरे निर्दयी! अरे निर्मम! जा मैंने हू आज सों तोकूँ छोड़यौ! छौड़यौ। अब मैं अपने—

पूर्वपद—

कानन वाकी चर्चा न सुनिहौं, रसना वाको नाम न जपिहों।

आँखिन श्याम रूप न देखिहौं,

तजि दऊँ तजि दऊँ मन कर्म वचन।।

अब न आशा तृष्णा जगाऊँ, अभिलाषा सब धोय बहाऊँ।
सुध बुध वाकी सबही भुलाऊँ, आन उपाय नहीं या बिन।।
(आँखें मूँद चुपचाप कुछ समय बैठे रहते हैं)

अरे! यह तो मेरे हृदय में धुसकै बैठयो हैं—

पूर्वपद—

तजि दियो मैं जाकूँ तजि तजि दियो हैं।
सो तो हिय मधि बैठि रह्यौ है।
हँसि हँसि हियरा मोहि रह्यो है।
शीतल करि रह्यौ तन मन प्राणन।।

हाय! अब कैसे याकूँ निकास बाहर करूँ। मन ने तो वाकूँ छोड़ दियो पर यही मनकूँ नहीं छोड़ रह्यौ है। अरे! तोकूँ और कोई ठौर न मिली जो मेरेइ मन में आयकै वस्यौ है! बस्यौ ही नहीं, हँसहू रह्यौ है! अहा मधुर-मधुर मुस्क्यान! ज्याला सब शान्त है गई! रोम-रोम शीतल है गयो! हाय! मैं कैसी बावरी हूँ जो तुमकूँ निकास रही ही। रहौ प्यारे रहौ! ऐसे ही हँसते रहौ! जराते रहौ, सिराते रहौ। मिलौ न मिलौ, आशा वेलि सींचते रहौ तृष्णा बढ़ाते रहौ। तुम में, तुम्हारी आशा -तृष्णा में, तुम्हारी चटपटी-छटपटी में, जीवन को अन्त है जाय—पूर्णाहुति पर जाय!

पूर्वपद—

भूलि सकौं ना लाख भुलाये, यह ना छोडैं लाख छुड़ाये।
पल पल तृष्णा कृष्ण बढ़ाये, बीज 'प्रेम' यह फूल यह जीवन।
हा कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण (धीरे-धीरे रटना)

समाज (दोहा)—

महाभाव विभोर प्रभु, कृष्ण कृष्ण रटलाई।
मात शची गमनी तहाँ, निरखहि प्राण निमाई।।

शची—(प्रवेश कर कुछ दूर खड़ी-खड़ी देखती है)

बोसिया आछेन प्रभु कमललोचन।
कोहिते लागिला शची कोरिया क्रन्दन।।

शची—(निमाई के कन्धे पर हाथ रख) वत्स निमाई!

महाप्रभु—(सिर उठा देखते हैं—धीरे-से उठ चरण-स्पर्श करते हैं)

शची—(हृदय से लगा) चिरंजीवी लाल! भगवान् तेरो सदैव मंगल करैं।

समाज (दोहा) —

मात चरण हेरत खड़े, नत मस्तक गत वैन।
बोल ल निसरत मात मुख, निसरत अश्रु नैन।।

महाप्रभु—(दृष्टि उठा) माँ! माँ!

शची—निमाई! वत्स!

महाप्रभु—हाँ माँ! बोलौ! कहा बात है?

शची—मैं तोते एक बात बूझूँ हूँ! साँची-साँची बतैयो।

महाप्रभु—आज्ञा करौ माँ!

शची—बेटा! तू संन्यासी महात्मान सों इतनो प्रेम क्यूँ करै है। वा दिना संन्यासी केशव भारती को तैंने कितनो आदर-सत्कार कियौ हो!

महाप्रभु—माँ! आपहू तो अतिथि साधु-महात्मान की सेवा करौ हो।उनकूँ विष्णु-प्रसाद सेवन कराओ हो।

शची—हाँ कराऊँ क्यूँ नहीं! अतिथि-सेवा हमारो धर्म जो है। परन्तु तौहु......जब सों तेरो बड़ो भैया घर छोड़िकै चल्यौ गयौ है तबसों संन्यासी रूप देखतेही मेरो हृदय न जानै क्यूँ काँप उठै है और जब तोकूँ उनके संग उठतो-बैठते देखूँ हूँ तो....तो....न जानै.....निमाई....वत्स ! (हृदय से लगा रोती हैं)

महाप्रभु—माँ! संन्यासी तो भागवत परमहंस होय हैं। उनके संगसों जीव को कल्याण होय है। यासों वे भय के नहीं, श्रद्धा-भक्ति के पात्र हैं।

शची—देख बेटा! साँची बताय! छिपावै मत! मैंहू कछु-कछु समझूँ हूँ और....और लोगन के मुखते हू कछु सुनूँ हूँ, याहि सों पूछ रही हूँ, छाती कर्री करकै पूछ रही हूँ, बताय, साँची बताय, कहा तू हू....विश्वरूप की तरह मोकूँ....मारवे.....मेरो-मेरो प्राण लैवे को विचार कर रह्यौ है?

महाप्रभु—माँ! यह तुम्हारो भ्रम है! मैं कहा तुम कूँ—अपनी जननी कूँ कभू छोड़ सकूँ हूँ।

शची—सुन निमाई! आज मैं सब कुछ कहवे-सुनवे ही आयी हूँ और कह, सुनकै ही रहूँगी। आज तांई मैंने तोते एक बात छिपायकै राखी है।

महाप्रभु—ऐसी वह कौन-सी बात है माँ? कहौ न।

शची—जायवे सों पहिले विश्वरूप ने एक दिना एक पुस्तक मोकूँ दैके कही हती कि जब भैया निमाई पढ़-लिख कै बड़ो है जाय तब वाकूँ यह पुस्तक दै दीजौ।

महाप्रभु—तो कहाँ है वह पुस्तक माँ?

शची—चूल्हे में।

महाप्रभु—अर्थात्।

शची—अर्थात् अग्निदेव की शरण में।

महाप्रभु—कारण कहा?

शची—वा पुस्तक कूँ पढ़ करकै कहूँ वाकी तरह तू हू मोकूँ छोड़कै चल्यौ न जाय—या भय के मारे मैंने वह पुस्तक जराय दीनी।

महाप्रभु—हाय हाय माँ! ज्ञान स्वरूपिणी माँ! आपने अज्ञानी जैसो यह काम कैसे कर डायौं!

शची—दु:ख में बावरी, आँधरी है कै कर डायौं। मो दुखारी के अपराध कूँ मन में मत लीजौ बेटा!

महाप्राभु—हा हा जननी! ऐसे वचन न कहौ। माता कबहू पुत्र के निकट अपराध नहीं करै है। यह तो पुत्र ही माता के निकट पद पद पै अपराध करै है। और मैंने तो बालपने सों ही तुमकूँ—

दुक्ख दियो दुख दै रह्यौ, दऊँगो दुख ही माई।
सुख तुमहि कछु दै न सक्यौ, छमहू कपूत निमाई।।

शची—(छाती से चिपका) हाय बेटा! ऐसे मत कह। तू ही तो मेरे अँधियारे जीवन को चाँद! तू दु:ख नहीं समस्त सुखन को केन्द्र है। न तो तूही मेरो कोई अपराध करै है और न मैं ही तेरे कोई अपराध कूँ कभू ग्रहण करूँ हूँ। जैसो तेरो मोसों नित्य स्नेह है, वैसे ही मेरी हू तोपै नित्य क्षमा है!

महाप्रभु—तो माँ! एक निवेदन है। मैं थोरे दिना के लिये कहूँ जानौ चाहूँ हूँ!

शची—कहाँ जानौ चाहै है?

महाप्रभु—जहाँ जायवे सों और जा काजै करवे सों हमारो, तुम्हारो सबन को कल्याण होयगो।

पद (विहाग-३)—

माँ जाऊँगो कहुँ जाऊँगो, मन मानै ना मानै मेरो।।
गये जहाँ हित मंगल सबको, जा कारज में कारज सबको।
हमरो तुम्हारो सब जन जग को, वही करूँगो वहीं जाऊँगो।।
मन०।।

शची—बेटा! मेरो सब हित, सब सुख तो एक तो में ही हैं और सुख सों मेरो कोई प्रयोजन नहीं है।

महाप्रभु—तो माँ! वाते मेरोहू बड़ो हित होयगो, यश बढ़ैगो तो आपकूँ हू विशेष सुख होयगो—

पूर्वपद—

हित मेरो अति परम सुमंगल, जीवन सुफल सुकीरति परिमल।
पितरन मंगल, धरनिहि मंगल, मंगल कूख तिहारी करूँगो।।
मन०।।

शची—बेटा! तू जी चाहै सो कर परन्तु तेरे मुखचन्द्र के दर्शन मोकूँ नित्य होंते रहै और मैं कछु नहि चाहूँ हूँ।

महाप्रभु—ऐसो ही होयगो माँ! जब तुम चाहोगी तब ही तुम मोकूँ देख पाओगी। तुम्हारे लोक-परलोक को भार समस्त मेरे ऊपर है।

पूर्वपद—

इहाँ वहाँ तिहुँ काल को भार, अपने सिर राखिहौं सम्हार।
मोह त्यागि करौ कृष्ण सों प्यार, कृष्ण भजौ तुम मैं हुँ भजूँगो।
मन०।।

शची—बेटा! मैंने श्रीकृष्ण कूँ देख्यौ नहीं है। मैं तो तोकूँ ही नित्य देखती आई हूँ। मेरो कृष्ण तो तू ही है। परन्तु तू स्पष्ट तो कह दै कि तू कहाँ जायगो, कहा करैगो।

महाप्रभु—कह तो दीनी माँ कि जहाँ जायवे सों आपको, मेरो और सबन को परम हित होयगो वहीं जाऊँगो वही काज करूँगो।

शची—अर्थात्

महाप्रभु—(चुप रहते)

शची—चुप क्यों है गयो बेटा! बोल! बताय! मेरी सौगन्ध है जो कछु छिपायौ तो!

महाप्रभु—तो मैं हू दादा विश्वरूप की भाँति......

शची—मोकूँ छोड़ जायगो, क्यों?

महाप्रभु—तुमकूँ नहीं माँ! संसार कूँ छोड़ दऊँगो! गृहस्थ के बन्धन सों मुक्त होऊँगो।

शची—(बैठ पड़ती) हाय रे विधाता! तू बड़ो ही निष्ठुर है। दुखिया कूँ ही दूख दैनो तेरो विधान है!

महाप्रभु—(हाथ जोड़ घुटना टेक)

गाना (भैरव-दोहा)—

कौशल्या माँ राम कूँ, दई आज्ञा वनवास।
तुमहू पुत्र निमाई कूँ, देओ आज्ञा संन्यास।।
पुत्र नेह हू ते बड़ो, पुत्र धर्म जिय जान।
कौशल्या हठ छाँड़िकै, दियो राम वन जान।।
मेरे हू माँ धर्म की, लाज तिहारे हाथ।
कैकेयी माँ मति बनौ,बनौ कौशल्या मात।।
मिथ्या मोह स्वारथ तजौ, गहौ प्रेम परमार्थ।
मोसों साँचो सनेह तौ, धरौ शीश पर हाथ।।

शची—(शीश पर हाथ रख) हाय बेटा! तेरो हृदय आज इतनो निष्ठुर कैसे है गया! जब-जब मैं तेरे बड़े भैया और पिता की याद में रोयौ करती तो तू अपने पीताम्बर सों मेरे आँसून कूँ पोंछतौ और कहतौ 'मा! मैं हूँ तो तुम्हारो सब कछु हूँ। मेरे होंते तुमकूँ दु:ख कहा।' वही तू आज मोकूँ रूवाय रह्यौ है, आँधरी-बावरी बनाय रह्यौ है। आज तेरी वह दया-माया कहाँ चली गई बेटा?

महाप्रभु—कहूँ नहीं गयी माँ और अधिक बढ़ गयी है कारण कि—

गजल (वागेश्री)—

चहुँ ओर दु:ख के बादल, दुनियाँ में छा रहे हैं।
भगवान कूँ भुलाकर, सब दुख पा रहे हैं।।१
भूले को राह बताऊँ, सोतों को जा जगाऊँ।
रोतों को गा नचाऊँ, सब दुक्ख पा रहे हैं।।२
घर घर अब सबके जाऊँ, हरि नाम गा सुनाऊँ।
हरि की दया दिखाऊँ सब दुक्ख पा रहे हैं।।३
गाऊँ मैं कृष्ण कृष्ण, माँगू मैं कृष्ण कृष्ण।
कहो तुम भी कृष्ण कृष्ण, सब दुक्ख पा०।।४
यही है कृष्ण इच्छा, दो मात मुझको भिक्षा।
करौ 'प्रेम' मेरी रक्षा, सब दुक्ख पा रहे हैं।।५

शची—अरे मेरे प्राण जीवनधन! मेरे लाल! तू तो सब जानै है फिर मातृ-त्याग और पत्नी-त्याग जैसी अधर्म......।

महाप्रभु—माँ! यह त्याग अधर्म के लिये नहीं, परम धर्म के लिये है। तुमकूँ और वाकूँ अनन्त अखण्ड सुख दैवे के लिये है। और यहाँ हू मैं तुम लोगन कूँ त्याग ही कहाँ रह्यौ हूँ। तुम जब इच्छा करौगी तब मोकूँ देख सकौगी। अतएव धीरज धरौ माँ अपनी आज्ञा प्रदान करौ।

शची—हाय! मैं अपनी आँख आपही कैसे फोर लऊँ! अपने लाल कूँ आपही योगी कैसे सजाय दऊ! मेरे तो प्राण-पखेरू उड़ जायँगे। अरे! माँ को हृदय विधाता ने कैसो बनायौ है, यह तू कहा समझैगो, समझ नहीं सकै है,नहीं सकै है!

महाप्रभु—साँची कहौ हो माँ! तौहु एक माता के हृदय की कथा सुनाऊँ हूँ। महाभारत की कथा है। पांडव बनवास में हते। संग में कुन्ती माता हू हतीं। वे एक समय एक ब्राह्मण के घर में ठहर रहे हते। एक राक्षस वा गाँव में ते एक आदमी नित प्रति भोजन के तांई लियौ करतो। एक दिन वा ब्राह्मण के घर की पारी आय गई। ब्राह्मण के बेटा ने जानौ चाह्यौ तो माता-पिता सब रोयवे-विलाप करवे लगे। तब वा समय कुन्ती माता ने ब्राह्मण के बेटे की बदली में अपने प्यारे पुत्र भीमसेन कूँ भेज दियौ। भीम ने वा राक्षस कूँ मार डार्यौ और गाँव भर को दु:ख दूर कर दियौ। तब तो माँ कुन्ती की सर्वत्र जय जयकार हैवे लगी और वाकूँ बड़ो ही आनन्द प्राप्त भयौ। वह अपने कूँख कूँ धन्य-धन्य मानवे लगी, परन्तु माँ—

गाना—

शत शत कुन्ती तुम पर वारौं, तुम हो मेरी माता।
पुत्रदान करी आत्म दान करौ, होवै जय जय माता॥
कलिकाल यह राक्षस दिन दिन, भेंट बलि लै खावै।
नाम भीम सों भेंट होय जब, कलि की बलिहै जावै॥
जुग जुग सों माता ही जगकूँ, पालति पोषति आई।
अपने दूध पूत रतन सों, जगत सिंगारति आई।।
शूरवीर बलवीर दिये माँ, धर्मवीर व्रत वारे।
दानवीर दयावीर दिये यही, कर्म व धर्म तिहारे।।
जननी माता धरनी माता, द्वै ही 'प्रेम' जगधात्री।
तुम्हरी कूख सों हरी भरी जग, फुलवारी फलदात्री।।

अतएव आप मेरी ही माता नहीं, जगत की हू माता हौ। यासों हे जगद्धात्री! जगत् के हित के लिये मोकूँ दान कर देओ (घुटना टेक)

पूर्वपद—

धरौ हाथ मो शीश पै माता, रहूँ कृष्ण रंग राता।
कृष्ण गाय गवाय कृष्ण नित, मेटूँ भव दुख माता।।

शची—बेटा! तू मोकूँ भले ही कथा सुनाय लै, समझाय लै। मैं तो ७० सत्तर वर्ष की वृद्धा परलीपार पहुँच ही चुकी हूँ परन्तु जो अबही या पार बैठी है, वा चौदह वर्ष की बालिका कूँ कैसे समझाय लैगो?

महाप्रभु—मैं सब समझाय लऊँगो माँ! वाकी चिन्ता न करौ।

शची—कैसे न करूँ! तू तो चल्यौ जायगो और वह बेचारी अधखिली कली मेरी आँखिन के आगे मुरझाय जायगी, सूख जायगी।

महाप्रभु—नहीं माँ, सूखैगी नहीं, त्यागि की अमरबेलि बन करकै चिरकाल के लिये लहलहावैगी—महकावैगी।

शची—परन्तु मेरी आँखिन कूँ तो नितप्रति रुवावैगी ही।

महाप्रभु—तभी तो वह करुणा की महादेवी कहावैगी और त्याग-तप-क्षमा की त्रिवेणी बन जायगी जाके दर्शन मात्र सों जीव के पाप-ताप धुव जायँगे। अतएव या महायज्ञ के कार्य में सहायता करौ माँ! आज्ञा प्रदान करौ।

शची—हाय बेटा! तू आज मेरे ऊपर इतनी जोर क्यूँ डार रह्यौ है।

महाप्रभु—कारण कि घरवारे अपने जनन के ऊपर ही जोर चलै है बाहर वारेन पै नहीं। यही लोक वेदकी रीति नीति है।

शची—वत्स! तू तो मेरे प्राणन को हू प्राण है। मैं तो तोकूँ कैसे निकास बाहर कर दऊँ?

महाप्रभु—माँ! स्वार्थी जीव एक सूई तक नहीं दै सकै है परन्तु सनेही हितू जन अपनो करे जो तक हँसते निकास कै दै देय हैं! यासों निःस्वार्थ प्रेम को परिचय देओ माँ!

शची—मेरे लाल! मैं तेरे सिवाय स्वार्थ, निःस्वार्थ, परमार्थ कछुइ नहीं जानूँ हूँ। मेरो लोक-परलोक-सर्वस्व एक तू ही है।

महाप्रभु—अच्छो तो माँ! मेरीइ दशा कूँ नेक विचारौ और दया करौ। सुनौ! मेरे हृदय कूँ पकरि कै कोई खैंच रह्यौ है। जो मैं नहीं जाऊँगो तो मेरो

हृदय फट जायगो, मेरे प्राण उड़ जायँगे—उड़कै पहुँच वृन्दावन! (रोते हुये) हा कृष्ण! हा वृन्दावन! (ठहर कर) अब बताओ माँ! मैं घर में तिहारे पास रहकै तरफि-तरफि कै मर जाऊँ कै बाहर जाय सुख सों जीऊँ? बताओ कहा करूँ माँ! जैसो कहौगी, वैसेइ करूँगो!

शची—(हृदय) तू युग-युग जी मेरे लाल! युग-युग जी! लै मैं ही मरूँ हूँ। लै। जा।

कवित्त—

आँखि फूटै पै हमरी जो आँखि पावैं जग रे,
तो फोरि आँखि हमरी, तू जा बेटा अब रे।
भाग फूटै पै हमरे जो भाग पावैं जग रे,
तो फोरि भाग हमरे, तू जा बेटा अब रे।
घर उजरै पै हमरे, जो घर बसैं जग रे,
मसान करि घर रे, तू जा बेटा अब रे।
लोहू तो 'प्रेम' हमरे, जो जरैं दीप जग रे,
तो लै लै लोहु हमरे, तू जा बेटा अब रे।।

महाप्रभु—(माता के कंधे पर हाथ रख) अहा! धन्य है।

साँची माता अब भई, दियो मोहिं जग दान।
मोकूँ, जग कूँ, कृष्ण कूँ, कीन्हे ऋनी महान।।

अब माँ! बड़े आनन्द के साथ—

तुम करौ, मैं करूँ, जग करै, कृष्णनाम गुन गान।
भूर्भुवः स्वः गूंज उठै, जय जय जय हरि नाम।।
मंगल दिन मंगल घरी, मंगल आज्ञा दान।
जय जय जय मंगलमयी, कोटि कोटि प्रनाम।।

कोटि-कोटि प्रणाम या मंगल आज्ञा के लिये—

(माता के चरणों पर शीश रख देना)

शची—(चौंकर) कहा कही? आज्ञा दै दीनी मैंने! कहाँ दई? कब दई? बेटा निमाई! तू चल्यौ गयौ कहा?

(पतन-मूर्छा)

महाप्रभु—(माता का सिर अपनी गोद में लेते हैं) (पटाक्षेप)

नेपथ्य—माँ! मैं गयो नहीं हूँ। एक वर्ष तक आपही के पास रहूँगो। धीरज धरौं। शान्त होओ!

अथ श्रीविष्णुप्रिया-अनुमति-ग्रहण

श्रीगौरांग प्रियां वन्दे, गौरवक्ष विलासिनीं।
त्रैलोक्यमोहिनीं देवीं, नमामि वरवर्णिनी मू।।
महामाया सुतां गौरीं नानालंकारभूषितां।
तां नमामि महालक्ष्मीं, ह्लादिनीशक्तिरूपिणीम्।।

गौरचन्द्र की चाँदनी, विष्णुप्रिया पद ध्याय।
नित संयोग मधि विरहयुत, लीला जिनप्रगटाय।।
तात गृह गमनी रहीं, विष्णुप्रिया तिहि काल।
पति मति गति वैराग की, सुनत भई बेहाल।।
छाँड़ि लाज मर्याद, बिन बुलाई चली आई घर।
हृदय महा विषाद, को जानै कहा विधि हिय।।
संध्या समय पति भवनहिं आई। उतरि डोलिते व्याकुल धाई

(प्रवेश विष्णुप्रिया। एक सखी संग)

विष्णुप्रिया—(प्रवेश कर शची माता का चरण-स्पर्श)

समाज—

गही जाय मात शची पाई। नैन चुवत मुख बैन न आई।।
हिय सों लाय असीसी माता। भली चली आई घर माता।।

शची—

देखि तुमहिं भई शीतल छाती। तुम दोऊ मेरी जीवन बाती।।
तात मात तो कुशल तुम्हारे। यादव भ्राता सुख सों सारे।।

समाज—

विष्णुप्रिया कछु बुझि न सकहि।
पिय दरसन हित जिय अति तरफहिं।।
समुझि भाव शची उरसों लाई। कहति मधुर प्रिय वचन सुनाई

शची—बेटी! निमाई सब प्रकार सों कुशल है। तुम वाकी कोई चिन्ता न करौ। या समय वह गंगा तट पै होयगो अथवा श्रीवास के गृह भक्तन संग होयगो। चलौ तुम भीतर, वस्त्र बदलौ, विश्राम करौ। हीछे ब्यारू भोग की तैयारी करनौ। तब तक निमाई हू आय जायगो—

(दोनों का प्रस्थान)

(प्रवेश कीर्तन करते हुये महाप्रभु, निताई, अद्वैत, श्रीवास, हरिदास, मुरारि, मुकुन्द आदि परिकर वृन्द)

संकीर्तन—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण.........। हरे राम हरे राम.......।।
संकीर्तन के मध्य मध्य में निम्नलिखित पद भक्तजन बोले—

मुकुन्द (श्लोक) —

मन्दारमूले वदनाभिरामं, बिम्बाधरे पूरित वेणुनादम्।
गोगोपगोपीजनमध्यसंस्थं, गोविन्द दामोदर माधवेति।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण०। हरे राम०।।

मुरारि—

श्रीकृष्णराधावरगोकुलेश, गोपाल गोवर्धननाथ विष्णो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव, गोविन्द दामोदर माधबेति।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण०। हरे राम०।।

श्रीवास—

गोपाल वंशीधर रूपसिन्धो, लोकेश नारायण दीनबन्धो।
उच्चस्वरैस्त्वं वद् सर्वदैव, गोविन्द दामोदर माधवेति।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण०। हरे राम०।।
(कीर्तन करते-करते प्रस्थान)

समाज (दोहा) —

भक्तन संग कीर्तन करि, निशा अधिक अनुमान।
भवन जाय ब्यारू करी, पौढ़े गौरा चाँद।।
धवल सुकोमल सेज पै, धवलहिं तकिया साज।
धवल वसन कंचन वदन, सोहत गौरा राज।।
(महाप्रभु की शायन झाँकी। महाप्रभु का श्रृङ्गार एवं शय्या के उपधान, आस्तरण सब उपकरण श्बेत)

समाज—

सेज सरोवर सुखद सुहाई। बदन कमल फूल्यौ सुखदाई।।
लोचन अलि अतिशय सुखमानी।
सिमिटी पच्छन रहीं सकुचानी।।

गोरे मुख छूटीं लटकारी। मधुप मधु उपमा जु झुठारी।।
तमो घोर नहीं भाव विभोरा। तन मन विवश विसुध परै गौरा

(प्रवेश विष्णुप्रिया। थाल में पान-पुष्पमाल लिये)

विष्णुप्रिया धीरे पग धारीं। सोहत पान माल कर थारी।।
प्राननाथ मुख छविहिं निहारी। रह गईं हेरत हेरत हारी।।
सुख पावै अन्तर, अकुलावै। सुख दु:ख सन्धि कही ना जावै।।

विष्णुप्रिया—(चुपचाप खड़ी दर्शन करती) सोओ प्राणनाथ! सुख की नींद सोओ। मैं दर्शन कर करकै शीतल हऊँ (थाल को रख धीरे से चरण-समीप बैठती) अहा! यह रूप त्रिभुवन में कहाँ? लोग मोकूँ बड़ी भाग्यवती, पुण्यवती कहैं हैं सो साँची ही है! परन्तु हाय.....जो यदि कहूँ.. ...वैसोइ....अपने बड़े भैया जैसे ही.....तो मैं कैसे जीऊँगी नहीं! नहीं! वाकी तो कल्पना ही सों मेरो माथो घूमवे लगै है, छाती फटवे लगै है! नहीं, नहीं, मैं नहीं रोऊँ गी! अमंगल नहीं सोचूँगी! प्राणनाथ कूँ दूर नहीं हौन दऊँगी। इन.....इन चरणन कूँ पकरिकै राखूँगी! जान नहीं दऊँगी! (चरणों पर शीश रखना)

समाज (दोहा)—

छलछलात वारिज नयन, उफनत हियो पिराय।
चरणकमल लखि नाथ के, धीरज गयो बहाय।।
नयनसिन्धु ते विन्दु द्वय, दीन्हे अर्घ्य चढ़ाय।
पानि ओ पाणि परस सों, जागे गौराराय।।

महाप्रभु—(जाग कर धीरे-धीरे उठ बैठते हैं)

समाज—

प्रिया चिबुक करसों गही, बदत वचन रसखान।
जानि बूझिकै है रहे, निपट अजान सुजान।।

महाप्रभु—प्रिये! तुम क्यूँ रोय रही हो? तुमकूँ कहा दुक्ख है?

विष्णुप्रिया—(चुपचाप रोती रहती हैं)

महाप्रभु—(उनके हाथ को हाथों में ले) क्यूँ, तुम तो और अधिक रोऔ हो! तुम्हारे रोयवे सों मोकूँ बड़ो दुक्ख होय है। बोलो चुप क्यूँ हो? कहा मोते मान कियौ है?

विष्णुप्रिया—(रोती-रोती) नहीं तो! कैसो मान?

महाप्रभु—तो फिर रोय क्यूँ रही हो, बताओ न!

विष्णुप्रिया—प्राणनाथ! कहा तुम हमारे सुख......सपने कूँ समाप्त करनौ....हमकूँ दुःख-सागर में डुबोनौ चाहौ हो?

महाप्रभु—यह तुम कहा कह रही हो प्रिये! कैसो सुख-सपनो और कैसो सुखसागर! बड़े दिनन में तो तुम आज पीहर ते आयी हो सो नेक हँसी, बोलौ, बतरानौ! यह कहा रोयवे, लड़वे झगरवेको समय है। और यह पान कहा धरौ ही रहैगो? यह है कौन के तांई?

विष्णुप्रिया—(पान लेकर मुख में दे) नाथ! प्राणनाथ! साँची कहनौ छिपामनो नहीं! यह मैं कहा सुनूँ हूँ? लोग कहा कहैं हैं।

महाप्रभु—कहा कहै हैं?

विष्णुप्रिया—यही कि तुमहू अपने बड़े भैया जैसे.........

महाप्रभु—(मुस्कराते हुये) यह तुमकूँ कौन ने बहकाय दियो है?

विष्णुप्रिया—बहकाय नहीं चेताय दियौ है। मैं हू देख रही हूँ कि तुम्हारे केवल होंठन पै ही हँसी है, आँखिन के कोनान में तो जल है तुमहू रोय रहे हो। यासों चतुराई छोड़ो नाथ! और बताओ (दाहिना हाथ पकड़ अपने सिर पर रख) तुमकूँ मेरी सौगन्ध है जो कछु छिपाओ तो! बताओ साँची।

महाप्रभु—झूँठ-साँची तो तुम सब जानौ हो प्रिये! मैं कहा अपने वश में हूँ। न जाने कौन समय कहा कर बैठूँ।

विष्णुप्रिया—परन्तु हमकूँ अनाथ करकै तो नहीं जाओगे? माँ के और मेरे गरे पै छुरी तो नहीं फेरौगे? इतने दयामय है कै अब कहा निर्दयी बनोगे? बन सकौगे? नहीं, नहीं बन सकौगे! हमारे प्राणन कूँ नहीं लै सकौगे!

महाप्रभु—विष्णुप्रिये! मैं तुम्हारे निकट अपराधी हूँ! परन्तु कहा करूँ—मेरी मति जो स्थिर नहीं है। कृष्ण-विरह ने मेरी सुध-बुध सब लूट लीनी है। बताओ, मैं कहा करूँ? तुम तो पतिप्राण हो! कहा तुम मेरो मंगल नहीं चाहौ हो प्रिये? अवश्य ही चाहौ हो! अतएव अपनो विष्णुप्रिया नाम सार्थक करौ। जैसी तुम विष्णुप्रिया हो वैसे ही मोकूँ हू विष्णुप्रिय बनन दैओ!

विष्णुप्रिया—परन्तु माता को कहा होवैगो? वे दुःख पायँगी, रोयँगी तो तुम्हारी निन्दा होयगी! यासों तुम घर कूँ मत छोड़ो। मैं ही घर छोड़कै पीहर चली जाऊँगी। तुम माता के साथ घर ही में रहकै भजन करौ,

विष्णुप्रिया बनौ। वृद्धा माता कूँ मारौ मत! तुम्हारे बिना वे जी नहीं सकैंगी! मैं तुम्हारे पाँव परूँ हूँ (चरण पकड़) माता पै दया करौ! उनकूँ छोड़ो मत।

महाप्रभु—माता ने तो अनुमति दै दीनी है। अब तुमहू दै देओ।

विष्णुप्रिया—(सहम कर) हाय माँ (बैठ पड़ती हैं) यह तुमने कहा कर डार्यौ! नहीं नहीं! माँ कदापि ऐसो नहीं कर सकैं हैं! तुमही हाँसी कर रहे हो!

महाप्रभु—हाँसी नहीं साँची कह रह्यौ हूँ! माँ ने अनुमति दै दीनी है अब तुम्हारी अनुमति शेष है।

विष्णुप्रिया—हा माँ! अब मैं इनकूँ कैसे रोकूँ?

गाना (गजल-सोहनी)—

एक भरोसो हो गयो, एक सहारो हो गयो।
हाय माँ! यह कहा कियो, गोदी को लाल दै दियो।
दूध को बल तो हार गयो, पानी को बल ही रह गयो।
काँच की चूड़ी कहा करै, जब नेह को तोड़ा टूट गयो।
बल तो हमारो सबही गयो, जल ही आँखिन रह गयो।
कहा करै अब बिन्दु 'प्रेम', सिन्धु दया जब सूख गयो।

हाय दयासिन्धो! दीनबन्धो! आज तुम इतने दयाशून्य हृदयशून्य कैसे है गये?

महाप्रभु—नहीं प्रिये! मैं दयावान को दयावान ही हूँ। मेरी दया कबहू घटै नहीं है, वह तो बढ़ै ही बढ़ै है।

विष्णुप्रिया—तो मोकूँ अपने संग लै चलौ दयामय! जैसे द्रौपदी पांडवन के संग, दमयन्ती नल के संग, सीताजी राम के संग गयीं हुतीं वैसे ही मैं हू तुम्हारे संग चलूँगी! इतनी कृपा दासी पै करौ कृपानिधे!

महाप्रभु—प्रिये! यह बनवास नहीं संन्यास है। स्त्री-त्याग ही संन्यास को प्रथम कर्म है, प्रधान धर्म है।

विष्णुप्रिया—और स्त्री के लिये पति-सेवा ही प्रधान धर्म है। आपके बिना मैं कौन की सेवा करूँगी?

महाप्रभु—श्रीकृष्ण की। साँचे पति, नित्य पति, अनादि पति तो एक श्रीकृष्ण ही हैं। हमारे-तुम्हारे, नर-नारी, सबन के पति तो श्रीकृष्ण ही हैं।

विष्णुप्रिया—मेरे लिये तो आपही श्रीकृष्ण हैं नाथ! मैं आपके सिवा और काहू कूँ नहीं जानूँ हूँ।

महाप्रभु—तो फिर मेरी आज्ञा-पालन करनो ही तुम्हारो एक मात्र कर्म-धर्म है। और मेरी आज्ञा यही है कि तुम मोकूँ श्रीकृष्ण-भजन करन देओ और तुमहू कृष्ण-भजन करौ।

विष्णुप्रिया—कैसे करूँ? मैं तो एक आपको ही भजन जानूँ हूँ श्रीकृष्ण को भजन तो जानूँ ही नहीं हूँ, करूँ कैसे?

महाप्रभु—सुनौ मैं बताऊँ हूँ। प्रातःकाल उठि गंगा-स्नान करनौ। गंगा-जल सों तुलसा महारानी को स्नान करामनौ। फिर एक थार में चाँवर लैकै बैठ जानौ। एक दाना चाँवर लैनो और 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥' यह सोलह नाम बत्तीस अक्षर वारौ जो महामन्त्र है याकूँ बोलकै वा दाने कों एक अलग पात्र में रख दैनो। फिर दूसरो दाना-चाँवर लैनो, महामन्त्र बोलनो और बाकूँ अलग धर दैनो। या प्रकार सों एक-एक दाना लैंके और महामन्त्र जपकै वाकूँ अलग धरते जानौ। तीसरे प्रहर तक ऐसो करनौ। तब जितने चाँवर नाम महामन्त्र सों शुद्ध है जायँ उनकी रसोई करनौ। तुलसी-मंजरी छोड़ कै श्रीकृष्ण कूँ भोग लगामनौ और वा प्रसाद के द्वारा अपनी क्षुधा की शान्ती करनौ। और एक श्रीकृष्ण सेवा को कार्य यह करनौ कि भक्त जनन के परिवार सों श्रीकृष्ण संकीर्तन करामनौ। बस तुम्हारे लिये यही श्रीकृष्ण-भजन है। याकूँ करौगी तो मैं बड़ो सन्तुष्ट रहूँगो।

समाज (दोहा)-

सुनि सुनि प्रभु उपदेश कूँ, अबला रोवति जात।
दावानल चहुँ ओर लखि, मृगी जिमि अकुलात।।
वयस अल्प बाला निपट, भीषन भव मंझधार।
पति पद नौकावास बिन, होवै केहि विधि पार।।
नेह गयो नातो गयो, आस हू बीतत जात।
नेह निधि निरमोही बनि, बोध प्रबोधत बात।।

महाप्रभु—प्रिये! रोओ मत! धीरज धरो! तुम तो बिष्णुप्रिया हो, वैष्णव जननी हो! ये जीव तुम्हारी सन्तान हैं। पिता के बिना सन्तान जी सकै है परन्तु माता बिना जीनौ अति कठिन है। यासों मेरे पीछे तुम यहीं रहनौ तथा मेरे वियोग सों दुखी मेरे जनन की रक्षा करनौ। उनकूँ कीर्तन-भजन सिखामनौ। ये कोई प्रमादी न बनैं, संकीर्तन धर्म न त्याग बैठें। यासों सावधान रहनौ और भक्तन की और माताजी की सेवा-सम्हार करनौ। यही

मेरी अन्तिम आज्ञा है और यही तुम्हारो परम धर्म है। अब मोकूँ अपनी अनुमति प्रदान करौ।

विष्णुप्रिया—हा नाथ! प्राण...नाथ (गिर पड़ती हैं—महाप्रभु सम्हारते हैं)

समाज (चौपाई)—

सहि न सकीं दुख रही मुरझांई। परत धरनि प्रभु लिये बचाई।।
मन न सुनै कुछ प्रान न मानै। तनसों निकसन हित अकुलानै।।

महाप्रभु—विष्णुप्रिये! मोह छोड़ो और मेरी आज्ञा मानौ!

विष्णुप्रिया—(नेत्र बन्द) प्राणनाथ! कहाँ हो? (भुजा फैलाती हुई) कहाँ हो...कहाँ...च-च चले गये कहा?

महाप्रभु—(भुजा पकड़) नहीं विष्णुप्रिये! मैं यहीं हूँ। चेत करौ। सावधान होओ! नेत्र खोलौ! देखौ मैं यहीं हूँ।

विष्णुप्रिया—(आँखें खोल) आप-आप-हैं-हैं यहीं हैं।

महाप्रभु—हाँ यहीं हूँ और यहीं रहूँगा कछु दिना और हूँ।

विष्णुप्रिया—अच्छो! यहीं रहौगे? नहीं जाऔगे?

महाप्रभु—हाँ! मैंने यह बात माताजी सों हू कह दई हैं। यासों धीरज धरौ। अनुमति प्रदान करौ।

विष्णुप्रिया—कहा अनुमति? तो फिर जाओगे ही? छोड़ ही देओगे हमकूँ? इतने निठुर न बनौ! दया, दयासिन्धो! दासी पै दया! (चरणों पर पतन)

महाप्रभु— (उठाकर बैठाते हैं) प्रिये! तुमकूँ दु:ख दैवे में भलो मोकूँ कहा सुख है! तुमकूँ छोड़वे में मोकूँ कितनो दुख है यह मैं ही जानूँ हूँ। तौहू तुमकूँ छोड़नो ही परैगो, छोड़े बिना जीव को उद्धार नहीं होयगो, कलियुग को धर्म नाम संकीर्तन को प्रचार नहीं है सकैगो।

पद-विहाग—

करौ सहाय धरम की देवी, लाज तिहारे हाथ।।टेक।।
तुम छोड़ो छोड़न देओ मोकूँ, यह मिथ्या जग काज।
झूँठे सुख की होरी जराय, खेलैं प्रेम को फाग।।१।।
तुम रोओ घर भीतर घुल घुल, मैं रोऊँ वन माँझ।
रोवैं भक्त सकल ये घर घर, बुझै जगत की आग।।२।।

आँसुन सों हम न्हाय न्हवावैं, जीव जगत कूँ आज।
नाम वसन भूषन पहिरावैं, मंगल साजैं साज।।३।।
बड़े भाग हम तुम दोउन के, जो आवैं जग काज।
सन्तान हमारी अमर बन जावैं, पावैं 'प्रेम' पद राज।।४।।

अतएव धीरज धरौ। और उदार बनौ। अपनी दुखी सन्तान के लिये हे जगज्जननी जगदम्बे! मोकूँ दान कर देओ-जान दैओ!

विष्णुप्रिया—(रोती-रोती) इच्छामय! जैसी इच्छा आपकी। यह दासी प्राण दै दैगी प्राण दै दैगी परन्तु बाधा नहीं डारैगी!

पद (विहाग-३)—

ना दऊँगी ना दऊँगी, मैं बाधा।
भाग दऊँगी सुहाग दऊँगी, प्राणन हू दै दऊँगी, ना०।।१।।
तुम स्वामी हौ दासी तिहारी, चरणन रज लै रहूँगी।
रहौ जहाँ मेरे स्वामी कहै हौं, यह सुख परम गिनूँगी।।२।।
तुमकूँ पाय जगत सुख पावै, तो मैं दुक्ख सहूँगी।
तुमसों जीव धनो बनि जावै, मैं कंगाल बनूँगी।।३।।
याद करौ न करौ तुम मोकूँ, मैं पल पल सुमरूँगी।
नाथ नाथ मेरे प्राणनाथ रटि, चातकी 'प्रेम' बनूँगी।।४।।
(महाप्रभु के चरणों पर पतन। महाप्रभु उठाते हैं पटाक्षेप)

समाज (दोहा)—

छल बल कौशल सों प्रभु, लई आज्ञा मन भाय।
दुखी जान सब आप पुनि, करत सुक्ख उपाय।।
निज संकल्प संन्यास दृढ़, हृदय माँझ दुराय।
भक्तन संग विहरत फिरैं आनन्द सुख उपजाय।।

श्रीवास गृह संकीर्तन करहीं। भक्तन संग कौतुक बहु रचहीं।।
संध्या समय सुरसरि तट जावहीं। चर्चा पावन मोद बढ़ावहीं।।
नगर हाट बाट कभु विहरहीं। नर नारिन चितवित सब हरहीं।।
गृह कारज करहीं मनलाई। विष्णुप्रिया ढिंग बैठहिं जाई।।
प्रभु उर भेद जानहिं ना कोई। निज अनुमान मानैं सुख सोई।।
पुत्र स्वभाव पलटयौ शची मानै। कथा व्यथा संन्यास भुलावै।।
गौर-स्वभाव लखि सब सुख पावैं। आनन्द मगन दिवस बितावैं।।

दिवस जात नहिं लागत दारा। रुकैं न प्रबल काल गति धारा।।
वर्ष एक बीत्यो सुखदाई। आयो दारुन काल विदाई।।

(पर्दा खुलता है। महाप्रभु शान्त गम्भीर बैठे हैं)

आज सर्वशेष लीला नदियार माँझ।
आज प्रभु जावे सर्व शिरे हानि बाज।।

महाप्रभु (पद-वागेश्री ४ ताल या दादरा)—

शेष भयो नदिया खेल, भक्तन संग रंग रेल,
श्रीवास आंगन विहार।
करि कंगाल भिक्षु भेष, विचरुँगो देश देश,
बहाऊँगो नाम धार।।१
भजै कै भजै नहीं, हरिदास जीव सभी,
सबसों मेरो प्यार।
भूलि मात खेलै शिशु, मात नहीं भूलै कभु,
टेरै सौ सौ बार।।२
भाव कै अभाव हेत, जीव नहिं कान देत,
सुनै ना हरि पुकार।
दूर सोइ अभाव करूँ प्रभाव निज विस्तरूँ,
बरसाऊँ प्रेम धार।।३

(प्रवेश श्रीनित्यानन्द)

महाप्रभु—(उठते हुये) भले आये श्रीपाद। मैं तुम्हारो ही स्मरण कर रह्यौ हो!

निताई—आज तो प्रभो! आपके मुखारविन्द पै कछु एक विचित्र भाव की रेखा झलक रही है।

महाप्रभु—बारह महीना है गयै श्रीपाद!

निताई—कौन सी बात कूँ प्रभो?

महाप्रभु—संन्यास की सूचना कूँ। गत माघ के आरम्भ में मैंने अपने संन्यास को विचार आप सबन के समक्ष प्रगट करिकै अनुमति प्राप्त करी हती और अब कल पुनः माघ की मकर-संक्रान्ति है। पूरो एक वर्ष!

निताई—ओह! वा बातकूँ तो हम सब भूल ही गये हैं। वह तो कोई एक दुःस्वप्न हो नाथ!

महाप्रभु—नहीं श्रीपाद! वही तो परम मंगल स्वप्न है मेरे जीवन को-

पद (लावनी)—

मम जीवन को सुन्दर स्वप्न वही सुखकारी।
पल नहीं विसरूँ छिन छिन सुमरूँ हिरदै मझारी।।
सत्य सिद्ध कब होवैगो वह मंगलकारी।
सुमन कली ए खिलैगी भलो हरिरस दातारी।।
कल परभात मकर संक्रान्ति रवि उत्तराणयण।
करौं पयान निशि बनि 'प्रेम' संन्यासी नारायण।।

निताई—हा हा दीनबन्धो! बिन बादर बिजुरी न डरौ! बज्र न मारौ हाय रे क्रूर वाम विधि!

महाप्रभु—श्रीपाद आपकूँ एक कार्य करनौ परैगो।

निताई—करूँगो नाथ! आज्ञा करो।

महाप्रभु—कल रात्रि मैं गृह-त्याग करकै चल्यौ जाऊँगो। याकी सूचना पाँच जनेन कूँ दै दैनी परैगी।

निताई—कौन-कौन कूँ प्रभो?

महाप्रभु—माँ शची, मौसा चन्द्रशेखर आचार्य, ब्रह्मानन्द पुरी, मुकुन्द और गदाधर-इन पाँच जनेन कूँ। इनके अतिरिक्त छठौ न जानने पावै। सावधान!

निताई—(दीर्घ नि:श्वास त्याग) अति ही कठोर आज्ञा! पालन करनौ ही परैगो! करूँगो नाथ!

महाप्रभ—और कल दिन भर श्रीवास के गृह-आंगन मे मेरो अन्तिम संकीर्तन होयगौ। वर्ष भर के संकीर्तन-यज्ञ की पूर्णा-हूति परैगी। पश्चात् अवभृथ स्नान के निमित्त मैं कल रात्रि कूँ महा प्रस्थान कर जाऊँगो।

निताई—जैसी इच्छा! लीलामय सर्वेश। (पटाक्षेप)

विशेष दृष्टव्य—(झाँकी विष्णुप्रिया-गौर विराजमान कांचना सखी द्वारा आरती)

समाज धुन—

जय शचीनन्दन जय गौर हरी।
विष्णुप्रिया प्राणधन नदिया विहारी।।

हरिबोल।

इति आज्ञाग्रहण लीला सम्पूर्ण।

गृह-त्याग-लीला

(चौबीसवें वर्ष की)

मंगलाचरण—

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द।
जय जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्तवृन्द।।
जय जय शचिसुत गौरांगसुन्दर।
जय नित्यानन्द पद्मावतीर कुँवर।।
जय जय सीतानाथ अद्वैत गुंसाई।
जाहार कृपाते पाइ चैतन्य-निताई।।
जय जय गदाधर प्रेमेर सागर।
गौरांगेर प्रियोत्तम पंडित प्रवर।।
श्रीवास पंडित जय जय भक्तगण।
कृपा कोरि राखो निज चरण शरण।।
सबाकार पदरेणु शिरे रहु मोर।
जाहाँर प्रभावे नाशे कलि महा घोर।।

(प्रवेश मुकुन्द और गदाधर)

मुकुन्द—देखी गदाधर! प्रभु की अनोखी रीझ कूँ कि श्रीवास जी की दासी 'दुखी' की सेवा सों प्रसन्न हैकै वाको नाम तो 'सुखी' धर दियौ और दूसरी ओर स्वयं श्रीवास जी की वृद्धा सास कूँ जो छिप करकै संकीर्तन के दर्शन कर रही ही, वाकूँ पकरिकै बाहर निकसवाय दियौ।

गदाधर—तबही तो 'कृपा कृपण-गामिनी' कह्यौ जाय है, दीन के ऊपर ही कृपा होय है, अभिमानी के ऊपर नहीं। दुखिया दासी है दीन बनिकै सेवा में लगी रहै है। और श्रीवास जी की सास कूँ बड़ो अभिमान है कि मैं तो गृह-स्वामिनी हूँ, अधिकारिणी हूँ। बस याहि अभिमान के कारण वाकूँ नीचौ देखनौ परयौ एवं प्रभु-कृपा सों वंचित होनो परयौ।

मुकुन्द—सत्य है गदाधर! अहा—

बंगला (चै०भा०)—

श्रीवासेर दास दासी जाहा देखिलो।
शास्त्र पोढ़िया ओ ताहा केह ना जानिलो।।
मुरारि गुप्तेर दास जे प्रसाद पाइलो।
माथा मुड़ाइया ताहा ना केह देखिलो।।

कवित्त—

आँखिन सों देख्यौ जो, श्रीवास दास दासिन ने
पोथिन के पन्नान में, पंडित नहिं पायो है।
पायो प्रसाद मुरारि गुप्त के दासन ने जो
मूँड़हू मुड़ाय हाथ, काहु के न आयो है।
आयो है न ध्यान में न, ज्ञान में जन्म लाखलौं
हरिजन संग सोई, नाच खेल गायौ है।
गायो है संग महिमा, अद्‌भुत अमोघ 'प्रेम'
हरिजन संग सों ही, मरि मन भायो है।।
याको नाम है हरिजन संग की महिमा।

गदाधर—सत्य है मुकुन्द! श्रीवास जी के सम्बन्ध सों उनके घर के दास-दासिन ने ही नहीं, उनके घर के कूकर-बिलैया तक प्रभु की भक्ति पाय गये। वा दिना श्रीवास जी के ऊपर प्रसन्न हैकै प्रभु ने श्रीमुख सों यही आशीर्वाद दियौ हो कि-

बंगला (चै०भा०)—

विडाल कुकुर आदि तोमार बाडीर।
सबारे आमाते भक्ति होइवेक स्थिर।।

अर्थात् तुम्हारे घर के कुत्ता-बिल्ली, जीव-जन्तु सबन की मोमें निश्चल भक्ति होयगी।

मुकुन्द—भैया गदाधर! मोकूँ तो श्रीवास जी नारदजी जैसे लगै हैं। जैसे नारदजी वीणा बजाते, हरि गुण गाते भये त्रिलोकी में भक्ति को विस्तार करै हैं, वैसे ही श्रीवास जी हू नित्य अपने घर में प्रभु को संकीर्तन कराय कै जगत में कृष्णभक्ति को प्रचार कर रहे हैं। हमारे गौर सुन्दर प्रभु आज एक वर्ष सों नितप्रति रात्रि में श्रीवास गृहांगन में कलिपावन दिव्य संकीर्तन कर रहे हैं।

गदाधर—हाँ सखे! मेघ तो चार ही मास जल बरसावै है किन्तु—

कवित्त—

गौर घन संग जन, श्रीवास आंगन महँ
बारहों मास हरिनाम प्रेम झरलाई है।
ताको एक सीकर ही, बिखर्‌यौ नगर महँ
डगर डगर हरिधुनि, रही मधुर छाई है।
फैल परी महक दसों, दिशान में छाय गई
बाल वृद्धनर नारि, सबन मन भाई है।
वहाँ लूटैं 'प्रेम' यहाँ, जग कूँ लुटाय रहे
वहाँ वंशी धुनि यहाँ, हरि धुनि छाई है।।

निताई—(प्रवेश करते हुये) और अब अन्तर्द्धान की घड़ी आई है।

मुकुन्द-गदाधर—(चौंककर) अन्तर्द्धान! कैसो अन्तर्द्धान? कौन को अन्तर्द्धान श्रीपाद?

निताई—संकीर्तन रासबिहारी को, और कौन को?

गदाधर—(मर्माहत हो) हा हा श्रीपाद! साँची कहौ!

निताई—कह तो दीनी और कहा कहूँ। स्वयं प्रभु ने बारह महीना पहले तुम सबन सों जो कछु कहो हती, वाकूँ याद कर लेओ और अब वाके प्रत्यक्ष दर्शन के लिये प्रस्तुत है जाओ। आज माघ की मकर-संक्रान्ति है। आज को काल रात्रि कूँ ही अन्तर्द्धान लीला को अनुकरण होगयो।

मुकुन्द—(रोते हुये) तो हमहू उनको अनुसरण करेंगे। वे हमते छिपकै कहाँ जायँगे?

गदाधर—(रोते हुये) यहहू उनकी कृपा ही समझो जो हमकूँ सूचना मिल गई। अब जहाँ हमारे प्राणधन गौर जायँगे, वहीं हमहू जायँगे। कदापि नहीं छोड़ेंगे।

निताई—तो प्रस्तुत है जाओ। परन्तु और काहूकूँ घुणाक्षर मात्र हू खबर न हौंनी पावै। यह प्रभु की बड़ी कठोर आज्ञा है। सावधान रहनौ।

गदाधर—ऐसो ही होयगो। प्रभु या समय कहाँ है?

निताई—श्रीवास के घर में। वहाँ आज दिन भर अन्तिम संकीर्तन करैंगे। चलौ वहीं चलैं।

(तीनों का प्रस्थान)

समाज (दोहा)—

श्रीवास गृह आंगनहिं, लै प्रिय परिकर संग।
गौरचन्द्र अद्‌भुत करहिं, कीर्तन कौतुक रंग।।

(प्रवेश संकीर्तनकारी महाप्रभु एवं भक्त मंडली निताई, अद्वैत श्रीवास, हरिदास, गदाधर, मुरारी, मुकुन्द)

संकीर्तन-धुन—

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
यादव माधवाय केशवाय नमः।
गोविन्द गोपाल राम श्रीमधुसूदन।
(संकीर्तन करते-करते प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

समाज बंगला (चै०भा०)—

सेइ दिन प्रभु सर्व वैष्णव संगे।
सर्व दिन गोयाँलेन संकीर्तन रंगे।।

(दृश्य-गंगा का प्रवेश संकीर्तनकारी महाप्रभु आदि)

सब दिन कीर्तन रंग रचाये। संध्या समय गंगा तट धाये।।

(महाप्रभु आदि गंगा को पंचांग प्रणाम करते-आचमन लेते। उठकर धीरे-धीरे गंगा तट पर विचरते हैं)

देखत सहज गौर चलि जायँ। बहुविधि लीला करी जिन ठायँ।।
इहि बालक संग धूम मचाई। इहिं पूजा बहु छीन जु खाई।।
इहिं जल केलि नित प्रति कीन्हे। नर नारिनहिं सुख बहु दीन्हे।।

(धनु—गोविन्द गोपाल राम श्रीमधुसूदन०)

लक्ष्मी वाला पूजै इहिं पाँय। विष्णुप्रिया भेंटी इहि आय।।
छात्रन संग बहु विद्या विलासा। पंडित गर्व किये इहिं नासा।।
दिग्विजयी इहिं पराजय कीन्हे। जगाई-मधाई पाप इहिं लीन्हे
गोविन्द गोपाल, गोविन्द गोपाल०।।

धीर गम्भीर (श्री) गौरहरि, कीन्हे गंग प्रनाम।
पुनि पग धारे भवन निज, गूढ़ भाव को जान।।
गोविन्द गोपाल, गोविन्द गोपाल

(कीर्तन करते-करते प्रस्थान। पटाक्षेप)

(पर्दा खुलता। महाप्रभु-भवन। महाप्रभु एवं पूर्वोक्त समस्त
भक्तजन विराजमान)

करत गृह विश्राम, चहुँ ओर निज भक्त बहु।
हेरत मुख सुखधाम, भूलि रहै सुख दुख सबहि।।
गौर दयालु दया उमगाई। लैहौं नगर वासिनहु बुलाई।।
शेष दरस सबकूँ दै जाऊँ। तब नटनागर रूप दुराऊँ।।
अस विचारि जन जन आकर्षहिं।
नदियावासी उमड़ि चली आवहिं।।

(दृष्टवय : अनुकरण—अगली चौपाइयों के अनुसार)

प्रीति भेंट लै लै निज आवहिं। दरस परस करि नैन सिरावहिं।।
कोई सुगन्ध तन सुन्दर लेपहिं। कोई लै वसन माल धरावहिं।।
कोई कहैं हम माखन लाये। कोई मलाइ मोदकहिं चढ़ायें।।
कोई कहैं यह दूधहिं लीजै। दूध न पीऊँ असीस अस दीजै।।
कोई पग परि रज मस्तक लावैं। भव तरिवे को उपाय सुधावै।।
प्रीति रीति आदर प्रभु दैहीं। मान प्रसाद दै दै संतोषहीं।।

महाप्रभु—

मोपै प्रीति तुम्हारी साँची। राम कृष्ण भजिहौं दिन राती।।
सबमिलि कीर्तन करिहौं भाई। यही कलि महँ भव तरन उपाई।।
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

गाना-भैरवी—

कलि काल में हरिनाम रूप में कृष्ण का अवतार है।
नाम ही से विश्व भर का सहज में उद्धार है।।१।।
नाम हरि, हरिनाम हरि, हरिनाम हरि ही सार है।
ज्ञान योग तप क्रिया जप, कलि में सब निस्सार है।।२।।
नहीं है नही है नहीं है, कलि में और कोउ आधार है।
यह सत्य सत्य मैं सत्य कहता, टेरि बारम्बार है।।३।।

अतएव आओ सब मिलिकै प्रेम सो कीर्तन करै—
हरे कृष्ण हरे कृष्ण०। हरे राम हरे राम०।।

समाज—

या विधि हरि कीर्तन जु करावहि।
दस जावहि जन बीसन आवहिं।।
श्रीधर विप्र भक्तहू आये। 'राम कृष्ण हरि' टेरि सुनाये।।

श्रीधर—(प्रवेश—हाथ में एक लौकी फल (घीया) द्वार पर खड़े हो) राम कृष्ण गौरहरि बोल!

समाज—

श्रीधर ठाड़ौ देखै गौरा। बोलत मधुर 'आऔ ठौरा'।।

महाप्रभु—

बन्धु मेरे तुम हृदय मणी हो। कंठहार तुम कृष्ण धनी हो।।
दूर काहे ठाड़े हो भाई। भय संकोच तजौ कदराई।।

समाज—

आओ आओ कहैं इत श्रीधर।
उत लाऊँ सिर धर नाचत श्रीधर।।
भक्त प्रिय प्रभु आपहि धाये। गहि कर हित सों भीतर लाये।।
निकट बैठारि नेह भरि बोले। दीनबन्धुहिं दीन ही मौले।।

महाप्रभु (विहाग)—

तुमही सों ठकुराई मेरी।
तुमही मेरे साँचे बन्धु, तुमही बजाई मेरी भेरी।।१
तुम्हारो ही प्रेम अहार है मेरो, तुमही सों है लीला मेरी।
बड़े-बड़े सब बोरैं मोकूँ, तुमही राखौ लज्जा मेरी।।२
तुम तो लीर चीर तन पहनौ, मोकूँ सजायो वसन नयेरी।
तुम तो रूखे सूखे खाओ, मोकूँ खवाओ भागहिं ढेरी।।३
दिये लेत नहीं लोक सम्पदा, सुख मानौ सेवा में मेरी।
तुम सम तुम ही प्यारे मेरे, हृदय प्रान आतमा मेरी।।४
विनती इक सुनौ अब नितही, माता ढिंग अइयौ इकबेरी।
नगर हाट जो मैं नहीं आऊँ, घर दै जैयो दरसन फेरी।।५

समाज—

भक्त सरल उत कपट शिरोमणि,
समझि सक्यौ ना बात हरेरी।
जो आज्ञा कहि शीश नमायो, वचन वदत पुनि प्रेम भरेरी।।

श्रीधर (कवित्त)—

तत्त्वमणि वेदन के, केश शेष ध्यानमणि
भक्तन उर शीशमणि, चिन्तामणि कहाओ हो।
तुम्हारी ठकुराई भानु शशि गाय रहै
सोइ तुम गरीबन के साग पात खाओ हो।
बरोबर में ही बैर ब्याह नेह जग करै
तुमरी तो रीति उल्टी, दीन गरे लाओ हो।
तीन लोकनाथ मायानाथ नाथ तौहु
दीनानाथ नाम ऊपर रीझ 'प्रेम' जाओ हो।।

अतएव हे दीनबन्धो! दीन की यह तुच्छ भेंट स्वीकार की जावै (घीया भेंट करके चरण पकड़ना)

समाज—

अस कहि लाऊ धयौं प्रभु आगे। परी चरनन रोवत रति पागे।।
शुद्ध भाव इक छिन को भाई। मुक्ति सुबहू तुच्छ है ज ई।।
कहहीं शुभयात्रा महँ कोई। दरसन लाऊँ अमंगल होई।।
भक्तन छल शुभ अशुभ न सानैं। भक्त भेंट सब प्यारी ठानैं।।
इकजन दूध भेंट ले आयौ। गौरचन्द्र मन मोद बढ़ायौ।।

महाप्रभु—

कहत शुद्ध यह वस्तु होई। होवै शुद्ध जो खावै कोई।।
मातहिं दै कहैं खीर बनावहु। कृष्णहिं अरपि प्रसाद लै आवहु।।
हम सब मिलि प्रसाद सो लैहैं। ऐसो समय फेर कब पैहैं।।
आओ हिलिमिलि हरि जस गावैं।
खोलि प्रान हरिजू कूँ बुलावैं।।

(माता खीर बनाने जाती हैं। महाप्रभु कीर्तन करते हैं)

महाप्रभु (पद-दरबारी का०)—

हरि ओ राम राम, हरि ओ राम।।टेक।।
मंगल मंगल श्रीहरिनाम, ब्रह्मस्वरूप श्रीहरिनाम।
पतित पावन श्रीहरिनाम, कलियुग साधन श्रीहरिनाम।

राम तो गुप्त हैं प्रगट है नाम, हरि ओ राम राम०।।१
जोइ कृष्ण सोइ कृष्ण नाम, एक अभेद नामी नाम।
तौऊ कृष्ण सों बड़ो है नाम,

कृष्ण तो गयौ तजि तज्यौ नहीं नाम।
बन्धु नित्य ऐसो यह नाम, हरि ओ राम राम०।।२
शोक मोह सब नाशक नाम, ताप पाप सब ग्रासक नाम।
जीव स्वरूप विकासक नाम, कृष्णस्वरूप प्रकाशक नाम।

आदि मध्य अन्त यही नाम, हरि ओ राम राम०।।३
भोग वासना जारक नाम, मुक्ति वासना मारक नाम।
'प्रेम' वासना कारक नाम, तीन लोक सब तारक नाम।
ऐसो परमोपकारक नाम, हरि ओ राम राम०।।४

समाज (दोहा)—

संकीर्तन-विश्राम दै, करत गौर विश्राम।
जन चकोर चितवत सबै, वदन चन्द ललाम।।

आईं मात शची तहँ, लै प्रसाद पकवान विविध।
बाँटत गौर सब कहँ, पात प्रसंसत सुधा कहि।।

लाऊँ खीर पुनि पाछे जाई। श्रीधर वस्तु प्रभु सुखदाई।।

महाप्रभु—

माँ देओ बाँटि तुम भक्तन ठाँई। पाछे पुनि हौं लैहौं माई।।
(माता खीर सबको बाँटती है पर कोई खाता नहीं)

समाज—

भक्त सकल मुख देयँ न कौरा। मात कहति तुम पावहु गौरा।।
आज्ञा मान खीर प्रभु लीन्हे। बारंबार प्रशंसा कीन्हे।।

महाप्रभु (सवैया)—

यह दूध ओ लाऊँ में श्रीधर के, सुस्वाद कहाँ सों आयो है।
यह महकहू मनहिं मत्त करै, नहिं ऐसो कबहु पायो है।
मैं साँची कहूँ नहिं संशय कछु, श्रीकृष्ण ने भोग लगायो है।
गोलोक को स्वाद तबही तो 'प्रेम', श्रीधरके लाऊँ में आयो है।

श्रीधर की जय हो। श्रीधर के प्रसाद की जय हो।

समाज—

असकहि प्रभु खीरहिं पाये। दियो प्रसाद श्रीधर मन भाये।।
श्रीधर पावै तन पुलकावै। नेह नीर नैनन झलकावै।।
अंचवन करि प्रभु बीरा लीनी। जन जन निज प्रसादी दीनी।।
पान प्रसादी माला चन्दन। अर्पत भक्तन देत आलिंगन।।

महाप्रभु—प्रिय बन्धुओ! तुम सबन सों बार-बार यही एक प्रार्थना है—

रंचक प्रेम जो मोंसो होई। कृष्ण कृष्ण गैहौ सब कोई।।

समाज—

अस कहि प्रभु जन बन मिलि भेंटहिं।
हृदय लाय हरि प्रेम समर्थहिं।।

करि करि पद प्रनाम, विदा भये सब मगन मन।
गौरहू करुणा धाम, भये अक्रूर सौंक्रूर अति।।

भक्त गये सब निज निज धामा। आये गौर मात शचि ठामा।।
गूढ़ भाव धरि कीन्ह प्रणामा। दीन्ह असीस को पूरन कामा।।

शची—तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होवै वत्स!

समाज (पद-सोरठ)—

सुनि असीस चल समीर, अचल भयो गति विहीन।
नीरव भयो गंग नीर, दिग्मंडल अति मलीन।।
वन शोभा शीर्ण भई, पुष्प पत्र रस विहीन।
असीस प्रेम 'कुलिश' भयो, मात लाल विदा दीन।।

मात न अशुभ कुलच्छन समुझहिं।
आदर नेह सहित हित बोलहिं।।

शची—

सुखमयी शर्वरी बीती जाई। जाओ तात करो शयन सुहाई।।
कीर्तन श्रमहिं मिटाओ जाई। करैं तिहारी कृष्ण सहाई।।

(दोनों का दो ओर से प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

(पर्दा खुलता है। विष्णुप्रिया बैठी है। शचि का प्रवेश)

समाज—

पुनि माता वधू ढिंग जाई। हृदय लाय हित बात सुनाई।।

शची—

श्रमित थकित अति मेरो निमाई। मेटहु श्रम सेवहु पद जाई।।

(दोनों का दो ओर से प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

(प्रवेश महाप्रभु)

महाप्रभु—ओह! मेरे समान निर्मम निष्ठुर और कौन होयगो! परन्तु संन्यास-यज्ञ को अनुष्ठान तो करनो ही परैगो, नहीं तो लोक-कल्याण कैसे होयगो। या यज्ञ में तीन प्राणिन की पूर्णाहूति दैनी ही परैगी-माता की, विष्णुप्रिया की और अपनी। तबही यह यज्ञ पूर्ण होयगो। हम तीनन कूँ जरनौ की परैगो तबही संसार शीतल है सकैगो। मैंने माता सों कही ही कि मैं कछु बिना घर ही में रहूँगो सो मैं अपनौ वचन पूरो कर चुक्यौ एक वर्ष और घर में रह लियौ। भक्तमंडलों के संगहू अन्तिम संकीर्तन कर लियो नदिया वासिन सों हू विदाई लै लीनी। अब विष्णुप्रिया के समीप चलकै नेक हास-परिहास कर लऊँ कारण कि—

गाना (वागेश्वरी-दादरा)—

सब खेल खेल ही में, एक खेल और खेलूँ।
उड़ने से पहले फिर भी एक खेल और खेलूँ।।
विष्णुप्रिया से हंसकर उसको हँसता जाऊँ।
वैराग में भा फाग यह खेल और खेलूँ।।
वियोग विष से पहले, पीयूष प्रेम पिलादूँ।
प्राणों की रक्षा होवै, यह खेल और खेलूँ।।

जाते जाते अपनी, छवि रस भरी दे जाऊँ।
प्रेम-चित्र खींच जाऊँ, यह खेल और खेलूँ।।
सहारा बस विरह में, प्यारे की प्यारी बातें।
दे जाऊँ वहीं सहारा, यह खेल और खेलूँ।।

(गाते-गाते प्रस्थान)

(पर्दा खुलता है। विष्णुप्रिया अपना श्रृंगार कर रही हैं)

समाज (पद-खमाज-४ ताल)—

गौर प्रिया विष्णुप्रिया, करत सिंगार हुलसि हिया।।
गौर घन की चातकी, जोवति मग दिवा निशि, (शी)
पायो ना प्रेम पाय, पिया।।

विष्णुप्रिया—

दया करौ देव अबला जन, मंगल राखहु प्रानधन।
नैन तारा हिय मणि पिया।।

(श्रृंगार कर थाल में पीताम्बर, पुष्पमाल, पान, सुगन्ध नीचे लिखे फूलन के भूषण लेकर धीरे-धीरे चलती हैं)

समाज कवित्त—

फूल फूल हार फूल, बन्धनी सिंगार फूल
कंकण सुढार भार, थार भरि साज चलीं।
बीरी लवंग तमोल, चोआ चन्दन सुरोल
पीत वसन अमोल, सौंज सेवा की भली।।
सनातन कन्या अनन्या, गौरप्रिया जु धन्या
उमा रमा अनुसूया, सावित्रि लागैं अली।
रूप भरीं गुनन भरी, भाग 'प्रेम' गर्व भरी
पति सेवा मूरतिरी, पति पद ढिंग चली।।

(पर्दा खुलता है। शयनागार। महाप्रभु शय्या पर बैठे हैं)

(प्रवेश विष्णुप्रिया)

महाप्रभु—(उठकर आगे बढ़ विष्णुप्रिया का हाथ पकड़) आओ प्रिये! बैठो! मैं कब सों तुम्हारी बाट देख रह्यो हो।

(शय्या पर अपने वाम भाग में बैठते हैं)

विष्णुप्रिया—(थाल को मेज पर रख बैठ जाती हैं)

महाप्रभु—मैंने बैठे-बैठे तुम्हारे ऊपर एक गीत बनायो है। कैसो बन्यो है, सुनौ तो सही।

पद (केदारा-३)—

तुमही हो मेरे जीवनमणि, प्रिये।
दीन भवन की दीपकमणि तुम, मम मानस चिन्तामणि।।१
तुम श्री तुम यश तुम विद्या हो, तुमही हो मम कंठमणि।
तुम वैकुण्ठ गोलोक तुम मेरे, तुमही सों मैं विश्व धनीं।।२
तुमही सों सब साज है मेरो, तुमकूँ मोसों न सुख कनी।
निज गुनसों छमहु दयामयी, तुमसीं तुम हो 'प्रेम' मणी।।३

समाज (दोहा)—

सरस सुहाग वचन सुनि, परस दिव्य तन पाय।
सुख समुद्र समाई प्रिया, भाव विविध लहराय।।
अश्रु पुलक तन कम्पवश, रहीं ढरकिं पिय गात।
पुनि सम्हरि गद्‌गद् वदन, दुख सुखमयी निज बात।।

विष्णुप्रिया (चौ०-बसन्त-केहरवा)—

कहा कहूँ कछु जानहुँ नाहिं। तुम मम प्रान मति गति जु सहाई।।
मो सम कौन सौभागिनी होई। अभागिनी हू मो सम नहिं कोई।।
सुख को अंक लिख्यो नहिं भाला। पति सेवा सो वंचित वाला।।
सुख मध्य हू सुख नहीं हिया। भय संशय वश काँपत जिया।।

महाप्रभु—क्यों, भय संशय की ऐसी कहा बात है?

विष्णुप्रिया—

भोर आज घटी जो घटना। सुध आवत काँपत तन वदना।।

मात सहित जब जाय रही, गंगा न्हावत प्रात।
दाँये पग पाहन लग्यौ, निकस्यौ लोहु गात।।

तेहि छिन फरकी दाँई आँख। दाँयों अंग जु दाँयों हाथ।।
पुनि जल धसत खसी नकबेर। डारपै पंछी बोल्यो भयंकर।।
काँपि उठे तन मन सब थरथर। ढूँढी बहुत पाई ना बेसर।।
कही ना मात सों होंति दुखारी। धँसि चिन्ता उर अन्तर भारी।।
ये लच्छन सब अशुभ ही कहिये। रक्षा नाथ! मम रक्षा करिये।।
इक तुमही मो आँचर के धन। राखौ नित नित निज ढिंग चरन।।

(चरण पकड़ क्रन्दन)

समाज—

सुनि प्रिया वचन समुझि सब जाने।
अभय हस्त प्रिया शीश फिराने।।
चतुर शिरोमणि बात बनाई। सहजहिं सरला वाला भुलाई।।

महाप्रभु—

बात तुच्छ चिन्ता अति भारी। दुक्ख वृथा देहु धोखहिं टारी।।

देखो प्रिये! पाँव में चोट लगनी ही सो लग गई नकबेसर खोमनी ही सो खोय गई। और अंग तो वायु के कारण फरक्यौ ही करै है—कभु दाँयों फरकै है तो कभु बाँयो। और पंछी हू बोल्यौ ही करैं है—कोई मधुरबोलैं है कोई भयंकर! अपनो-अपनो स्वभाव है। इनके संग हमारे सुख दुःख को भलो कहा सम्बन्ध है शुभाशुभ तो जो कछु होनी होय है सो तो हैकै ही रहै है यासों-

वृथा चिन्ता दूर करौ, इनसों बाढ़ै अशान्ति।
कृष्ण चरन सुमिरन करौ, दूर होय सब भ्रांति।।

देखौ आजही तो श्रीकृष्ण कृपा सों चिरकाल की मेरी—

दादरा—

आशा कली आज मेरी फूलने ही वाली है।
कलियाँ सब चटक रहीं रोम रोम डाली है।।
आओ प्रिये! गूँथे माला प्रेम की निराली है।
पूजेंगे देव साजो अब पूजा, की थाली है।।

विष्णुप्रिया—कैसी पूजा? और कौन-से देवता की पूजा नाथ?

महाप्रभु—पहले पान तो खवाओ प्रिये! और ये सब पुष्पन के हार सिंगार ऐसे ही धरे रहेंगे कहा?

समाज (दोहा)—

तब सुधि आई सेवा की, दुःख सब गयो पलाय।
हिय हुलास सलज्ज तन, दियो पान खवाय।।
भाल तिलक केसर मन रंजन। चोआ चन्दन चर्च्यौ अंगन।।
कुंचित कुन्तल केशन ऊपर। लर कुसुमन बन्धनी सुघर वर।।
वक्षस्थल कंचन सुविशाला। दीन्ही बहुलर सुमनन माला।।

फूलन अंगद फूलन कंकन। फूल पहनाये फूलन भूषन।।
पुष्पांजली पद कमलन अरपी। कंठ वसन मस्तक धरि परसी।।

महाप्रभु—

उमगि उठाय बोले प्रभु, मेरी हू पूजौ साथ।
लीन्हे तुम जो सजाय मैं, तुमही सजाऊँ आज।।

समाज—

विष्णुप्रिया निज विष्णु के, किये सकल सिंगार।
विष्णु हू विष्णुप्रिया, सजवत मोहिनी नार।।
वाम हस्तन धरि मुख इन्दु। दिये कपोलन मृगमद बिन्दु।।
चिबुक बिन्दु पुनि आँखिन आँजै। सेंदुर सीथी जगमग राजै।।
चन्दन अंग सुगन्ध जु दीनी। शीश फूल गुही चोटी कीनी।।
कुसूम हार कलिहार सजाये। गृहदेवी वनदेवी सजाये।।
मुख सम्मुख दर्पण दिखराये। हँसि हँसि बूझत कैसो सजाये।।

महाप्रभु—(दर्पण दिखाते हुये) देखो प्रिये! सुन्दर भयो कै नहीं?

विष्णुप्रिया—(दर्पण देखती हुई) अहा! अहा बड़ो ही सुन्दर सिंगार कियौ है। मैं तो तुमकूँ केवल विद्याचार्य और कीर्तनाचार्य ही समझती रही परन्तु तुम तो कला कोविदाचार्य हू निकसे! धन्य है!

महाप्रभु—प्रिये! अब मैं तुम्हारी या शोभा के ऊपर एक गीत सुनाऊँ हूँ!

विष्णुप्रिया—प्राणनाथ! आज तुम इतने चंचल, इतने मुखर कैसे हो गये हो? यह विपरीतता मोकूँ भावै नहीं है! तुम्हारी बात न जानै क्यूँ मोकूँ नकल-सी लगै है— साँच बिना की पोली-पोली, रस बिना की फीकी-फीकी! बोलौ नाथ! बोलौ न, चुप कैसे हो गये! आज यह कहा नयो रंग-ढंग है? हैं! यह मेरी दाहिनी आँख फिर फरकी! दाहिनी भुजा हू फरकी। ओह! यह उरु (उल्लू) बाहर बोल्यौ! कैसो भयंकर बोलै है! मोकूँ तो बड़ो भय होय है! करेजो काँपै है! यह कहा होनी है! बचाओ नाथ! बचाओ! रक्षा करौ (महाप्रभु के ऊपर ढुलक पड़ती हैं)

महाप्रभु—(शीश पर हाथ फेरते हुये) कोई भय की बात नहीं है प्रिये! इन तुम्हारी आँखिन में नींद आय रही है। आओ सोयें!

विष्णुप्रिया—(सावधान बैठती हुई) ना ना! मैं नहीं सोऊँगी हृदय धड़धड़ कर रह्यौ है! यह कहा बात है।

महाप्रभु—देखौ प्रिये! आधी रात बीत गई! तुम सोय जाओगी तो शरीर सब ठीक है जायगो! आओ! सोयें! (स्वगत) आओ योगनिद्रे! भुवन-मोहिनी! आओ!

(विष्णुप्रिया लुढ़क पड़ती हैं। स्वयं भी लेट जाते हैं)

(पटाक्षेप)

समाज (दोहा)—

छल बल ईश्वरताई करि, दियौ अबलाहिं सुवाय।
आपहु तेहि छिन पौढ़ि रहे, लीला जानि न जाय।।

(पर्दा खुलता है। युगल की शयन-झाँकी)

योगमाया—(प्रवेश योगमाया। पीत शृंगार। हाथ में लघु वेत्र)

पद (सौरठ-जेजैवन्ती ४ ताल)—

गगन धरन छाय रह्यौ, क्रन्दन जीव हाहाकार।
माया मुग्ध जीव भ्रमत, घोर तम अन्धकार।।
पकरि कर को लै जाय, नयन जल को पोंछे आय।
पापी तापी कंठ लाय, ऐसो आन को उदार।।
तुम आये सजि राधाबरन, राधारिनसों हों न उरिन।
राधा प्रेम पदाधीन, चलौ तजि गृह-द्वार।।
जाय राधा प्रेम लुटाओ, राधाप्रेम में जंग डुबाओ।
राधा प्रेम महिमा गाओ, नचाओ प्रेम संसार।।

उठो नाथ उठो! या कार्य के निमित्त आप गोलोक धाम सों अवतीर्ण भये हो, वा कार्य कूँ सम्हारो। जागौ अपनी लीला में जागौ। संन्यास लीला को अवसर प्राप्त भयो है। यासों मो लीला-दासी योगमाया कूँ कृतार्थ करौ—

चलौ तजि गृह द्वार, चलौ तजि०।।

(गाती हुई परिक्रमा देती हुई प्रस्थान)

समाज (दोहा)—

दु:ख विभोर में भोर मन, आई निद्रा घोर।
तन पट हौरे टारिकै, उठै विश्वम्भर गौर।।
निज करसों लै प्रिया कर, शनै शनै जु उठाय।
तकिया तूलिकान पै, दियौ सहज पधराय।।

हौरे हौरे तजि पर्यक, रहै भूमि पै आय।
हिय कठोर पिघलत नहीं, 'प्रेम' नैन चुचाय।।

महाप्रभु—(पलंग से उतर नीचे खड़े हो) बस अब विलम्ब क्यों बहुत सह्यौ अब नहीं! चारों ओर घोर निशा छाय रही है। जगत-जीव सब सोय रहे हैं। जाऊँ, जगाय कै पथ पै चलाऊँ। (विष्णुप्रिया की ओर दृष्टि करते हुये) एक दिन धर्म कूँ साक्षी राखिकै मैंने तुम्हारो पाणिग्रहण कियौ हो। आज पुनः तुमकूँ धर्म ही के हाथन सौंपे जाऊँ हूँ। सोओ विष्णुप्रिये! सोओ, धर्म की गोदी में सोओ! प्रेम की गोदी में सोओ और सोवौ सदा अपने विष्णु कि गोदी में सोओ (वस्त्र- अलंकार उतारते हुये गाते जाते हैं)

गाना (विहाग-३)—

विदाई विदाई प्रिये शेष विदाई, विदाई विदाई विदाई।
जीवन जनम जबलौं तबलौं, तुमसों मिलन अब नाँई।।टेक।।
रोओ रोओ विष्णुप्रिया, रोवैगो सब जगत जिया।
पाप ताप सकल हिया, दैहै नयन जल बहाई।।२।।

(भीतर दूसरी ओर देखते हुये)

विदाई विदाई शची माई, विदाई विदाई गंगे माई।
जननी जन्मभूमि विदाई, नदियावासी सकल विदाई।।३।।
जोरि हाथ शीश नाऊँ, देहु असीस प्रेम पाऊँ।
श्याम वंशी बाजे माई, घर कोने रह्यौ ना जाई।।४।।
रह्यौ ना जाई, रह्यौ न जाई।

(गाते-गाते तेजी से निकल जाते हैं)

समाज (चौपाई)—

छिन महँ निकसि गये घर बाहर।
भये त्यागी आज नट नागर।।
बरस चौबीस जहँ लीला कीनी।
पाव पलक सो तजि गृह दोनी।।

माघ मास शीत निशि भारी। ओढि वस्त्र सोवैं नर नारी।।
पग नाँगे पट एकही धारी। रोवत जात कोई प्रेम भिखारी।।
शीत कहौ तन कैसे व्यापै। राधारिन की आँच तो तापँ।।
बेगि बस्ती तजि गंगा धाये।

(दृश्य गंगा-प्रवेश महाप्रभु दौड़ते हुये)

बेगि बस्ती तजि गंगा धाये! कूदि परै राधा मुख गाये।।
राधा भाव महाबल बलिया। पैरत पार लगै तट कुलिया।।
(पटाक्षेप। महाप्रभु प्रवेश कर दौड़ते हुये
'हा राधा' कहते हुये निकल जाते हैं)

समाज (चौपाई) —

भीजे वसन जल केशन टपकत। भीजे नयन नेह जल बरसत।।
भीतर रिन को भार जो भारी। बाहर उठाय भुजान पुकारी।।

महाप्रभु — (प्रवेश)

कालिंगड़ा-केहरवा) —

राधे प्रेममयी तुवकिंकर, चल्यौ आज तिहारे पथ पर।
राधे राधे अब करौ मोहि ऋन सों मोंचन।
बाढ़त बाढ़त ढाँप लियो तन, कर दियौ मोहिं गौर बरन।।राधे०
शोधन आयो शोधि न पायो, सोच यही बाढ़ै मेरे ऋन।
अब तुम्हारे पथ त्यागिपै चलि कछु, घटेतो घटे कहूँ इककन।।राधे०
तन मन तो तुम्हारो ही आगे-राधे............प्राण राधे।
तन मन तो तुम्हारो ही आगे, कहा करौं अब तुव अर्पन।
जमो अपराध, गहौ मम हाथ चितवो नेक करुणानयन।।राधे०
उज्जवल करो मम पंथकरि उदय, उज्जवल तुव चन्द वदन।
तव गुन नाम 'प्रेम' की दुदुभि घोषा करूँ अब त्रिभुवन।
राधे-राधे! जय राधे प्राण राधे!

(गाते-गाते निकल जाते हैं। पटाक्षेप)

(पर्दा खुलता है। दृश्य-शयनागार। विष्णुप्रिया शयन कर रही हैं।
महाप्रभु के वस्त्राभूषण भूमि पर बिखरे पड़े हैं।

समाज (दोहा) —

इत नवद्वीप नगर महँ, गौर शयन आगार।
जानति नहीं विष्णुप्रिया, सोवत नींद अपार।।

लखि मधुर सुख स्वप्न, चाहत बाहु बाँधन पिया।
बाहु बढ़ावत भरन, साध विधाता बाध दियो।।

वाहु बढ़ावत परस न पाये। चमकि उठीं बीछू जिमि खाये।।

विष्णुप्रिया—

लै गयो कौन हरि चितचोर। साँची किधौं मम निद्रा घोर।।
टेरित नाथ नाथ! कित धाये। सोवत्ति अबला छाँड़ि सिधाये।।
कहाँ गयी मेरी जीवन ज्योति। भाग सुहाग हृदयमणि मोती।।

समाज—

सुनै कौन अब अबला बानी। दौरि द्वार धाई अकुलानी।।
द्वार खुलै पंछी कहूँ नाहीं। विकल उलटि मात ढिंग धाईं।।

विष्णुप्रिया—

माँ माँ! उठो! खुलैं हैं द्वार। वे नाहीं इकली नार।।
(प्रवेश शची माता)

समाज—

सुनि क्रन्दन शची उठि आई। रोवति काहे कहाँ निमाई।।
वे नाहिं घर कही अकुलाई। गिरति धरनि मातहिं सम्हराई।।

विष्णुप्रिया—

दै आदर मोहिं छलि गये नाथा। प्राण अछत मैं मारी माता।।
प्रान जात मेरे नाथ मिलाओ। मरती कूँ कोई आनि जिवाऔ।।
(भूमि-पतन। पटाक्षेप)

शची—(निकलती है) निमाई! वत्स निमाई! अरे कहाँ है तू! कहा चल्यौ गयो! अरे निमाई! बेटा!

(पुकारती-रोती बाहर चली जाती। पटाक्षेप)

समाज—

सुनि समुझि शची बौराई। ढूँढत टेरत फिरत निमाई।।

शची—(नेपथ्य में—विलाप करती हुई)

कभू भवन कभू आँगन धावै। निमाई निमाई टेर मचावै।।
जाग्यौ ईशान सोवत घर बाहर। जागै परोसी सकल नारी नर।।
निकसि मात गलिन महँ टेरै। कहाँ निमाई कितहु कोई हेरे।।
(पर्दा खुलता है। वहीं शयनागार। वस्त्राभूषण वैसेई पड़े हैं
विष्णुप्रिया सखी कांचना की गोदी में सिर रखे पड़ी हुई)

विष्णुप्रिया—(विलाप-गान-सोहनी-केहरवा)—

हा हा! हर हर सर्वस्व मेरे, चले गये कंगालिनी करकै।
घर घर जन जन सुक्ख करन कूँ, लै गये सुक्ख मेरो हरके।।१
निभ गई बाती सुख की, जीवन अन्ध बिन ज्योति की।
ना पिय ऐहैं ज्योति ना जरिहै, रहूँ अकेली आँधरी बनके।।
यह दुखदान मेरो शिर भूषन, करावै पल पल तुम्हारो सुमरन।
जपि जपि नाम 'प्रेम' प्रभु को, जीऊँगी मूरति पिय उर धरिके
हा प्राणधन! प्राण जायँ हैं! कहाँ हो नाथ! (पटाक्षेप)

(पर्दा खुलता है)

महाप्रभु—(एक वृक्ष के सहारे चरण पसारे बैठे हैं-शिथिल तन-निमीलित नयन)

समाज (आरती धुन)—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रेम वैरागी।
राधाभाव रस सुख अनुरागी।।
हरिबोल!
इति गृह-त्याग-लीला सम्पूर्ण।

संन्यास लहरी **प्रथम कणामृत**

संन्यास-लीला-ग्रहण

मंगलाचरण—

प्रवाहैरश्रुणां नवजलदकोटि इव दृशो-
र्दधानं प्रेमर्द्धया परमपदकोटि प्रहसनम्।
वमन्तं माधुर्यैरमृतनिधि कोटिरिव तनु-
च्छटाभिस्तं वन्दे हरिमहह संन्यास कपटम्।।

ध्रुवपद—

जयति जयति जयति कपट संन्यास धारी ।।टेक।।
नव जलधर शतशत सम, बरसत नयन झर झर मम।
सम्पद प्रेम पद परम, कोटि तुच्छकारी।।१।।
तन लावन्य झलमलत, माधुरी नव नव उलहत।
सुधासिन्धु कोटि बहत, अनुपम मनोहारी।।२।।

नख चन्द्रन लखत जाके, नभ चन्द्रहू मलिन लाजे।
जगत दुक्ख मोचन काजे, सजे 'प्रेम' भिखारी।।

माघ मास संक्रान्त की, पहर तीसरी रात।
घर तजि आये गंगा तट, काहू न जाने जात।।
परत शीत व्यारी चलत, बहत वारि हिमधार।
कृष्ण विरहतापित तनु, कूदि गये वा पार।।
अजहु 'निर्दई घाट' कहि बोलत हैं नदियाजन।
किये जु बारह बाट, नदिया प्राण निमाई कहँ।।

(पर्दा खुलता है। गंगा-तट। वृक्ष तले महाप्रभु आसीन।
विरह-शोक-विह्वल)

समाज—

कंटक नगर इक वृक्ष मनोहर। सुरधुनि तीरे छाया सुन्दर।।
तरुतर राजत गौरा सुन्दर। कांचन कान्ति दीप्त कलेवर।।
विरह विकल तन सुध विसराई। गावत कृष्णहिं नयन बहाई।।

महाप्रभु (लावनी) —

नयन मनमोहन प्राणाराम।
मेरी सुध लीजो हे घनश्याम।।

विरह आँच बाढ़ी अती, तन मन जर जर जाय।
मुख रसघन दरसाय कै, नेंह मेंह बरसाय।
हाय! नहिं टेरि सकौं ले नाम ।। मेरी०
आय घाट औघट परी, बाट सबै छिटकाय।
मोरि मुख सब ओर ते, जोयौ तोसों ही आय।।
हाय! मुख मोते मत मेरे प्रान।। मेरी०
नैन दुखी तुब दरस कूँ, देत छिन ही छिन रोय।
नैनन के दु:ख हरन कूँ, तुम बिन और न कोय।
हाय! छिप गये कहाँ चाँद।। मेरी०

समाज—

नर नारी न्हावन बहु आवैं। रूप वयस लखि लखि दुख पावैं।।
नहिं पहचानैं बहु अनुमानैं। भाँति भाँति कहि कहि समुझावैं।।
(प्रवेश तीन ग्रामवासी-प्रौढ़ अवस्था)

ग्रामवासी १—अरे भाई! तुम क्यों रोय रहै हो? कौन हो? कहाँ ते आयो हो।

ग्रामवासी २—गीले वस्त्र यहाँ कैसे बैठे हो? कहा गंगा तैर करके आये।

ग्रामवासी ३—भैयाओ! यह तो कछुई नहीं बोलै है। केवल कृष्ण-कृष्ण कहवै रोवै है। कोई विरही भक्त है। अरे भैया! तुम घर-वार छोड़कै तो नहीं आये? कहा तीव्र वैराग की लहर उठी है?

ग्रामवासी १—प्रिय युवक! यह वैराग्य की घाटी बड़ी दुर्गम है।

चलन चलन सब कोई कहै, विरला पहुँचे कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्गम घाटी देय।।
नारायण घाटी कठिन, जहँ प्रेम को धाम।
विकल मूर्च्छा सिसकनो, ये मग के विश्राम।।

बड़े बूढ़े हू या घाटी पै आयकै फिसल परैं हैं। औंधे गिरैं हैं। तामें तुम तो नवयुवक ही हो। यासों घर में ही रहकै वैरागी बनो। कृष्ण भजो। यही निरापद मार्ग है।

ग्रामवासी २—हाँ भैया! आगे-पिछे दूर तक को विचार करकै कदम उठामनो चाहिये। आवेश में आयकै उतावली करवे सों काम को काम बिगरै है और जगत् में हाँसी न्यारी होय है। शास्त्र कहै हैं कि—

शनैः पंथा शनैः कंथा शनैः पर्वतोल्लंघनम्।
शनैर्विद्या शनैर्वित्तं पंचौतानि शनैः शनैः।।

मार्ग धीरे-धीरे ही पार करै, गुदड़ी धीरे-धीरे ही पहनै, पर्वत धीरे-धीरे ही लाँघे, विद्या और धनहू धीरे-धीरे ही कमावै ये पाँच कान शनैः शनैः करै तो लाभ होवै और जल्दी-जल्दी करै तो हानि उठावै है। यासों भैया। घर ही में रहकै अनासक्ति योग करौ—यही निष्कंटक पंथ है यही गीता को उपदेश है।

(प्रवेश स्त्रियाँ—एक वृद्धा, दो युवती घड़ा लिये)

समाज—

लिये कलश नारीं बहु ठाड़ीं। बोलति वचन लाज सब छाड़ी।।

युवती १—

युवक कहाँ ते को तुम आये। वदन कमल काहे मुरझाये।।
चलहु घरन हमरे पग धरहु। करि कलेऊ गमन पुनि करहु।।

युवती २—

कहा तुम्हरे घर कोउ नाई। माता पिता तिय बन्धु भाई।।
कै काहू सों भई लराई। रूसि चलै उठि रजनी पलाई।।
जोरैं हाथ जाओ फिरि भाई। विलपत ह्वै हैं स्वजन सगाई।।

वृद्धा ३—

धन्य जननी जिन तुमहि जाये। धन्य युवती जिन तुम पति पाये।।
अब काहे तुम नितहि मारी। चलै कहा बनि दीन भिखारी।।
जाओ वच्छ लौटि घर जाओ। सबहि सुख दै सुख तुम पाओ।।
होओ मति ना भूलि संन्यासी। माता पिता गर देहु न फाँसी।।
सेवहु तिनहिं असीस व दैहैं। सकल मनोरथ तुम्हरे फलिहैं।।

समाज—

भाँति भाँति बहुजन समझावहिं। घायल की व्यथा कोई न जानहिं।।
वदत गौर तब गदगद बानी। प्रेम विरह व्यथा बहु सानी।।

महाप्रभु—

मात पिता असीस यह देओ। शीश कृष्ण पद बेचन देओ।।
बड़ी साध इक यही जिय मेरे। तन मन बनैं सब कृष्णके चेरे।।
कृष्ण बिना कछु आन न भावै। बोलत कृष्ण घर रह्यौ न जावै।।
हा कृष्ण! प्राणनाथ! प्रभो कहाँ हो?
(उठकर दौड़ जाते हैं)

समाज—

उठि धाये नर नारी टेरहिं। धाये आतुर प्रभु अनुसरहिं।।

पुरुषगण १—ठहरो! ठहरो! कहाँ भाग रहे हा?

पुरुषगण २— चलौ। पीछे-पीछे चलौ। छोड़ो नहीं (प्रस्थान)

नारीगण १—हमहू चलैं बहनाओ! हम याकूँ छोड़ नहीं सकै हैं।

नारीगण २—घर लौटवे कूँ जी नहीं करै है। चलौ पीछे-पीछे! देखैं कहाँ जाय है! मनाय कै लौटावैंगी (प्रस्थान)

समाज (सोरठा)—

कंचन नगर तट ग्राम, संन्यासी इक वसहिं जहँ।
केशव भारती नाम, गौरचन्द्र धाये तहँहि।।

(पर्दा खुलता है। कुटिया। दंड लटक रहा है। कमंडलु।
केशव भारती बैठे हैं)

महाप्रभु—(प्रवेश-दौड़ते हुये) शरण! शरण! उद्धार करौ कृष्ण सों मिलाय देओ (भारती के चरण पकड़ लेना)

केशव भारती—(महाप्रभु को उठाते हुये) नारायण! नारायण! तुम कौन हो युवक? मनुष्य कै देवता? अपूर्व रूप! अलौकिक कान्ति! अपनो परिचय दैकै कृतार्थ करौ।

महाप्रभु—मेरो परिचय? कृष्ण सम्बन्ध शून्य या देह को भलो कहा परिचय है? मैं एक माया दास हूँ—निमाई नाम है। नवद्वीप स्थान है। अब आपकी शरण आयो हूँ!

केशव भारती—ओह! गौरसुन्दर निमाई! तुम्हारी पावनी कीर्ति तो सुप्रसिद्ध है। यह भिक्षुहू तुम्हारे गृह मन्दिर की यात्रा कर आयो है। तुमने गृहलक्ष्मी सहित मेरी बड़ी सेवा करी हती। परन्तु आज एक वसन तन, अश्रु-नयन, दीन-वेष, गीले केश-कैसे दर्शन है रहे हैं।

महाप्रभु—मैं बन्दी हूँ-काँधें पै सूत्र एवं शीश पै लम्बे केश-यह है मेरो बन्दी-वेष! मैं भव कारागार में बद्ध हूँ! मुक्त कर देओं मोकूँ। दूर कर देओ दयामय! मेरो यह वेष! शरण हूँ। शरण हूँ।

केशव भारती—हे त्रिलोकमणि! मोसों यह छल क्यों? मैं तो राजाबलि नहीं-एक दिन भिक्षुक हूँ। मोसों छल करके कहा लाभ?

महाप्रभु—लाभ? कृष्णधन लाभ! आपने वा समय दास के घर पधारकै जो दान दैवे को वचन दियौ हौ, मैं वही दान प्राप्त करवे के ताँई आयो हूँ।

कालिगड़ा १ ताल—

देओ जु देओ बही दान।
केश क्षौर कटि पै डोर, कौपीन दण्ड दान।।१।।
भवसिन्धु प्रबल दुस्तर, गुरु बिन कौन सकै तर।
चरण-शरण दीन पर, करौजु करुणा-दान।।२।।
माया मोह राज्य तजि, जाऊँ श्रीवृन्दावन भजि।
कृष्णदास 'प्रेम' सजि, देओ जु स्वरूप-दान।।३।।

आप या दान दैवे के लिये वचन-बद्ध हैं।

केशव भारती—सत्य है! किन्तु या समय तुम्हारी अवस्था संन्यास-योग्य नहीं हैं। पचास वर्ष की आयु पार करकै आओ।

महाप्रभु—पचास वर्ष? हाय! मोकूँ तो श्रीकृष्ण बिना पल-पल पचास वर्ष के समान लग रहे हैं। और यदि पचास वर्ष सों पूर्व ही यह जीवन-दीपक बुझ जाय तो यह मनुष्य देह फिर न जाने कब मिलै। हा कृष्ण! हा वृन्दावन! तुम्हारे दर्शन सों कहा मैं वंचित ही रह जाऊँगों? कहा कैद में ही घुट-घुट करकै मेरे प्राण निकास जायँगे?

केशव भारती—युवक! इन्द्रिय-ग्राम अतिशय प्रबल होय है!

महाप्रभु—मेरी इन्द्रियन कूँ तो श्रीकृष्ण ने हरण कर लियौ है।

केशव भारती—हे सुकुमार मूर्ते! संन्यास धर्म भयंकर दावानल है।

महाप्रभु—परन्तु श्रीकृष्ण विरह की ज्वाला बड़वानल है। बाहर दीखै नहीं है, भीतर ही भीतर जराय डारै है। असह्य है! रक्षा करौ दयालो! (घुटना टेक हाथ जोड़) दया करो! बन्धन सों मुक्त कर देओ! श्रीकृष्ण कूँ ढूँढ़वे जान देओ।

केशव भारती—गृहस्थ धर्म ही तुम्हारो स्वधर्म है।

महाप्रभु—मैं तो समझूँ हूँ श्रीकृष्ण-सेवा ही यथार्थ स्वधर्म है।

केशव भारती—तुम्हारे ऊपर देव-ऋण है।

महाप्रभु—देवन के देव श्रीकृष्ण की सेवा करूँगों तो निश्चय ही समस्त देव सन्तुष्ट है जायँगे और अपनो-अपनो ऋण छोड़ देंगे, आशीर्वाद देंगे।

केशव भारती—तुम्हारे ऊपर पितृ-ऋण है।

महाप्रभु—एक श्रीकृष्णभक्ति सों अनन्त पितरन को उद्धार है जायगो।

केशव भारती—तुम्हारे ऊपर ऋषि ऋण है।

महाप्रभु—सर्वभूतात्मा कृष्ण के नाम सों जड़-चेतन सब तुष्ट-पुष्ट है जायँगे।

केशव भारती—तुम्हारी वृद्धा माता है।

महाप्रभु—श्रीकृष्ण बिना मेरो और कोई नहीं है।

केशव भारती—तुम्हारी वाला भार्या है!

महाप्रभु—श्रीकृष्ण के बिना मेरो कोई नहीं है, कोई नहीं है।

केशव भारती—पंडित निमाई! तुम्हारे वंश में कोई नहीं है! तुम्हारौ बड़ो भाई बिन ब्याहे ही संन्यासी है गयो और अब तुमहू पुत्रोत्पादन किये बिना संन्यासी होनो चाहौ हो। तो फिर तुम्हारी वंशबेली की रक्षा कैसे होगी?

महाप्रभु—भगवन्! श्रीकृष्ण बिना मेरो वंश नहीं, कुल नहीं, गोत्र नहीं, जाति नहीं, परिवार नहीं, धर्म नहीं, कछुई नहीं है, कोई नहीं है-

कवित्त—

देह ही के मात तात, दारा सुत बन्धु भ्रात
देह ही सों जाति वर्ण, धर्म सब जाने हैं।
देह ही नहीं मेरी तो, रहै कौन अब मेरे
टूटयो सपनो डोर तार-तार बिखराने हैं।
जीव के हू जीव कोटि प्रानन के प्रान पीव
रोम रोम नातो नित्य, कृष्णही सों माने हैं।
कृष्ण ही को अंश मैं तो, वंश कृष्णकों ही 'प्रेम'
कोटि कोटि धर्म वंशीधर में समाने हैं।।

अतएव श्रीकृष्ण बिना मेरो कोई नहीं है और न मैं ही काहू को हूँ। वह गुणधाम, सुखधाम, प्रेमधाम मेरो श्याम कहाँ है गुरुदेव? बताय देओ, मिलाय देओ।

केशव भारती—मैं तुम्हारे परिवार के सुख मन्दिर में आँच नहीं दऊँगो, तुम्हारे स्वजनन की हत्या नही लऊँगो! संन्यास नहीं दऊँगो।

महाप्रभु—हे धर्मज्ञ! प्रतिज्ञा-भंग एवं शरणागत-त्याग-द्वेष कूँ विचारौ। निराश मत करौ। हाय!

पीलू (चौपाई)—

कृपासिन्धु तुम कृपा नहि धारौ। मेरे भाग्य को दोष है खारो।।
भाग्यहीन कूँ सिन्धु हू त्यागे। मरत तृषातुर दया न जागै।।
कृष्णचरण अब कैसे पाऊँ। गुरु ही त्यागे तो कहा ठाँऊँ।।
(चरण पर पड़ना)

समाज—

कासों कहो हृदय की पीरा। अस कहि चरन गहै अधीरा।।
उठाय भारती हियसों लाये। वचन वोध पुनि कति समझाये।।

केशव भारती—

धन्य कृष्ण हित करौ विलाप। धन्य चाव जो चहौ संन्यास।।
तुव मंगल हित कह संन्यास। प्रानहु दऊँ तो भाग्य रास।।
अति कठोर व्रत मग संन्यास। गास न वास न आस अभिलास।।
गिरिवन देश विदेशन विचरन। गृह विहीन पंछी ज्यूँ विहरन।।
भूमि शयन भिक्षा कभु लंघन। शीत घाम वर्षा शोषे तन।।
यह नवनीत सुकोमल अंग। कौन सम्हारैगो रहि संग।।
यही दुख सोच उर मम भारी। तजहु हठ प्रिय नदियाविहारी।।

महाप्रभु—(हाथ जोड़)

दया योग्य यह दास है, नहीं परीक्षा योग्य।
दशा अधिक कहा मुख कहूँ, समझि लेहु सर्वग्य।।
बाहर दावानल जरै, बरै उर बड़वानल।
जरते की रक्षा करौ, शरण आगत वच्छल।।

(चरण पकड़ रोदन)

समाज (दोहा)—

अद्‌भुत रूप लावन्य पुनि, अद्‌भुत त्याग अनुराग।
लखि विकल भारती वदत, भूलि गये वैराग।।

केशव भारती—वत्स! मैंने अपने हृदय की समस्त भावनान कूँ विकार मात्र समझ करकै ध्वस्त कर दियौ हो परन्तु आज मेरो बैरागी हृदय तुमकूँ देख-देखकैं फटयौ जाय है। यह निष्ठुर कर्म मोते नहीं हैं सकैगो। यह कलंक मैं नही लै सकूँगो। देखो, वत्स! चारों ओर तो देखौ। सहस्र-सहस्र स्त्री पुरुषन की भीर-स्त्री गंगाजल भरवो भूल गई हैं। पुरुष प्रातः स्नान-ध्यान छोड़-छोड़कै यहां आय जुटै हैं ये मोकूँ कहा कहैंगे। मैं इतनो निष्ठुर नहीं वन सकूँ हूँ। जाओ, वत्य! चले जाओ यहाँ ते। अन्य काहू कूँ गुरु बनाओ-मैं गुरु नही बनूँगो।

(प्रवेश पूर्वकथित ग्रामवासी-पुरुष स्त्रियाँ)

समाज—

ग्रामवासी शत शत जुरि आये। बाल वृद्ध नरनारी धाये।।
जोई देखै सोई दुख पावैं। रोवैं बहु विधि वचन सुनावैं।।

ग्रामवासी १—क्यूँ भारती बाबा। यह ब्राह्मण कुमार कहा संन्यासी बननो चाहै है? कहा तुम याकूँ चेला बनाऔगे।

केशव भारती—मैं कहा करूँ! मैं तो समझाय बुझाय कै हार गयो। अब तुमही याकूँ मनायकै घर भेज देओ।

ग्रामवासी १—क्यूँ भैया। तुम कहा हमारे प्राणन कूँ लैवे हमारे गाँव में संन्यासी बनवे आये हो? तुम्हारे मनमोहन रूप और नवीन यौवन कूँ देख-देखकै हमारी तो छाती फटी जाय है! लौट जाओ युवक! घर लौट जाओ।

ग्रामवासी २—हम अपनी आँखिन के सामने तुम्हारे सुरूप कूँ कुरूप नहीं हौंन देंगे। हाय! हमारी ही जब छाती फटी जाय है तो जा घर कूँ तुम अन्धेरो कर आये हो, उन घरवारेन की कहा दशा है रही होगी। नेक उनकी हू सुध करौ। इतने बावरे मत बनौ। चलौ हम तुमकूँ घर पहुँचाय देय हैं।

वृद्धा १—हाय हाय वत्य! तुम कौन अभागिनी जननी की गोदी कूँ सूनी करकै, वाकूँ जीवँती मारकै आये हो। माँ-बाप कूँ मारिकै भजन करवे चलै हो। ऐसे अधर्म सों कहा कभू धर्म है सकै है?

युवती २—निश्चय ही याकी माँ नहीं है। माँ होती तो वह ऐसे चाँद कूँ अपनी छाती सों अलग न होंन देती और यहहू माता के स्नेह-बन्धन कूँ तोरिकै नहीं भाग आमतो। यह बेचारो अवश्य ही मातृहीन दुखारो है।

युवती ३—और बहन! स्त्री हू याकी नहीं है। होती तो बाकी प्रीति-डोर कूँ यह कैसे तुड़ाय कै भाग आमतो? क्यूँ भैया। तुम्हारी माँ, स्त्री, बहन भाई कोई नहीं है कहा, जो तुम इतने निर्मोही बन चले हो?

वृद्धा १—यह तो कछु बोलैइ नहीं है। निश्चय ही याकी माँ-स्त्री सब हैं। यह ही उनकूँ मारकै भाग आयौ है! क्यूँ बेटा! बोलो, बताओ, कैसे आये? कहा दु:ख है तुमकूँ। चलौ हमारे घर चलौ।

युवती २—हाय हाय! हमारी छाती जब फटै है तो वे कैसे जी रहीं होंगी। अरे कोई तो याकूँ समझाय-बुझाय कै लौटाय दैवे! हाय! हम अबला कहा करैं।

समाज (दोहा)—

नदिया वासी जन बहु, ढूँढन निकसै भोर।
द्वय पहर भटकत कछु, आय गये तिहिं ओर।।

नेपथ्य में—१. हाय प्रभो! कहाँ चले गये? हा गौरसुन्दर!
२. कहाँ जायँ, कहाँ पायँ? ढूँढत-ढूँढत दो पहर

है आयो! हा गौरसुन्दर! हा निमाई चाँद!

(प्रवेश दौड़ते हुये नित्यानन्द, चन्द्रशेखर, मुकुन्द आदि नदियावासी)

निताई—यह रहे प्रभु! यह रहे। मिल गई खोयी निधि! हरिबोल!

चन्द्रशेखर (दोहा)—

हा हा गौराँगचाँद, कहा करौ इहँ आय।
घरमहँ माता मर रहीं, चलहू जिवावहु धाय।।

मालकोष—

घर चलौ अब करौ देर ना, हा हा नदिया चाँद।
तुम बिन घर-घर अँधेरो, हा हा नदिया चाँद।।१
जननी टेरती बावरी भई, प्रिया मुर्च्छित भूमि परी।
मालिनी सीता माता रोवै, बचाओ निमाई चाँद।।२
रोवैं अद्वैत पंडित श्रीवास, रोवैं गदाधर हरिदास।
रोवैं टेरैं भक्त सकल, दिखाओ निमाई चाँद।।३
रोवैं जन जन हाट बाट, रोवैं नारी गंगा घाट।
जरत नदिया विरह आँच, बुझाओ निमाई चाँद।।४
चलौ घरतजि दीन साज, सजावैं तुमकूँ कीर्तनराज।
कीर्तन 'प्रेम' नदिया फेर, बहाओ निमाई चाँद।।५

चन्द्रशेखर—वत्स! तुम्हारे पिता के स्थान पै मैं हूँ। मेरी बात मानौ और लौट चलौ। देर मत करौ।

महाप्रभु—(हाथ जोड़) मौसाजी! आप श्रीकृष्ण भक्त हो। मोकूँ हू श्रीकृष्णदास सजाय देओ। मेरो जीवन सफल बनाय देओ हाय! इतनी आयु मेरी निष्फल ही गई। या दु:ख कूँ कैसे कहिकै समझाऊँ! कौन समझैगो मेरे या दु:ख कूँ।

गाना (वागेश्री-दादरा)—

कैसे कहि बताऊँ हाय! कैसे दिखराऊँ करे जो चोर।
हा हा खाऊँ डारौ जिन बाधा, पुरवहु मेरी जीवन साधा,
बन्धन काटि हरहु मो पीर, कैसे दिखराऊँ०।।

बिछुरे सों अब मिलन देहु (प्यारे सों अब मिलन देहु)
अंकम भरी दुख मेंटन देहु (प्रेम रस अब पीमन देहु)
नाहिंन जर बर जाय शरीर, कैसे दिखराऊँ०।।

करौ दया न मरे कूँ मारौ, जीवन देहु मोकुँ न मारौ।
माया फाँस गरे न डारौ, (पोखर महँ न हँस डारौ)
वो उड़ि जैहै 'प्रेम' मानसर तीर, कैसे०।।

अतएव मौसाजी! भारतीजी सों प्रार्थनाा करकै मेरी साध पूरी करवाय देओ! मैं अबापके चरण परूँ हूँ। जीवन प्रदान दान देओ! नहीं तो मेरे प्राण उड़ जायँगे, उड़ जायँगे। (चरण पकड़ कर रोदन)

चन्द्रशेखर—(उठा हृदय से लगा) रोओ मत वत्स! तुम्हारे आँसू मेरे हृदय कूँ गराय-बहाय दै रहे हैं! तुम्हारे शोक में आज कौन नहीं रोय रह्यौ है-शची माँ रोवै है, विष्णुप्रिया रोवै है, अद्वैत-श्रीवास रोवैं हैं, भक्त सबही रोवैं हैं उनके आँसू उनको विलाप तौहू देखै, सुनै, सहै जायँ हैं, किन्तु श्रीकृष्ण के लिये तुम्हारो यह क्रन्दन, यह आँसू, उन सबन सों विलक्षण ही है-असह्य ही हैं। यासों रोओ मत वत्स! मैं हायौ तुम जीते। तुम्हारी इच्छा के विरूद्ध कोई कछु नहीं कर सकै है। तुमही न बँधनों चाहौ तो तुमकूँ कौन बाँधे किन्तु वत्स! जो कछु करनो चाहौ हो वाकूँ विशेष सोच-विचार करकै, धीर स्थिर चित्त सों करौ! तुम स्वयं धर्मज्ञ महापंडित हो! तुमकूँ मैं कहा उपदेश कर सकूँ हूँ।

महाप्रभु—(नित्यानन्दन प्रति) श्रीपाद! अब मैं लौट करकै घर नहीं जाऊँगो।

जाको यह संसार है, वाही को परिवार।
पालैं राखैं मारैं कै, वे मालिक करतार।।
जान देओ पकरौ मति, करौ जु मेरी सहाय।
देखूँ वह चितचोर हरि, कहाँ मोकूँ लै जाय।।
छिप छिपकै बोलत मोहिं, देत सुवंशी बजाय।
खोजूँ गो पकरूँगो, कै दऊँगो प्राण चढ़ाय।।

अतएव मेरी चिन्ता छोड़ो और सहायता करौ। मैं संन्यासी बनूँगो।

समाज—

सुनि सब मौन बैन न आवै। दारुन दब उर अन्तर दाहै।।
ग्रामवासी विकल नर नारी। चहुँ ओर धुनि हाहाकारी।।
नारि बहू भई नेह आतुरी। गौर घेर लई भय न लाजरी।।
वृद्धा एक ब्राह्मणी नारी। ममता नेह मानो महतारी।।
बोलित चिबुक गही ने बानी। कुँवर कौन के तुम सुखदानी।।

कवित्त—

कौन के त्राल कंगाल करि कौन मात कूख
भेष ए कंगाल धरि, घर तजि आये हो।
कौन के सुहाग तुम, भाग छीन भागे आज
दीन से अभागे बनि, कहाँ उठि धाये हौ।
कहा सूझी ऐसी मति, जति जो संजिवे चलै
वयस नवीन अति, कौने भरमायै हो।
जाओ घर लौटि जाओ, रुवाओ ना 'प्रेम' जग
सुगम पथ तजि क्यूँ, अगम पथ धायें हो।
जो पै हरि कृपा करैं, घर ही वन बन जाय।
नहीं हरि की कृपा तो, वनहू घर बन जाय।।
हरि कृपा तुम पै धनी, पायो हरिपद प्रेम।
घर ही बसि हरिकूँ भजौ, निश्चय सब विधि क्षेम।।

यासों वत्य! घर लौट जाओ! यहाँ रहौगे तो हम तुमकूँ माथो मुड़ायवे नहीं देगी, नहीं देंगी।

समाज (दोहा)—

रोवै वृद्धा युवती रोवै, लखि लखि गौर पुरुषहू मोहैं।
लागै पुरुष हू करन पुकार, जान न दैहैं गोर प्रान अवार।।

ग्रामवासी १ पुरुष (कवित्त)—

जान दै दैहैं, बनि जान न दैहै जोगी हम
कैसे जायगो भाग वो, कौन लै जु जावैगो।
कहाँ है वह भारती, न आरती हमारी सुनै
छाती यह विदारती, फल वाकों वो पावैगो।
कहाय विरक्त नेक, लाज नहि आवै 'प्रेम'
चल्यो चेल मूँडवे कूँ, मूँड ही फुडावैगो।
कुटिया छवाय तट, गंगा नहाय नहाय
गृहस्थिन के घर कहा, आँच अब लावैगो।।

ग्रामवासी २—अरे ओ भारती बाबा! पहले अपने आप तो पार है जाओ, पीछे चेला कूँ पार करियो—

अपनो भलो न होत है, लिये फिरत समाज।
चूहा बिल न समात है, पूँछ बाँधिये छाज।।

जगता सों जगता मिलै, होवै जग को काज।
नकटा सों नकटा मिलै, बाढ़ै नकटा समाज।।

ग्रामवासी ३—संग-दोष भैयाओ! संगेदोष! माया महारानी की सुदृष्टि परी है तबही तो बुढ़ापे में गोष्ठी बढ़ायवे की फुर-फुरी उठी है। सुनौ बाबा! आज तुम्हारी कुटिया कूँ गंगा में बहाय या फुरफुरी की जड़ ही मिटाय कै छोडेंगे! सावधान

समाज (दोहा)—

ममता करुणा नेह की, उमड़त चहुँ दिशि धार।
जन जन जीवन प्रान सम, गौरा शची कुमार।।
दुक्ख शोक महाधार, बूड़ि चलै नरनारि सब।
हरि कीर्तन आधार, कर्णधार हरिगौर दियो।।

महाप्रभु—(हाथ जोड़ जनसमुदाय प्रति) हे माता-पिता-भाइयो! मैं भवरोगी हूँ। वैद्य बिना रोग छूटै नहीं है। जो तुम सब मेरो हित चाहौ तो मेरी चिकित्सा में सहायता करौ। बाधा डारवें सों तुम्हारे निर्मल स्नेह में कलंक लग जायगो। श्रीकृष्ण के कार्य में दु:ख न करौ, सुख मानौ-हरिबोल।

गाना (भैरवी)—

यह दुख नहीं सुखसार है।
कहो श्याम श्याम श्याम, प्राणाराम राम राम।।
जा श्याम ने वंशी बजाई, घरवार में अगिनि लगाई।
वह चोर, धनी वह श्याम, कहो श्याम श्याम।।
जा श्याम सों अँखियाँ फूटी, वही श्याम है अंजन बूटी।
वही विष, अमृत वही श्याम, कहो श्याम०।।
जा श्याम सों तन मन ज्वाला, वही श्याम उन वनमाला।
जपमाला वही मन्त्र श्यम, कहो श्याम०।।
वह श्याम ही भवकी धारा, वह श्यामी ही नौका किनारा।
बोरे बचावे वह श्याम, कहो श्याम०।।
गोविन्द गोपाल गिरधारी, हे माधव मुकुन्द मुरारी।
'प्रेम' गोपीजनवल्लभ श्याम, कहो श्याम०।।

समाज—

श्याम बखानत बाढयौ हुलास। अश्रु पुलक तन कम्प प्रकाश।।
करत कीर्तन नृत्य विलास। भूलि गये जन दुख संन्यास।।
अचरज लखि भारती वलि जात। प्रेमभाव हिरदै उमगात।।

केशव भारती—ओह! कैसो अद्‌भूत यह श्रीकृष्ण प्रेम है। जहाँ संसार अन्धकार देख रोवै है, वहाँ प्रेमी प्रकाश देख नीचै-गावै है। और जहाँ संसार प्रकाश समझकै आनन्द मनावै है, वहाँ प्रेमी अन्धकार जान रोवै है-

गजल—

सब घर को जला करके यह नाच निराला है।
समाज यह निराली यह साज निराला है।।१
ए विदाई की घड़ी में बधाई है निराली।
सहनाई यह निराली, यह तान निराला है।।२
यह आँसूओं की प्रेम-धारा भी है निराली।
संन्यास की घड़ी में, यह रास निराला है।।३
हरिबोल हरिबोल हरिबोल

(महाप्रभु का हाथ पकड़ नृत्य करने लगते हैं)

समाज—

दंड कमंडलु दिये विश्रामा। नाचत गावत हरि हरि नामा।।
हरिबोल हरिबोल, हरिबोल।।
दीन धनी मूरख अरु ज्ञानी। नाचत लाज मर्याद भुलानी।।
विप्र शूद्र कर कर गहि नाचैं। लोटैं धरन प्रेम रंग राचैं।।
हरिबोल हरिबोल०।।
गयो प्रात भयो द्योस दुपहरी। भाव घोर दशा कछु उतरी।।
लीला हित चित आप निताई। कर गही भारती विनय सुनाई।।

निताई—(केशव भारती का हाथ पकड़) शान्त होवैं भगवन्! शान्त होवैं! दुपहर है आयौ है।

केशव भारती—(सावधान हो) ओह! हलको है गयो! हरि-नाम गाय करकै, नाच करकै हलको है गयो। दु:ख को भार जैसो छाती पै धयौ हो, उतर गयो। अच्छो निमाई! तुम संन्यास क्यूँ लैन चाहौ हो? हम तो

भवसागर ते पार उतरवे के लिये संन्यास लेय हैं किन्तु तुम्हारो यह प्रेमसागर तो संसार कूँ ही पार उतार सकै हैं। फिर तुमकूँ संन्यास सों कहा प्रयोजन?

महाप्रभु—(हाथ जोड़) भगवन्! मेरी अयथा स्तुति करकै मोकूँ मारौ मति ना! संन्यास दैकै मेरी डूबती नैया कूँ पार उतारौ।

जा धन सों तुम हो धनी, देओ एक कन दान।
शरन भिखारी जो तजौ, लागै पाप महान्।।

केशव भारती—हे राग-वैराग्य मूर्त्ते! मैं हायौ परन्तु एकबार तुम घर जायकै माता और पत्नी की सहर्ष अनुमति लै आओ। तब यह जनता हू शान्त होयगी और मैं हू तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकूँगो!

महाप्रभु—अनुमति तो लै करकै ही आयो हूँ।

केशव भारती—कब लई?

महाप्रभु—एक वर्ष पहले!

केशव भारती—अर्थात् आज तो तुम उनकी अनुमति बिना ही आये हो। यासों मैं संन्यास दै नहीं सकूँ हूँ।

महाप्रभु—तो भगवन्! मैं अबही जायकै उनकी अनुमति लै आऊँ हूँ। (सवेग प्रस्थान)

केशव भारती—बस अब मैं हू भाग चलूँ। कुटिया छोड़ कहीं दूर निकस जाऊँ (चलने लगता-पाँच सात कदम चल रूक जाता) नहीं-नहीं यह छल-कपट क्यों? एक प्रभु-प्रेमी महाभाग वत के साथ प्रवंचन-प्रपंच? और मैं छिप करकै जाऊँगो ही कहाँ? वे खोज ही निकासेगे (लौटते हुये) निमाई! निमाई! लौट आओ वत्स! मैं तुमकूँ संन्यास दऊँ हूँ।

ग्रमवासी—(एक स्वर में) हम नहीं लैन देंगे। कदापि नहीं! यह अन्याय-अत्याचार नहीं होंन दैंगे।

केशव भारती—तो तुमही समझाय देओ न! लौटाय देओ! मैं तुम्हारो बड़ो ही उपकार मानूँगो, भैयाओ!

महाप्रभु—(लौटकर) प्रिय बन्धुओ! बाधा मत डारौ। मेरी मनोकामना पूरी होन देओ।

केशव भारती—(जनसमूह की ओर देखते हुये) अपार भीड़! उमड़ती आय रही है! कसे खबर पर गई! अद्‌भुत आकर्षण! अद्‌भुत अनुराग! या अपार जन-पारावार में मेरो हृदय-हिमाचल हू डूब्यौ जाय है। अब बिलम्ब

उचित नहीं है। भक्तजनों! दधि, दुग्ध, घृत, पुष्प, माल्य, वस्त्र, कौपीन, हवन सामग्री को प्रबन्ध करौ और एक नापित हू कूँ बुलाय लाओ।

निताई—वह देखौ भगवन्। सामग्री सब आपही आप, भार की भार आय रही हैं (आयोजन)

समाज (चौपाई)—

भरि भरि कामर जन जन आवैं। दूध दधि घृत वस्त्र सब ल्यावैं।।

केशव भारती—आश्चर्य! बिन मँगाये ही ये सब सामग्री चली आय रही हैं। कैसे इनकूँ खबर परी! कौन ने कही।

निताई—यही तो प्रभु को कौतुक है। लीलामय की लीला है। और देखो वह नापित हू आय गयो।

(प्रवेश मधु प्रामाणिक)

समाज (चौपाई)—

लोक भीर महँ रह्यौ इक नाई। सादर तासों बोले गुसांई।।

केशव भारती—अरे मधु! तू हू आय गयो! अच्छो ही भयो। अब इनको क्षौर करदै! आ भैया।

मधु प्रामाणिक—मोसों यह काज नहीं होयगो ठाकुर देवता! मैं तो भीर देखकै चल्यौ आयो हूँ। मोसों क्षौर नहीं होयगो।

केशव भारती—होयगो क्यूँ नहीं? सब है जायगो। भय-संकोच कैसो?

मधु प्रामाणिक—ना ठाकुर ना! मेरे बाल बच्चे हैं, माता-पिता हैं। जासा माया के जाल में पयौ हूै। उनको पालन-पोषण कैसे होयगो?

महाप्रभु—भैया मधुशील! मोकूँ मुक्त कर दैओ! मैं वृन्दावन जाऊँगो।

मधु—तो चले जाओ न ठाकुर! रोके कौन है?

महाप्रभु—ये केश रोकैं हैं। तू इनको मुंडन कर दै।

मधु—कहा मूँड मुँड़वाये बिना वृन्दावन नहीं जायो जाय हैं?

महाप्रभु—मुँडन कर देओगे तो तुम्हारो वंश बढैगो तुम खूब फलौगे फूलौगे। अन्त में बैकुण्ठ जाओगे।

मधु—ना ना! मैं तो जैसी हूँ वैसो ही ठीक हूँ। यह काम मोते नही होयगो। और काहु कूँ बुलवाय लेओ।

महाप्रभु—जब तुम ही आय गये हो तो तुमहीं मोपै दया कर देओ।

मधु—तुमही क्यों न मोपै दया कर देओ ठाकुर! मेरेहू तो बाल बच्चे हैं। मैं तुम्हारो माथो मूँडकै तुम्हारी माता और स्त्री की हत्या नहीं लऊँगो।

महाप्रभु (गजल प्रश्नोत्तर)—

हत्या नहीं यह पुण्य भारी जान लें।
वास वैकुण्ठ होयगो तेरो, मान ले।।

मधु—

वैकुण्ठ तो कोई और कूँ प्रभु दान दो।
मैं तो गरीबदास हूँ, घर जान दो।।

महाप्रभु—

जो न माने विप्र बात तो जान ले।
वास नर्क में होयगो तेरा मान ले।।

मधु—

नर्क है बढ़कर स्वरग सों स्राप दो।
पाप सब जल जायँ 'प्रेम' स्राप दो।।

देवता! स्राप देओ! जी चाहे स्राप देओ। आपके स्रापसों मेरे पाप कट जायँगे! संसार मिट जायगो।

महाप्रभु—भैया! जो तुम मेरो क्षौर नहीं कर देओगे तो कृष्ण में विरह-

छाती मेरी फट जायगी यह जान ले।
हत्या तुझे लग जायगी अब मान ले।।

मधु—और आपहू तो लाखन की हत्या करवे जाय रहे हो—

फूल-से होकर के क्यूँ बज्जर बनो।
अपने पीछे जान लाखों मत हनो।।

मैंने जीवन में हजारन के केश कतरे हैं परन्तु तुम्हारे जैसे केश तो आज ही देखै। यह तो नेत्रन सों लगायये योग्य हैं, न कि क्षुर सों कतरवे योग्य-

गजल—

ये जुल्फें प्यारी प्यारी, घुंघरारी पेंचवारी।
लहराती घटा प्यारी मुखचन्द्र पै तिहारी।।

यदि आप आज्ञा करौ तो—

हीना चमेली जाही जूही के तेल डारी।
कोमल करन सों काढ़ी, सुमनन दऊँ सिंगारी।।
नैनन लऊँ मैं धारी, प्राणन दऊँ मैं वारी।
हे नदिया गौरविहारी, जाओ ना प्रेमभारी।।

महाप्रभु (सोहनी-दीपचन्दी)—

ये केश नहीं ये केश नहीं, ये तो बाँधिवे कूँ पाश है।

मधु—

ये केश मेरेहू पाश हैं, इन बाँध लियो करिदास हैं।।

महाप्रभु—

ये केश मेरे काल हैं, मोह माया के ये जाल हैं।

मधु—

ये केश मेरे लाल हैं, मोह माया के ये काल हैं।।

महाप्रभु—

देर मत कर, क्षौर अब कर, स्वामी मैं तू दास है।

मधु—

देर मत करो, प्रान मो हरो 'प्रेम' यही अरदास है।।

ठाकुर देवता! मेरे प्राणन कूँ लैलेओ किन्तु ऐसी आज्ञा न करौ-दया करौ। (चरण पकड़ लेना)

महाप्रभु—(उसके सिर पर हाथ फेरते हुये) मधुशील! अब देर मत करै भैया! क्षुर निकास और करदै क्षौर।

मधु—(विस्मय पूर्वक) हैं! यह मोकूँ कहा है गयो! यह मेरो मन नरम कैसे पर गयो! लड़वे की शक्ती कहाँ चली गयी। ठाकुर! तुमने मेरे सिर पै हाथ फेर कै मेरी शक्ति छीन लई। अब लड़ नहीं सकूँ हूँ। मैं हायौ, हायौ। परन्तु क्षौरहू कैसे करूँ। तुम्हारे शीश पै हाथ लगाय के फिर इन हाथन सों औरन के पाँव कैसे छीऊँगो? मेरो तो सर्वनाश है जायगो और न छीऊँगो तो मेरो धन्धो कैसे चलैगो। मैं तो दोनों और ते मायौ जाऊँगो। बताओं देवता, अब मैं कहा करूँ? रक्षा करौ मेरी। रक्षा करौ नाथ!!

महाप्रभु—चिन्ता मत करै मधु! श्रीकृष्ण सबको पालन करैं है। आज सों आगे तुम और तुम्हारे वंश मे कोई नापित को कार्य नहीं करैगो। तुम सब मधु मोदक को धन्धों करौगे। या लोक में सुखी रहौगे और परलोक में मंगल होयगो। यासों अब देर मत करै। शीघ्र मुंडन करदै।

मधु—मंगल-अमंगल तुम जानौ ठाकुर! अब तुम्हारी आज्ञा टारवे की सामर्थ्य मोमें नहीं रही। तुम देवता हो मैं तुम्हारो दास हूँ। अब होनी होय सो होवे, मैं मुंडन कर दाऊँगो। बैठो! विराजौ!

समाज—

ग्राम युवक सब कहत रिसाये। सावधान जो हाथ लगाये।।
दैहैं मस्तक तेरो फोरि। किये जो तैं इनके क्षौरि।।

युवक १—अरे ओ भारती बाबा! तुमने यह अच्छो शिकार फाँस लियौ है-बड़े हृदयहीन हो। अपनो घर फूँक्यौ सो, फूँक्यौ, अब दूसरेन को हू फूँकनो चाहौ हो।

केशव भारती—भैयाओ! मेरी शक्ति सों बाहर है। तुमही क्यों न लौटाय देओ।

युवक २—यह सब तुम्हारी चालाकी है। गंगा तट पर कुटिया बाँध, गाँव के युवकन को माथों बिगारौ हो। यासों हम तुमकूँ मारकै ही छोड़ेगै। ऐसे नहीं छोड़ेगे।

युवक ३—हाँ ठीक है! न रहैगो साँप न पुजैगी बाँवी। जड़मूल तो यह बाबा ही है। उखाड़ डारौ जड़ कूँ। खोद डारौ याकी कुटिया कूँ मार डारी याकूँ।

केशव भारती—हाँ हाँ उखाड़ डारौ-मार मारौ। मेरो बड़ो ही उपकार करौगे। लेओ मार दैओ।

महाप्रभु—(आगे बढ़कर) सावधान! पहले मेरे प्रानन कूँ लैओ, पीछे जी चाहै सो करनौ।

युवक १—तो चलौ या बाबा कूँ नौका में बैठार देश-निकासो कर दैवैं। कहूँ दूर छौड़ आवै।

केशव भारती—हाँ हाँ छोड़ि आओ! अब ही लै चलौ।

महाप्रभु—शान्त होओ! वृथा चेष्टा मत करौ। तुम जहाँ लै जाओगे वहाँ मैं पहले ही पहुँच जाऊँगो। मेरी गति अबाध है। मेरी मति अटल है।

मनुष्य तो कहा ईश्वर हू मेरी मति-गति कूँ पलट नहीं सकै हैं। मैं संन्यासी बनूँगो और अबही बनूँगो। मधुशील! तू अपनो काम कर। तेरो बारहू कोई बाँको नहीं कर सकै है।

समाज (दोहा) —

गिरा घोष गम्भीर सुनि, रहै सभी ठिठकाई।
बैठ्यौ नापित क्षुरहिं लै, दारु यंत्र की नाँई।।
परसत अलकन पुलक भो, झलकत प्रेमजु अंग।।
उठि नाचत मधुमत्त ह्वै, छलकत प्रेम तरगरं।।

मधु—ओह! मेरो हाथ नहीं चलै है। शरीर काँपै है, हृदय पिघलै है। यह मोकूँ कहा है गयो-हरि-हरिबोल!

महाप्रभु—(उठ पड़ते) हरिबोल (मधु का हाथ पकड़ नाचने लगते हैं)

समाज—

पुनि बैठे दोऊ क्षौरकूँ, उठि नाचत हैं गौर।
कर गहि मधु बैठारहिं, नचत आप उन ठौर।।

मधु—(महाप्रभु का हाथ पकड़ बैठाता है। आप भी बैठ क्षौर करना चाहता पर फिर उठकर नाचने लगता)

हरीबोल! हरिबोल! हरिबोल!

महाप्रभु—(मधु को पकड़ बैठते और आप भी बैठते पर जैसे ही वह क्षौर करना चाहता है तो उठकर नाचने०)

समाज (दोहा) —

वे बैठत हैं क्षौर कूँ, वह उठि नाचत धाय।
वह नाचत तो गौर कर, गहि वाकूँ बैठाय।।
नापित अरु जगन्नाथ की, बनी जु अद्भुत जोई।
कर गही नाचत फिरत हैं, मची जु होड़ा होड़।।

महाप्रभु मधु—(हाथ पकड़ नृत्य) हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल

केशव भारती—वत्स! शान्त होओ। मुहूर्त्त निकस्यो जाय है। मधु! सावधान हैकै अपनो काम करौ। शीघ्र करौ।

मधु—जो आज्ञा! (दोनों बैठते हैं। क्षौर-कार्यारम्भ। पर्दा)

समाज (दोहा) —

नर नारी मुख मोरिकै, रोवहिं नैन बहाय।
कोउ विकल धरनी लुठत, रही करुन धुनि छाय।।

समाज कवित्त—

लिये क्षुर मधु हाथ, दिये सिर केश पाश
शोक दुख त्रास की, उठी लहर जोर है।
मूँदि आँखि लीन्हे कोई, रोवैं मुख मोरि कोई
खाय के पछार कोई, परीं ठौर-ठौर है।
शिशु मात अंक सों, खसि परैं लुठैं पंक
मात मुख ढाँपि ढाँपि, रोवै गौर गौर है।
केश इत शेष होत, उत प्रान शेष होत
एक एक केश पर, कटत करोर हैं।।

कटुवा कटुवा है गयो, कटि कटि परैं जहान।
केश केश पै गौर के, लिपटे कोटिक प्रान।।

कवित्त—

देखि देखि मुंडनहिं, रोवै पशु, पंछी लता
रोवैं नर नारी चहुँ ओर हा हा छायो है।
चरैं नहीं धेनु तृन, पीवै नहीं बच्छ थन
हेरि हेरि गौर तन, लोचन बहायो है।
भीर भारी चहुँ ओर, चित्र लिखे रहै ठौर
बैन नहीं फुरै जोर, हियो हहरायो है।
पापी जे जगत माँझ, तिनके प्रायश्चित काज
'प्रेम' प्रभु गौर आज, शीश जु मुड़ायो है।।

(पर्दा खुलता है। मुंडित मस्तक महाप्रभु और मधुशील बैठे हैं)

मधु—हाय रे कम्बखत हाथ! इनने देवता के केश-संस्कार की ठौर पै मुंडन -संस्कार कर दियो।

लकुआ ही मेरे हाथों को न मार गया क्यों।
सूख करके हाथ ही न काठ बन गया क्यों।
सड़ करके अंगुलियाँ ही नठूँठ रह गईं।
यह लोहाही पिघल करके पानी न हुआ क्यों।

भयो सो भयो परन्तु आज सों यह नापित को धन्धोहू गयो। जाओ, डूब जाओ गंगा में (पेटी को फेंक देना) देवता को नापित अब काहु जीव को नापित नहीं रह्यौ ठाकुर! अब मेरी अब यही विनती है कि-

गजल—

हाथों को पकड़ करके तुमने नचाया मुझको।
कहीं देखना न माया फिर से नाचवे मुझको।।
अपना जो नाम मुख से बुलवाया आज तुमने।
सपना न होवे कल को, यह नाम तेरा मुझको।।
हरिबोल नाम मन्त्र दिया जो आज तुमने।
क्या कोई तुमको मूँडै, तुमने ही मूँडा मुझको।।

महाप्रभु—(मधु का हाथ पकड़) हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल

केशव भारती—वत्स! अब गंगा स्नान कर आओ। विजयाहोम करनौ है। शीघ्र करौ।

महाप्रभु—जो आज्ञा! आनन्द आनन्द! हरिबोल (प्रस्थान)

भक्तमंडली (पद-यथाराग)—

विधना कैसी दिखाई घड़ी।
आप न देखै हमकूँ दिखावै, आँखिन लाई झड़ी।।१
कहाँ वह केश घुंघरवारे, बूटे बेल मनो छवि काढे।
नित हम नव नव ढंग सम्हारे, फूलन माल लड़ी।।२
कहाँ भाल पै कुन्तल रुरकैं, कहाँ कपोलन अलकें झलकें।
मस्तक सों वे तो कटि कटिकै, हमरे हिरदै गडी।।३
करै अब कौन तिलक तन चन्दन, कौन धरै नवनव पट भूषन।
मालती माल फुलेल नहीं अब, गेरुवा बसन चढ़ी।।४
कहा ते कहा कियो दई मारै, घरते बाहर पलमें काढ़ै।
कियो परायो प्रान पियारे, कटी सब 'प्रेम' कड़ी।।५

(प्रवेश महाप्रभु—गंगा स्नान कर गीले वस्त्र सहित)

समाज (दोहा)—

आये गंगा न्हाय प्रभु, गीले पट तन धार।
मूरति करुण वैराग की, लखि रोवैं नर नार।।

महाप्रभु—(हाथ जोड़)

गयौ भार मम शीश को, जय गुरुदेव दयाल।
देओ कटि कौपीन अब, करौ प्रेम निहाल।।

समाज—

दिये भारती अरुन वसन, चीर टूक कौपीन।
हाहा ध्वनि उठि घोर चहुँ, रोवैं जनजनदीन।।

केशव भारती—वत्स! यह लेओ नवीन जीवन की नवीन सम्पत्ति याको नाम है धन्य कौपीन और ये दो वस्त्र हैं। गीले वस्त्र त्याग के इनकूँ पहनौ—'कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः' बनौ।

महाप्रभु—(कौपीन एवं वस्त्र को लेकर मस्तक से लगा) हे माता-पिता- बन्धुओं! अब मैं या कौपीन कूँ पहनकै माया दास ते कृष्णदास बनूँ हूँ। आशीर्वाद देओ मोकूँ कृष्ण मिलैं।

जनता—हरिबोल! हरिबोल!

महाप्रभु—(कौपीन वस्त्र लै भीतर चले जाते हैं)

केशव भारती—(महाप्रभु के संग चले जाते हैं)

समाज (कवित्त)—

अरुण कौपीन डोर, परसि शिरसि गौर
साजत नवीन, तजि पुरातन चाल है।
हाय रे गेरुआ चीर, चीर देत है तू हियो
तबही कहा रंग तेरो, लोहुकों सो लाल है।
होत तब जनेऊ है तबहू तू अंग चढै
सजाय ब्रह्मचारी मंगवावै भीख वाल है।
घालि घालि कोटि घर, चोटी केश खाय खाय
तृपति न होत 'प्रेम' दूजो महाकाल है।

रोवैं कोई दैवैं कोई गारी। विधना बच्यौ न बच्यौ मुरारी।।
सुमिरि सुमिरि नटनागर वेषा। सकैं न निहार गैरिक वेषा।।

केशव भारती—(प्रवेश कहते हुये) सजाय दियो! इन हाथन सों नदियाबिहारी कूँ पथिक भिखारी सजाय दियो। धामधवलवासी कूँ तरुतल वासी, कवलग्रासी बनाय दियो। यज्ञ-पुरुष को विजय-होम कर दियो और बन गयो मै हू जगद्गुरुको गुरु। वह देखो आय रह्यौ है नवीन संन्यासी नवीन साज-सज्जित।

महाप्रभु—(नत मस्तकः शनैः-शनैः आगमन)

समाज (छन्द)—हाय!

कहाँ वह मेदुर कुटिल कुन्तल जाल-शोभित शीश तट।
कहाँ कपाल यह रुंड मुंड विधि प्रचंड संन्यास पट।।
कहाँ वह लसित पीत पट अरु क्वणित किंकिनि गौर नट।
कहाँ लंगोटी लीर शिव शिव! अरु लपेटी चीर कटि।।

केशव भारती—अहा! कैसी भव्य दिव्य श्री है। सुन्दरे किन्न सुन्दरम् सुवर्ण की जाज्वल्य मान प्रतिमा मानो तो अग्नि-कुंड में ते निकसि कै आय रही होय। आओ वत्स! मेरी दाहिने ओर बैठो। मैं तुम्हें संन्यास-मन्त्र सुनाऊँ हूँ।

महाप्रभु—(हाथ जोड़) मैंने स्वप्न में एक संन्यास मन्त्र पायो हैं। आप वाकूँ कृपा करकै सुनैं और बतावैं कि वह शुद्ध है कै नहीं।

समाज (चौपाई)—

असि कहि मंत्र संन्यास सुनायो। आपही अपनो मंत्र बतायो।।
शक्तिदान भारती तन कीन्हे। अपनो मन्त्र आप सुनि लीन्हे।।

केशव भारती—(सुनकर) हाँ मन्त्र तो शुद्ध ही है तथापि गुरुमुख सों एकबार श्रवण कर लेओ (दक्षिण कर्ण में मन्त्र-प्रदान)

समाज—

धन्य भाग भारती के जागे। होय गुरु गुरुकर्ण सों लागे।।
गुरु गुरु दोऊ कीन्हे कामा। शिष्य शिष्य भये पूरन कामा।।

महाप्रभु—(हाथ जोड़) धन्योऽस्मि! कृतार्थोऽस्मि!

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।
(साष्टांग प्रणाम)

केशव भारती—नारायण! नारायण! उत्तिष्ठ वत्स!

महाप्रभु—(उठकर बैठ जाते-नत जानु, नतशीश, करबद्ध)

केशव भारती—(महाप्रभु के शीर्षोपरि अभय मुद्रा प्रदानपूर्वक) वत्स! शास्त्रविधि के अनुसार तुम्हारी संन्यास-दीक्षा पूर्ण भाई। तुम्हारो

नवीन जन्म भयो परन्तु अब या नवीन जन्म में तुम्हारो...कहा...नाम...करण करूँ-या विचार में हूँ। तुम्हारे द्वारा शुष्क सोऽहं ज्ञान सरस है जायगो। घट-पट, माया-ब्रह्म के स्थान पै हरि, कृष्ण, राम निकसैंगे। सोये भये जीव जागेंगे, चेतन होंगे और कृष्ण नाम गायँगे-ऐसो भावगर्भित नाम कहा धरूँ? (विचार मग्न)

समाज (चौपाई)—

सुनि पायो उर दैव सुबानी। धन्य भारती तत्त्व बखानी।।

आकाशवाणी—

नाम जो तुम्हरी रसना माहीं। उदित भयो यदृच्छया आई।।
नाम सोइ गुण परिचय सोई। करौ आज प्रगट जग सोई।।
कृष्ण चैतन्य श्रीकृष्ण चैतन्य। नाम परम श्रीकृष्ण चैतन्य।।

केशव भारती—अहा! सार्थक नामसकरण-'श्रीकृष्णः स एव चैतन्य श्रियः युक्तः यः कृष्णः स एव चैतन्यः।

एक नाम में तीन हैं, श्री, कृष्ण, चैतन्य।
श्रीसहित जो कृष्ण हैं, वे ही हैं चैतन्य।।
कृष्ण ही चैतन्य हैं, चैतन्य ही है कृष्ण।
जासों चेतन सब जगत, सोइ कृष्ण चैतन्य।।

अतएव वत्स! या नवीन जीवन में तुम्हारो पुरातन नाम श्रीकृष्ण चैतन्य विख्यात होयगो।

निताई—श्रीकृष्ण चैतन्य की जय। श्रीकृष्ण चैतन्य की जय।।

अर्थात् अचेतन जीव कूँ चेतन करकै वाके मुख सों जो कृष्ण-कृष्ण बुलवावैं हैं उनको नाम है श्रीकृष्ण चैतन्य। सुनौ, जिनके-

दरस किये नैनन कूँ, चेत होत है कृष्ण को
रसना कूँ चेत होत, कृष्ण कृष्ण नाम को।
परस किये रोम रोम, चेरति रमैं कृष्ण ही में
सरस होत चित्तहू, कठोर पाषान को।
दरस परस कहा सुमिरेहू नाम जाके
अचेत कूँ चेत होत, हेत होत कृष्ण को।
जीव कूँ चेतावैं, कृष्ण नाम कूँ चेतावैं नित
'प्रेम' कूँ चेतावैं गाओ कृष्णचैतन्य नाम को।

श्रीकृष्णचैतन्य की जय (तीन बार)

केशव भारती—(दण्ड-कमण्डलु प्रदान करते हुये) यह लेओ संन्यासी को निग्रह दण्ड और अनुग्रह करमंडलु! आज सों जगत् में तुम्हारों कोई नहीं और तुम सबके हो। समदर्शन ही अब तुम्हारो साधन और परम सिद्धि है। हरिः ओऽम् तत्सत्

महाप्रभु—(दण्ड झुकानत जानु हा प्रणाम पूर्वक)

गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

केशव भारती—(महाप्रभु के शीश ऊपर अभय मुद्रा प्रदान) नारायण! नारायण!

निताई—(जनसमूह प्रति) देखो देखो हे कलि के जीव। विषय वैभव के अन्ध कूप में ते निकस करकै आँखिन कूँ उधार कै देखो। आज तुम्हारे हित भगवान् गौरघन्द्र कौपीन पहन कर भिक्षु बनै हैं। अनाथिनी वृद्धा माता और बालिका भार्या कूँ ऊनल दु:ख सागर में डुबोय करकै संन्यासी बनै हैं। अतएव हे जीव! माया के कुहुक-जाल में मत भूलौ। आँख खोलौ और बोलो 'हरिबोल'। मेरे गौरकृष्ण चैतन्य महाप्रभु आज भिक्षुक हैं तिहारे द्वार पै। देओ, यही भिक्षा देओ-'हरिबोल' (तीनबार)

समाज (चौपाई)—

कृष्ण कृष्ण हित भये कंगाल। गहन गूढ़ यह चरित रसाल।।
देव गगन सों अखल निहारैं। जय जय जय हरि गौर उचारैं।।

केशव भारती—(भीतर चले जायँगे-आगे नहीं रहेंगे)

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं श्रीविरिंचिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणाविन्दम्।।

संन्यासीचूड़ामणि कृष्णः संन्यासाश्रम पावनः।
चैतन्यः कृष्णचैतन्ये दण्डधृक् न्यस्तदण्डकः।।

पद (बहार-दादरा)—

जय श्रीकृष्णचैतन्य स्वरूप।
कंचन वरण सुकंचन त्यागी,
कंचननाथ अकिंचन रूप।।१।।

जय निज-नाम-विनोदाचार्य,
निजरस रूप माधुर्य लोलुप।।२।।
जय श्रीराधाभाव विभावित,
अन्त:कृष्ण बहि: गौरस्वरूप।।३।।

आरती—

जय कलिहत-दुर्गत जन-रक्षक,
परम उदार महाशय अनूप।।४।।
जय वैराग विद्या निजभक्ति-
योग प्रकाशक भावरसभूप।।५।।
जय संकीर्तन-यज्ञ विधायक
यज्ञेश्वर संकीर्तन रूप।।६।।
जय कलौच्छन्न आराध्य महाप्रभु
कपट 'प्रेम' संन्यासी स्वरूप।।७।।
आरती-हरिबोल

इति संन्यास ग्रहण लीला सम्पूर्ण।

संन्यास लहरी **द्वितीय कणामृत**

राढ़-भ्रमण एवं शान्तिपुर गमन लीला

मंगलाचरण—

त्यक्त्वा गेहं स्वजनसहितं श्रीनवद्वीप भूमौ
नित्यानन्द-प्रणय-वशगः कृष्णचैतन्य चन्द्रः।
भ्रामं भ्रामं नगरमगमत् शान्ति पूर्व पुरं य
स्तं गौरांग व्रजजिगमिषाविष्टमूर्त्ति स्मरामि।।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधा गोविन्द।।
नव संन्यासी गौरचन्द्र, कृष्णचैतन्य नव नाम।
चलै वृन्दावन लक्ष्य करि, पहुँचे शान्ति धाम।।

सवैया—

कृष्ण प्रेमवश कृष्णचैतन्य, बनि संन्यासी गौर चले।
मुख वृन्दावन हिय वृन्दावन, वृन्दावन दरसन कूँ चले।

नेह जार बिछाय निताई, फँसाय कै पंछी पकरि चले।
सो लीला कछु कहौ 'प्रेम' जिमि, भक्तके वश भगवान चले।।

(पर्दा खुलता है। आश्रम। केशव भारती, महाप्रभु, नित्यानन्द, चन्द्रशेखर आचार्य, गदाधार, मुकुन्द आदि भक्तजन)

रजनी गुरु आश्रम महँ, कीन्हों वास सुवास।
कृष्ण कीर्तन भावरस, भूले भुलाये दास।।

जान्यौ भयो प्रभात, वन्दे गुरु पद भाव धरि।
जाचत जोरि जुग हाथ, श्रीवृन्दावन जान चहौं।।

महाप्रभु—जय जय गुरुदेव! आपकी परम कृपा सों मैं गृहबन्धन ते मुक्त भयो एवं श्रीकृष्णदास बन पायो हूँ। अब श्रीकृष्ण दर्शन के लिये श्रीवृन्दावन जायवे की अनुमति प्रदान करें। अपनो वरद हस्त मेरे शीश पै धरैं जासों मोकूँ श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त होवैं।

केशव भारती—वत्स! श्रीकृष्ण तुम्हारी समस्त मनोकामना पूरी करैंगे! मेरी इच्छा है कि तुम कछु समय यहीं मेरे समीप रहौ एवं कृष्णनामामृत मोकूँ पान कराओ। पश्चात् सानन्द वृन्दावन-गमन करनौ।

महाप्रभु—(हाथ जोड़) जय जय गुरुदेव! आपकी आज्ञा पालन ही मेरो सर्वोपरि कर्तव्य है-यह मैं जानूँ हूँ। परन्तु करूँ कहा मेरे प्राण नहीं मानै हैं। यह तो वृन्दावन जायवे के लिये अत्यन्त अधीर व्याकुल है रहे हैं। यासों कृपा करौ। आज्ञा प्रदान करौ। आशीर्वाद दैओ। मोकूँ श्रीकृष्ण मिलैं।

केशव भारती—तो जाओ वत्स! मैं अपने सुख के लिये तुम्हारे सुख में बाधक नहीं बनूँगो। जाओ सुखेन वृन्दावन जाओ। चलौ मैं हूँ तुम्हारे संग कछु दूर तक चलूँ हूँ।

महाप्रभु—हरिबोल! (गुरु को प्रणाम कर चलते हुये) जय वृन्दावन यह यमुना। जय वंशीवट जय पुलिना।।

(गाते हुये प्रस्थान)

(केशव भारती, नित्यानन्द महाप्रभु का दण्ड लिये, मुकुन्द कमंडलु लिये, गदाधर कौपीन वस्त्र लिये, चन्द्रशेखर आचार्य आदि सब कीर्तन करते हुये चलते हैं)

समाज—

आगे गौर भुजा उठाये। पीछे निताई दंड उठाये।।
प्रभु करमंडल कोई सम्हारै। कटि वस्त्र काँधे कोई धारै।।

चन्द्रशेखर आचारज जावैं। मुकुन्द गदाधर विह्वल धावैं।।
केशव भारती हूँ संग लागे। तजिन सकें अतिशय अनुरागे।।
ग्रामवासी गृह सुध बिसराये। फनि ज्यों मनि पाछे लगि धाये।।
भाव आवेश भरे प्रभु जावहिं।
श्लोक भगवत पुनि पुनि गावहिं।।

(प्रवेश महाप्रभु श्लोक पाठ करते हुये। पीछे भक्तमंडली)

महाप्रभु (श्लोक) —

एतां समास्थाय परात्मनिष्ठा-
मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्त पारं
तमो मुकुन्दांघ्रि निषेवयैव।।

(भाग०)

साधु साधु ब्राह्मण! तुम्हारो संकल्प साधु है। मैं हू तूम्हारी निष्ठा को अनुगमन करूँगो तथा श्रीमुकुन्द हरि के चरणकमलन के सेवन सों या अपार माया कूँ पार कर जाऊँगो।

गाना (पद-मालकोष ३) —

श्रीपाद सेवा सार, मुकुन्द के।
सोइ सेवा हित साज सज्यो यह, पंथ चल्यौ निरधार।।श्रीपद०
ऋषि मुनिगण काल अनादि सों, जापै चलि भये पार।
परते पर आतम अद्वय तत्त्व, ब्रह्म श्रीनन्द कुमार।।
श्रीपद०।।हरिबोल
हँसत मुकुन्द जब कुन्द कुसुम ज्यों, छिटकत कौमुदीधार।
चलत मुकुन्द पद पदम पराग पै, लोटत मुक्ति आपर।।
श्रीपद०।।हरिबोल
मुकुन्द भजन ही करम धरम को, परम धरम निरधार।
मुकुन्द 'प्रेम' सों दुस्तर माया, करिहौं सहज हीपार।।
श्रीपद०।।हरिबोल

समाज (चौपाई) —

मुरि देखत प्रभु तब लखि पाये।
आचारज चन्द्रशेखर संग आये।।

दीन वचन कहि विनय सुनाये।
रिणी आपन कूँ ठानि बताये।।

महाप्रभु—आचार्य देव! आप मेरे पिता तुल्य हैं। आपने मेरी प्रसन्नता के लिये अपनी इच्छा के विरूद्ध हू बहुत से कार्य करकै मेरी सहायता करी है। याके लिये मैं सदैव रिनिया रहूँगो। मोकूँ अपनो बालक समझ सदैव कृपादृष्टि राखैं और अब मेरी प्रार्थना मानकै घर लौट जावैं। मोकूँ वृन्दावन जान दैवैं।

चन्द्रशेखर—(महाप्रभु से लिपट रोते हुये) वत्स! तुम्हारी इच्छा के विरूद्ध चलवे की सामर्थ्य मोमें कहाँ। तुम्हारी आज्ञा माननी ही परैगी। किन्तु वत्स! हमकूँ भुलाय न दीजौ। माता कूँ, भक्तन कूँ एकबार आयकै अवश्य दर्शन दीजौ हाय हमारे भाग्य फूट गये जो अब तुम्हारी सेवा सों वंचित है गयें।

महाप्रभु—आचार्य देव! अब आप नवद्वीप लौंट जावैं और वहाँ सबन कूँ सान्त्वना देवैं। आज आपकूँ घर छोड़े तीन दिन है गये हैं। अब माता के समीप जायकै बिनती कर दीजौं कि मैं शीघ्र ही उनके चरणन के दर्शन करूँगो। हरिबोल (चल देते हैं)

चन्द्रशेखर—हा वत्स गौर! (भूमि-पतन)

समाज (दोहा)—

हा गौर कहि धरन पै, परै आचारज देव।
चलै तजि निज पंथ प्रभु, उचरत हरि हरिदेव।।

कृष्ण कृष्ण कहि मारग जावैं। ग्रामवासी जनवहु संग धावैं।।
बोल हरि कहि नाचै गावैं। कृष्ण चैतन्य लखि चेतन पावैं।।

महाप्रभु—(कीर्तन करते हुये प्रवेश-पीछे पीछे ग्रामवासी कीर्तन०) हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल।

(जनता प्रति)

कृष्ण सम्बन्ध करौ सब भाई।
जो सुख अक्षय चहौ कमाई।।
जाओ घर करौ हिलमिल कीर्तन।
हरि ओ राम राम हरि ओ कृष्ण।।

सम्मिलित—(सम्मिलित) हरि ओ राम राम हरि ओ कृष्ण।।

(कीर्तन करते-करते प्रस्थान)

समाज—

हरि हरि गाय गवाय फिरावैं। नाम प्रेस धन जन जन पावैं।।
तब प्रभु राढ़ देश चलि आये। धन्य भूमि निताइ प्रगटाये।।
मंडली वट वृच्छन वहु सोहै। भूमि हरित तृण संकुल मोहै।।
जहँ तहँ धेनु कुल सुख चरहिं। हेरत प्रभु आवेश जनावहिं।।
निरतत गरजत करहीं हुँकारा। आवत संगीजन घिरि ओरा।।

महाप्रभु—(प्रवेश गाते हुये। पीछे-पीछे निताई, मुकुन्द, गदाधर)

धुन-दादरा—

मनमोहन श्याम नन्दलाल।
गिरिधारी गोविन्द गोपाल।।

गोविन्द गोपाऽऽल, गोविन्द गोपाऽऽल।
मनमोहन श्याम नन्दलाल गिरिधारी०।।हरिबोल

(ग्रामवासी दौड़-दौड़कर आते और संग-संग कीर्तन करते हुये चलते हैं)

समाज (कवित्त)—

सुनि धुनि नाम घोर, आवैं जन दौरि दौरि
देखै न सुनै कबहू, कीर्तन को नाम है।
ऐसो यह देश जहँ, जाय करि गौर प्रभु
रूप दिखाय निज नाम कियो दान है।
देबैं ठोग नाचैं गावैं, मानैं अचरज बहु
कहैं रोवें काहे साधु, कहा पीर प्रान है।
देख देख रोवैं आप 'प्रेम' को प्रताप प्रभु
एक ही प्रदीप सों, जुरै दीप लाखन है।।

जनता—हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल।

(महाप्रभु एवं ग्रामवासी-सब कीर्तन करते हुये चले जाते हैं)

समाज (चौपाई)—

चलत चलत दिन गयो अथाई। भोर चले पथ साँझ है आई।।
पायो पथ पहँ क्षुद्र इक गामा। विप्र गेह तहँ कीन्ह विश्रामा।।
करि भिक्षा पौढ़े हरि गौरा। ढिंग सोये संगीजन ओरा।।

(पर्दा खुलता है। भूमि पर महाप्रभु शयन कर रहे हैं। अगल
बगल में नित्यानन्द आदि सो रहे हैं)

पथ श्रम थकित निद्रा अति आई। सोये मुकुन्द गदाधर निताई।।
प्रभु अँखियन निद्रा कछु नाई। रह्यौ तहाँ चितचोर समाई।।

महाप्रभु—(उठ बैठते हैं) हरिबोल (कहते हुये चल देते हैं) (निताई आदि सब सोये पड़े रहते हैं)

समाज (बंगला)—

पहर खानेक निशा थाकिते ठाकुर।
सभा छाँड़ि पलाइया गेला कतो दूर।।
पहर निशा प्रभु चले पलाई। सोवत तजि संगीजन भाई।।
(पटाक्षेप)

समाज (पद-यथाराग)—

जाहि लगन लगी घनश्याम की।
धरत कहूँ पग परत कितहूँ, भूलि जाय सुधि धाम की।।
छवि निहार नहिं रहत सार कछु, घरी पल निशदिन याम की।
जित मुँह उठै तितही उठि धावै, सुरति न छाया धाम की।
अस्तुति निन्दा करौ भले ही, नेहतजी कुल गाम की।
'नारायण' बौरी भई डोलै, रही न काहू काम की।।

समाज—

नींद नसी जागे नहीं पाये। फनिमणि बिन जन अति अकुलाये।
दौरि गाँवहिं खोजि बहु आये। रोवत टेरत व्याकुल धाये।।
(प्रवेश रोते पुकारते हुये नित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द)

गदाधर—हाय प्राणनाथ! हम अभागेन कूँ सोते छोड़ कहाँ चले गये! हमकूँ संग लायकै बीच में ही काहे कूँ त्यागि गये

मुकुन्द—हमारो ही दोष हो गदाधर! हम सोय गये! अपने देह-सुख के पीछे अपनो प्राणधन गँवाय दियो। हाय! हम पारी सों क्यूँ न सोये।

निताई—दर्शन देओ प्रभो! आपही दया करौ दयामय! आप ही न दर्शन दैनो चाहौ तो हम आपकूँ कहा खोज सकैं हैं! कृपा करों! दर्शन देओ!

महाप्रभु—(नेपथ्य में से क्रन्दन ध्वनि) हा कृष्ण! प्यारे कृष्ण! कहाँ हो? प्राणकृष्ण! जीवन कृष्ण।

निताई—(चौंककर) यह तो प्रभु की ही पुकार है! कहूँ दूर ते आय रही है।

मुकुन्द—मैदान पार की आवाज! चलैं! दौड़े (सब दौड़ते हैं। फिर बाहर निकलते है)

महाप्रभु—(नेपथ्य में से पुनः ध्वनि) हा कृष्ण! हा वृन्दावन।

गदाधर—वह सुनौ! फिर ध्वनि आयी! प्रभो! प्रभो (भागता है)

निताई—मिल गये! मिल गये। (भागते हैं)

समाज (चौपाई)—

दौरत पुनि पुनि धुनि सुवि पावैं। लागत ढिंग पै ढिंग नहिं पावैं।।
धुनि अनुसरि बहु धावहिं, चिन्ता भय उरमाँही।
हमहिं आवत जान कहुँ, चलैं न प्रभु पलाई।।

(दो तीन बार दौड़ते हुये आयँगे-जायँगे)

(दृश्य-पर्दा खुलता है। महाप्रभु एक वृक्ष के सहारे बैठे विलाप कर रहे हैं)

महाप्रभु (पद-भैरव-३)—

कित तरसाओ रुवाओ प्यारे।
शीतल चन्द कोटि सममुख यह, कहो फिर काहे जराओ प्यारे।।

बोलो प्यारे बताओ तो तुम इतने शीतल और इतने ताते कैसे? इतने मीठे और तीखे कैसे? इतनो जराओ क्यों हो? कहा कही 'छोड़ दऊँ तुमकूँ? छोड़ दऊँ तुम्हारे नाम कूँ?' हा हा! ऐसे न कहौ! और सब कछु कह लेओ किन्तु यह न कहौ! तुम्हारो नाम 'कृष्ण' 'कृष्ण' यह कितनो प्यारो है, यह वाणी सों कैसे बताऊँ! यह तो मेरी आत्मा ही जानै है—

रोम रोम प्रति रसना होय तौहु, गाय नाय अघावौं, प्यारे।
तुम्हारे नाम सों जीवित 'प्रेम', नाम बिना मरि जावौं प्यारे।।
हा कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
हा कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।

(प्रवेश दौड़ते हुये नित्यानन्द एवं संगीजन)

निताई—ये रहे प्रभु! हरिबोल! हरिबोल!

महाप्रभु—(उठकर कीर्तन करने लगते हैं) हरिबोल! हरिबोल

समाज (सोरठा)—

नाचत गावत भक्त, पाय गौर मणि हर्ष अति।
सुनि उठे प्रभुहू मत्त, भुजा उठाय नाचत चले।।
(कीर्तन करते-करते आगे चलते हैं)

दिशि पश्चिम धावत चलि जावहिं।
कबहु मन्द बेगि कभु धावहिं।।
वन पथ धावत लखि ना परहिं। संगीजन व्याकुल अनुसरहिं।।
कृष्णप्रेम रस पीमत वारा। कृष्णचैतन्य पंथ दिशि हारा।।
पश्चिम-उत्तर दक्षिण चलहिं। वन वन भटकत अटकत डोलहिं।।
ये निज प्राण कृष्णहिं टेरहिं। उत नदियाजन इनहीं टेरहिं।।
(दृश्य१-झीने पर्दे के भीतर वृद्ध अद्वैताचार्य शोक मुद्रा में बैठे हैं)

समाज—

कहत अद्वैत देव विश्वम्भर। वृद्ध पुजारीहिं काहे गये छल कर।।

अद्वैत—हे विश्वम्भर देव! हे करुणानिधे! अपने या वृद्ध पुजारी कूँ छल करकै आप कहाँ छिप गये?

पद (दादरा)—

कहाँ गये हाय आओ।
प्रेमसिन्धो दीनबन्धो! कहाँ गये हाय आओ।।
अँखियाँ हमरी अन्ध करिकै, जगत् सब अँधेरो करिके।
बाहर भीतर सूनो करिकै, कहाँ गये हाय आओ।।
सुनि हुँकार तब आये जैसे, सुनि हाहाकार आओ तैसे।
दोष कहा जो छोड़े ऐसे, कहाँ गये हाय आओ।।
कहाँ गये हाय आ...ओ।।
(दृश्य २—पर्दा। दृश्य बदलता। पर्दा के भीतर श्रीवास)

समाज—

श्रीवास कहै मोहिं काहे बचायो। मरन तबही काहे न पायो।।

श्रीवास—हे मेरे जीवन दाता! मैं तो सोलह वर्ष की अवस्था में ही मर चुक्यौ हो। आपही ने तो मोकूँ जिवायौ हो। अब आपही मार रहे हौ!

जो मारना था तो जिलाया ही क्यूँ,
जो जिलाया तो तुमसे मिलाया ही क्यूँ।
जो मिलाया तो नेह बढ़ाया ही क्यूँ
जो बढ़ाया तो कीर्तन रचाया ही क्यूँ।
जो रचाया तो मुख को छिपाया ही क्यूँ
जो छिपाया तो फिर आ दिखाया न क्यूँ।
जो दिखाओ नहीं तो बचाओ ही क्यूँ
तड़फाओ ही क्यूँ अब जिवाओ ही क्यूँ।।

हाय! जो मेरे घर को आंगन आपके हरिनाम की जय-जयकार और खोल करतालन की गुंजार सों गुंजायमान रहतो आज वही हाहाकार-चीत्कार छाय रह्यौ है।! हाय हाय! एक ही दिना में पूनौ अमावस है गई-उजेरी अँधेरी है गई! हे मेरे संकीर्तन रासबिहारी! एक बार फिर तो आआ! हा गौर! गौर!

(दृश्य ३-पटाक्षेप। दृश्य बदलता है। हरिदास बैठे हैं)

समाज—

हरिदास रोवत जो नहिं आवहु। तजिहौ प्रानवार जिन लावहु।।
तुम बिन अधमन कूँ कहाँ ठाऊँ। गौर गौर मोहिं आय बचाऊँ।।

हरिदास—हे नाथ बन्धों! हे गौर! तुम्हारे बिना या अधम हरिदास के ताई कोई ठौर नहीं है-

मोसम अधम न तुम सम अधम प्रिय
तुम संग गौर कछु, नातो मेरो खास है।
(याकूँ परिचय कब मिल्यौ कि जब)
मोपै जब मार परी, तुमने ही धार लई
दीन के सहायक सदा रहौ जन पास है।
(और हू परिचय मोकूँ नित्य ही मिलै है)
गाऊँ जब नाम हरे कृष्ण हरे राम नित
देखूँ तुम ठाड़े ढिंग, सुनो अरदास है।
(इतनो ही नहीं दीनबन्धो आप तो मोकूँ)
भुज भरि भेंट 'प्रेम' कहत जो बैन अब
कहैगो कौन म्लेच्छ कूँ, प्यारो हरिदास है।।

हा दीनबन्धो! सुध लेओ अपने हरिदास की नहीं तो मैं अपने प्राणन कूँ अवश्य ही तज दऊँगो।

(पटाक्षेप)

महाप्रभु—(दौड़ते हुये घूमते हैं। नेपथ्य से भक्तों की पुकार महाप्रभु दौड़ते हुये रुक जाते हैं)

समाज—(द्रुत पाठ)

भनक परी श्रवनन प्रभु आई।
लटपटाय पग रहै अटकाई।।
नेह डोर भक्तन को करजत। गौरहरि पग त्यूँ त्यूँ अटकत।।
भक्त भगवान महँ परी लराई। भक्तन भाव प्रबल जु सदाई।।

महाप्रभु—(दो चार बार आगे पीछे लड़खड़ाते हैं) नहीं नहीं! मैं काहू की नहीं सुनूँगो। जा ऊँगो! जाऊँगो वृन्दावन।

(दौड़कर निकल जाते है)

समाज (चौपाई)—

टेरत वच्छलाल कहि माई। सो धुनि करुन सुनि ना जाई।।

(दृश्य ४—पर्दा खुलता है। झीने पर्देके भीतर शची का विलाप)

शची—(प्रलाप) नहीं मरूँगी। नहीं मरूँगी। मार्कण्डेय की सी आयु जो पाई है। अरे तुम लोग कितने निठुर हौ। मेरे निमाई कूँ हरकै लै गये। या अनाथिनी वृद्धा विधवा के ऊपर तनक हू दया नही आई अरे! छोड़ो-छोड़ो मेरे लाल कूँ। अरे बेटा मत जा। मैं तोकूँ अब कछु नहीं कहूँगी। तू भक्तन के संग ही दिन रात रह्यौ करियौ परन्तु आय जा लाल, लौटि आ (खड़ी होती हुई) अरे अरे यह कौन संन्यासी मेरे निमाई कूँ लिये जाय है। पकरौ-पकरौ याकूँ। छुड़ाओ मेरे निमाई कूँ। छुड़ाय देऔ न कोई। लाय देओ। मिलाय देओ। निमाई। बेटा नि...मा...ई (पतन)

(दृश्य ५—पर्दा। दृश्य बदलता है। कंचना की गोदी में
सिर रखे विष्णुप्रिया भूमि पर पड़ी हैं)

समाज (चौपाई)—

मदनमोहन दर्शन देहु। टेरत विष्णुप्रिया निज गेहु।।
बैठाय सुख सुमेरु सिर माहीं। बोरि गये दु:ख सिन्धु अथाही।।

विष्णुप्रिया—हा प्राणनाथ! कहाँ हो ? प्राण जायँ हैं। दर्शन देओ कहा दर्शन की प्यासी ही मर जाऊँगी! हा नाथ! मैं तुम्हारी कछु सेवा नहीं कर सकी। तबही तुम मोकूँ छोड़ गये। चले गये। कहाँ गये ? तो अब मैं अपने या कारे कलंकी मुख काहूँ कूँ नहीं दिखाऊँगी। मैं हू मरूँगी! लाओ री विष लाओ कोई मैं पीऊँगी। छुरी लाओ काई! मैं छाती पै मार मरूँगी। मरूँगी। हा प्राणनाथ-प्राण...(पतन)

(पर्दा)

महाप्रभु—(दौड़ते हुये प्रवेश। नेपथ्य से 'हा प्राणनाथ' महाप्रभु-महाप्रभु दौड़ते हुये रुक जाते हैं)

समाज (चौपाई)—

नेह डोर भक्तन को करषत। गौर हरि पग पग मग अटकत।।

महाप्रभु—नहीं-नहीं या त्याग में काहू को भाग नहीं। कृष्णअनुराग में काहू की लाग नही। अरी भावग्राहीता! दूर हो! दूर हो! भक्तवत्सलता! क्षमा कर मैं काहू को नही हूँ। हा कृष्ण! हा वृन्दावन! (दौड़कर निकल जाते हैं)

समाज (सोरठा)—

दूजे दिन इक ग्राम, रैन बसेरा करि चलै।
श्रीकृष्ण के धाम, श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु।।

दिन तीजौ बीत्यौ मग माँही। पश्चिम ओर चलत मग जाहीं।।
चौथो दिवस दिशा पलटाई। पूरब ओर चलै पुनि धाई।।
पहर काल बील्यौ मग माँही। ग्राम वस्ती इक पहुँचे जाँही।।
घर बाहर खेतन नर नारी। निज निज काजन लागै भारी।।
कृष्ण राम हरि कोई न बोलैं। उदर हेत जहँ तहँ सब डोलैं।।

(प्रवेश महाप्रभु—पीछे-पीछे नित्यानन्द)

पाय दुख प्रभु वचन सुनाये। कौन देश विधना हम लाये।।

महाप्रभु—हाय श्रीपाद! हम कौन-से देश में आये गये हैं यहाँ तो कोई भगवन्नाम लैकै हू नहीं जानै है! न जानै कब वृन्दावन के दर्शन होंगे-

पद (आसावरी-दादरा)—

कहो निताई दूर कितेक वृन्दावन हाय।
देखूँगो कब आँखिन सों वृन्दावन हाय।।

वह चितचोर नन्दनन्दन, मन चुराय मारत है तन।
देश देश डोलूँ वन वन, दरस पाऊँ नहीं हाय।।
लै चलौ श्रीकालिन्दी तट, धीर समीर वंशीवट।
कृष्ण बिना ए जीवन संकट, करौ सहाय भाई हाय।।
वृन्दावन तरुबेलि पात, कृष्ण नाम अंकित गात।
बूझिहो तिन सों कृष्ण बात, दैहैं प्रेम लखाय हाय।।

(गाते-गाते प्रस्थान)

(प्रवेश बंगाली ग्वाल बालक-अमिय, शशी, जदु)

अमिय—ही ही हो! बोल्लुम आमि, गोरु गुलो के माठे ते राख्। ता शुनले ना! एखन् शाला शाला। गोरुरा सब खेत खाइते ढुकेछे।

शशी—दोष तो तोरई शाला। आमि बोल्लुम बांशी बाजाइते शेक्। ताहले गोरुरा कोन् दिकेइ जावे ना। एखन मर शाला गोरुर लेज धोरे धोरे।

जदु—आरे थाक् थाक्। आगे डाक् दे डाक्। गोरुरा खेते ढुके पोड़े छे।

सब—हीयो कारी काजर धौरी धूमर।

(प्रवेश महाप्रभु और निताई)

महाप्रभु—हा कृष्ण! कहाँ कृष्ण! बताओ कोई!

अमिय—अरे ओ शशी! यह कौन साधु बाबा जाय रह्यौ है। कबहू पूरब तो कबहू पश्चिम माहुँ जाय है। यह बाबरो है कै मतवारो?

शशी—और यह रोय काहे कूँ रह्यो है। याकूँ देखके तो मोकूँ हू रोमनो आबै है।

जदु—और मेरो तो नाचवे गायवे को जी करै है।

महाप्रभु—(दौड़कर पास आते) बोलो-बोलो-हरिबोल

जदु—हरिबोल।

महाप्रभु—और जोर सों बोलौ हरिबोल

सब बालक—हरिबोल, हरिबोल (नाचते-कूदते हैं)

निताई—धन्य कौतुकी लीलामय धन्य! कैसे-कैसे छल सों हरिनाम बलवाये रहे हो।

सब बालक—हरिबोल! हरिबोल (नाच-कूद रहे हैं)

महाप्रभु—जिवाय लियो! हरिनाम सुनाय कै मोकूँ जिवाय लियो। बहुत दिनान सों प्यारों हरिनाम सुन्यौ नहीं हो। अवश्य ही तुम ब्रजवासी ग्वाल बाल हो। तबही तो अपने प्यारे सखा को प्यारो नाम लै रहे हो।

गाना (सारंग-खेमटा)—

अहो ब्रजवासी प्राण पियारे।
नाम मधुर कहाँ पायो कहाँ रे।।
नाम मधुर हरि नाम मधुर, हरिनाम मधुर महा रे।
नाम सुनाओ हरिनाम सुनाओ, मेरे प्राण पियारे।।
तुम गोपाल गोपाल दुलारे, कहाँ तुम्हारो धन कृष्ण पियारे।
कहाँ वृन्दावन प्यारो वृन्दावन, श्याम वृन्दावन दूर कहाँ रे।
तरफत प्रान मेरे तरफत प्रान, तरफत प्रान 'प्रेम' हा हा रे।।

समाज (दोहा)—

तब निताइ चतुराई करि, दिये बाल समझाय।
मर्म जान तिनहू दिये, उल्टो पंथ बताय।।

निताई—(बालको को एक तरफ ले जा धीरे से) बालको! कह देओ वृन्दावन इतकूँ है उतकूँ नहीं।

अमिय—हम झूठे क्यों बोलैं बाबा?

निताई—अरे खूब तो दूधभात खायवे कूँ मिलैगो और बाप-राजा-रानी बनेगे।

शशी—तबे बोलवो-बोलवो! (महाप्रभु-प्रति) ओ ठाकुर! ओदिके नयए दिके। वृन्दावन जे ए दिके।

अमिय—हाँ बाबा! वृन्दावन इत माहुँ है-उत माहुँ नहीं। हरिबोल।

महाप्रभु—(लौटते हुये) हरिबोल! अहा हा! तभी तो वृन्दावन इतनो मधुर है। वृन्दावन मे सबही हरि हरि बोलै हैं। पशु-पक्षी हरि हरि बोलै हैं। चलौ श्रीपाद! वृन्दावन चलैं। यमुना न्हावेंगे! यमुने! कृष्णे! (दौड़ जाते हैं। दूसरी तरफ से चन्द्रशेखर, गदाधर, मुकुन्द का प्रवेश)

मुकुन्द—प्रभु कहाँ है श्रीपाद?

निताई—प्रभु यमुना समझकै गंगा की ओर दौड़े जाय रहे हैं। परन्तु चन्द्रशेखर जी आप यहाँ कैसे? आप नदिया नहीं लौट गये?

चन्द्रशेखर—श्रीपाद! जब प्रभु मोकूँ लौटाय तुम सबन कूँ लैकै चले आये तो मैं मूर्च्छित है गयो। जब मूर्च्छा भंग भई तो मोसों गौरसुन्दर को वियोग सहन नही भयो और मैं हू पीछे-पीछे खोज करतो भयो आय गयौ। कहा करूँ नदिया नहीं जाय सक्यौ।

निताई—अच्छो ही कियौ। अब आप लौट करकै माता और सब भक्तजनन कूँ मेरो संदेश सुनावैं। प्रभु गंगा की ओर लौट तो परै हैं। मैं हू उनकूँ लौटायवे की पूरी चेष्टा कर रह्यौ हूँ। जैसे बनै छल-बल करकै एकबार तो अवश्य ही लौटाय माता सों मिलाय दऊँगो। यह वचन मैं माता कूँ दै आयो हूँ। माँ धीरज रखैं। और एक विशेष कार्य। अद्वैताचार्य नवद्वीप ही होंगे उनकूँ तुरन्त शान्तिपुर भेज दैनौ। मैं प्रभू कूँ लौटाया गंगा के या पार फुलिया गाँव में लाय रह्यो हूँ। वे वा पार ते नौका लैकै फुलिया चले आवैं। बिलम्ब न करैं। बस अब आप शीघ्र ही नवद्वीप पहूँच जावें।

चन्द्रशेखर—ऐसो ही करूँगो श्रीपाद! आप एकबार प्रभु कूँ लौटाय लायकै हम सबन कूँ जीवन-दान करौ। प्रणाम (प्रस्थान)

निताई—मुकुन्द! गदाधर! चलौ, दौडो! प्रभु कहूँ दूर न निकल जायँ (सब दौड़ जाते हैं)

(प्रवेश दौड़ते हुये महाप्रभु-कुछ पीछे नित्यानन्द)

निताई—नेक धीरे प्रभो! नेक धीरे चलो। हम आपके संग-संग नही चल सकै हैं। भागते -दौड़ते आज चौथो दिन है। आप तो अपने परमानन्द में निमग्न रहौ हो। काया-क्लेश को कोई भान नहीं है। परन्तु हमारे ऊपर तो कृपा करौ विशेष करके अपने गदाधर और मुकुन्द की दशा तो विचारौ। वे तो बहुत दूर पीछे रह गये हैं।

महाप्रभु—भले आये दादा! दोनों जन वृन्दावन चलेंगे। अबही कितेक दूर है वृन्दावन?

निताई—दूर कहाँ? हम वृन्दावन की भूमि पै ही तो चल रहे हैं।

महाप्रभु—अच्छो! वृन्दावन आय गयो! यमुना आय गई। अहा! अब अवश्य ही वृन्दावनचन्द्र के हू दर्शन होंगे। अहो भाग्यम्! अहोभाग्यम्!

निताई—भाग्य-फाग्य तो रहन दैओ प्रभो! मेरी तो सारी देह चूर-चूर है रही है। चलते-चलते पाँवन में छाले पर गये हैं। पेट पीठ सों जाय लग्यौं हैं। चलौ सामने यमुना जी में स्नान करकै वंशीवट की शीतल छैयाँ में विश्राम करैंगे (स्वगत) न जानैं अद्वैताचार्य जी कब तक नौका लैकै

आवैंगे। मैं कब तक प्रभु कूँ भुलाय सकूँगो (दूर देखते हुये) अहा हा! एक नौका आय तो रही है। देखौ-देखौ प्रभो! वह रही यमुना! वह यमुना पुलिन! (गंगा की ओर संकेत)

(दृश्य-गंगा नदी)

महाप्रभु—(दोनों हाथ उठाये) यमुने! कालिन्दी! कृष्णे! (कहते हुये दौड़कर कूद जाते हैं)

समाज (चौपाई)—

गंगा लखि प्रभु मानत यमुना।
दौरि परै जल मुख जय यमुना।।

महाप्रभु—(गंगा गर्भ में खड़े स्तुति)

यह कालिन्दी नीरद-निन्दी-नीर-नील धारिणी।
चिदानन्द भानु तनया, वृन्दावन विहारिणी।
कृष्ण रूप हृदय धारी कृष्ण रूप रूपिणी।
भाग्य लखि सराहें बार बार सुर तरंगिणी।।१
कृष्ण कृष्ण प्रियागण के अंग रंग रंगिनी।
कृष्णकेलि करैं प्रचार कल कल तरंगनी।
मैं हूँ नाचूँ तेरे संग रंग दे प्रेम रंगिनी।
तेरे संग सों मिलैंगे कृष्ण भानुनन्दिनी।।२

(गंगा में किलोल करते हैं)

निताई—(स्वगत) धन्य लीलामय तिहारी या भाव-तन्मयता कूँ जो सर्वत्र अपने इष्ट की ही स्फूर्ति होय है। यह आप अपने आचरण द्वारा हमकूँ शिक्षा दै रहे हो। अहा! वह देखो नौका घाट पै आय लगी है। यह तो अद्वैताचार्य ही हैं। अब मैं निश्चिन्त भयो!

समाज (चौपाई)—

भाव मग्न जल करैं विहार। आये अद्वैत नाव लियेवार।।
कर गहि तीर उठाये निताई। करत प्रणाम अद्वैत गुंसाई।।

(उधर अद्वैत कटि वस्त्र व कौपीन लिये नौका पर से उतरते हैं। इधर नित्यानन्द महाप्रभु को पकड़ कर जल से निकालते हैं)

अद्वैत—(साष्टांग प्रणाम करते हुये) प्रभो! कृपा करो कृपा!

समाज (दोहा) —

अर्ध बाह्य मन दशा प्रभु, नहिं पहचानत कौन।
भेष रूप संन्यासी लखि, व्यथित आचारज मौन।।

अद्वैत—हाय-हाय श्रीपाद! अबहू मैं जीवित हूँ-प्रभु के भिक्षुभेष देखवे के तांई जीवित हूँ। हाय-हाय प्रभो! यह आपने कहा ते कहा कर लियो!

गाना (सोहनी) —

न वह केश है न वह वेष है, न वह पाट है न वह ठाट है।
न वह हास्य है न वह लास्य है, न वह बाट है न वह हाट है।
नहीं कछु ही नहीं है वह, है वदन वही सुख रास है।
नहीं ग्रास है कभु राहु करि, वही गौरचन्द्र वही दास है।।
प्रभो! प्रभो! (चरणों पर गिर पड़ना)

महाप्रभु—(ध्यान पूर्वक देखते हुये) हैं! अद्वैताचार्य जी? आप यहाँ वृन्दावन में मोते हूँ पहले आय पहूँचे! यह तुम जान कैसे गये कि मैं वृन्दावन में हूँ?

अद्वैत (पद-१ ताला-गूजरी) —

तुम बिन अँखियाँ ये अन्ध, कान वधिर वैन बिन।
तुम ही हमरी परम निधि, सर्वसु हो प्राणधन।।
तुम्हारो पद पंकज रस, मुक्ति तिक्त भक्तन।
गरल सुधा अनल मानो, लेपन चन्दन तन।।
तुम तो नातो तोरि 'प्रेम', तजि फ्लाय गये वन।
कैसे हम सकै छोड़ि, अपनो आराध्य धन।।

समाज (दोहा) —

गीले वस्त्र कौपीन तन, पलटि शुष्क पहराय।
रहै विलोकि गौर तन, सुख दुख कह्यौ न जाय।।
(प्रवेश दौड़ते हुये मुकुन्द और गदाधर)

महाप्रभु—(आश्चर्य) हैं! यह कहा आश्चर्य! यह गदाधर और मुकुन्द हू आय पहुँचे वृन्दावन! तो कहा यह वृन्दावन नहीं हैं? यह यमुना नहीं हैं? श्रीपाद! साँचो बताओ यह कहा बात है? तुम मोकूँ भुलायकै कहाँ लै आये?

अद्वैत—अन्तर्यामी सर्वेश! आप स्वयं ही न भूलनो चाहौ तो भलो कौन आपकूँ भुलाय सकै है?

गाना-गजल—

न भूले ही तुम न भुलाया किसी ने।
हम भूले हुओं से तुम, आये हो मिलने।।१
हम रोते थे जान अपनी, खोते थे बेवस।
दया करके हम पै तुम, आये हो मिलने।।२
न तुममें कभी कोई, इच्छा है अपनी।
बस भक्तोंकी इच्छा से, आये हो मिलने।।३
ये भक्त ही आँखें और, दिल है तुम्हारे।
बँधे प्रेम-डोर से, आये हो मिलने।।४

महाप्रभु—परन्तु हाय-हाय! मेरो वृन्दावन तो छूट ही गयो।

गाना-माँड—

कहाँ वृन्दावन ब्रजेन्द्रनन्दन, प्राण आनन्द रमण कहाँ।

अद्वैत—

तू ही वृन्दावन ब्रजेन्द्रनन्दन, प्राण आनन्द रमण महा।।
गौर तन मधि श्याम राजे, श्याम तन मधि गौर भ्राजै।
दुहुँ दुहुँन के नैनन छाजै, विरह वियोग तहाँ कहाँ।।

महाप्रभु—(हाय)

नैन नैन सोंअधर अधर सों, उरसों उर मिलै न मिलाई।
सो पिय दूरे जमुना तीरे मधुर वदन वह तिहारो कहाँ।।
हाय! श्रीपाद! आज आपने बड़ो धोकौ दियौ!

अद्वैत—क्षमा करौ प्रभो! श्रीपाद ने आज हमारो अत्यन्त ही उपकार कयौ है। तीन दिना सों आप वन-वन में भूखे प्यासे डोल रहें हैं। सो इनने आपकूँ लाय हमारे हाथन में सौंप, अपनो नाम सार्थक कर दियो।

महाप्रभु—सार्थक कैसे भलो?

अद्वैत—ऐसे कि श्रियं पातीति श्रीपः कृष्णः तम् आददातीति श्रीपादः। अर्थात् श्रीको जो पालन करै वह श्रीप अथात् कृष्ण। ता कृष्ण कूँ जो लायकै मिलाय देवै वाको नाम है श्रीपाद! अतएव इनने आपकूँ मिलाय कै हमकूँ जीवन-दान दियो है।

महाप्रभु—(मुस्कुराते हुये) श्रीपाद मैं तो समझतो हो कि श्रीकृष्ण में ही छल है। परन्तु आपमें तो उनते हू अधिकै छल है। आप जैसे श्रीकृष्ण मिलाय सको हो वैसेइ छीन हू सकौ हो। आपने मेरो वृन्दावन छुड़ाय दियो, यमुना छुड़वाय दई। आप गंगा कूँ यमुना बताओ हो।

अद्वैत—प्रभो! श्रीपाद मिथ्या नहीं कहैं हैं। यहाँ गंगा और यमुना एकाधार ही में है। पश्चिम की धार यमुना की धार है और पूर्व की धार गंगा की धार है। या प्रकार सों एक ही गंगा में द्वैधार बह रही है। अतएव या पार तो यमुना ही है। गंगा तो वा पार है! आपने यमुना ही में स्नान कर्यौ है।

महाप्रभु—बड़ो छल भयो! आप सब मिलै भये हैं।

निताई—(प्रणय कोप सहित) और आपने छल नहीं कर्यौ माता सों छल, पत्नी सों छल, भक्तन सो छल, युग-युग सों छल, सदा छल ही छल! और मैंने जो छल कर्यौ सो काहे के तांई कर्यौ-सो कहा मेरे ही मुख सों सुननो चाहौ हो? हाँ ठीक है। बिना सुने छलिया प्रभु छले भयेन की दशा भलो कहा समझैंगे? यासों स्पष्ट ही कहनो परैगो। तो सुनौ प्रभो! नवद्वीप नगरी के एक प्रदीपशून्य गृह के अन्धकारमय कोने में परी भई अधमरी एक मणिहारा फणिनी वृद्धा माता कूँ मैं वचन दैके आयो हूँ कि मैं उनके निर्मम निष्ठुर, त्यागी, वैरागी पुत्र कूँ एक बार अवश्य ही मिलाय दऊँगो। याके लिये मोकूँ इतनो छल करनो पर्यौ। याके ताँई (सिर झुकाते हुये) मोकूँ जो दण्ड दैनो होय सो देओ परन्तु माता के ऊपर तो कृपा ही करौ। उनके लिये कहा आज्ञा होय है।

महाप्रभु—श्रीपाद! माता के लिये मेरी आज्ञा की कहा आवश्यकता? माता के लिये मोकूँ बड़ो ही दुःख है।

निताई—(व्यंग पूर्वक) निस्सन्देह बड़ो दुःख है संन्यासी पुत्र को! तो नदियावासिन के लिये कहा आज्ञा है?

महाप्रभु—जो कोई मिलनो चाहैं वे सब शान्तिपुर आय जावैं।

निताई—जैसी आज्ञा करुणासिन्धो!

महाप्रभु—परन्तु श्रीपाद! एक न आवै (कान में नाम बता देना)

निताई—(स्वगत। मुख फेर कर) ओफ्! कितनी कठोर आज्ञा है! बड़े निष्ठुर हृदयहीन हो प्रभु!

अद्वैत—करुणासिन्धो! अब आप पधार कै दास की कुटिया कूँ पवित्र करैं।

महाप्रभु—चलौ आचार्य देव! एक बार सीता माता के दर्शन कर चलूँ।

निताई—अब एक मेरी बात सुन लेओ गुंसाई। यह दण्ड तो ग्रहण कर्यौ प्रभु ने और या दण्ड को दण्ड भोगनो पर रह्यौ है हमकूँ।

अद्वैत—कैसे भलो?

निताई—ऐसे कि आज तीन दिन सों हमारी एकादशी चल रही है। ताके ऊपर दिन-दिन चलनौ, दौड़नो भोर ते साँझ तक। क्षुधा के मारे आँख और आँत दोनों निकस रही है। सो अब तुम्हारे यहाँ धूमधाम सों पारण होयगो।

अद्वैत—श्रीविश्वम्भर देव की उदरपूर्ति के लिये तो मेरे घर में है ही कहा? परन्तु हाँ, नंगे अवधूत के लिये द्वै मुठी अन्न जुट ही जायेगा।

निताई—अच्छी बात है! सब पतो पर जायगो भोजन के समय कि कौन अवधूत है-मैं कै तुम?

महाप्रभु—हरिबोल (कीर्तन)

सब—हरिबोल (किर्तन करते हुये प्रस्थान)

समाज (पद-खमाज-एक ताल या दादरा)—

आज तो आनन्द छायौ, अद्वैत जु के घर में।।टेक।।
संन्यास धर्म सफल करि, आये कृष्ण चैतन्य हरि।
शान्तिपुर अद्वैत पुरी, धूम धरन घर में।।१
आरति वारत सीतानाथ, सम्मुख श्रीरमानाथ।
आये त्यागि रमा आज, सीता जु के घर में।।२
बिछुरे धन मीत आये, प्रीति परतीति लाये।
नातो सुपुनीत भाये, दुख सुख उरनउर में।।३
आये दौरि दौरि जन, हेरि हेरि बहत नयन।
बोलत हरि बोल घन, प्रेम पूर थिर चर में।।४

जनता—हरिबोल (आरती बाद पर्दा)

समाज (पद)—

प्रथम भिक्षा गौर हरि की, गाइये कृष्णचैतन्य हरि की।।
उष्णोदक सों गौर न्हवाये, मेटे पथ व्यथा तीन दिवस की।।
मोद भरी माँ सीता देवी, पाक सम्हारती नाना विधि की।।

(दृश्य-महाप्रभु और निताई भोजन को बैठे हैं)

समाज—

सीतानाथ जेमावत प्रभुहिं। मेटि मेंड़ सब विधि निषेध की।।

महाप्रभु—

गौर कहत अद्वैत सों, तुमहू बैठो आय।
मिलि पैहैं हम तीन जु, प्रभु प्रसाद सुहाय।।

अद्वैत—नहीं प्रभो! मैं तो परोसूँगो। आप दोनों आरोगो।

समाज—

नाना विधि पकवान मिठाई। सीतानाथ परोसत जाई।।

महाप्रभु—

कहत गौर पकवान ये सारे। भोजन योग्य न कबहु हमारे।।
ये तो इन्द्री-विकार बढ़ै हैं। धर्म संन्यासी सबही नसै है।।

अद्वैत—

हो तुम जैसे संन्यासी साई। हौ जानौ तुम्हारी चतुराई।।

महाप्रभु—चुप ह्वै भोजन करौ मन भाई।
यह तो अधिक सकौं ना पाई।।

अद्वैत—शेष बचै तो हम सब पैहैं।

महाप्रभु—संन्यासी निज शेष न दैहैं।

अद्वैत—मानहु विनती तजौ जु विवादा।
पूजहु मम हे दयामय साधा।।
लेवहु जल अँचावन करौ, पावहु कृष्ण प्रसाद।

समाज—

हँसि हँसि दोउ भोजन करत, कौतुक करत श्रीपाद।।

निताई—तीन-तीन दिना के उपवास के बाद मैं तो समझ रह्यौ हो कि पारनो में भर पेट खायवे कूँ मिलैगो। किन्तु तुम्हारे न्यौते में मै भूखो ही रह गयो। द्वैमुट्ठी भात सों तो मेरो एक कोना हू पेट न भर्यो।

अद्वैत—

तुम तो तीरथवासी संन्यासी।
खाऔ फल मूल रहौ उपवासी।।
(परन्तु) मो विप्र घर अन्न तो पायो।
करौ सन्तोष मति लोभ बढ़ाओ।।

निताई—तो फिर न्योत्यौ काहे कूँ। न्योतो दैकै अब आधो पेट खवाबै है। और ऊपर ते उपदेश करै है कि सन्तोष करौ। लोभ मत बढ़ाओ।

अद्वैत—तो कहा तुम-
भये अवधूत हो उदर भरन कूँ।
तजिकै शान्ति लरन भिरन कूँ।।
अन्न धौन भरि तुमखै जैहौ।
विप्र दरिद्र हौं कहाँ सों जुरैहौ।।
धन्य भाग मुठि अन्न तो पाये। करहु संतोष कित बात बढ़ाये।।

समाज (दोहा) —

परसत बहु अद्वैत पै, करत प्रभु जु नाहिं।
मनुहारैं मानैं नहीं, पुनि पुनि परसत जाहिं।।
प्रभु कहत भये हम पूरन। कहत निताइ हम निपट अपूरन।।

निताई—

भूखों हाँ तोहू नहि खैहौ। कैसे कृपन को अन्न पचैहों।।

समाज—

लै मुट्ठी भरि भात चलायो। लगत अद्वैत आनन्दहि पायो।।
(पै) बाहर कोप प्रगट जनायो।

अद्वैत—तुमहिं जेमाय सुफल यह पायो।
जाति कुल तुम्हरे तो नाई।
हमरी जाति नसावत आई।।
अपनी जूँठन ब्राह्मण काया।
मारत शंक न भय उपजाया।।

निताई—जूँठो कहौ यह महा अपराधा।
यह तो स्वयं श्रीकृष्ण प्रसादा।।

तुम तो महा अपराध कमाये।
करहु प्रायश्चित दऊँ बताये।।
सौ संन्यासी बोलि जेमाओ।
अपनो महा अपराध नसाओ।।

अद्वैत—

एक संन्यासी सों भर पाये। सौ सौ कूँ अब कौन जेमायै
आचारज कहै ना कोरिवो संन्यासी निमंत्रण।
संन्यासी नासिला मोर सर्व स्मृति धर्म।।

समाज (पूर्वपद) —

प्रथम भिक्षा गौरहरि की, गाइये कृष्ण चैतन्य हरि की।
नित्यानन्द अवधूत शिरोमणि, मारत मुट्ठि भात डली की।।
मधुर कलह करि सुख उपजावत, शूल मिटावत भक्त हृदय की।
'प्रेम' प्रभु जूँठन की आशा, मिटत न प्राण पियासा हरि की।।

महाप्रभु (दोहा) —

सकुच सहित बोले प्रभु, अधिक सकौं नापाय।
मुकुन्द गदाधर सहित, भोजन करहु जाय।।

समाज (दोहा) —

तब अद्वैत अँचवाय कै, दियो शुद्धि मुख वास।
पुनि पौढ़ाये दोउनहि, पद सेवा अभिलाष।।
तीन दिवस पथ श्रम सहि, पौढ़े गौर निताई।
जग जनहित लीलामय, न्यासी भेष बनाई।।
जय निताई जय गौरहरि, जय जय सीतानाथ।
पदरजकन हित आस 'प्रेम', गाई लीला गाँथ।।
(आरती श्रीनिताई गौर की अद्वैत द्वारा)
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधा गोविन्द।।
इति राढ़-भ्रमण एवं शान्तिपुर गमन लीला सम्पूर्ण।

शची-गौर मिलन एवं नीलाचल वास अनुमति लीला

मगंलाचरण—

जय जय श्रीकृष्ण चैतन्य लक्ष्मीकान्त।
जय जय नित्यानन्दवल्लभ एकान्त।।
जय जय वैकुण्ठ ईश्वर न्यासीराज।
जय जय जय सब भक्त समाज।।

तत्रानीता त्वजितजननी हर्षशोकाकुला सा,
भिक्षां दत्त्वा कतिपय दिवा पालयामास सूनुम्।
भक्त्या यस्तद् विधिमनुसरन् क्षेत्रयात्रां चकार,
तं गौरांग भ्रमणकुशलं न्यासिराजं स्मरामि।।

निताई गौर वन्दन करि, वरनौं चरित अगारि।
जाय नवद्वीप निताइ ज्यूँ, लाये शची दुखारि।।
मात-पुत्र को मिलन पुनि, सुखद दुखद अपार।
दिवस दस अद्वैत भवन, कृष्णचैतन्य विहार।।

निताई—(प्रवेश गाते हुये)

कालिंगड़ा-३ ताल—

कहिहौं कहा मात सों जाय।
ज्यूँ ज्यूँ परत हैं पाँव आगे, त्यूँ त्यूँ हिया मुरझाय।।
मिलिहैं कै ना मिलिहैं माता, कहा दशा भई हाय।
कहि आयो हो लाय मिलाऊँगो, तुमसों तुम्हारो निमाई।।
निमाई नहीं संन्यासी लै आयो, कृष्ण चैतन्य बनाय।
कैसे जाय वज्र अब डारूँ, परी कठिन अब आय।।
बैठे आप दूर बनि त्यागी, दियो मोकूँ ही पठाय।
कठिन बड़ो सेवक को धर्म, फाटै करेजो हाय।।
(और कठोर ते कठोर, सबन ते कठोर तो है)

वह आदेश प्रिया अबला प्रति, कैसे सुनाऊँ जाय।
क्रूर कठोर कर्म कूँ विधना, मैं ही 'प्रेम' बनाय।।

नहीं, नहीं कर सकूँगो। यह दारुण आज्ञा प्रिया जू कूँ नही सुनाय सकूँगो। सब नदियावासिन सों तो कहूँ कि चलौ तुम्हारे निमाई चाँद तुमकूँ बुलाय रहे हैं और जो वा चाँद की चकोरी है, अनादि संगिनी है, अर्धांगिनी है, सर्वापेक्षा अन्तरंग जन है, उनसों कहूँ कि आपके लिये आज्ञा नहीं हैं, वहाँ मत चलौ! नहीं, नहीं कर सकूँगो। परन्तु...परन्तु भावना सों कर्तव्य बलवान होय है। गौर चाँद मेरे प्रभु हैं। मैं उनको सेवक दास हूँ। दास के लिये बस एक ही कर्म, एक ही धर्म है—आज्ञा पालन! अतएव अरी कोमल भावना! दूर हो। अरी दया। क्षमा कर! मैं पराधीन हूँ। आओ कठोर कर्त्तव्य आओ! आज त्रेता युग की पुनरावृत्ति है जान देओ। तबहू अरे निताई! तोकूँ ही तो निर्दोष निष्पाप जानकी माता कूँ वन में लै जायकै कहनौ ही पर्यौ हो 'जगदम्बे! पराम्बे! पतिव्रत धर्म की मूर्ति मातेश्वरी! आपकूँ श्रीरामचन्द्र महाराज ने त्याग दियो है।' वही, वही आजहू करनौ परैगो! कहनो ही परैगो! बिजुरी गेरनी ही परैगी! बज्र डारनो ही परैगो! अब और अधिक विचार निष्प्रयोजन है! (हाथ जोड़, घुटना टेक, ऊपर की ओर देखते हुये) माँ! जगज्जननी! क्षमा करौ! बालक को अपराध ग्रहण न करनौ—मैं पराधनी हूँ श्रीराम के अधीन हूँ।

(कहते-कहते प्रस्थान)

(दृश्य—पर्दा खुलता है। अन्तर्गृह में विष्णुप्रिया सखी
कंचना की गोद में शान्त पड़ी है। पार्श्व-कक्ष में माता शची
बहन मालिनी की गोद में पड़ी हैं। सहेली कमला बैठी है)

शची (पद-मालकोष-दादरा)—

आरे निमाई आरे, मरती माय जियारे।
प्राण पियारे नैनन तारे, तजि हमहीं तुम कहाँ सिधारे।।१
सूनी सेज यह सूनी कुटिया, लोटे भूतल विष्णुप्रिया।
लखि लखि फटि जात हिया, मुखड़ा टुक दिखारे।।२
पहले गयो तेरो विश्वरूप भाई, छोड़ि गयो अब तूहु निमाई।
फूट गई दोऊ अँखियाँ माई, जाय डूबुँ गंगारे।।३
वारेक बोल वही सुनाय, मा मा कहि मो गोदी आय।
बन्यौ कित पाषान हाय, मति ना प्रेम भुलारे।।४

(उठ दौड़ती। 'निमाई! वत्स!' पुकारती है)

समाज (पद)—

उन्मादिनी शची माई, देखो।
क्षण भीतर क्षण बाहर आवत, बच्छ बिना ज्यू गाई।।
टेरत लै लै नाम निमाई, बूझत लोग लुगाई, देखो०।
भोजन की भई जात है बिरियाँ, रह्यौ कहाँ बिरमाई।।
सुनि शची बैन देखि दशा तन, भक्तन दुख महाई।
मात प्रेम सम्हारती सहचरी, मिलिहैं गौराराई।।

मालिनी—बहन शची, आज चार दिना है गये। तुमने जल तकहूँ नहीं छियौ है। चलौ, स्नान करौ और मुखमें कछु देओ। निमाई सों मिलवे के लिये शरीर राखनो ही परैगो।

शची—(प्रलाप) हाँ-हाँ! मैं वाके लिये माखन मलाई दूध बनाय रही ही तो देखूँ कहा है वह मेरे सिरहाने ठाड़ो है गयो और कहवे लग्यौ 'माँ! मैं तो अब संन्यासी है गयो हूँ! मै यह सब कछु नहीं खाऊँगो।' फिर बताओ मैं कैसे भात राँधती? कैसे मुख में दै लेती? अरे कोई मेरे निमाई कूँ लाय देओ। वह भूखो होयगो मैं वाकूँ खवायकै तब कछु खाऊँगी! हाय-बेटा! निमाई! तू कहाँ भूखो-प्यासो डोल रह्यौ है। आ न मेरे चाँद आ! (हाथ फैला दौड़ती हैं कमला-मालिनी पकड़ लेती हैं)

कमला—बहन शची! तुमही इतनी अधीर है जाओगी तो वा बेचारी विष्णुप्रिया कूँ कौन सम्हारैगो। चार दिन सों वाकूँ छिन-छिन में मूर्च्छा आय रही है। दिन-रात की कछु सुध नहीं है।

मालिनी—हाँ बहन! तुम तो बूढ़ी-बड़ी हो। माँ हो। तुम तो धीरज धरौ। और वा बालिका की हू कछु सुधि लेओ। वह मूर्च्छित परी है भूमि पै। चलकै गोद में लेओ। वाको आँसू पोंछौ। धीरज धराओ। तुम्हारे बिना अब और कौन है बोको?

शची—(प्रलाप) हाँ-हाँ! मैं तो हू और वह हूँ है। वह अबै आवेगो कीर्तन समाप्त है गयो होयगो। आयकै स्नान करैगो विष्णुप्रिये! बेटी! जल्दी उठो। चूल्हो चेताओ। चाँवर बनाओ। मेरे निमाई ने कल ते कछु नहीं खायो है।

कमला—हाय बहन मालिनी! कैसे चेत करावैं। आज चार दिना सो न स्नान है न भोजन, न निद्रा, न विश्राम! केवल विलाप-प्रलाप-मूर्च्छा की धारा दिन रात चल रही है। हाय कहा करैं? कैसे सम्हारैं?

मालिनी—बहन! चलौ! विष्णुप्रिया कूँ ही चेत करावैं, और लावैं यहाँ! वह ही कदाचित् शची कूँ चेत कराय सकैं।

(दोनों विष्णुप्रिया के समीप जाती है)

समाज (दोहा)—

सखी कंचना अंक में, विष्णुप्रिया मुरझाया।
व्याप रह्यौ तनविरह विष, रोमरोम जरि जाय।।

(दृश्य-पर्दा खुलता है। महाप्रभुजी का पलंग-शय्या। पीताम्बर, माला शय्या पर। नीचे विष्णुप्रिया कंचना की गोद में सिर रखे हुये।)

विष्णुप्रिया—हा प्राणनाथ! कहा चले ही गये! साँचे कूँ ही छोड़ गये। मथुरा चले गये मेरे श्याम। कहा लौट कै नहीं आवेंगे सखी।

कंचना—क्यूँ नहीं आवेंगे? अवश्य आवेंगे बहन ! धीरज धर वे आवेंगे और तुमकूँ दर्शन देंगे।

विष्णुप्रिया—साँची कहै है कांचना! आवेंगे वे? दर्शन दैंगे।

कंचना—हाँ बहन! काम पूरो करकै द्वै चार दिना में ही लौट आवैंगे। उनकूँ लैवे के लिये यहाँ ते कछु लोग को तू उनकूँ आयौ ही जान।

विष्णुप्रिया—तब तो जीनौ ही परैगो। वे आवैंगे ही नहीं देख पायँगे तो उनकूँ बड़ो ही दुःख होयगो। देख यह उनको पलंग है- उनकी सुख शय्या है। यह उनकी पीताम्बरी है! यह फूलमाला मुरझाई परी है। वे ही ये सब वस्तु परी हैं। परन्तु इनको धनी, मेरे प्राणधनी, हृदय-मणि कहाँ हैं? अरी कोई मो गरीबनी अवला पै दया करौ। लाय देओ प्रीतम कूँ! मिलाय देओ। एक-एक श्वास बज्र सी लगै है। तौहु मरी नहीं जी रही हूँ।

पद (सिन्ध काफी-३ ताला)—

को जाने अवला की पीर, छिन छिन हिय में उठत पीर।
रोवत-रोवत अँखियाँ सूखीं, कसकत है करेजे तीर।।
बह मुख उज्ज्वल लोचन कमल, चितवन करत परम अधीर।
वह बानी गदगद भाव सानी, बरसावत रस अमृत नीर।।
बाहु सुगोल विशाल वे द्वय, गंड कपोलन अलकन भीर।
वह उरपै वह मालती माला, वह आवनि कुंजर गति धीर।।
वे पद पद्म मेरे आराध्य, धरि हृदय नित सेवति वीर।
अब वन वन 'प्रेम' डोलत होंगे, मारूँ कटारी नाहिं उर धरी।।

(प्रवेश मालिनी, कमला)

मालिनी—बेटी विष्णुप्रिये! उठ उठ! निमाई को सन्देशो आयो है। वह आयवे ही वारो है।

विष्णप्रिया—(ससम्भ्रम) आय गये नाथ! आय गये।

मालिनी से लिपट जाती है)

मालिनी—हाँ बेटी! वह आय रह्यौ है। तू उठ, स्नान कर कोई को प्रबन्ध करलै। देख माँ ने हू आज चार दिना से एक दाना तक नहीं लियौ है। तू ही नहीं सम्हारैगी उनकूँ तो कौन सम्हारैगो। यासों उठ बेटी! चल उनके पास और उठा उनकूँ। (विष्णुप्रिया को ले जाती हैं)

समाज (दोहा)—

धीरे धीरे विष्णुप्रिया, रही मात ढिंग आय।
चेताबत चेतति नहीं, अधिक अधिक बिलखाय।।

विष्णुप्रिया—माँ माँ! चेत करौ! मेरी ओर तो देखौ। उठौ माँ! तुम्हारौ पुत्र आय रह्यौ है। उठौ स्नान करौ, मैंहू करूँ हूँ।

शची—आय रह्यौ है कहा? तो लाओ रस्सी लाओ! मैं बांध कै राखूँगी। कहूँ फिर न भाग जाय!

विष्णुप्रिया—हाय हाय! माँ तो बावरी हैं गई है (कर जोड ऊर्ध्वदृष्टि) हे दीनबन्धो! दयासिन्धो! माँ के दु:ख कूँ मोकूँ दै दैओ मैं सब सह लऊँगी। माँ तो वृद्धा है। इतनी व्यथा कैसे सह सकैंगी। दयामय! हम अबलान पै दया करौ! हम द्वय अवला कहा करैं? कौन कूँ पुकारैं? माँ-माँ।

शची—(सचेत हो) कौन? विष्णुप्रिया? तू रोय क्यूँ रही है बेटी? आ मेरी गोद में आ। (गोदी में बिठा आँसू पोंछती है) बेटी! तैंने निमाई कूँ कैसे जान दियौ?

विष्णुप्रिया—माँ! माँ! (गले से लिपट रुदन)

शची—बेटी! बेटी! (दोनों लिपट कर रुदन)

निताई—(नेपथ्य में से) माँ! माँ!

शची—(हड़बड़ाकर) कौन बोल्यो? निमाई! निमाई! निमाई!

(बाहर दौड़ती हैं)

समाज (चौपाई) —

द्वार निताई टेर लगाई। समझति शची आयो निमाई।।

निताई—(प्रवेश) मैं हूँ निताई माँ (चरण-स्पर्श करना)

शची—अच्छो! बलराम आयो है! मेरो बलराम (उठाकर छाती से लगाती है) बेटा! तेरो मार्कण्डेय की सी आयु होवैं। ला मेरे धन कूँ। मैं अपने हृदय में छिपाय लऊँ। मति कहूँ भाग न जाय!

निताई—माँ! वे शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर में ठहरे भये हैं।

शची—वहो क्यों? यहाँ अपने घर क्यूँ नहीं आयो?

निताई—माँ! अब वे गृह-त्यागी सं......

शची—(मर्माहत हो) संन्यासी! मेरो निमाई संन्यासी! हाय बेटा! (बैठ पड़ती हैं)

समाज (सोरठा) —

सुनत परी मुरझाय, सह न सकी दारुण व्यथा।
भीतर विष्णुप्रियाय, सम्हारत सखी कंचना।।

विष्णुप्रिया—(भीतर से) हा प्राणनाथ! चले ही गये! हाय!

समाज (दोहा) —

नर नारी जे परौस के, भक्त श्रीवास मुरारि।
जुरि आये सब द्वार पै, भरे विरह दुःख भारि।।

श्रीवास—(नेपथ्य में से) भैयाओ! आज सबेरे ही सबेरे शची माँ के घर में कैसो कोलाहल है रह्यौ है। चलौ देखैं को आयो है?

(प्रवेश श्रीवास मुरारि आदि पाँच सात जने)

श्रीवास—ओहो श्रीपाद! आप पधारे हो। प्रणाम! (चरणस्पर्श) कहो प्रभु कहाँ हैं?

निताई—और सब समाचार तो आचार्य चन्द्रशेखरजी के मुख सों आप सब सुन ही चुके होंगे! या समय प्रभु शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के गृह पधारे भये हैं। माँ कूँ लैवे मैं भेज्यौ है। आप डोली तैयार करवाओ।

शची—नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। मैं तो गंगा में कूद मरूँ हूँ।

(दौड़ती—निताई पकड़ लेते हैं)

निताई—हाय माँ! तुम यह कहा कहौ हो? तुम तो यहाँ गंगा में कूदौगी और वहाँ तुम्हारो निमाई बाट देखतो ही रह जायगो। पुत्र-वत्सला जननी! पुत्र की ओर देखौ और चलौ।

शची—कहा निमाई मेरी बाट देख रह्यौ हैं?

निताई—हाँ माँ! और मैं तुमकूँ लैवे भेज्यौ हूँ। और माँ! भोजन के समय तो वे तुम्हारी बहुत ही याद करें हौं। यासों चलौ! अपने हाथनसों रसोई कर करकै उनकूँ खूब जिमावनौ।

शची—तब तो नहीं मरूँगी! अपने लाल के लिये जीवित ही रहूँगी! चल निताई। मैं माखन मलाई लै चलूँ हूँ।

निताई—हाँ माँ! खूब लै चलौ!

समाज (दोहा)—

माखन मेवा मिठाई जे, भावत लाल निमाई।
सोंज सजावत शची सब, मिलन हेतु अकुलाई।।
नदियावासी नारि नर आये उमड़ि अपार।
प्रभु दरसन लालसा अति, छाँड़ चले घर वार।।
विष्णुप्रियाहू आयकै, गहि अँचरा शचि जाय।
मूरति करुणा विरह की, आँखिन लखि ना जाय।।
पग पायल कर चूरिका, रोवत करि झंकार।
सुनि लखि विरह पूतरी, रुदन करत नर नार।।

विष्णुप्रिया—माँ माँ! मैं हूँ आपके संग चलूँगी।

शची—हाँ बेटी! चलैगी क्यों नहीं! निताई मेरी खोयी निधि कूँ लैकै आयो है। चल निताई चल। अब एक छिन पलभर हू की देर नहीं सही जाय है।

निताई—(अलग हट। मुख मोड़। स्वगत) ओफ्! पाषाण हू फट जायगो! फट जायगो! मो अवधूत को कठोर हृदय हू आज ममता के घात-प्रतिघात सों चूर्ण विचूर्ण है रह्यौ है। हाय! अब कहा करूँ? कैसे रोकूँ प्रियाजी कूँ? अरे कर्तव्य! तू निश्चय ही दस्यु राक्षस हू ते अधिक कठोर है, क्रूर है! हाय! कैसे प्रभु की आज्ञा सुनाऊँ? (कुछ सोचकर) नहीं! नही! यही ता सुयोग है, स्वर्ण-संयोग है-युगल महिमा प्रगट करिवे को। कितनी अपार जनता ठाड़ी है। यह हू सुनलै प्रभु को कठोर आज्ञा कूँ और समझैं कि इनके कल्याण के लिये मेरे प्रिया-प्रियतम ने जीवन भरके लिये कितनो

कठोर त्याग और तपस्या को व्रत धारण कर्यौ है। या रहस्य कूँ समझैंगे हृदयंगम करैंगे तो रोय रोयकै हरिबोल कहेंगे एवं कृतार्थ है जायँगे।

गंगा और जमुना की, धारहू न धोय सकै
वेहू अश्रुधारान सों विमल बन जायँगे।
जायँगे जड़-मूल सों, निन्दा बैर भाव बहि
आदेश कठोर जब लोक सुन पायँगे।
यह चोट तो होंगे, लोटपोट शत्रु मित्र
पत्थर हू पिघलकै अँसुवा बहायँगे।
बहायँगे संसार हरि, बोल 'प्रेम' गाय गाय
एक ही बान सों लाख लाख विंध जायँगे।।

या प्रकार सो प्रभु को संन्यास लैवे को उद्‌देश्य एक ही बात सों सिद्ध है जायगो। अतएव कठोर आज्ञा सुनाय दैनी ही उचित है।

समाज (चौपाई) —

पाँव परी विनवौं कर जोरी। छमहु मात अविनय इक मौरी।।
मैं सेवक प्रभु आज्ञाकारी। भई अस आज्ञा सुनौ महतारी।।
आमन चहै जो कोई सो आवै। वह एकहि आमन न पावै।।

शची—वह एक कौन है निताई?

निताई—माँ दयामयी! तुम तो मोपै दया कर देओ। मैं अपनी परवशता के कारण आपही मर रह्यौ हूँ। मो मरे कूँ तो मत मारौ। मेरे ही मुख सों उनको नाम तो न बुलवाओ समझ लेओ आपही वह एक कौन है।

शची—ओह! समझ गई निताई! समझ गई। विष्णुप्रिया के लिये नाहीं करी है। क्यों यही बात है न?

निताई—हाँ माँ! यही आज्ञा है।

शची—(सकोप) माँ के ऊपर पुत्र की आज्ञा-यह कहाँ की विधि है? कौन- से शास्त्र में लिख्यौ है। तू तो अवधूत पागल है। तभी पागलपने की सी बात करै है। विष्णुप्रिया मेरे संग अवश्य जायगी। देखूँ कौन रोकै है। पुत्र की आज्ञा गर्भधारिणी जननी पै नहीं चलैगी। कही सो कही अब फिर ऐसी बात भूल कै हू मत कहियो। सावधान!

निताई—(स्वगत) विषम संकट! धर्म संकट! हे प्रभो! आप ने मोकूँ कैसे संकट में पटक दियौ। रक्षा करौ मेरी। अपनी आज्ञा आप ही पालन करवाओ माँ सों! मैं अब कछु कह नहीं सकूँ हूँ। हे उरप्रेरक अंतर्यामी। इनकी मति फेरो तो फेरो नहीं तो आप जानैं कै माँ जानैं।

(माता प्रति हाथ जोड़)

छमहु वचन जो अनुचित मेरो। करहु सुकृपा जानि सुत चेरो।।
यति धर्म तुम जानौ जननी। छुरी धारहू ते अति पैनी।।
प्रथम नेम ताकौ यह कठोरा। स्त्री दरश सों रहै अति दूरा।।
उत यह धर्म इत तुम हो माता। करहु सोई होवै भल ताता।।
पिता वचनहू सुमिरहु माता। घर तजि गये जबहीं बड़भ्राता।।

(तब पिताजी ने यही आशीष दीन्ही हती कि)

यति धर्म में स्थिर रहै, मेरो पुत्र जगदीश।
अब न आवै लौटि घर, यही मेरो आसीस।।

शची—(चुप सोचती है)

समाज (दोहा)—

नयन मूँद मुख मूँद रही, करत जो धर्म विचार।
कहन लगी उर धीर धरि, धर्म वचन निरिधार।।

शची—अच्छो तो निमाई ऐसो ही सही। जैसे मेरे निमाई के की रक्षा होयगी वही करूँगी। जीवन भर तो मैंने दुःख भौग्यो है अबहू भोगूँगी। वाकूँ यदि या नवीन नेम-धर्म में शान्ति मिलै है तो वह सुखी रहै। मैं वाकूँ दुखी नहीं बनाऊँगी। बेटी विष्णुप्रिये! सुन रही है न?

विष्णुप्रिया—माँ! जो यदि आपही इकली जाती तो मैं संग आप के लिये कभु न कहती। परन्तु जब ये समस्त नदियावासी आपके पुत्र के दर्शन कूँ जाय रहे हैं, तो मो दासी कूँ उनके संग ही गिन लेओ। मैं आपके बिना या सूने घर में एक पलहू नहीं रह सकूँ हूँ। अब आपके बिना यहाँ और कौन है मेरो? यासों मोकूँ अकेली कहाँ कौन के हाथ छोड़े जाओ हो? मैं हू संग चलूँगी परन्तु उनके सम्मुख नहीं जाऊँगी। छिप करकै लोगन में, दूर सों ही एक बार उनके मुखकमल के दर्शन कर लऊँगी। फिर कौन जानैं वे कबहू मिलैं कै न मिलैं। यासों लै चलौ माँ! एकबार दर्शन कराय देओ! मैं आपके पाँव परूँ हूँ (चरण पकड़ लेना)

शची—(उठाकर हृदय से लगाती हुई) बेटी! तेरे अंग में मेरो निमाई हू है। यासों मैं तोकूँ ही देखूँगी। जा निष्ठुर ने तेरे ताई ऐसी कठोर आज्ञा करी है मैं वाके पास नहीं जाऊँगी। ये सब लोग जावैं, मैं नहीं जाऊँगी! चल बेटी! भीतर चलैं।

समाज (दोहा)—

अके जके ठाड़े सबै, फुरत न काहू बैन।
ठगमूरि खाये मनो, भरि भरि हेरत नैन।।

विष्णुप्रिया—ऐसे मत कहौ माँ! आप जाओ, अवश्य की जाओ। आप जाओगी तो उनकूँ सुख होयगो। मैं जाऊँगी तो दु:ख होयगो। उनको सुख-दु:ख ही हमारो सुख-दु:ख है। वे तो अब संन्यासी हैं- स्त्री को मुख नहीं देख सकैं हैं परन्तु माता को मुख तो देख सकै हैं। यासों आप अवश्य जाओ। नहीं जाओगी तो मैं निश्चय ही डूब मरूँगी।

शची—बेटी! तू मानवी नहीं, देवी है।

विष्णुप्रिया—मैं तो उनकी चरणदासी हूँ माँ! और मैं देवी नहीं हूँ। उनकूँ सुख दैनो ही दासी को परम धर्म है।

शची—ओह! संसार में नित्य प्रति कितने-कितने जीवन को अन्त होय है परन्तु एक मो अभागिनी बुढ़िया के लिये ही मृत्यु नहीं है। अच्छो तो बेटी! मैं ही जाऊँ हूँ और वा निष्ठुर निर्दयी कूँ लैकै आऊँ हूँ। तेरे पास कंचना-अमिता सखी रहैंगी। मैं शीघ्र ही लौट आऊँगी चल रे निताई! अपने प्रभु की आज्ञा पालन कर। लै चल या हतभागिनी कूँ।

भक्तगण—हरिबोल! चलौ श्रीपाद! आज प्रभु के दर्शन पायेंगे नैन, मन, प्राण शीतल होंगे। हरिबोल! (शची, निताई, श्रीवासादि सब जाते हैं। विष्णुप्रिया और दो सखियाँ खड़ी रह जाती हैं सखियों के गले से लिपट कर रोती हुई गाती है)

पद (पीलू-भैरव)—

भाग्यवती मैं भाग्यवती, कौन कहै मैं अभागिनी।
कहा दुख मेरो सब दुखहर जो, पति मेरे चिन्तामणी।।
निरखन जाकूँ चहै त्रिलोकी, सो तो मेरो ही प्राणधनी।
राख्यौ हृदय में मैं तरे सदाई, वे मेरे मैं उनकी जनी।।
(हे मेरे हृदयेश! मैं कहा दैकै आपकी आराधना करूँ। मैं तो बस)
छिन छिन तुमकूँ मैं पहराऊँ, नव नव आँसुन मोती माला
रहौ सदा सुख सों मेरे स्वामी, माँगत देवसों नित यह वाला
मैं तो अमर 'प्रेम' सुहागिनी, कौन कहे मैं अभागिनी।।
भाग्यवती मैं भाग्य...व...तो...(भूमि-पतन)

(पटाक्षेप)

समाज (पद ति० कामोद)—

हरि तुम कैसे लीलाधारी।
जगकूँ नचाओ आपहू नाचो, नाना स्वांग नितधारी।।
धुनषहू छोडयौ मुरलीहू छोड़ी, अब दंड कमंडलुधारी।
पीताम्बर वनमाला छोड़ी, भिक्षु भेष लियो धारी।।
गोपिन कूँ तब रोवत छोड़ो, अब रोवैं माता नारी।
भक्तन कूँ तो सदा रुवाये, अब रोवैं आप बिहारी।।
लीला अन्तर बहु विधि लीला, कौन सकैं निरधारी।
करुणामय तुव करुणा बल सों, प्रेम व्यथा ही सहारी।।

(शान्तिपुर में अद्वैतगृह। महाप्रभु, अद्वैताचार्य, हरिदास और मुकुन्द आदि बैठे हैं)

समाज (दोहा)—

अद्वैत भवन में राजहीं, विश्वम्भर हरि आप।
श्रीकृष्ण चैतन्य नाम सों, करत प्रेम संलाप।।

अद्वैत—भगवन्! मेरे हृदय में कछु जानवे की बड़ी उत्कंठा है। आज्ञा होय तो निवेदन करूँ।

महाप्रभु—अवश्य कहो आचार्यदेव! संकोच काहे को!

अद्वैत—भगवन्! जहाँ पहले द्वैत-बोध होय है वहीं वाके निषेध करवे के ताई अद्वैत भाव को प्रयोजन होय है। ता अद्वैत की सम्यक् सिद्धि के निमित्त की संन्यास को आश्रम लियौ जाय है। परन्तु आपके प्रेम में तो द्वैतभाव को लेशमात्र हू नहीं हैं। फिर आपके संन्यास के कहा प्रयोजन है। यही जानवे की मेरी उत्कंठा है।

महाप्रभु—आचार्यदेव! यह संन्यास मेरी अद्वैत-सिद्धि को नहीं, केवल सर्वत्याग के लिये ही है। कारण कि सर्वत्याग बिना श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति असम्भव है।

पद-दादरा—

कृष्ण प्रेम चिन्तामणि, सकल साधन सार है।
बिना प्रेम ज्ञान योग, धर्म सब अन्तर है।।
योग याग तंत्र मंत्र, सबही पंगु प्रेम बिन।
बिखर विफल जाय मणि, जो न प्रेम तार है।।

ज्ञानी वही सिद्ध वही, जीवन वही साँचो है।
रमे कृष्ण प्रेम में, रमावैं जो संसार है।।

अद्वैत—परन्तु प्रभो! हमकूँ तो आपके या नवीन संन्यासी भेष सों अत्यन्त दुःख होय है।

पद-सोहनी—

मैं हूँ वही प्रभु दास तिहारो, येहू वही सब दास तिहारे।
तुमहू वही शचिनन्दन प्यारे, नदिया जीवन गौर हमारे।।
प्रेमहू वही हम सबको तुममें, करुणा वही तुम्हारी हू प्यारे।
वही जु वही तुम वही हमारे, यह भेष यह भूषा न जाय सहारें।।

हाय लीलामय! वह नदिया बिहारी नटनागर रूप आपने कहाँ छिपाय लियो। एक ही दिन में कहा सों कहा रूप बनाय लियो!

महाप्रभु—आचार्यदेव! यह मैंने नहीं बनायो, कृष्णप्रेम ने ऐसो बनाय दियो-

श्यामामृत स्त्रोतसि पातित वपुः
तस्यैव तुंगेन तरंग रहंसा।
यां यां दशामेति शुभाऽशुभोथवा,
सा सैव प्रेमचरी करोति।।

(चै० च० नाटक)

श्याम प्रेम तरंगिनी, उमड़ि चली हिय माँहि।
बहाय चली काया कहाँ, जानूँ मैं कछु नाँहि।।
शुभ अशुभ जानूँ नहीं, नहीं धर्म अधर्म।
प्रेम नचावै त्यों नचौं, जानौ यह प्रेम कर्म।।

मनमोहन सों जब नैन लगे, तब नेह की नदिया फूट चली।
सब टूट गये लंगर जग के, अरु जीवन नैया छूट चली।।
जहँ प्रेम-देश कोई प्रेमसिन्धु महँ प्रेम की काया बहाय चली।
यह प्रेम की नैया प्रेम खिवैया, प्रेम देव के पास चली।।
इत अँसुवनके जो पनारे चले, उत सरिता नेह की उमड़ चली।
इत स्वासन के जु समीर बहैं, सु उड़ायके लै मझधार चली।।
नहि नाम की बल्ली कूँ थाह मिलै,
बस हायरी हाय पुकार चली।
यह प्रेम की नैया प्रेम खिवैया, प्रेमदेव के पास चली।।

अतएव आचार्यदेव! कृष्णप्रेम ने ही बावरो बनायकै मोकूँ ऐसो सजाय दियौ। या मेरे संन्यास सों जगत कोहू थोरो घनो कल्याण है जायगो—

रोवै नहीं कोई जन सुखिया कूँ देखकर
दुखिया कूँ देख के ही हियो भरि आवे है।
भिखारी कंगाल सजि, तुमकूँ कंगाल कियो
माता पत्नी हू बेहाल, रोय मरि जावै है।।
देखेंगे जो रोवैंगे वे, सुनेगे वे हू रोवैंगे
हिय के कुभाग द्वैष, सबै धुलि जावै है।
हरि बोल हरि बोल, गावैंगे भजैंगे कृष्ण
संन्यास सफल 'प्रेम' मेरो बनि जावै है।।

(नेपथ्य ध्वनि—हरिबोल, हरिबोल। दर्शन देओ प्रभो! देओ। हम बड़े अपराधी हैं, निन्दक अधम पापी हैं। एकबार दर्शन देओ)(निन्दक दल का प्रवेश)

निन्दक १—(प्रवेश कहते-कहते) क्षमा करौ! प्रभो! क्षमा करौ। आप जब नटनागर सजिके नदिया नगरी में भ्रमण कर्यौ करते तो ये हमारी अंखियाँ आपके मधुर मनोहर रूप कूँ देख-देखकै जयौ करती और ये हमारे मुख हाँसी उड़ायो करते। पाखंडी कह-कहकै आप की निन्दा कर्यौ करते)

निन्दक २—निन्दा ही नहीं, द्वेष-बैर हू कर्यौ करते। हम दुष्टन ने आपकूँ मारवे-पीटवे-पिटवायवे के लिये षड़यन्त्र रच्यौ, काजी कूँ उकसायो। चापाल गोपाल के द्वारा जंत्र-मंत्र करवाये। हाय! आप जैसे परम दयालु स्नेही हितैषी के प्रति बड़े-बड़े अत्याचार करवाये। अब हमारो हृदय पश्चाताप की ज्वाला से जर्यौ फुक्यो जाय है। शान्ति को कोई उपाय बताओ। प्रायश्चित बताओ।

निन्दक ३—हाँ देव! कठोर ते कठोर प्रायश्चित बताओ। हम सब करेंगे। हाय! हम जैसे आकरण द्रोही ईष्यालुन ने ही आपकूँ घर सों निकास भिक्षुक सजवायो है। आपके सुख के संसार में हमने ही आग लगायी है। आपकी माता, पत्नी और भक्तजनन कूँ हमने ही तो दु:ख के समुद्र में पटक दियो है। यासों अब हमकूँ दण्ड देओ दण्ड!

महाप्रभु—(ऊर्ध्व भुजाकर उठते हुये) हरि बोलो भैयाओ हरि बोलो। सबजने मिल करकै हृदय खोल के, प्राण खोल के, कण्ठ खोल के बोलो

प्रेम से 'हरिबोल'। बस यही एक हरिनाम सों ही समस्त प्रायश्चित है गये! समस्त अपराध खंडित है गये।

निन्दक दल—(भुजायें उठा) हरिबोल, हरिबोल (साष्टांग प्रणाम)

निताई—(प्रवेश करके) प्रभो! माताजी पधार रही हैं।

समाज (दोहा)—

मात आगमन सुनत ही, धाय गये प्रभु द्वार।
प्रेम-धर्म सिर धारिकै, करि प्रनति बहु बार।।

महाप्रभु—(दौड़कर) माँ माँ (चरण पकड़ लेते हैं)

समाज (सोरठा)—

मात रही सकुचाय, प्रेम नेम के फन्द परि।
कहा करूँ मैं हाय! नाऊँ सिरकै लाऊँ हिय।।

शची—(सम्भ्रम सहित) निमाई! मेरो निमाई! नहीं नहीं! संन्यासी नारायण! परन्तु यह तो मोकूँ प्रणाम करि रह्यौ है। मेरो पाँव पकरै है। अब मैं कहा करूँ?

महाप्रभु—अपनो मंगल आशीष देओ माँ! औरन के लिये भले ही मैं जो कछु होऊँ, आपको तो निमाई ही हूँ। गर्भधारिणी जननी! मैं कोटि जन्मन में हू आपके दूध को ऋण नहीं चुकाय सकूँ हूँ।

शची—(उठाकर हृदय से लगाती हुई) निमाई! मेरे निमाई! मेरे लाल! तू अमर रहै। तेरी कीर्ति अमर रहै।

भक्तवृन्द—हरिबोल! हरिबोल!

समाज (दोहा)—

भुज भरि लीन्हे मात तब, राखे उर बिच लाय।
पुनि पुनि चूमत शीश मुख, नैनन धार बहाय।।
कहति अटपटे बैन, नेह लपेटे सुख सने।
नत करि ग्रीवा नैन, सुनत प्रभु अपराधि बने।।

शची—वत्स निमाई! मेरे दूध के गोपाल! मेरे लाल! तू नारायण नहीं मेरो ही निमाई है और मैं तेरी ही माँ हूँ। परन्तु बेटा तैंने 'मैं ऐसो नहीं करूँगो। नहीं जाऊँगो, घर नही छोडूँगो' कहते कहते अन्त में मोकूँ मार ही तो डायौ। और गरे में एक फाँसी और डार गयो-वह बालिका विष्णुप्रिया! तू तो बालापन में कह्यौ करतो 'मैं पण्डित बनूँगो, पाठशाला चलाऊँगो और

माँ! तुमकूँ खूब सुख दऊँगो।' सो बेटा पण्डित बनके तैंने यही सुख दियौ। जरे! जब कबहु तू मेरी आँखिन में दुःख के द्वै आँसू देखलै तो अपनी पीताम्बरी सों पोंछ के कह्यौ करतो, 'माँ! रोओ काहे कूँ हो। मै तो हूँ। फिर दुख काहे को'। वही मैं आज तेरे आगे ठाढ़ी हूँ और आँखिन में सों आँसू नहीं लोहु बहाय रही हूँ परन्तु पौंछ दैनो तो दूर, उलटो तू ही दुख दैकै आँसू बहवाय रह्यौ है। ऐसो निर्मम निष्ठुर तू कैसे है गयौ बेटा? कहा तू वही निमाई है मेरो कै कोई दूसरो ही आयो है?

महाप्रभु—(नतमस्तक) माँ माँ! ऐसे मत कहो। क्षमा करो। भलो हूँ बुरो हूँ पर हूँ तुम्हारो निमाई। या देह के ऊपर जननी! तुम्हारो ही अधिकार है। मैं तुम्हारी आज्ञा के बिना या देहकूँ वृन्दावन लै जानो चाहौ हो परन्तु न लै जाय सक्यौ। लौट के आमनो ही पर्यौ आपके चरण के समीप। अब माँ! तुम जो कहोगी वही करूँगो। जहाँ राखौगी वहीं रहूँगो। मेरो हित-अनहित सब तुम्हारे ही हाथ में है। मैंने जाने-अनजाने में तुमकूँ बड़ों ही दुःख दै डार्यौ। वाके लिये कहा अपने बालक कूँ क्षमा नहीं करौगी माँ?

पद-कान्हरा—

दुःख दियो बहु दुःख दियो मैं, पाऊँ क्षमा मैं पाऊँ क्षमा।
जान अजान जो काज कियो मैं, पाऊँ क्षमा मैं पाऊँ क्षमा।।
कूख दियो तुम दूध दियो तुम, नेह दियो तुम बड़ो कियो।
पूत कपूत कछु न कियो मैं, पाऊँ क्षमा मैं पाऊँ क्षमा।।२
यह देह न मेरी देह है तुम्हरी, तुमरे चरण अब डार दई।
राखिहौ जहाँ रहिहौं तहाँ, पाऊँ क्षमा मैं पाऊँ क्षमा।।३
कहा करौं मति गति थिर नाई, हितू तुम्हीं हित देहु बताई।
करिहौं सोई अनुसरिहौं मैं, पाऊँ क्षमा मैं पाऊँ क्षमा।।४
तुम जननी मैं बालक तुमरो, भरोसो दूध को प्रेम सदाई।
तुव पग धूरि आशा पुरिहै, पाऊँ क्षमा मैं पाऊँ क्षमा।।५
(माता के चरण पकड़ बैठना)

समाज (चौपाई)—

अस कहि चरण गहे प्रभु माई। भुज भरि जननी अंकम लाई।।
रुदन करत मुख फुरत न बानी। नहि तहँ नैन भरि आये न पानी।।

शची-आचार्य देव! आप सब तो जब चाहौगे तब मेरे निमाई कूँ देख सकौगे और याकूँ भोजन हू कराय सकौगे। परन्तु मेरे भाग्य में यह सुख

कहाँ! यासो जब तक निमाई आपके यहाँ निवास करै तब तक मैं ही नित्य अपने अहान सों रसोई बनाय के अपने लाल कूँ भोजन करवाय सकूँ, यही मेरी आपसों विनती है।

अद्वैत—विनती कैसी? यामें तो सर्वप्रथम आपही को अधिकार है। आप यहाँ आनन्द सों निवास करौ और अपनी रुचि अनुसार भोजन बनाय-बनाय कै अपने लाल कूँ जिमावौ। यही तो हमारी हू अभिलाषा है।

भक्तवृन्द (धुन)—हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल

(संकीर्तन करते हुये प्रस्थान। पर्दा)

समाज (दोहा)—

मात शची अद्वैत घर, करि करि पाक रसोई।
रुचि सों लाल जिमावहीं, सो सुख कहै कस कोई।।

(दृश्य-महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु को मा शची भोजन करा रही हैं)

समाज (पद)—

कृष्ण चैतन्य की भीक्षा गाइये।
मात सहित हिलमिलके जेमाइये।।
दाल भात और साग भाजी, परोसि सकल हरषाइये।।
पटल भाजा अरु थोड मोचा, साग न कबहू बिसराइये।।
दधि चिऊरा केला सन्देश बहु, रुचि सों भोग लगाइये।।
पायस पूरी पूआ मलाई, चटनी अचार छकाइये।।
गंगाजल अँचवाय वास मुख, बीरी लोंग खवाइये।।
मुख उल्लास कराय प्रभु को, आरत आरतो वारिये।।
मात शची पग धूर शीश धरि, कृपा भाग मनाइये।।
प्रेमानन्द जूँठन हित हरि की, हिय सदा ललचाइये।।

आरती—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द।। हरिबोल ४

इति शची-गौर-मिलन लीला सम्पूर्ण।

श्रीनीलाचल वास अनुमति-प्रदान लीला

मंगलाचरण—

जय जय गौरचन्द्र जय कृपासिन्धु।
जय जय शचीसुत जय दीनबन्धु।।
जय जय नित्यानन्द जय अद्वैतचंद्र।
जय जय श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।।

समाज (दोहा)—

श्रीकृष्ण चैतन्य हरि, राजत अद्वैत धाम।
आचारज मन्दिर बन्यौ, भूतल वैकूण्ठ धाम।।
भक्तजनहु बहु ठौर ते, धाय जुरै तहँ आय।
दरसन कीर्तन-रंग महा, रैन दिवस सुख पाय।।

मात शची बहु पाक बनावहीं।
सुतहिं जिमाय मोद अति पावहिं।।
दिवस दरस आलाप सुख भारी। रजनी कीर्तन मंगलकारी।।
प्रभु सहित दुखहू सुखकारी। अद्वैत गृह नित उत्सव भारी।।
प्रभु विहीन प्रभु भवन मझारी।
जल बिन मीन ज्यूँ तरफति नारी।।
सोई भवन जहँ बधु बनि आई। विष्णुप्रिया गौरप्रिया कहाई।।
बरस चार भये बाजे बधाई। हरिबोल धुनि रही नित छाई।।
मन्दिर सोई सूनो विन देवा। धूप न दीप न पूजा सेवा।।
गर्भगृह ढ़िंग सेज-सिंहासन। विरहिनी साधति पीय आराधन।।

(दृश्य-नवद्वीप। महाप्रभु-भवन। शयन-मन्दिर में शय्या पर महाप्रभु के परित्यक्त पीताम्बर, वस्त्र, माला आदि नीचे विष्णुप्रिया विराजमान)

समाज (दोहा)—

सुमिरनि सुई लै पोवति, अँसुवन वारिज माल।
पिय पद पदमन पूजति, बैठी विरहिनी वाल।।

विष्णुप्रिया (पद लावनी)—

कोई पूछे पिया सों जाय, मैं कैसे प्रानन राखूँ हाय।।

हे प्राणनाथ! आप मेरे लिये यह आज्ञा करि गये हे कि प्रातःकाल जायके गंगा स्नान करनो, परन्तु-

गंगा न्हान जाऊँ तो कहत कान में कोय।
चार बरस पहले यहाँ, प्रीतम पायो तोय।।
हाय तब पाँव धर्यौ नहीं जाय, मैं कैसे प्रानन राखूँ हाय।।१

और हे नाथ! यहहू आपने आज्ञा करी ही कि मेरी उतारी भई पीताम्बरी कूँ पहननो, परन्तु-

पहरन कूँ जब हाथ में, लेहुँ वसन उठाय।
कोई कहत है कान में, प्रीतम नंगे जाय।।
हाय तब वसन न पहयौ जाय, मैं कैसे प्रानन राखूँ हाय।।२

और हे प्राणवल्लभ! एक आज्ञा यह ही कि महामन्त्र के द्वारा चारमन कूँ शुद्ध करनौ। परन्तु-

चामर लै बैठूँ जबै, कहूँ हरे कृष्ण राम।
चामर में दीखैं वहीं, मेरे प्राणाराम।।
हाय! तब नाम जप्यौ नहीं जाय, मैं कैसे प्रानन राखूँ हाय।।३
लैन प्रसाद बैठूँ जबै, पकरै कोई हाथ।
कहत सुनाय प्रीतम तेरो, मांगि खात है भात।।
तब मुख में ग्रास दियो न जाय, मैं कैसे प्रानन राखूँ हाय।।४
राति समय जब सेज के, बैठूँ ढिंग मैं आय।
तबही देखूँ 'प्रेम' कहा, पिय सोवत वन माहि।।
हाय तब प्राण उड़न को चाय, मैं कैसे प्रानन राखूँ हाय।।५

(प्रवेश सखी अमिता और कांचना)

कांचना—बहिन अमिता। यह विष्णुप्रिया है कै शोक मूर्तिमती अथवा करुणा की देवी?

अमिता—बहिन कांचना! यह तो तपस्या की देवी है। पति तो घर छोड़िकै संन्यासी भये है परन्तु यह तो घर में ही संन्यासिनी बनी बैठी है।

कांचना—(आगे बढ़कर विष्णुप्रिया के कन्धे पर हाथ रख) सखी विष्णुप्रिये!

विष्णुप्रिया—(मुख उठाकर देखती हुई) कौन? बहिन काँचना, अमिता! आओ बहनो (गले से लिपट कर रोने लगती है)

कांचना—(विष्णुप्रिया के आँसुओं को पोंछती हुई) रोय लै बहन रोय लै। छाती हल्की तौऊ है जायगी। ओह! द्वै ही दिना में वे कितने निठुर बन गये कि सबन कूँ तो बुलाय भेज्यो और एक तुम्हारे हो ताँई नाहीं कर दीनी।

विष्णुप्रिया—मोकूँ पृथक् करकै विशेष आदर ही दियो है बहन! जगत् सब एक ओर और विष्णुप्रिया एक ओर। यह प्रत्यक्ष दरशय दियो।

अमिता—परन्तु मैं तो यही कहूँगी कि जगत् कूँ अपनो और तुमकूँ ही परायौ ठहरायौ है।

विष्णुप्रिया—नहीं नहीं बहन! मैं ही अपनी और जगत् परायो बताय दियो है। कारण कि जो अपनो निज जन होय है वाही के लिये विशेष व्यवस्था होय है।

अमिता—तौहु तो बहन सबन कूँ सुख और तुमकूँ ही दु:ख दियो।

विष्णुप्रिया—नहीं बहन! सबन कूँ दु:ख और मोकूँ ही सुख दियौ है।

अमिता—सो कैसे भलो?

विष्णुप्रिया—सो ऐसे कि जो कोई उनके नवीन संन्यासी रूप के दर्शन करैगो, वाके नेत्रन कूँ एवं मन कूँ छिन-छिन में व्यथा भोगनी परैगी। तथा आज मिल करकै जब कल वे उनसों बिछुरैंगे तब औरहू अधिक दु:ख भोगनो परैगो। या प्रकार सों उनके तांई मिलन में हु दू:ख और बिछुरन में हू दु:ख की होयगो। इन द्वै दु:खन सों उनने मोकूँ बचाय लियो है। यह उनकी मेरे ऊपर विशेष कृपा है। यासों वे परम दयालु हैं, निष्ठुर नहीं।

अमिता—धन्य है! हिन्दू पतिव्रता रमणी। तेरे परम विशुद्ध हृदय कूँ कोटि बार धन्य है। न जाने विधाता ने कौन-से धातु सों पतिव्रता हिन्दू नारी को हृदय बनायो है कि जो पति के महान् ते महान् दोष कूँ हू ग्रहण करवे में असमर्थ है।

विष्णुप्रिया—अच्छो बहन कांचना। संन्यास के कहा-कहा नियम धर्म होयँ हैं, कछु जानै है तो बताय।

कांचना—बहन! संन्यास के नियम तो बड़े ही कठोर होयँ हैं।

विष्णुप्रिया—कछु कहके तो सुनाय।

कांचना—सुन बहन! संन्यासी सर्वसंग त्याग करै है।

विष्णुप्रिया—मैंने हू सर्वसंग त्याग कर दियो है।

कांचना—संन्यासी सर्वाशात्यागी निराश होय है।

विष्णुप्रिया—मैंनेहू सर्व-आशा त्याग दीनी है।

कांचना—संन्यासी एकाकी विचरे है।

विष्णुप्रिया—मैं घर में इकली रहूँ हूँ।

कांचना—संन्यासी खुले स्थान में रहै है।

विष्णुप्रिया—मैं कठोरी में बन्द रहूँ हूँ।

कांचना—संन्यासी धूप-ताप सहै है।

विष्णुप्रिया—मैं विरह-संताप सहूँ हूँ।

कांचना—संन्यासी मूसलाधार वर्षा सहै है।

विष्णुप्रिया—मैं अश्रु वर्षा सहूँ हूँ।

कांचना—संन्यासी एक वस्त्रीय होय है।

विष्णुप्रिया—मैं हू एक वस्त्रीया बनी हूँ।

कांचना—संन्यासी भूमि पै सोवै है।

विष्णुप्रिया— मैं काठ पै सोऊँ हूँ।

कांचना—संन्यासी मांग कै खावै है।

विष्णुप्रिया—मैं नाम-जाप करके खाऊँ हूँ।

कांचना—संन्यासी आधो पेट खावै हैं।

विष्णुप्रिया—मैं नाम-जाप करके खाऊँ हूँ।

कांचना—संन्यासी आधो पेट खावै है।

विष्णुप्रिया—मैं आधे को हू आधो खाऊँ हूँ।

कांचना—संन्यासी ॐकार जपै है।

विष्णुप्रिया—मैं उनको नाम जपूँ हूँ।

कांचना—संन्यासी आत्मा में रमै है।

विष्णुप्रिया—मैं प्रियतम में रमूँ हूँ।

कांचना—संन्यासी जीवन्मृत होय है।

विष्णुप्रिया—मैं मृत-जीविता हूँ।

कांचना—सखी! तू जीती वे हारे।

विष्णुप्रिया—नहीं सखी! वे ही जीते और मैं हारी।

कांचना—बहन! तेरी वाणी बड़ी ही गूढ़ है। इतनी छोटी अवस्था में इतनी बुद्धि! इतनो धैर्य इतनो संयम। धन्य है बहन तोकूँ, तेरे कुल कूँ।

विष्णुप्रिया—बहन! अब दुपहरी है गई। चलूँ रसोई करूँ। उनके लिये भोग धरनो है। तीसरे प्रहर फिर बैठेंगी।

(प्रस्थान)

कांचना-अमिता (पद-आसावरी)—

प्रीति की ज्वाला को जानै।
जाके उर में द्वै सुलगत है, रोम रोम सोई जानै।।
'प्रीति' द्वै अक्षर अन्तर मध्य, अमृत विष दोउ साने।
एक मारत पुनि दूजो जिवाबत, हार न कोई माने।।
नैन बैन उर धसै पीय के, आन भाव विसराने।
प्रेम प्रभु-प्रिया निपट दुखारी, प्रीतम बात न आने।।

(गाते-गाते प्रस्थान)

समाज (दोहा)—

अब सुनहु जा विधि प्रभु, जननी अनुमति पाई।
जन्मभूमि परित्याग करि, चले नीलाचल धाई।।
गौर हरि शान्तिपुर राजहीं। सीतानाथ सेवा बहु पावहीं।।
उत्सव कीर्तन धूम मचाई। पुरजन परिजन भीर सदाई।।
दिवस जीत नहीं लागत बारा।
गये दिन दस जनु साँझा सबारा।।

(दृश्य-महाप्रभु, निताई, अद्वैत, श्रीवास, हरिदास, मुकुन्द, मुरारि बैठे हैं)

समाज (दोहा)—

तब प्रभु भक्तन बोलि ढिंग, कहत सुनहु चित्त लाय।
दिन दस बीते मोकूँ यहाँ, अब वृन्दावन चहुँ जाय।।

महाप्रभु—आचार्य देव आपके गृह में निवास करते भये दस दिन बड़े सुख से निकल गये। अब मेरी इच्छा वृन्दावन जायवे की है। तब मैं आपकी अनुमति बिना भाग के जाय रह्यौ हो सो नहीं जाय सक्यौ और लौट के आमनो पर्यौ। अब आप सब मोकूँ सहर्ष अनुमति प्रदान करो। और अपने घर-कुटुम्बिन के समीप रहनो हू संन्यास धर्म के विरुद्ध है। यासों

आप सब जायकै माता की आज्ञा लै आवैं। जैसी उनकी आज्ञा होयगी मैं वैसी ही करूँगो। यह वचन मैं उनकूँ पहले ही दै चुक्यौ हूँ।

निताई—यदि माताजी आपकूँ नवद्वीप लै जानो चाहें तो?

महाप्रभु—तो लौट चलूँगो नवद्वीप-बहीं सबन के संग संकीर्तन कर्यौ करूँगो।

निताई—और यदि माँ घर कूँ लै चलीं तो?

महाप्रभु—तो घरकूँ हू चल्यौ जाऊँगो।

निताई—और माँ यदि कहैं कि कौपीन उतारकै पीताम्बरी पहन लै तो?

महाप्रभु—तो उतार दऊँगो कौपीन और पहन लऊँगो पीताम्बरी।

निताई—और यदि माँ यह आज्ञा करैं कि तू संन्यास तजि के पुनः गृहस्थी बनजा ता?

महाप्रभु—तो गृहस्थी हू बन जाऊँगो-बन जाऊँगो।

भक्तवृन्द—जय मातृभक्त कृष्ण चैतन्यदेव की जय।
जय सत्यव्रत विश्वम्भर देव की जय।।

अद्वैत—तो प्रभो! आपही पधार के माताजी सों आज्ञा क्यों न लै आवैं?

महाप्रभु—आचार्य देव! माँ मेरे रूप की भक्ति करवे लगी हैं। उनको सहज स्नेह कछु दब-सो गयो है। यासों मैं जाऊँगो तो मासों स्पष्ट कहवे में संकोच करैंगी। अतएव आपही सब पधारें और उनके हृदय के भावन कूँ जान करके आवैं। मैं तदनुसार ही करूँगो।

अद्वैत—जैसी आज्ञा प्रभो (सबका चले जाना)

(पटाक्षेप)

समाज (चौपाई)—

नित्यानन्द उर आनन्द महाई। दौरत आगे ही पहुँचे जाई।।
अद्वैत श्रीवासादि पुनि आये। मात शची ढिंग शीश नवाये।।

निताई—माँ माँ! बड़ों ही शुभ समाचार है। आनन्द! आनन्द!!

शची—कहा है बेटा निमाई?

निताई—लै चलौ प्रभु कूँ घर। वे जायवे कूँ तैयार है। बस माँ! तुम्हारे कहवे की ही देरी है। सो चलके झटपट कह देओ 'चल निमाई घरकूँ'। आनन्द! आनन्द!!

शची—क्यों आचार्य देव! यह निताई कहा कह रह्यौ है, मेरी तो समज में नहीं आवै है।

अद्वैत—माँ! प्रभु कहै हैं कि मोकूँ यहाँ निवास करते दस दिना है गये हैं। अपने बन्धु-बान्धवन कूँ के निकट रहनो संन्यास धर्म के विरुद्ध है। यासों अब मेरो विचार वृन्दावन जायवे को है। परन्तु मैं माता की आज्ञा बिना एक पगहू इत उत नहीं धरूँगो। माँ जेसो कहैंगो वैसा ही करूँगो। यासों आपकी इच्छा जानवे के तांई हम भेजे हैं।

शची—इच्छा? मेरी इच्छा? कहा वह जानै नहीं है जो पूछै है

निताई—सोई तो मैं कह रह्यौ हूँ। यह तो जानी-मानी सी बात है। यामें पूछनो कहा। चलौ माँ! लै चलौ अपने निमाई कूँ। मैं अबही अपने कन्धा पै बैठकर कै लै चलूँ हूँ।

मुरारी—वाह! यह सेवा तो मेरी है। मुरारी के होते यह सेवा काहू कूँ नहीं मिलैगी। प्रभु को वाहन तो मैं ही हूँ। मैं लै चलूँगो कन्धा पै बैठार प्रभु कूँ।

अद्वैत—माँ! आज्ञा करौ आपकी कहा इच्छा है?

शची—आचार्य देव! निमाई मेरी इच्छा जाननो चाहै है तो सुनौ-

देश (पद तीन-ताला)—

मात हृदय कूँ मात ही जाने।
मात बिना पीर को पहिचाने।।
मैं रहूँ घर में वह घर बाहर, घाम शीत सहै घर बादर।
मैं पहरूँ पट कटि कौपीन वह, को माता जो अस उर आने।।
(और कौन माता यह हू चाहैगी कि)
मैं करूँ भोजन साँझ सबारे, वह रूखो सूखो भिच्छा रे।
मैं सोऊँ सेज वह धरती ऊपर, को माता जो अस उर आनै।।
मेरी इच्छा स्पष्ट ही है और वह हू सब जानै है तौहू पूछै है कारण कि वह धर्मनीति को पालनकारी मातृ भक्त है। यासों
जो वह इतनी श्रद्धा जनावै, पुत्र धर्म जो वह निरबाहै।
तो मैं तजि दऊँ मातृ धर्म कूँ, को माता जो अस उर आनै।।

जो यदि वह पुत्र धर्म पैदृढ़ है तो मैं ही मातृ धर्म सों कैसे डिग जाऊँ। माता तो कपूत कोहू भलो ही चाहैं है। फिर वह तो उज्ज्वल कुलरत्न है। वाके धर्म की रक्षा करनो ही मेरो धर्म है यासो जो-

वह मेरे ढिंग घर रहिं आवै, तो जग महँ अपयश बहु पावै।
पतित करूँ मैं पुत्र कूँ धर्म सों, को माता जो अस उर आनै।।

नहीं, कदापि नहीं। मैं अपने पुत्रकूँ धर्म भ्रष्ट नहीं करूँगी। अपने गौरचाँद के ऊपर कलंक की छाया नहीं पड़न दऊँगी—

गौरचाँद मेरो अति निर्मल, जुग-जुग चमकत रहै सुउज्ज्वल।
ह्वै के माता कलंक लगाऊँ, को माता जो अस उर आने।।

यासों आचार्य देव! अब तो—

वा बिन प्राण भले ही जायँ, अब न कहिहौं 'घर चल निमाई'।
प्राणहू दै सुत-धर्म बचाऊँ, 'प्रेम' मात पद तबही पाने।।

चाहे बाके वियोग में मेरे प्राण ही क्यूँ न चलै जायँ परन्तु अपने प्राणन के प्राण निमाई कूँ मैं वाके संन्यास-धर्म सों कदापि भ्रष्ट नहीं करूँगी। वाके धर्म की प्राण-पण सों रक्षा करूँगी परन्तु हाँ, एक उपाय है मेरे प्राण हू बचे रहैं और वाको धर्महू बन्यौ रहै।

निताई—ऐसो कहा उपाय है माँ शीघ्र कहौ।

शची—उपाय यही है कि वह या समय वृन्दावन न जायकै नीलाचल क्षेत्र जगन्नाथपुरी में जायकै निवास करै। पुरी यहाँ सों उतनी दूर नहीं है। यहाँ ते तीर्थयात्री पुरी जायौ-आयौ करै ही है। उनसों मोकूँ निमाई को समाचार मिलतो ही रहैगो। और यदि कबहू वह गंगा-स्नान के लिये चल्यौ आवैगो तो हमेंहू वाके दर्शन है जायो करैंगे। और वृन्दावन तो पश्चिम में बहुत ही दूर है। सो यदि वह वृन्दावन के लिये निकस गयौ तो निकस ही जायगो। जैसे मेरो विश्वरूप गयो सो गयो वैसे ही मैं निमाई कूँ हू खोय बैठूँगी। यासों वह समीप ही जगन्नाथपुरी में जायकै रहै। यही मेरी इच्छा है। वाकूँ जनाय दैनो।

अद्वैत—धन्य है माँ! आपकूँ धन्य है धन्य है। जब आपको विश्वरूप घर त्यागिकै चल्यौ गयौ हो तब जगन्नाथ मिश्रजी ने हू भगवान् सों यही प्रार्थना करी हनी कि मेरो बालक घर ते गयो सो गयो पर वाको धर्म न जान पावैं। आज आपने हू सोइ बात करिकै दिखायौ है।

श्रीवास—आचार्य देव! प्रेम को यही तो लक्ष्मण है कि तत्सुख सों सुखी होवै—

जहाँ प्रेम त्याग तहाँ, प्रेम बिन त्याग कहाँ
त्याग ही प्रेम को मूल लच्छन कहायो है।
ऐसो जब त्याग आवै, भागि सब स्वार्थ जावै
प्यारे के सुख ही में, दुख निज भुलायो है।
ऐसो जब दुक्ख होवै, कोटि सुख तुच्छ गिने
दुक्ख में हु सुख महा, अद्‍भुत समायो है।
शीश ही उतार दुख सबही प्रायः दूर करैं
शीश लैकै हाथ नाचैं, सोई 'प्रेम' कहायो है।

धन्य है। आप सरीखे माता-पिता न होते तौ ऐसो अद्‍भुत लाल यह संसार कहाँ सौं पाय लैतो। माँ! अपने समाधान हू बड़ो अच्छो कर दियौ। अब हम जायके ज्यों के त्यों प्रभु सों निवेदन करै देयँ हैं। प्रणाम माँ!

(प्रस्थान। पटाक्षेप)

समाज (चौपाई) —

जाय अद्वैत सब प्रभुहिं सुनाये। सुनत प्रभु अन्तर सुख पाये।।
समाचार जन जन सुन पाये। दौरि दौरि प्रभु ढिंगहिं आये।।
दिन दस जो सुख शान्ति पाये। गये बिसर बहु दुख उपजाये।।
कछु ना विधि गति जानी जाई। जो यह सुख दुख जोरी बनाई।।
लखैं गौर मुख नयन बहावैं। कहैं कहा कछु कही ना पावैं।।
रजनी हरि गुनगान बिताये। भोर समय प्रभु बचन सुनाये।।

(दृश्य—महाप्रभु, निताई, अद्वैत, श्रीवास, हरिदास, जगदानन्द तथा गोविन्द। पर्दा में शची माँ, सीता माँ)

महाप्रभु (कवित्त) —

दोऊ कर जोर कहैं, गौर हरि सबन सों,
देओ अब विदाई हौं, अधिक ना रहिहौं।
तजि नवद्वीप-वास, पहिर्यो अरुन वास
अब मन अभिलाष, नीलाचल रहिहौं।
जाओ सब घर जाओ, निसिदिन कृष्ण गाओ
भिक्षा मोकूँ देओ यही, चिररिनि रहिहौं।

समाज—

सुनत ही नारी नर, रोवत हाहाकार करि
कहैं 'प्रेम' प्रभु पद, कमल न तजिहौं।।

हरिदास—(दूर कौने में बैठे हुये हैं-हाथ जोड़) हे दीनबन्धो! हे पतितपावन! मैं तो महापापी अधम म्लेच्छ हूँ। मोकूँ कौन के पास छोड़ के जाओ हो। आपके निज जन तो जगन्नाथपुरी जाय करके दरशन कर लेंगे परन्तु मेरो तो वहाँ जायवे को अधिकार हू नहीं है। हाय प्रभो! कहा अब मोकूँ इन चरनन के दर्शन नहीं होंगे। इनके बिना मेरी गति कहाँ? कृपा करा। शरणागत वत्सल! कृपा करो (साष्टांग प्रणाम)

महाप्रभु—(समीप जाकर उठाते हुये) हरिदासजी! आप अपनी या दीनता कूँ माकूँ दै देओ जो मैं हू दीनहीन अधम बनकर के श्रीजगन्नाथ स्वामी के सम्मुख ऐसे ही लोट करके रोय सकूँ। आप तो श्रीजगन्नाथ देव के परम प्रियजन हो। आपकूँ वे शीघ्र ही अपने समीप बुलाय लेंगे। आप दु:ख मत करौ। कछु दिना धीरज धरिकै आचार्य देव के समीप ही निवास करौ।

श्रीवास (दोहा)—

तुम स्वामी हम दास हैं, तजौ तो कहा बसाय।
पै जाय कहाँ जीवैं कहौ, कैसे देओ बताय।।
तुम संग मिलि नित कीर्तन, हमरो यही आधार।
सो तुम हमहिं छाँडि चलै, कौन दोष निरधार।।
हम तुमहिं बोल्यौ नहीं, लाये नहीं दयाल।
तुमही कृपानिधि आयकै, हमहिं कियो निहाल।।

हम तो हे प्रभो! सब प्रकार सों साधनहीन दीन मलिन हते सो हमकूँ आपने—

रूप सुधा हरिनाम सुधा, लीला सुधा पिवाय।
विरह-हलाहल दै रहै, कैसे बचिहैं हाय।।

मुकुन्द—हे शची-लाड़ले प्रभो! आप हमारी ओर न सही अपनी जननी की ओर तो देखौ। वे आपकूँ अनुमति तो दैही चुकी हैं यासों अब और कछु कह नहीं सकै हैं। परन्तु वह देखो। वे बैठी भई लोहु की आँसु बहाय रही हैं। और नवद्वीप में आपके भावन के एक कोने में कोई एक जन आपकूँ रोय-रोय के पुकार रही है। वाके प्रलाप-विलाप कूँ देख सुन करिके पशु पक्षि, तरु-लता तब रोय रहे हैं। हे सर्वप्राण, सर्वजीवन प्रभो! हमारी रक्षा करौ। हमकूँ मृत्यु के मुख में धकेल के मत जाओ।

गदाधर—हाय रे दुर्भाग्य! अब यह नवद्वीप चन्द्र नीलाचल में उदय होयगो। यहाँ नवद्वीप में अब अमावस्या की कारी अँधेरी ही छायी रहैगी—

गौर चन्द नदिया में, उदय न होवै अब
　　　　　　　　रास रजनी न फेर, अब यहाँ आवैगी।
बाजैगी न कंठ-वंशी, अब तेरी गौर कृष्ण
　　　　　　　　हरिबोल हरिबोल, धुनि नहीं छावैगी।
नाचेंगे अब कहाँ घेरि घेरि तुमही सब
　　　　　　　　हेरि हेरि मुखचन्द, अँखियाँ सिरावैंगी।
पायँगे कहाँ फिर 'प्रेम' आलिंगन हाय
　　　　　　　　एक एक घड़ी हमें, काल बनि खावैगी।

सब भक्त (पद-आसावरी-तिताला)—

अपनो विरद सम्हारो, हे हरि।
अपने हाथ लगाय बेलि अब, आपहि छेदि मत डारो।
(पहले तो आपने)
हमरो हृदय पाषान गराय के, कोमल कियो ज्यूँ गारो।
सहज ही गढ़े शेल दुख यासों, यह कहा खेल तिहारौ।।
जीव उद्धार करौ तो करौ पै, कहो भक्तन मारौ।
भक्तवत्सल बानो यह तिहारो, 'प्रेम' प्रभु न विसारौ।।

समाज (दोहा)—

बहु विधि प्रणय प्रलाप जन, करत नैन बहाय।
निठुर प्रभु कछु करुन होय, कहत बात समझाय।।

महाप्रभु—श्रीवास जी, हरिदास जी, गदाधर, मुकुन्द, प्रिय बन्धुओं तुम सब इतने दु:खी काहे कूँ है रहे हो। धीरज धरो। नीलाचल २०-२५ दिना को ही तो पथ है। वहाँ तुम सब आमत जात रहियो। मैं वहीं रहूँगो। कबहूँ गंगा-स्नान के लिये हू आय जायौ करूँगो। यासों परस्पर भेंट होतो ही रहैगो। और फिर तुमकूँ सदा के लिये छोड़कै कहाँ जाय रह्यौ हूँ जो तुम इतने व्याकुल है रहे हो।

श्रीवास—प्रभो! हमें अब आपको विश्वास नहीं होय है आप साँची-साँची कइ देओ कि आप नीलाचल ही में निवास करोगे न?

महाप्रभु—श्रीवास जी! मैं साँची कह रह्यौ हूँ मैं नीलाचल ही में सदा निवास करूँगो। तुम सब धीरज धरो और माकूँ जायवे की अनुमति देओ।

समाज (दोहा)—

उठी मात शची हू पुनि, भक्तन लिये सम्हार।
कहि न सकी दुखभार अति, कहत निमाई लाल।।

शची—बेटा निमाई! मेरे लाल! कहा तेरो चाँद मुख मैं फिर न देख सकूँगी। हाय! अब तो मेरो या संसार में कोई न रह्यौ।

महाप्रभु—है क्यूँ नहीं माँ! हमारो तुम्हारो सबन को एक श्रीकृष्ण ही है और तो सब झूँठी सगाई है। तुम श्रीकृष्ण को भजन करौगी तो तुमकूँ कोई दुख नहीं व्याप सकैगो। और माँ! मैं तुम्हारे दर्शन करवे अवश्य आऊँगो! धीरज धरौ, शान्त होओ। और मेरे प्रिय बन्धुओं! तुम सब मेरी बात पै ध्यान देओ। मैं जाय तो रह्यौ हूँ परन्तु तुम्हारे लिये एक संजीवनी छोड़े जाऊँ हूँ-संकीर्तन। समस्त शोक-ताप, विरह-व्यथा की एकमात्र औषधि श्रीकृष्ण-संकीर्तन ही है।

बंगला (चै०च०)—

काहारो हृदये नाहीं रहिवे दुख शोक।
संकीर्तन-समुद्रे भासिबे सर्व लोक।।
किवा विष्णुप्रिया किवा मोर माता शची।
जे भजे कृष्ण तार कोले आमी आछि।।

पद-भैरव—

करौ नित कीर्तन गाओ कृष्ण नाम।
शोक और दुख को रहैगो न नाम।।
चाहे माँ शची हो चाहे विष्णुप्रिया।
मैं गोदी में उनके जो लेवैं कृष्णनाम।।
आऊँगो फेर मैं मिलूँगो सबन सों।
करि आऊँ दरशन जगन्नाथ धाम।।
न मैं तुमसों न्यारो न तुम मोसों न्यारे।
नातो यह पुरातन है 'प्रेम' अकाम।।

संकीर्तन—हरिबोल हरिबोल हरिबोल हरिबोल।।

समाज (दोहा)—

दै परिक्रमा मात की, चरनन शीश नवाय।
भागे बन्धन तोरिकै, मात गिरीं मुरझाय।।

शची—हाय बेटा! चल्यौ गयो कहा (पतन)

समाज—

हरि बोल ध्वनि मधुर सुनाई। मुग्ध किये जनमंत्र की नाई।।
ठाड़े सकल रहे ठिठाकाई। लै जन पाँच चले गौर धाई।।
नित्यानन्द मुकुन्द गदाधर। जगदानन्द गोविन्द भृत्यवर।।

(महाप्रभु के पीछे नित्यानन्द। जगदानन्द के हाथ में कमंडलु, गोविन्द के हाथ मे दण्ड, गदाधर के कन्धे पर कंथा, मुकुन्द के कन्धे पर गैरिक कटि वस्त्रादि)

लागे पाछे अद्वैत गुसांई। वृद्ध विकल बोलत कछु नाईं।।
बीते घरी द्वै प्रभु मुरि देखे। भये ठाड़े अद्वैतहिं पैखै।।

महाप्रभु—आचार्य देव! अब आप कृपा करें और लौट जायँ। आपही के बल-भरोसे पै तो मैंने यह कार्य उठायो है। आपही कर्णधार हो। आप ही अधीर बन जाओगे तो हमारी नौका कैसे पार लगैगी! मेरो उद्देश्य कैसे सिद्ध होगो!

अद्वैत—नाथ! औरन की नौका तो आप ही पार है जायगी कारण कि उनके हृदय में आपके प्रति अपार प्रेम है। परन्तु हाय मेरी नैया कैसे पार होयगी-मोमे तो एक बूँद हू प्रेम नहीं है-

पद (पीलू-तिताला)—

नैया मेरी कैसे होवै पार।
दै दै प्रेम औरन कूँ तारै, मोकूँ राख्यौ वार।।
एक बूँद रस प्रेम को नाहीं, सूखे हृदय मझार।
घोर अपराधी ज्यूँ जर बरके, अन्तर मेरो छार।।
तरफत हैं सब बिंधे हिरन ज्यूँ, घायल जीव हजार।
पसीजत नाहिंन प्रेम हृदय मम, मानौ बज्र प्रहार।।

अतएव मैं अवश्य ही महापराधी हूँ। तभी तो मेरो हृदय वज्र बन्यो भयौ है। प्रेम प्रीति ने तो याकूँ स्पर्श हू नहीं कर्यौ है।

महाप्रभु—(अद्वैत-कन्धे पर हाथ रख) हाय हाय आचार्यदेव! ऐसे वचन माकूँ न सुनावैं। आपके समान मेरो प्रेमी त्रिभुवन में दुर्लभ है। परन्तु आपको प्रेम मैंने अपने वस्त्र में, यह देखौ, गाँठ दैकै बाँध राख्यौ है। याही कारण आप अपने कूँ प्रेम-शून्य मानौ हो।

अद्वैत—तो ऐसे काहे कूँ कर्यौ प्रभो! चारों ओर सब रोय रहे हैं, भूमि पै लोट रहे हैं और मेरे हृदय में एक टीस तक नहीं। आँखिन में एक बूँद तक नहीं। ऐसो मौकूँ क्यों बनाय दिया नाथ?

महाप्रभु—एक प्रयोजन सों। या समय माकूँ एक ऐसो सावधान धीर गम्भीर पुरुष जो इन सब आतुर दुखियान कूँ सम्हार सकै। इनकूँ धीरज बँधाय सकै। ऐसे पुरुष एक आपही हो। याहि सों मैंने आपकूँ सचेत राखवे के तांई आपके प्रेम कूँ वस्त्र के छोर में बाँध राख्यौ है। यह लेओ, मैं खोले दऊँ हूँ। खूब रोय लेओ। परन्तु पीछे धीरज धरिकै सबन कूँ सम्हारनो परैगो। ये सब मेरे जन हैं। मैं इनकूँ आपके हाथन में सौंप जाऊँ हूँ।

समाज (सोरठा)—

दिये खोलि प्रभु गाँठ, हा गौर कहि परे धरन।
लोटत मारग बाट, अश्रुधार बहु धार चलत।।
अचरज गौर चरित, दै सकैं प्रेम लै सकैं।
पै बड़ी बात यह कित, ईशताई यही ईश की।।

महाप्रभु—(अद्वैत को उठाते हुये) उठो आचार्य देव! सावधान होओ अब तो मनोकामना पूर्ण भई न? अब धीर गम्भीर सावधान बनो। यदि आपही विह्वव है जाओगे तो मेरो कार्य कैसे सिद्ध होवैगो। आप तो सब रहस्य जानौ ही हो फिर अनजान की भाँति शोक दुःख काहे कूँ करौ हो। धीरज धरौ और धीरज धराओ। मैं फेर मिलूँगो। लौट जाओ। हरिबोल

(प्रस्थान)

समाज—

अस कहि चले छांड़ि गुंसाई। हाँ ना कहि न सकै अकुलाई।।
हरि स्वतन्त्र को सकै अटकाई। जस चाहैं तस सबहि नचाई।।
निताइ आदि पाँच जन धाये। त्यागी वैरागी वेष बनाये।।
कटि कौपीन तन इकइक वसन। काँधें कन्थाओ करुआ करन।।

महाप्रभु—बन्धुओ! नीलाचल तो २०-२५ दिन का पथ है। सो मार्ग के लिये तुम कहा धन लैकै आये हो?

निताई—प्रभो! धन के नाम पै एक करुआ, कौपीन, कटिवस्त्र, कन्था और गूदड़ी लाये हैं।

गदाधर—और समस्त धन के परम धन आपकूँ लाये हैं।

महाप्रभु—साधु-साधु! श्रीकृष्ण निष्किंचन प्रिय हैं। यासों उनके जन हू निष्किंचन होय हैं। श्रीकृष्ण ही उनके परम धन होय है। विश्वम्भर को अन्न-क्षेत्र सब जगह खुल्यो भयौ है। जो प्रभु त्रिभुवन कूँ पालन करैं हैं वे कहा हमारे तांई द्वै मुट्ठी अन्न नहीं देंगे। विश्वास होनो चाहिये दृढ़।

भोजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवा:।
योऽसौ विश्वम्भरो देव: स किं भक्तानुपेक्षते।।

निताई—सत्य है। प्रभु विश्वम्भर तो हमारे संग ही संग चल रहे हैं। फिर अन्न वस्त्र की कहा चिन्ता जो बाँधिकै लै चलैं।

महाप्रभु (पद-काफी)—

मेरा मीत मेरे संग डोलै।।
हाथ पकड़ वह चले सदाई, गिर गिर जाऊँ तो लेत उठाई।
अब पकड़ा कर हाथ उसे मैं, नाचत करूँ किलोलै।।
मेरे तन को पोंछ वह देवैं, नैनों से नैना वह जोवै।
मैं रोऊँ तो रोवै वह भी, बोलत मीठी बोलै।।
कौन कहे नहीं कोई हमारा है है है इक मीत पियारा।
देख देख वह खड़ा 'प्रेम' है, कब से मुझको बोलै।।

हरिबोल हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल। (प्रस्थान)

समाज (दोहा)—

प्रेम विवश चलिजात प्रभु, नहीं जानत निशि भोर।
भक्त पाँच संग जात जे, राखत मुख दै कौर।।
गौड़ देश सीमा तजि, आये उत्कल देश।
गंगा तट पहुँचे प्रभु, घोर अरण्य प्रदेश।।

(प्रवेश महाप्रभु एवं संगीजन)

समाज (दोहा)—

न्हाय गंग चैतन्य ह्वै, बोले देव चैतन्य।
आज गाँव हौं जायकै, लाऊँ भिक्षा अन्न।।

महाप्रभु—देखो भैयाओ! तुमही नित प्रति भिक्षा माँग लाओ हौ। आज तो मैं जायकैं माँग लाऊँगो। ला झोली दे गोविन्द!

गोविन्द—हाय श्रीपाद! कहा करूँ! कैसे इनके हस्तकमल में झोली पकराय दऊँ।

निताई—दै दै गोविन्द! ये हमारे रोके तो रुकेंगे नहीं। जान देओ। इनकी मौज जो चाहैं सो करैं।

महाप्रभु—श्रीपाद! आप सब यहीं बैठे रहौ। मैं अभी भिक्षा लैकै आऊँ हूँ। झोली दै गोविन्द!

समाज (दोहा)—

बहिर्वास की झोली करि,चले सहज सुभाय।
विश्वम्भर जो विश्व सों, भिक्षा माँगन जाय।।
चले गाँव की ओर, जो देखै सो संग चले।
लुब्ध नैन चकोर, रूप सुधा पीवत चले।।
मोहित चकित सभी नर नारी। ठाड़े जहँ तहँ अचरज भारी।।

ग्रामवासी १—

को यह संन्यासी बनि आयो। रूप अनूपम मनहर पायो।।
हम बहू सन्त महन्त निहारे। आवत जात या मारग सारे।।
ऐसे यति वर आज ही आये। सब दरशन फल घरहि पा ये।।

ग्रामवासी २—

ज्यूँ ज्यूँ देखों त्यूँ त्यूँ मेरो। पिघलत हृदय अचरज हेरौं।।
ममता नेह अधिक सरसावै। उमगत भाव कहत ना आवै।।
को यह योगी रूप धरि आयो। हमरो चितवित सबही चुरायो।।
नमो नारायणाय! नमो नारायणाय! महाराज!

महाप्रभु—कृष्णेमतिः रतिरस्तु। हरिबोल।

ग्रामवासी १—महाराज! यह झोली आपके काँधे पै कैसे धरी है।

महाप्रभु—भिक्षा के लिये।

ग्रामवासी १—नहीं नहीं! हमारे चित्त कूँ चुराय यामें डारलै जायवे के लिये है।

ग्रामवासी २—भगवान्! आप कौन हो, कहाँ ते आये हो?

महाप्रभु—हम तो पथिक हैं, भिक्षा लैवे आये हैं। हरिबोल

ग्रामवासी—तो लेओ महाराज! जी चाहो भिक्षा लैओ।

समाज (दोहा) —

दौरि दौरि घर जायके, भिक्षा भरि भरि लाय।
डारत झोली भीर भई, तन मन अति हरषाय।।
आगे चलि प्रभु टेर लगाई। युवति दौरि भिक्षा लै आई।।
शीश नाय प्रभु झोली बढ़ाई। युवति हृदय प्रति उमगाई।।
नैन बहावत भिक्षा डारी। तन-मन सरवस अपनो वारी।।

स्त्री १ —

इनहिं भिक्षु विधना कित कीन्हे। कौन अभागिनि लाल जु छीने।।
जो निधि हृदय राखिये गोई। घर घर नांगे डोलत सोई।।
(महाप्रभु आगे चलकर टेर लगाते हैं)

समाज—

पुनि आगे चलि टेर लगाई। बहु विधि वस्तु तहँते पाई।।
घर घर सों टेरत नरनारी। आओ जु आओ हमरे द्वारी।।
सफल जनम तुव दरसन पाये। रहौ आज यहीं मन भाये।।
अधम जानि छाँडि जिन जाओ। सेवा हमरी लेओ आओ।।
भरी तुरत विश्वम्भर झोरी। बोले वचन मधुर निहोरी।।

महाप्रभु—माताओ, भाइयो, बहनो! मेरे पास पर्याप्त भिक्षा आय गई है। मेरे संगीजन गंगातट पै बैठे हैं। यासों मैं यहाँ नहीं ठहर सकूँ हूँ। जो यदि आप लोग मेरी सेवा करना चाहौ तो कृष्णभक्ति करौ। कृष्ण-संकीर्तन कर्यौ करौ।

(प्रस्थान)

ग्रामवासी जनता (गजल) —

हमें भी साथ लेते जा, अरे मतवाले संन्यासी।
करेंगे हम तेरी सेवा, अरे मतवाले संन्यासी।।१
तेरी आँखों की धाराएँ, हमारे दिलको पिघलातीं।
जरा दें पोंछ हाथों से, अरे मतवाले संन्यासी।।२
देखा है कभी तुमको, मगर लगता है क्यों हमको।
तू लाखों जान से प्यारा, अरे मतवाले संन्यासी।।३
जो यह सूरत दिखाई है, जो यह जादू चलाया है।
न रखना बाकी अब सुधबुध, अरे मतवाले संन्यासी।।४

अगर जाना ही है प्यारे, बस इतना तो बताजारे।
हम कैसे 'प्रेम' में रोवैं, अरे मतवाले संन्यासी।।५
(पटाक्षेप)

समाज—

ले भिक्षा प्रभु चलि आये। देखि सकल संगी सुख पाये।।
कहत बेगिही आप चलि आये। देखें कहा कहा जु लाये।।

निताई—प्रभो! आपतो बड़ी जल्दी भिक्षा लै आये। और झोली भरकै लै आये (झोली देखते हुये) चामर, दार, आलू, पटल, गुड़, इमली, नोन, मिर्च, धनियाँ और केला-नारियल हू लै आये इतनो सामान और इतनी जल्दी! धन्य है।

गोविन्द—हमकूँ तो इतनो सामान आधो दिन डोलवे पै हू नहीं मिलती।

निताई—अब मैं निश्चिन्त भयो। यदि कोई ऐसो ही समय आय परै तो प्रभु आपही भिक्षा लायकै हमारो पालन कर सकैंगे। हमकूँ भूखे नहीं रहन देंगे।

महाप्रभु—परन्तु मैं तो अब भिक्षा माँगवे नहीं जाऊँगो।

निताई—क्यों कहा बात है प्रभो? कहा एक ही दीन में घबराय गये?

महाप्रभु—हाँ श्रीपाद! बात कछु ऐसी ही है। ये झोली तो द्वैचार घरन में ही भर गई। बहुत से स्त्री-पुरुष तो लैओ लैओ, यहाँ आओ, लै जाओ कहते ही रह गये। उनकूँ बड़ो दुःखी निराश होनो पयौ। यासों मैं अब नहीं जायो करूँगो।

जगदानन्द—अहा हा! मेरे तो मन की है गई। ऐसो कौन पाषाण हृदय होयगो जो आपकूँ द्वार-द्वार पै झोली लिये डोलतो देखके न रोवैगो। यासों न तो अब आप जाओंगे और न काहू कूँ दुख होयगो।

निताई—गोविन्द! अब जल्दी चूल्हो चेताय लै। मेरी तो हँडिया में आग लग रही है।

गोविन्द—जो आज्ञा अवधूतजी महाराज! अबही अग्नि-शान्ति को उपाय करै दऊँ हूँ।

समाज (दोहा)—

गोविन्द मुकुन्द जु मिलिकै, कीन्ही पाक रसोई।
दारभात बहु साग किये, जो रुचिकर प्रभु होई।।

अरपि तुलसी मंजरी पुनि, भोग गोविन्द लगाई।
जिमावत गौर हरिहि नव कदली पात बिछाई।।

भोग पद (सारंग)—

आज बनी है छाक मंडली।
तब यमुना किये पावन जूँठन, अब तो सुरसुरी तीर थली।।
गौर हरि करि लाये भिक्षा, जन गोविन्द सुपाक करी।
जगदानन्द परोसत प्रभुहिं, निज इच्छा रुचिहिं अनुसरी।।
भरि भरि डारत नेक न मानत, हटकत हैं प्रभु गौर हरि।
करत न अरज वरज की काने, ठाने रार जु चोज भरी।।
तरज-गरज सों लरजि जिये प्रभु, जेमत परवश मौन धरी।
गदाधर उर संतोष सुक्ख बहु, लखि लखि जेमत प्राण हरी।।
भक्त हेत बहुविध नर लीला, युग युग हरि बहु विस्तरी।
प्रेम प्रभु सदा भक्ताधीन रहैं, भक्तन हेत ही अवतरी।।
हरिबोल, हरिबोल०।।

आरती—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द।।

इति नीलाचल-वास-अनुमति-प्रदान लीला।

संन्यास लहरी **पंचम कणामृत**

श्रीनीलाचल गमन लीला

मंगलाचरण (श्लोक)—

त्यक्त्वा गंगातटजन पदाँश्चाम्बुलिगं महेशं
औढदेशे रमणविपिने क्षीरचौरं च वीक्ष्य।
श्रीगोपालं कटकनगरे यो ददर्शात्मरूपं
तं गौरांगं स्वभजनपरं भक्तमूर्ति स्मरामि।।

जय जय गौर संन्यास धारी। जय जय हरि अरुणाम्बुजधारी।।
जय जय राधाभाव द्युति धारी। स्वमाधुरि आस्वादनकारी।।
जय जय विवर्त विलास विहारी। जय जय गौर श्याम वपुधारी।।

जय जय अद्‌भुत करुणाकारी। जय कलि धर्म नाम प्रचारी।।
जय जय संकीर्तन जन्मकारी। जय जय प्रेमभक्ति दातारी।।

जगन्नाथ निज धाम कूँ जगन्नाथ चले जात।
बहुविधि लीला चरितहिं, मारग में प्रगटात।।

चले जात वन मारग माहीं। भोजन शयन विश्रामहू नाहीं।।
दिन द्वै तीन बीत कभु जावै। तनक बूँद जल प्रभु नहीं पावै।।
विनय बहुत संगीजन करहीं। तब कछु अन्न जल प्रभु लहहीं।।
सब निसि कीर्तन माझ बितावें। बाट चलत हरे कृष्ण गावैं।।

(प्रवेश महाप्रभु एवं संगीजन)

महाप्रभु—

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम्।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम्।।

(दृश्य—योगमाया आकाश में स्थित। पीत श्रृंगार)

योगमाया (मालकोष)—

अब तो हरिनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धयौं वैरागी।।
कहाँ छोड़ी वह मोहन मुरली, कहाँ छोड़ी सब गोपी।
मूड़ मुड़ाय डोर कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।।
मात जसोमति माखन कारण, बाँधे जाके हाथ।
श्याम किशोर भये नव गौरा, चैतन्य जाको नाम।।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कौपीन कसे।
गौरकृष्ण की दासी मीरा, रसना कृष्ण रटे।।

(अन्तर्द्धान)

(महाप्रभु व संगीजन पूर्वोक्त कीर्तन करते जा रहे हैं)

(दृश्यात्मक अनुकरण)

वन में जीव जन्तु बहु भारी। मगन प्रेमरस प्रभुहिं निहारी।।
इकटक मोहन वदन निहारें। हिंसा बैर कुभाव बिसारें।।
बाघ रीछ ठाड़ें सिर नावैं। निकसि प्रभु ढ़िंग सों चलि जावैं।।
जगत चराचर के प्रभु ईषा। कहा अचरज नावैं सब शीशा।।
हरिबोल हरिभक्त उचारैं। निर्भय प्रभु संग पग धारैं।।

वन पथ छाँड़ि चले प्रभु, सदर राजपथ धाय।
जगन्नाथ मुख दरस की, चटपटी बाढ़त जाय।।

महाप्रभु—श्रीपाद! अबही श्रीजगन्नाथ जी कितेक दूर है। अभी और कितनो चलनो परैगो। हाय मेरे पंख न भये जो उड़िकै अबही पहुँच जातो और प्राणनाथ के दर्शन करतो।

निताई—प्रभो! अब हम गंगा तटपै आय पहुँचे हैं। गंगा पार उत्कल देश है। वहीं जगन्नाथ देव विराजैं हैं। बस गंगा पार हैवे की ही देरी हैं। फिर तो हम उनके राज्य में पहुँच जायँगे।

समाज—

तट गंगा बहु सुन्दर गामा। अति पाड़ा पानी हट नामा।।
ते सब धन्य करि प्रभु धाये। बराह नगर निकट चलि आये।।
छत्र भोग तीरथ विख्याता। अम्बुलिंग तहँ शंकर घाटा।।
भक्तन शंकर गाथा गाये। सुनत विश्वम्भर मन हरषाये।।

निताई—प्रभो! यह छत्रभोग नाम को तीर्थ है और या घाट को नाम लिंगघाट है। या घाट में जलमय लिंग है। याकी कथा ऐसी है कि जब राजा भगीरथ ने कठोर तप करके शिवजी कूँ प्रसन्न कियो तो शिवजीने अपनी जटानमें सों गंगा की एक धार छोड़ दई। राजा वाकूँ लैकै चले तो शिवजी हू गंगा के वियोग में व्याकुल हैकै पीछे-पीछे चल पड़े। आते-आते याही छत्रभोग तीर्थ में शिवजीने गंगा में गोता लगायो और जल रूप बनि गये। गंगा में शंकर भगवान् की षोडशोपचार सों पूजा करी। शिवजी जलरूप सों यही ठहर गये। याही सों या घाट को नाम अम्बुलिंग घाट परि गयो। बोलो अम्बुलिंग भगवान् शंकर की जय।

महाप्रभु (कीर्तन)—

ॐ नमः शिवाय।

हर हर महादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गंगे।

समाज—

सुनि शिव कथा गौरहरि नाचैं। हर गुनगान मत्त रंगरांचै।।
उत गंगा शत धार बहावैं। इत प्रभु लोचन धार बहावै।।
बड़भागी जन दरसन पावैं। जन्म सफल करि हरिहरि गावैं।।

महाप्रभु (पद-दादरा)—

हा जगन्नाथ हा जगन्नाथ, दरसावो शीतल वदन गात।
स्वामी सखा प्रिय जीवन प्राण, जाय बसै कहाँ दूर धाम।।
तुम बिन छिन छिन छीजत प्राण, बेगि दिखाओ निज प्रिय धाम।
हा दीनबन्धो दीनानाथ, शरन शरन गहौ मो हाथ।।
हा जगन्नाथ हा जगन्नाथ०।।

समाज—

ताही समय ग्राम अधिकारी। रामचन्द्र खान धनी बहु भारी।।
चढ़ि डोला जावत मगमाहीं। लखि प्रभु उतरयौ शीश नमाई।।

रामचन्द्र—(प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़ा हो जाता है)

समाज—

जदपि विषयी तदपि बड़भागी। अँखियाँ गौर हरी पै लागी।।
मूरति पावन प्रेम दयाला। अवलोकत सो भयो निहाला।।
गौर हरि कछु नयन उघारी। करि कृपा मृदु वैन उचारी।।

महाप्रभु—भैया! तुम्हारो परिचय?

रामचन्द्र—यह अधम आपको दासानुदास है।

जनता—भगवान्! या गाँव के ये अधिकारी हैं। इनको नाम रामचन्द्र खान है।

महाप्रभु—तो प्रियबन्धु! मोकूँ शीघ्र ही गंगा पार कर देओ। मेरे प्राण प्राणनाथ श्रीजगन्नाथ के दर्शन के लिये तड़फ रहे हैं।

रामचन्द्र—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। यद्यपि या समय या पार के यवनराज और वापार के हिन्दू राजा में घोर विरोध चल रह्यौ है। यासों एक राज ते दूसरे राज में प्रवेश करनो मृत्यु के मुख में ही जानो है। परन्तु चाहे मेरे प्राण ही क्यों न चले जायँ मैं आपकूँ आज ही रात जैसे बने तैसे गंगा पार कराय ही दऊँगो। परन्तु भगवान्! मेरी एक प्राथर्ना स्वीकार की जाय। आप पधार करकै या दस को घर पवित्र करैं और भिक्ष हू स्वीकार करैं।

महाप्रभु—जैसी हरिच्छा! चलौ। (प्रस्थान)

समाज—

दुर्लभ लाभ सहज ही पायो। बड़भागी निज गृह लै आयो।।
(स्वागत सत्कार भीतर पर्दे ही में)

आसन दै प्रभु पगन पखारे। अँचवन करि निज पितरन तारे।।
चरचे चन्दन अरपी माला। वारत आरती मगन निहाला।।
भवन विप्र शुचि कीन्ह रसोई। जन अनुसार पाक बहु होई।।
देव नारायण भोग लगाये। प्रभु सहित प्रसाद जन पाये।।
पुनि निसि कीर्तन नृत्य रचाये। विषयी घर वैकुंठ बनाये।।
रजनी पहर तीसरो आयो। तब अधिकारी वचन सुनायो।।

(पर्दा खुलता है। महाप्रभु, संगीजन एवं रामचन्द्र)

रामचन्द्र (दोहा)—

कृपा सहज असीम करी, कियो अनाथ सनाथ।
ठाड़ी नौका घाट पै, आज्ञा करौ हे नाथ।।

महाप्रभु—तो चलो। हरिबोल (प्रस्थान)

समाज—

हरिबोल कहि संग लगि धाये। गंगा घाट नौका ढ़िंग आये।।

(प्रहसन) (दृश्य-गंगा में एक नौका। दो मल्लाह)

मल्लाह १ (कीर्तन)—

हरे नामा हरे नामा, नामा नामा हरे हरे।
हरे तृष्णा हरे तृष्णा, तृष्णा तृष्णा हरे हरे।।

मल्लाह २—ऐसे नहीं साले-

हरे रामा हरे रामा०। हरे कृष्ण हरे कृष्ण०।।

मल्लाह १—गलत। तुम्हारा कीर्तन बिल्कुल गलत। हमारा सही, बिल्कुल सही, सोल्ह आना सही—

हरे नामा हरे नामा०। हरे तृष्णा हरे तृष्णा०।।

मल्लाह २—अरे चिच्लाना पीछे। पहले यह तो बता यह सही कैसे है।

मल्लाह १—सुन ले कान खोल करके और तोल ले दुनियाँ को इस तराजु पर—

रुपया ही राम रमैया है, सुत मात तात और भैया है।
रुपये से रूप बदल जाता, भेंडा भी कुँवर कन्हैया है।।
जग में तो बड़ा रुपैया है, यह सबका बेड़ा पार करै।
हरे नामा हरे नामा०। हरे तृष्णा०।।

नामा ही नाच नचाता है, नामा भाषण करवाता है।
नामा चुनाव जितवाता है, नामा दल बदल कराता है।।
जिसके पास न नामा है, वह पीटे सिर को हरे हरे।
हरे नामा हरे नामा० ।हरे तृष्णा० ।।

मल्लाह २—अबे चुप-चुप! हाकिम साहब आ रहे हैं—और

(प्रवेश महाप्रभु-संगीजन एवं रामचन्द्र)

समाज—रामचन्द्र पद कियो प्रणामा।

रामचन्द्र—लिखहु दास दासन मो नामा।।

सहज कृपा करि मो घर आये। नाम सुनाय अधम अपनाये।।
अब भरोस मोंहि भयो गुंसाई। विषयी जान जन तजिहौ नाई।।

समाज—

अस कहि चरनन पर्यो अकुलाई।
रुदन करत प्रभु लिये उठाई।।
दियो आलिंगन मंगलकारी। अपनाये लखि दीनता भारी।।

महाप्रभु—

कृष्ण कहौ चिन्ता दुखनाई। कृष्ण नाम मंगल सुखदाई।।

समाज—

अस कहि नौका चढ़े दयाला। कृपा दृष्टि करि जन प्रतिपाला।।
माझी नौका दई चलाई। हरि बोल हरि धुनि चहुँ छाई।।

महाप्रभु—मुकुन्द कीर्तन प्रारम्भ करौ।

मुकुन्द—हरे कृष्ण हरे कृष्ण०। हरे राम हरे राम०।।

समाज—

ज्यों ज्यों कृष्ण कीर्तन भाँपै। त्यों त्यों माँझी हियरा काँपै।।

माझी १—ओ ठाकुर! ओ देवता! चुप करो, शान्त होओ। नौका डगमगाय रही है। उलट जायगी।

माझी २—हाय-हाय! बन्द नहीं होओगे कहा? नौका डुबाओगे ही। अरे हम तो अल्लाह हैं, जैसे तैसे पार है ही जायँगे परन्तु तुम कैसे जगन्नाथपुरी पहुँचोगे।

माझी १—अरे देवताओ! जल में मगरमच्छ हैं और वन में बाघ हैं और डाकू हैं। हल्ला सुनकै आ जायँगे लूट लैंगे, मार डारेंगे। हम हाथ जोरैं, पाँव परै है। मुख बन्द करके चुप बैठ जाओ।

समाज—

सुनि सुनि वचन भक्त डरपावहिं। भयहारी मुखचन्द्र निहारहिं।।
भक्तवत्सल प्रभु संकट हारी। बोले अभय वचन सुखकारी।।

महाप्रभु (बंगला)—

कछु चिन्ता नाहीं करो कृष्ण संकीर्तन।
तोरा देखो ना, हेरो फिरे सुदर्शन।।

कोई चिन्ता-भय मत करो। कृष्ण संकीर्तन करो। देखो नहीं हो सुदर्शन चक्र तुम्हारे पीछे ऊपर ठाड़ी है तुम्हारी रक्षा करवे के लिये—

(दृश्य-सुदर्शन चक्र आकाश में)

महाप्रभु (पद)—

साँचे भक्त कूँ भय है काको।
तीन लोक में है को ऐसो, करै बारहू बाँको।।
आग जरावै ना पानी बोरे, विष नहीं मारे ताको।
मन वच कर्म अनन्य भावसों, हरिपद आश्रय जाको।।
अम्बरीष प्रह्लाद साखि बहु, हरि को व्रत यह बाँको।
सदासहायक अपने जन के, सत्य 'प्रेम' यह आँको।।
हरिबोल हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल।।

समाज—

उतरि नौका घाटहिं आये। जन गन जुरि दरसन हित आये।।
अचरज रूप संन्यासी निहारे। तन मन सर्वस सहजहिं वारे।।
भुवि परि भक्त चरन रज रोलें।
पुलकित तन मुख हरि हरि बोलें।।
भई घाट जन भीर महारी। आयौ घटदानी अधिकारी।।

घटदानी—

कहत पुकार राज कर लाओ। बिन चुकाये कर जान न पाओ।

निताई—भैया घटदानी! हम जगन्नाथपुरी जाय रहे हैं। हम कूँ जन देओ।

घटदानी—तो राजा को जो कर लगै है सो देओ और चले जाओ।

गाना (पद)—

खोलो थैली के बन्द यार, दे जाओ जी दान करार।

निताई—थैली कहाँ भैया, यहाँ तो कानी-कौड़ी हू नहीं है। हम तो गृहत्यागी वैरागी हैं। जान देओ। दया करो। पुण्य होयगो।

घटदानी—

दया करूँ और छोड़ूँ दान तो देगो राजा निकार।
मेरे संग पाँच और मरेंगे जो मेरे परिवार।
नगद बिना यहाँ काम चले ना, पुण्य की बात उधार।

निताई—परन्तु नगद नारायण कहाँ ते लायकै दें।

घटदानी—कहूँ ते लाओ। माँगके, चेताय के जैसे बने तैसे लाओ।

गाना—

लूटो चाहे काटो गला पर चाँदी कमाओ यार।
तीरथ व्रत पुण्य फिर करके, हो जाओ भवपार।
पैसा 'प्रेम' तुरत पहुँचावे, जगन्नाथ दरबार।।

निताई—अरे भाई! यहाँ परदेश में हम कहाँ जायँ और कौन ते कहैं। तुम ही दया कर देओ।

घटदानी—दया-मया नहीं पैसा-टका कि बात करौ। लाओ, देआ (महाप्रभु की ओर देखते हुये) अरे! या युवा संन्यासी कूँ देखकै तो मोकूँ दया-मया आवै है। बाबा तुम तो जाओ आगे। और ये सब कहा आपके ही साथी हैं।

महाप्रभु—या जगत् में न तो मेरो कोई और न मैं काहू को। मैं तो अकेलो ही हूँ।

घटदानी—तो तुम चले जाओ बाबा! तुम्हारो कर नहीं लगैगो।

(महाप्रभु का भीतर जाना। संगीजन पीछे पीछे)

घटदानी—(रोकते हुये) अरे ठहरो ठहरो! तुम कहाँ जाय रहे हो। पहले कर चुकाओ, फिर जान पाओगे।

निताई—भैया। हम तो इन्हीं के संगी सेवक हैं।

घटदानी—वाह वाह! वह तो कहै है कि मेरी कोई नहीं और तुम सब वाके गरे परौ हो। कोई चिरैया उड़ाय लाये हो कहा। खबरदार आगे बढ़े तो। गाँठ खोलौ गाँठ!

समाज (दोहा)—

घटदानी रोक्यौ सबै, दियो प्रभु कूँ जान।
निरखत ठाड़े जन रहे, अन्तर दुख बहु मान।।

निताई—देख्यौ भैयाओ! प्रभु को कौतुक। हमकूँ अपनो संगी बताय देते तो कहा झूँठी बात होती कै कोई अपराध बन जातो। बड़े ही कौतुकी हैं।

जगदानन्द—श्रीपाद! तुम याकूँ कौतुक मानौ हौ परन्तु मोकूँ तो रुवाई आवै है। कहूँ प्रभु एक बेरहू दृष्टि सों दूर है गये तो उनकूँ पकर पामनो कठिन परैगो। हाय प्रभो कहा हमकूँ ऐसे ही छोड़के चले जाओगे।

गोविन्द—हम दिन रात उनकूँ घेरे रहे है। उनकूँ अपनी इच्छानुसार नहीं चलन देय हैं। याहि सों अबके अवसर पायके वे हमकूँ तजि गये है। हाय प्रभो! कहा याहि के तांई हमकूँ संग लाये हे। अब नदिया के परिकर भक्तन कूँ कहा मुख दिखावेंगे। हा गौर! कृपा करौ।

समाज—

इत ये विलत गौरहिं टेरहिं। उत वे विलपत हरि हरि टेरहिं।।
घटदानी तहाँ चलि आयो। रोवत विलपत प्रभु ही पायो।।
चकित कछु गति समझ न पावै। सुनि सुनि उर वरवस उमगावै।।

महाप्रभु—

कदाचित कालिन्दीतट विपिन संगीततरलो
मुदाभीरी नारी वदन कमलास्वाद मधुपः।
रमाशम्भुब्रह्मामरपति–गणेशार्चित पदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।

गाना (भीम पलासी–तिताला)—

अँखियाँ वा छवि की अति प्यासी।
कूल कालिन्दी मूल कदमतरु, वृन्दाविपिन विलासी।
ललित त्रिभंगी पीतपट मध्य, अंग अंग श्याम घटासी।
कल मुरली रस सरसत, नवनव रास हुलासी।

व्रजवनितन मुखकमलन मधुकर, मनमोहन सुखरासी।
जगन्नाथ व्रज प्राणनाथ बिन, प्रेम प्राण उदासी।।

हा जगन्नाथ हा प्राणनाथ! तुम मेरे नयनगोचर कब होगे ये प्यासी अँखियाँ कब तृप्त होंगी!

समाज (दोहा) —

घटदानी ठाड़ो सुनत, लखत भयो जु निहाल।
कट गयो मन को मैल सब, कोमल भयो दयाल।।

घटदानी—अरे आज तक मैं कबहु न रोयो परन्तु आज तो मोकूँ रुवाई छूट रही है। दिन रात यात्रिन कूँ लूटनो सतावनो यही मेरो नित्य कर्म है। परन्तु या युवक संन्यासी कूँ देखकै और याके विलाप कूँ सुनकै मेरो हृदय हू पिघल रह्यौ है। यह है कौन? चलूँ उन लोगन सों पूछूँ जो अपने कूँ साथी बतावें हैं।

समाज (दोहा) —

घटदानी तब आयके, पूछत बात बनाय।
संन्यासी वह कौन है, रोवत काहे हाय।।

घटदानी—आप कौन हो? साँची-साँची बताओ। ये संन्यासी स्वामी कौन हैं? मोकूँ तो कोई देवता जैसे लगे है।

निताई—भैया! हम सब नदियावासी हैं। वे हमारे प्राणनाथ प्रभु कौन हैं। उनको नाम श्रीकृष्णचैतन्यदेव है। हम उनके सेवक संगीजन हैं।

घटदानी—तो वे इतनो रोवैं क्यूँ है? उनकूँ कहा दु:ख है?

निताई—भैया उनकूँ कछुइ दुख नही है। वे तो हमकूँ श्रीजगन्नाथ के लिये रोमनो सिखावैं हैं-कितनी उत्कष्ठा होनी चाहिये उनके दर्शन के लिये-याकूँ प्रत्यक्ष दर्शावैं हैं।

जगदानन्द—हाय भैया! तैंने हमकूँ उनकी सेवा सों, उनके दर्शन सों वंचित कर दियो। हमने तोसों कई बार कही कि हम तो उनके संगी सेवक हैं परन्तु तैंने हमकूँ झूठो ठानकै हमकूँ और उनकूँ दु:ख दियो।

घटदानी—(हाथ जोड़) क्षमा करौ देवताओ! क्षमा करौ मैं अपराधी हूँ। चलौ अपने प्रभु के समीप।

निताई—अब राज-कर नहीं लेगो कहा? तेरी नौकरी चली जायगी!

घटदानी—चूल्हे भार में जाय नौकरी। चलौ उनके समीप देर मत करौ। वे रोय रहे हैं।

समाज (दोहा)—

भक्त जननहिं संग लै, आयौ सो प्रभु पाहिं।
शरण शरण कहि गह्यौ चरन, नैनन धार बहाहिं।।

घटदानी—क्षमा करौ दीनानाथ! मेरे अपराध कूँ क्षमा करौ। मैंने मूर्खतावश आपकूँ आपके प्रिय संगी सेवकन सों बिछोह करायो। उनकूँ दुःख दिया और आपकूँ हूँ। मैं महादुष्ट लुटेरो हत्यारो हूँ। अब आपकी शरण हूँ। कृपा करौ। उद्धार करौ मोकूँ हूँ! (चरण ग्रहण)

समाज (दोहा)—

बाँह गही अति नेह सों, लियो घटदानी उठाय।
दयादृष्टि प्रभु पायके, नाचत हरि हरि गाय।।

महाप्रभु—(उठाते और हरिबोल कीर्तन करते हैं)

निताई—जा अब तेरो यह नाचनो गानो जन्म भर नहीं छूटेगो। हरिबोल।

घटदानी—मैंने हू छोड़यो आज सों राजा को कर लैनो-घटदानी को काम करानौ।

निताई—तो तेरे बाल-बच्चे भूखे मरेंगे और तेरोहू पेट कैसे भरैगो?

घटदानी—जाने बनायो है पेट वही भरैगो हू। हरिबोल हरिबोल। आज मेरे बाल-बच्चे, मेरो कुल परिवार कृतार्थ है गयो। हरिबोल (गाते-नाचते चला जाता है)

समाज (चौपाई)—

बंग देश तजि उत्कल आये। चले जात मग हरि हरि गाये।।
सुने नाम जो सोइ हरि बोले। रूप निरखि बिक जात अमोले।।
अधम पतित हरि हरि कहि रोवैं। पाप कलुष नैनन जल धोवैं।।
वनवासी हू हरि हरि बोलैं। करैं भक्ति चरनन रज रोलैं।।
सहस सहस जन संगहि लागे। जगन्नाथ दरशन अनुरागे।।
कहूँ दरस कहूँ परस सों, कहूँ बोल सुनाय।
लुटवत नाम प्रेम रस, चले विश्वम्भर राय।।
अवर एक लीला चरित सुनहु सकल मन लाय।
जा विधि नाम प्रेम दै रजक कुलहिं अपनाय।।

(प्रवेश धोबी-धोबिन कपड़ों की गठरी लिये)

धोबी—(कपड़े धोते हुये गाता है)

अरे मैल तो कटै ना हो सीयो
यह दाग तो छुटै ना हो सीयो।
एरी धोबिन मेरी धोबिन,
भट्टी में क्यों नहीं दियो हो सीयो।।

धोबिन—गीली लकड़ी लावै क्यों, क्या हाड़ जराऊँ हो सीयो।

धोबी—पीटूँ तो फट जावै धोती, धुवाई मिले ना हो सियो।

धोबिन—हँसुली को पैसा नहीं लावै, बोलूँगी ना हो सीयो।

(मान कर बैठना। धोबी का मनाना)

धोबी—अरी रिस मत करै ठुकरानी! हँसुली कूँ पैसे लाय दऊँगो! नेक बोल दै परमेसुरी।

मेरे दुख मे सुख यही है, तेरे मुख बैना, धोबिन हो०।।

धोबिन—बात तो मीठी लागै तेरी, देख जरे नैना, धोबी हो०।।

आमार पोड़ा कपाल एमन मिनसे मिलेछे।
एकटु सुख नाइ, खाटुनी दिन रात खाटुनी।।

धोबी (बंगला)—ओलो आमार ठकुरानी! राग कोरिस ना आमार माथाय तोमार हाथटि रेखे दाओ।

धोबिन (बंगला)—इस्स्! बड़ो साध होयेछे! सारे दाँडाओ ना! आर थाकबो ना! चली जाऊँगी (गमन)

धोबी—आरे दाँडाओ दाँडाओ! आमार माई बाप फिरे देखौ एक बार! अहा! चोले गेलो! मरी मरी! कतई ढंग जाने (कपड़े धोने लगता है)

(प्रवेश महाप्रभु भक्तों सहित)

महाप्रभु—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम्।।

समाज (दोहा) —

प्रेम मगन मग जात प्रभु, ठाड़े कछु सोच।
पथ तजि चले रजक ढिंग, ठाड़े संगी लोग।।

महाप्रभु—(धोबी समीप जा भुजाऐं उठा) हरिबोल।

धोबी—हो सीयो! अरे मैल तो कटे ना हो॰ ।।

महाप्रभु—हरिबोल।

धोबी—कहा है?

महाप्रभु—हरिबोल।

धोबी—अरे कहा है बाबाजी! चले आगे! काम करन दे। हो सीयो।

महाप्रभु—भैया कामहू कर हाथ सों और मुख सों हरिबोल।

धोबी—बोल तो रह्यौ हूँ, हो सीयो।

महाप्रभु—हरिबोल भैया हरिबोल!

धोबी—अरे हमारे बाप-दादा-परदादा सात पीढ़िन ते यही बोलते आये हैं-हो सीयों! हो सीयो!

महाप्रभु—पर अबके तू हरि बोल दै।

धोबी—अच्छो सिरड़ी पागल है! मोकूँ काम करन नहीं देय है।

महाप्रभु—भैया! तेरे काम को ला मैं करूँ हूँ! तू हरिबोल।

धोबी—वाह! मैं अपने कपड़ान कूँ तोकूँ सौंप दऊँ और तू लैकै लम्बो परै! क्यूँ बाबाजी?

महाप्रभु—नहीं भैया नही! मैं कपड़ान कूँ लैकै कहा करूँगो मैं तो नंगो भिखारी हूँ। मोकूँ तो एक हरिनाम चाहिये! सों तू हरिबोल और ला मैं तेरे कपड़ान कूँ धोऊँ।

(कपड़ा लेने को आगे बढ़ते हैं)

धोबी—अरे दूर रह दूर! कहा कपड़ान कूँ छीनैगो।

महाप्रभु—नहीं भैया! धोय दऊँगो! तू हरिबोल! मैं तेरे हाथ जोरूँ, पाँव परूँ हूँ! बोल हरिबोल!

धोबी—तो मैं हरिबोला बन जाऊँ और बालबच्चे भूखे मरैं।

महाप्रभु—मरेंगे नही तर जायेंगे। विश्वम्भर हरि उनकूँ भरपूर देंगे-यहाँ और वहाँ हू। बोल भैया हरिबोल।

धोबी—तुम्हारे महीन सुर में कैसे बोलूँ? मेरो तो मोटो गरो है।

महाप्रभु—अपने मोटे गरे सों ही बोल-परन्तु हरिबोल।

धोबी—(गला फाड़ जोर से) हरिबोल

महाप्रभु—फिर बोल! और जोर ते बोल-हरिबोल।

धोबी—हरिबोल-हरिबोल (कहते २ नाचने लगता है)

महाप्रभु—हरिबोल (प्रस्थान)

समाज (दोहा)—

नाम रस चखाय के, दियौ सुरंग चड़ाय।
वह नाचत बौरा बन्यो, यह जु चले बौराय।।
जिनके दरस परस सों, जीव होत चैतन्य।
बोलैं कृष्ण कृष्ण सबै, जय जय कृष्णचैतन्य।।

(प्रवेश धोबिन रोटी-पानी लिये)

धोबिन—(धोबी को नाचते गाते देख) अरी मैया! ए कहा? अरे रुक जा! चुप है जा! हाय हाय! यह तो नाचै ही नाचै है! कोई भूत-प्रेत लग गये! अरे दौड़ो!

(प्रवेश एक उड़िया किसान)

उड़िया—अरे ओ-ओ! यह कहा कर रह्यौ है! अरे चुप है जा! होश सम्हार! यह तोकूँ कहा है गयो?

धोबी—हरिबोल-हरिबोल (नाचता-गाता रहता है)

उड़िया—अरे चुप है जा (पकड़ता है-स्पर्श होते ही खुद भी नाचने लगता है)

धोबिन—अरी दैया! यापै हू चढ गयो भूत! अरे दौड़ियो! बचैयो! (हल्ला मचाती है)

(प्रवेश पाँच-सात जाति-बिरादरी के स्त्री पुरुष)

समाज (चौपाई)—

धोबिन टेरत धूम मचाई। सुनि नर नारी दौरे आई।।
जो ढिंग जाय रजकहिं परसे। सो हरि गावै नाचै सरसे।।
ताको परस पुनि दूजो पावै। सोउ नाचै हरि हरि गावै।।
प्रभु जो प्रेम रजकहिं दीयो। सो रस बहु नर नारिन पीयो।।

जय जय कृष्ण चैतन्य दयाला। अचरज सबही तिहारे ख्याला।।
अचरज 'हरिबोल' नाम तुम्हारो।
अचरज रीति सों नाम प्रचारो।।

दृष्टः स्पृष्टः कीर्तितः संस्मृतो वा
दूरस्थै रप्यानतो वादृतो वा।
प्रेम्णः सारं दातुमीशो स एकः
श्रीचैतन्यं नौमि देवं दयालुम्।।

(चै० चन्द्रामृत)

रस प्रेम की मूरति गौर हरि इक बेरहू नैनन दृष्टि परै।
तो परै रति-प्रेम को बीज तेही छिन फेर न कबहू नेक टरै।।
न टरै न गरै वह धरै अंकुर रितु पाय सुफल प्रेम फरै।
ऊसर ते ऊसर होत हरे इक बेर जो गौरहरि दृष्टि परै।।

रस प्रेम की मूरति गौरहरि सुजान अजान के परस करै।
चाहे तनहिं करै कै वसनहिं करै, श्रीचरनरज उड़ि अंग परै।।
जड़ मूकहू गावै भागवत भाखै बाघहू उचारे कृष्ण हरे।
ऊषर ते ऊषर होत हरे कहुँ गौरहरि टुक परस करे।।

हरिबोल (सबका निर्गमन)

समाज (चौपाई)—

चलै जात जगन्नाथहिं ओरा। नृत्यत गर्जत धावहिं गौरा।।
ग्राम वास तजि वन पथ धाये। तीरथ कूँ तीरथहि बनाये।।
मारग जेहि निकसि प्रभु जावैं। नाम प्रेम रसधार बहावैं।।
दृष्टि परत कोउ हरि हरि बोलैं। शब्द सुनत कोउ नाचत डोलै।।
चरनन आय वन सिंह लुठावैं। हरि मुखसों हरिनाम बुलावैं।।
जीवन हित लीला विस्तारहिं। गृहत्याग निज सफल बनावहिं।।
कटकपुरी ढिंग रेमुना गामा। गोपीनाथ दर्शन अभिरामा।।

निताई—प्रभो! अब हम जगन्नाथ क्षेत्र में कटकपुरी के समीप रेमुना गाँव में आय पहुँचे हैं। यहाँ भगवान् गोपीनाथ जी के बड़े मनोहर दर्शन हैं। वे क्षीरचोरा गोपीनाथ के नाम सों प्रसिद्ध है।

महाप्रभु—यह क्षीरचोरा नाम काहे ते परयौ है श्रीपाद, कहा इननें खीर चुराई?

निताई—हाँ प्रभो अपने अनन्य भक्त के ताँई खीर चुराई ही।

महाप्रभु—ऐसो कौन भाग्यशाली भक्त है वो?

निताई—वे हैं आपके ही दादा गुरु श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी महाराज, आपके श्रीगुरु श्रीईश्वरपुरी जी के गुरुदेव!

महाप्रभु—(हाथ जोड़ श्रीमाधवेन्द्र जी के उद्देश्य से प्रणाम) अहा! हा! दादा गुरुजी की यह मनोहर कथा तो माकूँ सुनाऔ।

निताई—प्रभो! अब हम मन्दिर में ही आय पहुँचे हैं। यासों क्षीरचोरा गोपीनाथजी के सन्मुख ही उनकी चोरी की कथा सुनेंगे सुनायेंगे। क्यों ठीक है न प्रभो?

महाप्रभु—ठीक है, चलौ मन्दिर में दर्शन करें (सबका प्रस्थान)

(दृश्य मन्दिर क्षीरचोरा गोपीनाथ)

पुजारी—ओउम् नमो नारायणाय। पधारौ भगवन् दर्शन करौ, हमारे क्षीरचोरा गोपीनाथ प्रभु के। जैसे ये सुन्दर हैं वैसे ही इनके खीर चुरायवै की कथा हू बड़ी सुन्दर है।

महाप्रभु—तौ ब्राह्मणदेव वा कथा कूँ सुनायवे की कृपा करौ।

पुजारी—सुनिये भगवन्, ब्रजमण्डल में जो गोवर्धन नाम कौ प्रसिद्ध गिरिराज है, बाकी तलहटी में एक छोटो सो गाँव है, आन्यौर।

निताई—आन्यौर गाँव तौ मेरौ देख्यौ भयौ है।

पुजारी—वहाँ आन्यौर में गिरिराज पर्वत के ऊपर श्रीगोपाल जी विराजमान हैं।

निताई—मैं हूँ उनके दर्शन कर आयौ हूँ।

पुजारी—वे गोपालजी एक सुप्रसिद्ध महात्मा माधवेन्द्रपुरी जी के प्रगट किये भये हैं गोपालजी ने उनकूँ आदेश दियौ, कि तुम जगन्नाथपुरी जायकें मेरे ताँई चन्दन लै आओ। तब तौ श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी महाराज पद यात्रा करते-करते बहुत दिनान में यहाँ रेमुना गाँव में आय पहुँचे। संध्या समय हो। उनने गोपीनाथजी के दर्शन किये और बाहर एकान्त स्थान में पड़े रहे। वे अयाचक वृत्ति वे सन्त हे, यासों काहू सों भिक्षा की याचना नहीं करी। हारे थके भूखे प्यासे पड़े रहे। हमारे इन गोपीनाथ जी कूँ ब्यारू में खीर भोग लगै है। ऐसी खीर कहूँ नहीं बनै है। यह यहाँ की विशेषता है। ऐसी से खीर बड़ी ही प्रसिद्ध है। सो माधवेन्द्रपुरी जी पड़े-पड़े मन मे सोच

रहे हे कि यह खीर कैसी होयगी? नैंक चाखवे कूँ मिल जाती तौ जायकें अपने गोपालजी कूँ हूँ ऐसी खीर खवायौ करतौ। परन्तु मिलै कैसे, अब तो रात है गई, मन्दिर हू बन्द है गयौ। गोपीनाथजी हू ब्यारू करकैं सोय गये। अब खीर कहाँ, कौन देगौ मोकूँ? या प्रकार की धुनाबनी में उनकी आँख लग गई परन्तु गोपीनाथजी कूँ नींद कहाँ? उनकी आँख तौ अपने सन्त भक्त के ऊपर न जानें कबसों लग रही हो, यासों उननैं पहले सों ही प्रबन्ध कर राख्यौ हौ। ब्यारू में खीर के सात बड़े-बड़े कुल्लड़ धरे जायँ हैं। सो गोपीनाथजी ने एक कुल्लड़ उठायकैं अपनी पीताम्बरी के आँचल में दुबकाय के राख लियौ। याकी ओर पुजारी को कू ध्यान नहीं गयौ कि कुल्हड़ सात है कि छे ही है। वो तौ ब्यारू कराय सैन दै मन्दिर बन्द करिकै चल्यौ गयौ। परन्तु गोपीनाथजी कूँ चैन कहाँ? उनकौ तौ प्यारौ भक्त भूखौ प्यासौ अपने गोपालजी की चिन्ता करतौ भयौ सोय गयौ हौ। यासों गोपीनाथजी ने सपने में पुजारी कूँ आदेश कियौ कि मेरे पीताम्बर के पल्ले में खीर कौ एक कुल्लड़ धरौ भयौ है। वाकूँ लैकैं मेरे प्यारे भक्त माधवन्द्रपुरी कूँ अबही दै आऔ। पुजारी हड़बड़ाय कै उठौ। स्नान कियौ, मन्दिर खोलौ श्रीअंग सों पीताम्बरी हटायौ तो देखतौ ही रह गयौ। कुल्लड़ धरौ है। लैकैं बाहर दौयौं माधवेन्द्रपुरी जी कौ नाम लै लैकैं पुकारवे लगौ। माधवेन्द्रजी जाग गये और बोले, तौ उनके हाथ में कुल्लड़ पकराय कै उनके चरणन में पुजारी परि गयौ। सब वृत्तान्त सुनायकैं उनकी बड़ी प्रशन्सा करी और चल्यो गयौ। माधवेन्द्रपुरी जी की तौ दशा ही बड़ी विचित्र है गई! नेत्रन सों अश्रुधार बहे जाय रहे, हे कण्ठ गद्‌गद्‌ हैं गयौ, वाणी रुक गई। जैसे तैसे सम्हार-सम्हारकै कुल्लड़ कूँ माथे पै लगायौ और बैठकैं खीर प्रसाद पायवे लग्यौ। प्रसाद तौ साक्षात् अधरामृत ही हौ। वाकूँ पायकैं तौ वे प्रेम में गोता खाय गये और बेसुध पड़े रहे। आँख खुली तो भोर है गयौ। रात्रि कृपा की सुधि आयी तौ बड़े घबराये। सोचवे लगे कि यदि मैं यहाँ रहूँगौ तौ जनता मोकूँ माथे पै चढ़ाये डोलैगी। मान प्रतिष्ठा कूँ सूकरी-विष्ठा मानवे वारे संत वाही समय भाग चले और सूधे जगन्नाथजी जाय पहुँचे। खीर प्रसाद तौ पाय ही लीयौ हौ वा खाली कुल्लड़ कूँ संग ही लै गये। नित्य प्रति एक-एक टूक तोड़-तोड़कैं वाकूँ हू खाय गये। यह है भक्त और भगवान् कौ मधुर चरित। तबसों ही श्रीगोपीनाथजी कूँ खीरचोरा की उपाधि प्राप्त भई है। अब सब मिल करकै इनकी आरती उतारौ।

आरती-पद—

जै जै श्रीखीरचोरा गोपीनाथ।
कुलिया खीर चुराये भक्त हित, राखे लुकाये आप।।
आज्ञा भई पुजारी कूँ निसि, भूखौ जन मम आज।
जाय खीर तुरत दै आवौ, धाय दीयौ जन हाथ।।
खीर पाय पुरी नीर बहाये, कुलिया लीनी बाँधि।
जग-कीरत-भय प्रातः पलाये, पहुँचे श्रीजगन्नाथ।।
टूक-टूक कुलिया नित खायौ, यही प्रीत की बात।
परस पाय प्यारे संग धूरहु, प्यारौ अति है जात।।
भक्त हेत हरि चोर औ, साहू नाना चरित दिखात।
भक्त जैसे भगवान् हू तैसे, प्रेम बलि बलि जात।।

महाप्रभु—श्रीगोपीनाथ जी के सम्बन्ध में एक रहस्य कथा मैंने यहहू सुनी है कि यह श्रीविग्रह श्रीरामचन्द्र जी के हस्तकमल सौं निर्मित किये भये स्वरूप हैं।

पुजारी—ये कथा तौ भगवन् हमकूँ हू सुनावे की कृपा करें?

महाप्रभु—सुनौ जब श्रीरामचन्द्र जी वनवास काल में दण्डकारण्य में निवास कर रहे है तब एक समय, अम्बा जानकी जी के हृदय में एक कौतुक उठौ, और वे बोलीं हे नाथ! आपने पूर्वकाल में, काहू समय ब्रज में गोपीनाथ वनकैं जो लीला करी ही मैं आपके वा गोपीजनवल्लभ स्वरूप के दर्शन करनौं चाहूँ हूँ, तब भगवान् नें सीताजी की इच्छा पूरी करिबे के ताँई एक सुन्दर शिला-खण्ड लियौ और वाकूँ अपने लोह बाण की नोक सों खोद-खोद करके जो एक सुन्दर विग्रह प्रकट कियौ वही ये श्रीगोपीनाथ जी हैं। ऐसौ यह विलक्षण स्वरूप है। आऔ हम सब इनकूँ प्रणाम करें। (महाप्रभु सहित सब प्रणाम करते हैं उस समय गोपीनाथ जी के मुकुट से एक मोरपंख गिरकर प्रभु के मस्तक पर आ पड़ता है)

समाज (चौपाई)—

गौर प्रणाम श्याम को कीन्हे। श्यामहू आदर गौरहिं दीन्हे।।
मोरपंख उन मस्तक सौं ढरि। आय परयौ इन मस्तक उपरि।।
भाव कछुक गौरहू प्रगटाये। भये ठाड़े त्रिभंग बनाये।
(त्रिभंग रूप से खड़े हो जाते हैं)
जुगल स्वरूप अभेद बताये। जोइ श्याम सोइ गौर सुहाये।।
संगी सकल देखि सुख पाये। जय-जय गौर कृष्ण जय गाये।।

संगीजन—जय गौर कृष्ण की जय, जय गौर गोपीनाथ की जय

(महाप्रभु और गोपीनाथ जी की आरती उतारते हैं)

आरती धुन—

गौर गोपीनाथ मोहन श्रीगोविन्द।
करहु कृपा मन रहे पद द्वन्द।।
तुव पद द्वन्द, मिट जाय जग धुन्ध।
मन मधुकर पद प्रेम मकरन्द।।

श्रीजगन्नाथ-दर्शन

मंगलाचरण—

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे,
बसन् प्रासादान्तः सहज-बलभद्रेण बलिना।
सुभद्रा-मध्यस्थः सकलसुरसेवावसरदो,
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।

जय श्रीमाधवेन्द्रपुरी, जय श्री गोपीनाथ।
जय श्रीकृष्णचैतन्य जू, गाऊँ प्रेम गुण गाथ।।
रजनी-वास रेमुना करि, खीर प्रसाद निशिपाय।
संकीर्तन रस प्याय कै, प्रात चले प्रभु धाय।।

श्रीगोपाल पुरी प्रगटाये। गोपीनाथ जु खीर चुराये।।
प्रीति प्रतीति हरि हरिजन की। मधुर मनोहर मुक्तिहू फीकी।।
कहत सुनत चले सुखदाई। गोपीनाथ गोपाल गुसांई।।
पढ़त श्लोक दिव्य प्रभु धाये। राधामुख सों जो प्रगटाये।।
सोई पुरी माधवेन्द्र जु गाये। त्यागि तनु हरि धाम सिधाये।।
ये तीन ही या पद-रस जानें। चौथेन के मनहू नहिं आनें।।
कौस्तुभमणि जिमि रतनन माहीं।
तिमि ये पद रस काव्यन माहीं।।
गावत ताहि प्रभु चलि जावहिं। संगीजन सुनि अचरज पावहिं

(प्रवेश श्लोक गाते हुए महाप्रभु)

महाप्रभु—

अयि दीनदयार्द्रनाथ! हे मथुरानाथ! कदावलोक्यसे।
हृदय त्वदलोककातर दयित! भ्राम्यति किं करोम्यहम्।।

गीत (भैरवी-दादरा)—

कहा करूँ सखि कहा करूँ, कहा करूँ कैसे प्रान धरूँ।।
आवन कहि गये आये जु नाहिं, गिनत दिवस मास बिताहिं।
तुम तो मोहिं अब भुलाय रही, आयँगे आयँगे कहि कही।।
हाय! धीर धरूँ कैसे धीर धरूँ। कहा करूँ।।

(श्रीकृष्ण का स्फूर्त्ति-दर्शन कर)

ये देखो प्यारे आये जु आये, दीन दुखी देखि दयाल आये।
बन्धु सखा नाथ मेरे ये आये, पकरि जकरि उर राखौं दुराये।।
हृदय धरूँ तुम्हें कहाँ धरूँ। कहा करूँ०।।२
चले गये हाय छोड़ि गये, मथुरा मथुरानाथ गये।
दयालु हाय निठुर भये, ब्रज गोपिकान भूलि गये।
मान करूँ कहा मान करूँ। कहा करूँ०।।३

(हे निठुर! हे निरमोही! तुम तो हमकूँ भूल गये परन्तु हम तुमकूँ भूलें तो भूलें कैसे भूलें)

भूले कूँ नाय सकैं जु भुलाय, हिय में जियमें रह्यौ है समाय।
चाह सो 'प्रेम' सौगुन बढ़ाय, छिनही मारै छिनही जिवाय।।
कैसे जियूँ हाय! कैसे मरूँ। कहा करूँ०।।४

(भूमि पर लोटपोट हो रुदन)

(निताई-गदाधर आदि महाप्रभु को उठाते हैं)

महाप्रभु—(निताई के गले में हाथ डाल)

कहा करूँ सखि कहा करूँ,
कैसे मरूँ कैसे प्राण धरूँ।।

(गाते-रोते प्रस्थान)

समाज (चौपाई)—

भावनिधि प्रभु गौराराई। कह सुन समझ सकै को भाई।।
उठहिं दिव्य उन्माद तरंगा। अंगन अंगन नव नव रंगा।।
कबहु डूब सुधबुध बिसरावैं। उछरि कबहु हुँकारत जावैं।।
कबहू गद्गद् बोलि न सकहीं। कबहू ऊँचे बोल हरि गावहीं।।

इहि विधि मारग चले चलाये। रेमुना तजि याजपुर प्रभु आये।।
वाराह देव मन्दिर मग पाये। करि प्रनाम स्तुति बहु गाये।।
नृत्य गीत संकीर्तन कीन्हे। निशि बिताय भोर मग लीन्हे।।
आगे कटक नगर महँ आये। साक्षी गोपाल भवन नियराये।।
जैसे गोपाल व्रज सों आये। सो सब चरित निताइ सुनाये।।

निताई—प्रभो! अब हम कटक नगर में आय पहुँचे हैं। यहाँ के ठाकुर श्रीसाक्षी गोपालजी सुप्रसिद्ध हैं। ये गोपालजी वृन्दावन सों अपने भक्त की साक्षी दैवे पधारे हे सो पावन चरित्र मैं आपकूँ सुनाऊँ हूँ।

प्राचीन समय की बात है। दक्षिण देश में गोदावरी नदी के तट पै जो विद्यानगर है, वहाँ के द्वै ब्राह्मण श्रीवृन्दावन की यात्रा कूँ गये। एक जना युवक हो, एक वृद्ध। युवक ने वृद्ध ब्राह्मण की बड़ी सेवा करी। प्रसन्न हैकै वृद्ध बोल्यौ कि अपने देश में लौटवे पै मैं तुमकूँ अपनी कन्या ब्याह दऊँगो। या वचन के तांई वाने गोपालजी कूँ साक्षी ठहरायो। परन्तु जब यात्रा पूरी करकै घर कूँ लौटे तौ वह ब्राह्मण कन्यादान के वचन कूँ अस्वीकार कर गयौ। गाँववारेन ने साक्षी माँग्यौ। तब तौ वह युवक वृन्दावन लौटकै गयौ और गोपालजी के आगे रोय-रोयकै प्रार्थना करवे लग्यौ कि लोग मोकूँ झूँठो मानैं हैं और साक्षी माँगैं हैं। यासों आप कृपा करौ और मेरे संग पधार करकै साक्षी देऔ।

अन्त में गोपालजी कूँ बोलनो ही पर्यौ। वे बोले कि तुम जाय करिकै गाम में सभा जोरौ। तब मोकूँ स्मरण करनौ, मैं प्रगट हैकैं साक्षी भरूँगो। परन्तु ब्राह्मण हठ परि गयौ कि आपकूँ तो याहि मूर्ति स्वरूप में मेरे संग चलनौ परैगो। गोपालजी बोले—'अरे मूर्त्ति चलै-फिरै नहीं है।' तौ ब्राह्मण बोल्यौ, मूर्त्ति बोलै हू तौ नहीं है। जब आप बोलौ हो तौ आप मूर्त्ति कहाँ रहे, आप तो साक्षात् नन्दलाल हौ। यासों मैं तो आपही कूँ लैकै जाऊँगो।'

गोपालजी प्रसन्न है गये और बोले—'अच्छो तौ मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगो। तुम नूपुर धुनि सुनते रहौगे। परन्तु मुड़ करिकै पीछे नहीं देखनौ। मुड़ करकै देखौगे तो मैं वहीं को वहीं ठाड़ो रह जाऊँगो। अब तौ ब्राह्मण आगे-आगे और गोपालजी पीछे-पीछे छम्-छम् करते भये चले। मार्ग भर ब्राह्मण गोपालजी कूँ सुन्दर-सुन्दर भोग बनाय आरोगवातो भयौ लै गयौ। तीन मास की यात्रा के अन्त में जब वह ब्राह्मण अपने गाँव की सीमा में जाय पहुँच्यो। तो मारे आनन्द के वापै रह्यौ नहीं गयौ और वाने पीछे मुड़िकै

जो देख्यौ सोई गोपाल जी जहाँ के तहाँ ठाड़े है गये और बोले 'जा, गाँववारेन कूँ यहीं लै आ, मैं यहीं साक्षी दऊँगो, आगे नहीं जाऊँगो।'

तब तो ब्राह्मण दौड़िकै ग्रामवासिन कूँ लै आयौ। गोपाल जी ने साक्षी भरकै वाको वा कन्या सों ब्याह कराय दियौ। तबही सों इनको नाम साक्षी गोपाल पर्यौ है। उन्हीं को यह मन्दिर है। चलौ भीतर चलकै दर्शन करैं।

महाप्रभु—परन्तु ब्राह्मण तो गोपालजी कूँ विद्यानगर लै गयौ हो। यहाँ कटक में कैसे आये?

निताई—उत्कल के राजा पुरुषोत्तम देव महाराज विद्यानगर विजय करकै साक्षीगोपाल कूँ यहाँ लै आये।

(दृश्य—मन्दिर। वंशीधारी साक्षी गोपालदेव)

पुजारी—पधारौ भगवन् पधारौ। ॐ नमो नारायणाय। ये साक्षीगोपाल देव हैं। साक्षात् कृपा ही की मूर्ति हैं। भक्त पै कृपा करिकै श्रीवृन्दावन सों पाँवन पाँवन चलिकै यहाँ पधारे हैं। इनकी स्तुति गाइये।

स्तुति—

जय जय साक्षीगोपाल।
जमुना तीर तजि खार सिन्धु तट, आय विराजे हो लाल।।1
विप्र भक्त जब जाय पुकार्यौ, तुव दरबार दयाल।
रीझ तुरत ताके संग धाये, आये पग पग चाल।।2
पग नूपुर झन्कार छम् छम्, मोहन शब्द रसाल।
सुनि धुनि मगन विप्र मन माने, आवत पीछे लाल।।3
सौ सौ दिन चलि पाँवन आये, लखो ईश्वर के हाल।
गाम निकट विप्र मुरि देख्यौ, बनि गये विग्रह बाल।।4
महिमा भक्ति भक्त प्रगटाये, निज जन किये निहाल।
जैसे तुम नन्दलाल निराले, तैसी निराली चाल।।5
रानी के मन भई लालसा, बेसर धवाऊँ लाल।
नासा छिद्र दिखाय दयालु, पूरी आस तत्काल।।6
जैसे कूँ तुम तैसे नितही, यही तिहारी चाल।
अन्धेन कूँ तुम मिट्टी पत्थर, विरलेन कूँ नन्दलाल।।7
जगन्नाथ दर्शन जो आवै, साक्षी भरौ तत्काल।
कर्महीन जन 'प्रेम' दीन की, रहियो साक्षी गोपाल।।8
जय हो साक्षी गोपाल की जय हो।

महाप्रभु (श्लोक) —

पद्भ्यां चलन् यः प्रतिमा स्वरूपो,
ब्रह्मण्यदेवो हि शताहगम्यम्।
देशं ययौ विप्रकृतेऽद्भुतोऽयं
तं साक्षि गोपालमहं नतोऽस्मि।।

(प्रणाम)

समाज—

अचरज एक भयो तिहि काला। मुरली नेक हटाय गोपाला।।
अधर हलाय मनो कछु भाषहिं। दोउ दोउन प्रति नेह जनावहिं

महाप्रभु—(गोपाल प्रति दृष्टि। नेत्र-मिलन)

समाज (बंगला) —

गोपालेर आगे जबे प्रभु हय स्थिति।
भक्तजन देखे जेनो दोहें एके मूर्ति।।
गोपाल आगे महाप्रभु सोहैं। भक्त लखैं एकही मनो दोहैं।।
एक रंग दोऊ पीत बरन है। वसन दोउन के अरुण वरण है।।
मधुर ज्योतिमय कमल नयन दोऊ।
भावभोर मन चन्द्र वदन दोऊ।।
लखि निताई औरन लखावैं। नैनन सैनन हँसैं हँसावैं।।
तबही निताई प्रश्न उठायौ। बूझत रानी चरित जो गायो।।

निताई—ब्राह्मणदेव आपने स्तुति के मध्य में यह बात कही कि साक्षीगोपाल जी ने रानी की अभिलाषा पूरी करी हती सो प्रसंग सुनायवे की कृपा करें।

पुजारी—भगवन्! यह तो आप जानौ ही हो कि हमारे राजा विद्यानगर कूँ विजय करकै गोपालजी कूँ यहाँ लाये हे।

निताई—हाँ! सो घटना तो प्रसिद्ध ही है।

पुजारी—तो राजा की रानी बड़ी भक्तिमती हीं। गोपालजी के दर्शन करिकै मोहित है गईं और गोपालजी के लिये बहुमूल्य रत्नालंकार भेंट किये उनमें एक मोती को सुन्दर नकबेसर हू ही। रानी बड़ी चिन्ता में पर गई कि गोपालजी की नासिका में छिद्र तो है ही, फिर बेसर कैसे धराऊँ। हाय! बेसर बिना मेरे गोपालजी को मुखचन्द्र फीको-फीको सो लगै है। या बात को बड़ो ही दु:ख भयो। सो भक्तवांछा कल्पतरु गोपालजी ने रात्रि में स्वप्न

दियौ और कह्यौ कि बाल्यकाल में यशोदा मैया ने मेरी नाक छिदवाय कै बेसर पहनाई हती सो छिद्र मेरी नासिका में बनी भई है। सो तू अपनी बेसर लायकै पहनाय दै। रानी राजा कूँ लै मन्दिर में आई। नासिका में छिद्र देख कै वाके आनन्द की सीमा न रही। बेसर धारण कराय दीनी और महामहोत्सव मनायो। ऐसे हैं ये गोपालजी—भक्त की साँची भावना कूँ पूरी करवे वारे। जय हो साक्षीगोपाल दयाल की जय हो।

महाप्रभु—(सम्मिलित संकीर्तन)

धुन—

जय गोपाल गिरिधारी नन्दलाल।
भक्तवत्सल जन दीनदयाल।।

समाज—

रजनी तहाँ कीन्हे विश्रामा। प्रात गये भुवनेश्वर धामा।।
एकाम्रक वन तहाँ मनोहर। स्वयं आप बनाये शंकर।।
सो सुरम्य नगरी भुवनेश्वर। वाराणसी सम अतिप्रिय शंकर।।
(दृश्य—भुवनेश्वर-शिवलिंग)

समाज (चौपाई)—

गौरचन्द्र तहाँ चलि आये। हर दर्शन करि हरि सुख पाये।।
स्वयं गौर शिव पूजा कीन्ही। शिव पूजा-शिक्षा जग दीन्हीं।।
(महाप्रभु द्वारा शिव-पूजा)
शिक्षा-गुरु की शिक्षा न माने। निज दोष फल दुक्ख सो पाने।।

बंगला (चै०च०)—

शिवप्रिय बड़ो कृष्ण ताहा बुझाइते।
नृत्य कोरे गौरचन्द्र शिवेर अग्रेते।।
शंकर प्रिय अति कृष्ण कूँ, समझावन हित सत्य।
शिव आगे स्वयं गौरहरि, लागे करन सुनृत्य।।

महाप्रभु—कीर्तन धुनि 'शिव राम गोविन्द'

समाज (बंगला चै०च०)

शिव राम गोविन्द बोलिया गौराय।
हाथे ताली दिया नृत्य कोरेन सदाय।।

भुवनेश्वर शिव ग्राम महँ, प्रभु लै भक्तन संग।
शिवलिंगन देखत फिरैं, भरे जु आनन्द रंग।।
ग्राम मध्य जहँ जहँ रहै, जो जो देवालय।।
जाय जाय दर्शन सकल, कीन्हे गौर महाशय।।
इहि विधि रंग आनन्द करि, गौरचन्द्र सुख पाय।
भुवनेश्वर प्रनाम करि, रहै कमलपुर जाय।।
भागा नदी नहान करि, लै कछु भक्तन संग।
गये कपोतेश्वर प्रभु, इत कियो निताइ रंग।।

(दृश्य—केवल नित्यानन्दजी बैठे हैं। दण्ड लटक रहा है)

निताई—(उठ खड़े हो) अहा! आज मेरो दाव परि गयो। प्रभु, जगदानन्द, गदाधर आदि सब भक्तन कूँ लैकै कपोतेश्वर महादेव के दर्शन कूँ गये हैं और या दण्ड कूँ यहीं लटकाय गये हैं। (दंड को हाथ में ले) सो आज या दंड कूँ दंड दैकै इतने दिनन की अपनी कसक मिटाऊँगो। जैसे व्रजगोपिन के तांई वह वंशी सौत ही वैसे ही हमारे तांई यह दण्ड है। मेरे पास हू तो एक दंड हो।

एक दंड हुतो ताहि खंड कियो, अब दंड ए दूजो आय जुर्यौ है।
हम प्रान बिछाय के राखैं प्रभु, यह प्रभु के नित काँधे चढ्यौ है
यह बांस की वंशी भयो नहिं क्यों,
रहतो प्रभु के अधरान लग्यौ है।
अरे दण्ड उदण्ड लै दण्ड यही,
करूँ खंड ही खंड न 'प्रेम' सह्यौ है।।

(दण्ड के तीन टुकड़े कर नदी में बहा देते हैं)

जाओ! माया के चिन्ह, माया की नदी में! मायातीत प्रभु सों तेरो कहा सम्बन्ध!!

समाज (दोहा)—

खण्ड तीन करि दण्ड कूँ, दीने जलहिं बहाय।
आय गये जन तेहि समय, टारत बाल बनाय।।

(प्रवेश जगदानन्द, मुकुन्द और गदाधर)

निताई—क्यों? करि आये कपोतेश्वर महादेव के दर्शन?

जगदानन्द—हाँ करि आये।

निताई—प्रभु कहाँ रह गये?

जगदानन्द—आय रहे हैं गोविन्द के संग। परन्तु दण्ड कहाँ गयो श्रीपाद, मैं तो यहाँ लटकाय गयो हो?

निताई—लै गये होओगे, कहूँ भूलि आये हो।

जगदानन्द—लै नहीं गयो, यहीं टाँग गयो हो। हाँसी छोड़ो और साँची-साँची बताय देओ दण्ड कहाँ है?

निताई—दण्ड कूँ तो दण्ड मिल गयो। तीन गुणन के तीन टूक करिके भागा नदी में बहाय दियो।

जगदानन्द—हाय-हाय गजब कर डार्यौ आपने। अब दूसरो दण्ड कहाँ ते आवैगो। गुरु ही दूसरो दण्ड दै सकै है परन्तु गुरु यहाँ कहाँ?

निताई—परन्तु दूसरे दण्ड को प्रयोजन ही कहा?

जगदानन्द—क्यों नहीं? दण्ड संन्यास को चिन्ह है। संन्यासी विधिपूर्वक ही दण्ड कूँ त्याग कर सकै है परन्तु भंग कदापि नहीं कर सकै है। भंग हैवै पै संन्यासी के लिये अग्नि-प्रवेश द्वारा प्रायश्चित को विधान है।

निताई—(व्यंग सह) तो तुम प्रभु कूँ संन्यासी मानौ हो?

जगदानन्द—संन्यासी नहीं तो कहा है?

निताई—अच्छो संन्यासी ही सही परन्तु तुम्हारे लिये, मेरे लिये नहीं। यासों तुम संन्यास की रीति-नीति कूँ पकड़े रहौ। मैं अपनी नीति पै चलूँगो।

जगदानन्द—हाय! अब प्रभु न जाने कहा करैंगे। आपने बड़ी अनीति कर दीनी श्रीपाद!

निताई—मैंने अनीति करी कै नीति करी। याको दण्ड मैं भोगूँगो। तुम कोई चिन्ता मत करो। भैया जगदानन्द! मेरे प्रभु न दण्ड लैवे आये हैं न दण्ड दैवे आये हैं। ये आये हैं दया करिवे। दया और दण्ड को भलो कहा मेल? नेम और प्रेम की जोड़ी कैसी?

(प्रवेश महाप्रभु और गोविन्द)

निताई—आय गये प्रभो! कपोतेश्वर दर्शन करकै?

महाप्रभु—हाँ श्रीपाद! अब आगे चलनो चाहिये। अबहि नीलाचल कितनो दूर है श्रीपाद? हाय! न जाने मोकूँ कब श्रीजगन्नाथ प्रभु के दर्शन होंगे।

निताई—प्रभो! अब तो तीन कोस ही दूर है। वह देखौ न श्रीजगन्नाथ जी के शिखर के दर्शन है रहे है!

(दृश्य—श्रीजगन्नाथ मन्दिर।
कलश-चक्र-ध्वजा-युक्त। भगवान् श्यामसुन्दर खड़े हैं)

समाज (दोहा)—

जगन्नाथ मन्दिर शिखर, कलश सुदर्शन चक्र।
दरसन कोसन दूर ते, उड़त ध्वजा जु वक्र।।
तहाँ प्रभु अचरज लखत, मुरलीधर घनश्याम।
बैठे भुजा पसारि द्वय, बोलि रहे निज धाम।।

महाप्रभु—(शिखर दर्शन कर) अहा! कहा वही है मेरे प्राणनाथ के मन्दिर को शिखर। वह देखो! प्राणनाथ तो स्वयं शिखर पै बैठे भये हैं। भुजा पसार कै हाथ हलाय-हलाय मोकूँ बुलाय रहे हैं।

बंगला (चै०च०)—

श्याम नागर डाके मोर अँगुली हिलाये।
चाहिछे आमार पाने हासिये हासिये।।

भैरवी—

वह देखो ठाड़ो श्याम गोपाल।
मोर पखा सिर सुन्दर सोहे, छूटै कपोलन कुन्तल जाल।।
फूलन फूल रहै अंगम अंग, फूल रहै मानो तिन विच लाल।
वाम हस्त अधर धर मुरली, गावत मन्द मधुर रसाल।।
दच्छिन हस्त हलावत मो तन, हँसि हँसि हेरत टेरत लाल।
आओ वेगि मिलन हित आओ, दरसन करि प्रभु प्रेम निहाल।।

महाप्रभु—देखो! देखो! श्रीपाद! मेरे प्राणनाथ मोकूँ हाथ हलाय-हलाय मोकूँ बुलाय रहे हैं।

(दौड़कर निकल जाते—पुनः दौड़ते हुये प्रवेश करते एवं गिर पड़ते। उधर श्यामसुन्दर शिखर पर से अन्तर्द्धान हो जाते हैं)

महाप्रभु—चले गये! छिप गये! अब तो केवल शिखर ही शिखर दीखै है। श्याम! मेरे श्याम तो नहीं हैं अच्छो, मैं ही अब आऊँ हूँ। (दौड़ना)

निताई—प्रभो! अबहि तो मन्दिर तीन कोस दूर है। नेक धीरे चलौ।

महाप्रभु—धीरे नहीं उड़ चलौ। तीन कोश मोकूँ तीन योजन जैसो लग रह्यौ है। हाय! मेरे पंख न भये जो अबही उड़कै पहुँच जातो। अब तो बिलम्ब नेकहू सह्य नहीं होय है। (निताई को ध्यान से देखते हुये) परन्तु श्रीपाद! मेरो दण्ड तो तुम्हारे हाथ में नहीं है! कहाँ गयो?

निताई—(चुप)

महाप्रभु—जगदानन्दजी! मेरो दण्ड कहाँ है?

जगदानन्द—श्रीपाद ही बतायँगे प्रभो!

महाप्रभु—श्रीपाद के पास तो नहीं है। काहू सों लड़-भिड़ तो नहीं पड़े?

निताई—आपही सों भिड़ पर्यौ हो प्रभो! आप प्रेमावंश में विह्वल हैकै गिरवे लगै तो मैं सम्हारवे लग्यौ। सो हम दोउन को भार दण्ड पै आय पर्यौ और वह बेचारो टूट गयो। यामें मेरो दोष कहा?

जगदानन्द—प्रभो! साँची बात तो यह है कि आपके अवधूतजी ने दण्ड कूँ तोड़कै भाग नदी में बहाय दियौ है।

निताई—अच्छो कियो! एक बाँस को टूक ही तौ हो!

महाप्रभु—दण्ड तो संन्यास को लिंग है, प्रतीक है। वामें समस्त तेतीस कोटि देवतान को निवास होय है।

निताई—प्रभो! आपही इतने देवतान कूँ काँधे उठाय कै चलवे में समर्थ हो। हमपै तो इतने देवता लादे नहीं जाय सकैं हैं, यासों मैंने तो समस्त देवतान कूँ जल में पधराय दिये।

महाप्रभु—बड़ो अनुचित कार्य कर डार्यो। जाओ! अब मैं तुम्हारे संग नहीं चलूँगो। कै तो तुमही सब आगे जाओ, कै मैं ही आगे जाऊँ हूँ!

निताई—आपही आगे पधारौ प्रभो!

महाप्रभु—हरिबोल! हरिबोल (भुजा उठा दौड़ पड़ना)

जगदानन्द—यह आपने कहा कियौ श्रीपाद! जो प्रभु कूँ अकेले ही जान दियो।

महाप्रभु—ठीक ही तो कर्यौ। हम पीछे रहेंगे तो यदि वे कहूँ गिर हू परे तो हम जायकै सम्हार सकैंगे। और यदि हमही आगे चले जाते तो उनकी खोज-खबर कौन लैतो?

मुकुन्द—चलौ, दौड़ चलौ। प्रभु कहूँ आँखिन ते दूर न है जायँ

(सब चले जाते हैं)

समाज (दोहा)—

इत दयाल निताइ प्रभु, उत स्वयं कृष्णचैतन्य।
दण्डभंग इनको चरित, समझि सकै को अन्य।।
समुझि सकै को अन्य, लीला परम गम्भीर यह।
जानि सकै सो धन्य, नेम धर्म भेद भ्रम पर।।

(दृश्य—श्रीजगन्नाथ मन्दिर। त्रिमूर्ति की झाँकी।
दो पुजारी पार्श्व में खड़े। पण्डा एवं यात्रीदल)

पण्डा १—तो भैयाओ! हमारे ये चार धाम हिन्दू मात्र के लिए दर्शनीय एवं पूजनीय हैं। उत्तर में बद्रीनारायण, दक्षिण में रामेश्वर, पश्चिम में द्वारिका एवं पूर्व में श्रीजगन्नाथ। इनमें हू हमारे यहाँ ऐसी मान्यता है कि बद्रीनारायण तो सतयुग को धाम है, रामेश्वर त्रेता को, द्वारिका द्वापर को और कलियुग कूँ पवित्र करवे वारो धाम यह हमारो जगन्नाथपुरी है।

पद—

बद्री धाम सतयुग को कहिये, त्रेता के रामेश्वर।
द्वारावती द्वापर को जानो, कलियुग के पुरी ईश्वर।।
बद्रीनाथ में करें तपस्या, राज द्वारिका माहीं।
पूजन कूँ रामेश्वर जावें, पुरी में पूजा खाहीं।।
बद्री ध्यान रामेश्वर पूजा, द्वारिका सेवा बताई।
जगन्नाथ में महाप्रसाद की, महिमा प्रभु प्रगटाई।।
चारैं युगन के चार धाम ये, चार दिशान रखावैं।
चार पदारथ पावै 'प्रेम' जो, नित उठ इनकूँ गावैं।।

और भक्तजनो! हमारे जगन्नाथजी के महाप्रसाद में छुआछूत और जूँठन सों नेक हू दोष नहीं आवै है। यहाँ तक कि समस्त उपवास-व्रतन में हू महाप्रसाद पायौ जाय है। यामें कारण यह है कि महाप्रसाद कोई प्राकृत अन्न पदार्थ नहीं, चिन्मय वस्तु है। अतएव देश, काल, पात्र, परिस्थिति के नियम-बन्धन सों अतीत है। महाप्रसाद में उच्छिष्ट-बुद्धि करनो, वाकूँ जूँठो माननो महापराध है—दंडनीय है।

यात्री १—गुरुजी महाराज! हम तो जहाँ-जहाँ तीर्थ धामन में गये वहाँ-वहाँ देवी-देवतान के सर्वांगपूर्ण सुन्दर विग्रह के ही दर्शन हुये—

सुघड़ सुडौल सुन्दर सबै, देवालय के देव।
अनघड़ डोल डौल बिन, कैसे पुरी के देव।।

पण्डा—नहीं नहीं यात्रियों—यह श्रीविग्रह

आँखिन कूँ अनघड़ लगै, परम सुघड़ स्वरूप।
रूप कुरूप विरूप ते, परे प्रेम को रूप।।

पुजारी—बहुत सुन्दर पंडितजी! भैयाओ! जो हमारी तुम्हारी आँखिन कूँ अनघड़ अपूर्ण लगै है वह व्रजगोपिन के द्वारा घड्यो भयो परम प्रेम को रूप है।

यात्री १—सो कैसे महाराज? सुनायवे की कृपा है जाय।

पुजारी—यह तो बड़ी लम्बी गाथा है, संक्षेप में सुनाऊँ हूँ। सात सौ वर्ष पूर्व मालवा देश में इन्द्रद्युम्न नाम को एक प्रतापी राजा हो। उननै यह सुन्यौ कि उत्कल देश में एक नीलाचल पर्वत है। वाके ऊपर नीलमाधव भगवान् को श्रीविग्रह है जाकी पूजा देवता कर्यौ करैं हैं। वे दर्शन की बड़ी उत्कण्ठा सों यहाँ आये। याही ठौर पै नीलाचल पर्वत हो एवं नीलमाधव भगवान् हे। परन्तु राजा के आयवे ते पहले ही देवता नीलमाधव के श्रीविग्रह कूँ लैकै देवलोक चले गये हुते। राजा बड़ो ही निराश और उदास है गयो। तब आकाशवाणी भई कि अब तुम्हें मेरे दर्शन दारु ब्रह्म जगद्बन्धु जगन्नाथदेव के रूप में होंगे।

अब दारुब्रह्म की कथा सुनो। एक दिन महाराजा इन्द्रद्युम्न समुद्र-स्नान कर रहे हे तो एक बड़ो भारी काष्ठ बहतो भयो आयो। राजा ने वाकूँ निकसवायो और वाही की श्रीविष्णु मूर्ति निर्माण करवे को निश्चय कियौ जा ठौर पै वह काष्ठ बहतो भयो आय लग्यौ हो वह चक्र तीर्थ नाम सों प्रसिद्ध है। वाके दर्शन सबकूँ करने चाहिये वामें स्नान को माहात्म्य सर्वाधिक है।

अब श्रीमूर्ति-निर्माण के लिये कुशल शिल्पकार की आवश्यकता परी। दैवेच्छा सों एक वृद्ध बढ़ई के रूप में देवशिल्पी स्वयं विश्वकर्मा राजा के पास आय पहुँचे। मूर्त्ति बनानी स्वीकार करली परन्तु एक शर्त पै कि जब तक भीतर कमरे ते आज्ञा न होय तब तक द्वार नहीं खोल्यौ जायगो और वे भीतर बन्द कोठरी में मूर्ति बनायो करैंगे जा स्थान पै या समय गुण्डिचा मन्दिर है (रानी को नाम गुण्डिचा हो) वहाँ एक भवन में वा दारु काष्ठ के लैकै वह वृद्ध बढ़ई बन्द है गयो।

जब दिन पै दिन पन्द्रह दिनहू ते अधिक समय बीत गयो और भीतर ते कोई संकेत, कोई शब्द नहीं सुनाय पर्यौ तो महारानी गुण्डिचा को कोमल हृदय घबराय गयो कि कहूँ ऐसो न होय वह वृद्ध काहू कारण ते मर गयो होय अथवा मर रह्यौ होय। यासों महाराज सों हठ पकरि कै द्वार खुलवाये तो भीतर बढ़ई नहीं है, केवल तीन अपूर्ण मूर्ति ठाड़ी हैं। राजा कूँ बहुत पश्चात्ताप भयो कि बिना आज्ञा द्वार खोलवे सों ही ये मूर्ति अपूर्ण रह गईं! अब इन अधूरी मूर्तिन को कहा करें। चिन्ता ने दबाय लीनी।

वाही समय आकाशवाणी भई कि राजन्! कोई चिन्ता न करो, हमारी इच्छा ऐसी ही है कि हम तीनों या अपूर्ण रूप सों ही प्रगट होवैं। यासों तुम इनके अंग राग कराओ और इनकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करके महोत्सव मनाओ। तदनुसार राजा ने सब कार्य सम्पन्न कियो। रानी के नाम पै वा ठौर को नाम गुंडिचा मन्दिर पर्यौ और वहाँ श्रीमूर्ति निर्मित भई हुती यासों गुंडिचा मन्दिर कूँ ब्रह्मलोक अथवा जनकपुर हू कहैं हैं।

यात्री १—परन्तु पण्डितजी महाराज! पहले तो आपने यह कही ही कि ये गोपीप्रेम द्वारा घड़ी भई मूर्ति हैं और अब आप इनकूँ विश्वकर्मा द्वारा घड़ी भई बताय रहे हो। सो या बात कूँ समझाय देओ।

पुजारी—सुन्दर शंका है तुम्हारी! भैयाओ! भगवान् की एक-एक लीला में अनेकानेक हेतु होय हैं। गोपी-प्रेम की कथा सुनायवे के लिये ही मैंने राजा इन्द्रद्युम्न की कथा पहले सुनायी। आकाशवाणी के द्वारा भगवान् ने जो यह इच्छा प्रगट करी कि अबके हम याही अपूर्ण रूप में प्रगट होवैंगे—वाको अब कारण सुनौ।

द्वापर की बात है। एक समय द्वारिका में पटरानी श्रीरुक्मिणी, सत्यभामा आदि ने रोहिणी माता सों यह आग्रह कियौ कि आप व्रज में निवास कर आयो हो। यासों हमारे प्राणनाथ की ब्रजलीला सों भूलीभाँति परिचित हो। सो हम आपके मुख सों व्रजगोपिन के प्रेम की कथा सुननो चाहैं हैं। यह न हम और काहू ते पूछ ही साकैं हैं और न कोई जानै ही है जो बतावैगो। एक आप ही जानौ हो और बताय सकौ हो। यासों कछु सुनायवे की कृपा करैं यह हमारी चिरकाल की लालसा है।

रोहिणी माँ बोली कि बेटियो! यामें एक बड़ी भारी कठिनाई है। जैसे राम-कथा के प्रधान श्रोता हनुमानजी हैं। राम कथा जहाँ होय है वहाँ हनुमानजी सर्वप्रथम पहुँच जायँ हैं ऐसेही राधा-प्रेम-कथा के प्रधान श्रोता श्रीकृष्ण ही हैं। सो राधा प्रेम की जहाँ चर्चा होय है वहाँ श्रीकृष्ण अवश्य

ही जाय पहुँचे हैं। सो वे यहाँ हू अवश्य चले आयँगे उनको कोई रोक तो सकैगो नहीं। फिर उनके सन्मुख तो मैं राधा प्रेम की कोई चर्चा नहीं कर सकूँगी। याको कोई उपाय सोचौ तो मैं कछु कहूँ।

सत्यभामाजी बोलीं कि उनते कोई कछु कह सकै है तो हमारी ननद रानी सुभद्राजी ही कह सकैं हैं। यासों इनकी कृपा सों ही काम बनै तो बनै। तब रोहिणी माँ ने सुभद्राजी सों समझाय कै कही कि बेटी! तुम जाय के महल के द्वार पर बैठ जाओ जो तुम्हारे भैया आवैं तो कह दीजौ माताजी की आज्ञा नहीं है सो वह अवश्य ही मान जायगो। या प्रकार सों उचित प्रबन्ध करके रोहिणीजी गोपिन के संग कृष्ण-कन्हैया के क्रीड़ा-कौतुक सुनायवे लगीं—

समाज (इमन-३) —

जय जय जय श्रीजगन्नाथ।।टेक।।
एक दिवस श्रीद्वारिका मध्य पटरानिन की समाज।
गोपी-प्रेम-कथाहिं सुनावति, श्रीरोहिणी बल मात।।
द्वारे सुभद्रा जु ठाड़ी कीन्ही, आन न पावैं भ्रात।
(परन्तु कथा प्रारम्भ होत ही)
हरि हलधर दोउ राज समाज तजि, आये द्वार अकुलात
द्वारे सुभद्रा आड़े आई, ठाड़े भगिनी भ्रात।
ज्यूँ ज्यूँ कथा कहति उत रोहिनी, इत तीनों गरि जात
(गोपिन की, तामें हू श्रीराधाजी के प्रेम की कथा के प्रभाव सों)
कर चरसा मुख नयन नासिका, तन मन गरिगरि जात
इन्द्रिन-भेद मिट्यौ अंगन को, प्रेम-पिंड भयो गात।।

तीनों भाई बहनन के कर्णन में ज्यूँ-ज्यूँ गोपी-प्रेम की कथा प्रवेश करती गई त्यूँ-त्यूँ उनको मन पिघलवे लग्यौ और मन के संग-संग तन और तन की समस्त इन्द्रिय आँख-कान-नाक-हाथ-पाँव सब गरवे लगे और गर-गरके कछु ते कछु बन गये! ऐसो गोपी-प्रेम को ताप-प्रताप है।

वाही समय भगवान् के मानसावतार उनके मनोभाव के ज्ञाता नारदजी वहाँ आय पहुँचे। भीतर महल में हू कथा समाप्त भई और बाहर ये तीनों हू धीरे-धीरे सचेत स्वस्थ है गये। नारदजी चकित-विस्मित हैकै दर्शन कर रहे हे। जब भगवान् स्वस्थ है गये तब नारदजी ने प्रणाम करकै प्रार्थना करी कि आप तीनों याही द्रवीभूत स्वरूप सों विराजमान हैकै संसार कूँ दर्शन

देऔ। तब भगवान् श्रीकृष्ण प्रार्थना स्वीकार करते भये बोले 'भावी कलियुग में हमारे ये तीनों स्वरूप दारु विग्रह के रूप में प्रगट होयँगे।'

पूर्वपद—

रूप अनूप सो नारद देख्यौ, माँग लियौ ढिंग नाथ।
सोई रूप अब दारु रूपमें, प्रगट कियौ जगन्नाथ।।
गोपी-गोपीनाथ-प्रेम की, लीला अकथ अगाध।
बिन्दु प्रेम प्रभु-पद याचत, और नहीं कछु साध।।
आस पास राम कृष्ण भ्राता, बीच सुभद्रा सुहात।
महाप्रसाद 'प्रेम' लुटावत, जगत पसारत हाथ।।
जय जय जय श्रीजगन्नाथ।।

अब तो समझ गये भैयाओ! ये अनघड़ देवता नहीं ये परम प्रेम के घड़े भये प्रेम-देवता है। अपूर्ण अंग नहीं, प्रेम-पूर्ण अंग हैं।

जय हो प्रेम-पुरुषोत्तम देव की जय।
जय हो नीलाचल नाथ की जय।

समाज (दोहा)—

भक्तन पीछे छोड़कै, पहुँचे आये हरि द्वार।
धसि धाये मन्दिर महँ, भीर जनन की फार।।

(प्रवेश दौड़ते भुजा फैलाये हुये महाप्रभु)

उछरि चढ़ै सिंहासन, अंकम जगन्नाथ धरै।
मिलै प्रान प्रानन, तन मन अहमिति विसराय।।

पुजारी १—सर्वनाश! स्पर्श कर डार्यौ! भ्रष्ट कर डार्यौ! पकड़ौ! मारौ याकूँ!

पुजारी २—यह को अवधूत पागल आयौ! मारौ! दौड़ो।

(प्रवेश तेजी से सार्वभौम भट्टाचार्य)

सार्वभौम—सावधान! जो इनके वदन में काहू ने हाथ लगायो तो! देखौ नहीं हो यह कोई महापुरुष है!

पुजारी १—बावरो है! अवधूत है।

पुजारी २—मन्दिर भ्रष्ट कर दियौ। अब न जानै महाराज कहा दण्ड देंगे!

सार्वभौम—कोई दण्ड नहीं दैंगे। याको भार मेरे ऊपर! हाँ! दण्ड-महादण्ड मिलैगो यदि काहू ने इनके अंग पै हाथ चलायो तो!

पुजारी १—आप राजगुरु हैं! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अन्यथा यह कार्य क्षमा के योग्य तो नहीं है।

सार्वभौम—देखौ! इनकूँ सेवकन के द्वारा उठाय कै सादर यत्नपूर्वक मेरे स्थान पर लै चलौ!

पुजारी—जैसी आज्ञा!

समाज (चौपाई)—

जगन्नाथ सेवक बहु आये। सादर विश्वम्भरहिं उठाये।।
परसत प्रभु तन प्रेमहिं सरसे। बोलत हरि बोल हरि हरषे।।
सार्वभौम भवन पहुँचाये। टरत न मूर्च्छा जतन कराये।।

बंगला (चै०च०)—

श्वास प्रश्वास नहीं उदर-स्पन्दन।
देखिया चिन्तित हइलो भट्टाचार्येर मन।।
सार्वभौम मन करत विचारा।
लखि लखि प्रभु तन प्रेम विकारा।।

सार्वभौम—ढाई पहर है गयो मूर्च्छा भंग नहीं है रही है। यह कोई रोग की मूर्च्छा तो है नहीं, यह तो प्रेम-मूर्च्छा है। कृष्ण-प्रेम-प्रताप को प्रबल वेग है—प्रायः अन्तिम विकार है।

हलत न डुलत तन, साँस न उसाँस चलै
नाड़ी हू की गति बन्द, बन्द हृदय गति है।
धार तौहू आँखिन सों अखंड बहि जात है
रोम् रोम् ठाड़े केसर, कदम्ब-से लगति हैं।
कंचन-सों तन दम्-दम्, दमकत है अंग अंग
रोग-सोग-ताप-पाप-छायाहू न छुवति है।
गति बिन, गति मति, रति भरपूर 'प्रेम'
हुलसि हुलसि सोइ आँखिन बहति है।।

और इनके तन बदन सों यह कैसी अलौकिक अपूर्व सुगन्ध आय रही है—

नासा मुख साँस नहीं, सुवास अंग अंगन सों
नासाछिद्र जाय मन, मेरोहू रमायो है।

केवल गुलाब नहीं, बेली चमेली में नहीं
हृदय-कमल-परिमल, ही चहुँ छायो है।
रूप-रंग लखि, लखि भाव-तरंग अंग
मन बदरंग मेरो, रंग में रंगायो है।
सूनौ करि भौन कौन, मावस अँध्यारि रैन,
पूनौ को 'प्रेम' चाँद, कौन यह आयो है।।

कौन है यह युवक संन्यासी। याकूँ देख-देखके मो नैयायिक को काष्ठ-कठोर, हृदय मरुभूमि में हू वात्सल्यमयी स्निग्ध सरिता बहवे लगी है। हाय यह मुखचन्द्र कौन के गृह-मन्दिर कूँ अमावस बनाय यहाँ प्रगट भयो है? कैसे जानूँ? कौन ते पूछूँ? इनके कोई संगी-साथ हू हैं कै नहीं!

समाज (सोरठा)—

आये लै समाचार, गोपीनाथ आचारज तहँ।
बाहर ठाड़े द्वार, संगी इनके पाँच जन।।

गोपीनाथ—(प्रवेश करके) भट्टाचार्यजी! इनके पाँच संगीजन इनकूँ ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहाँ आय पहुँचे हैं। बाहर द्वार पै ठाड़े हैं।

सार्वभौम—तो आप उनकूँ आदर पूर्वक लै आवैं।

गोपीनाथ—(जाकर नित्यानन्द आदि के सहित आते हैं)

निताई—यह रहे प्रभो! यह रहे! हरिबोल!

सार्वभौम—स्वागतं सुस्वागतम्। आइये! विराजिये।

मुकुन्द—हाय हाय! प्रभु कैसे अचेत परे हैं! हरिबोल!

सार्वभौम—इनको वृत्तान्त तो आप मन्दिर में सुन ही चुके होंगे।

निताई—सुन करकै तो यहाँ आये हैं! आपने हमारे प्राण प्रभु की रक्षा करी है। हम आपके चिर कृतज्ञ हैं।

सार्वभौम—तब सों ये मूर्च्छित ही परे हैं। काहू प्रकार सों सचेत नहीं है रहे हैं। यह कहा दशा है इनकी और यह कब तक रहेगी?

निताई—कोई निश्चय नहीं, कब तक रहै। हाँ एक उपाय है। हम सब मिलकर संकीर्तन करैं तो सम्भव है शीघ्र ही सचेत है जायँ।

संकीर्तन—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण०। हरे राम हरे राम०।

समाज (बंगला चै०च०)—

उच्च कोरी कोरे सबे नाम संकीर्तन।
तृतीय पहरे प्रभुर होयलो चैतन्य।।
हुँकार कोरिया उठे हरि हरि बोली।
आनन्दे सार्वभौमा लैला तार पद धूली।।

उठे जु करत हुँकार, हरिहरि गरजत बोल हरी।
पग धूरि लई धार, सार्वभौम आनन्द मन।।

सार्वभौम—(महाप्रभु के चरण स्पर्श कर हाथ जोड़) भगवन्! आपके चरण-रज कूँ प्राप्त करकै मैं कृतार्थ है गयो। अब समय तृतीय पहर है गयो है। आप सबन के स्नानादि कर्म नहीं भये होंगे मार्ग के श्रान्त-क्लान्त हू हैं। अतएव आप समुद्र-स्नान कूँ पधारैं। पश्चात् दास के घर में प्रभु को महाप्रसाद ग्रहण करवे की कृपा करैं।

महाप्रभु—(उठते हुये) जो आज्ञा! हरिबोल

(कीर्तन करते हुये सब चले जाते हैं)

समाज—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द।।
इति जगन्नाथ-गमन-लीला सम्पूर्ण।

संन्यास लहरी **षष्ठ कणामृत**

सार्वभौम उद्धार लीला

समाज (श्लोक)—

नौमि तं गौरचन्द्रं, यः कुतर्क-कर्क शाशयम्।
सार्वभौमं सर्वभूमा, भक्तिभूमानमाचरेत्।।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द।।

सार्वभौम हिय गगन महँ, तर्क-अन्धतम राशि।
गौरचन्द्र तहँ उदित ह्वै, कियो भक्ति प्रकाश।।

पुरी धाम बसैं गौर गुसांई। तत्व दुराय दीन की नाँई।।
रूप अनूपम कंचन दमकै। भाव भक्ति अङ्ग अङ्गनि झलकै।।

लखि लखि महापुरुष जन ठानैं। तत्त्व स्वरूप न कोई जानैं।।
आप जो आपहिं नाहिं जनावैं। को समर्थ अस जानि जु पावैं।।
सार्वभौम पंडित तहँ भारी। अद्वितीय भारतभूमि मझारी।।
वेद वेदान्त न्याय पढ़ावैं। पढ़न विप्र संन्यासी आवैं।।
गुरु सम भक्ति करैं महाराजा। राजसभा किये पंडित राजा।।
सो सार्वभौम प्रभु ढिंग आवैं। प्रभु कबहू वाके गृह जावैं।।
वह महापंडित ज्ञानी मानी। निष्किंचन अति दीन अमानी।।
वह तो वेद वेदान्त पढ़ावैं। ए कृष्ण कृष्ण कहि गावैं।।
उनके शिष्य उनकूँ हरि ठानैं। इनके जन इनकूँ हरि मानैं।।

वे गावैं गुरु गीत तो, ए गौरा गुण गायँ।
वे पागल इनकूँ कहैं, ए उनकूँ मूढ़ बतायँ।।

(दृश्य—सार्वभौम भवन। पं० सार्वभौम भट्टाचार्य शिष्य मण्डली मध्य बैठे हैं)

सार्वभौम निज भवन में, शिष्यन शास्त्र पढ़ात।
गोपीनाथ प्रभु गौर लै, आये तहाँ प्रभात।।

(प्रवेश गोपीनाथ आचार्य, महाप्रभु, नित्यानन्द, मुकुन्द)

सार्वभौम—(उठकर हाथ जोड़) ॐ नमो नारायणाय।

महाप्रभु—श्रीकृष्णे मतिः कृष्णे रतिरस्तु।

शिष्य १—(दूसरे शिष्य अति धीरे से) यह कैसो आशीर्वाद? संन्यासी तो नारायण नारायण कहैं हैं। यह तो कृष्ण में रतिमति को आशीर्वाद देये हैं।

शिष्य २—संन्यासी तो निर्नमस्कारः निराशिषः होय हैं। यह तो आशीर्वाद देयँ हैं

शिष्य ३—इतनो ही नहीं। यह तो कृष्ण-कृष्ण कहके नाचैं रोवैं हू हैं। यह कैसो संन्यासी है!

सार्वभौम—(हाथ जोड़) आप सब कृपा करकै भीतर भवन के लिये पधारें।

(महाप्रभु आदि सहित प्रस्थान। शिष्य मंडली वहीं रह जाती है)

शिष्य १—हमारे गुरुजी पूरे हैं। या युवक संन्यासी को कान फूँक करकै ही छोड़ेंगे!

शिष्य २—क्यूँ भैयाओ! लोग कहैं हैं कि या संन्यासी को हमारे गुरुजी सों पूर्वाश्रम को कछु सम्बन्ध है?

शिष्य ३—हाँ भैया! यूँ कहै हैं कि हमारे गुरुजी के पिता श्रीमहेश्वर विशारद और या संन्यासी के नाना श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती दोनों सहपाठी हैं—जैसे हम तुम।

शिष्य १—इन जान-पहिचान की बातन कूँ तो छोड़ौ और चलौ भीतर। वहाँ कहा चर्चा चल रही है, सो दुबक करकै सुनैंगे (तीनों का प्रस्थान)

(दृश्य—सार्वभौम के दक्षिण पार्श्व में क्रमशः महाप्रभु और नित्यानन्द एवं वाम पार्श्व में गोपीनाथ, मुकुन्द बैठे हुये हैं)

सार्वभौम—(महाप्रभु प्रति) भगवन्! आचार्य गोपीनाथजी द्वारा मोकूँ आपके पूर्वाश्रम को परिचय प्राप्त भयो! आप तो मेरे अत्यन्त अपने ही जन निकसे। आपकी विद्वत्ता की ख्याति तो मैं पहले ही सुन चुक्यौ हो। अब आपके दर्शन हू अनायास ही प्राप्त है गये। आश्रम के नाते सों आप मेरे पूज्य हैं, नारायण हैं, स्वामी हैं। मैं आपको सेवक हूँ।

महाप्रभु—नहीं नहीं! ऐसे वचन न कहैं। आप तो सर्वशास्त्रविद् हैं, राजपण्डित हैं, राजगुरु हैं। ब्राह्मण आप सों वेद-अध्ययन करैं हैं। संन्यासी वेदान्त-शिक्षा ग्रहण करैं हैं। ज्ञानवृद्ध, वयो-वृद्ध आप सर्व प्रकार आदरणीय हैं। मैं तो एक अबोध बालक हूँ। और आपने तो पण्डा-पुजारिन के हाथन सों मेरी रक्षा करी है एवं आश्रय दियौ है, अतः आप तो मेरे गुरु एवं पिता तुल्य ही हैं। आप मोकूँ आदेश-उपदेश करैं कि मोकूँ या नवीन जीवन में कैसे रहनो चाहिये और कहा करनो चाहिये कि जासों मैं संसार-कूप सों निकस करकै मुक्त है सकूँ!

समाज (चौपाई)—

कपट संन्यासी हरि की बानी। सुनि सार्वभौम मति भरमानी
हरिमाया वश नहिं पहिचानै। समझि जीव उपदेश बखानै।।

सार्वभौम—भगवन्! मैं आपकूँ कहा उपदेश करूँ! आप में जो कृष्ण-प्रेम है वह मनुष्य में सुदुर्लभ है। अतएव श्रीकृष्ण की अवश्य आप पर महान् कृपा है। परन्तु आप क्षमा करैं मेरे या निवेदन कूँ कि अल्प-अवस्था में संन्यास लैनो शास्त्र-सम्मत नहीं है। इन्द्रिय-ग्राम अतिशय प्रबल होयँ हैं। अतएव विषय-भोग के पश्चात् ही त्याग की विधि है। विषय-सुख के

कटु परिणाम के अनुभव बिना वैराग्य सहसा नहीं उपजै है। अत: जीवन के चतुर्थ भाग में ही संन्यास-ग्रहण निरापद है। और आपकूँ तो अमलात्मा परमहंस मुनिजन वाञ्छित दुर्लभ प्रेमभक्ति प्राप्त ही है। फिर संन्यास धर्म सों आपकूँ कहा विशेष लाभ है सकै है। अत: देह-सुख एवं आत्म-सुख दोनों ही दृष्टिन सों आपके लिये तो संन्यास निष्प्रयोजन ही प्रतीत होय है।

महाप्रभु (बंगला चै०च०) —

कृष्णेर विरहे मुञि विक्षिप्त होइया।
बाहिर होइनु शिखा-सूत्र मुड़ाइया।।
संन्यासी बोलिया ज्ञान छाँड़ो मोर प्रति।
कृपा कोरो जेनो मोर कृष्णे होय मति।।

भट्टाचार्यजी! आप मोकूँ संन्यासी न समझें। मैं तो एक मति-भ्रष्ट पागल हूँ। श्रीकृष्ण-विरह ने मोकूँ बावरो बनाय कै घर-द्वार सब छुड़ाय दियौ है—

सवैया (मालकोष दादरा) —

वह नाम सुनाय के काम जगायके
लाज पै गाज दई सो दई।
वह आग लगाय के राग सबै
घर-वार जराय दई सो दई।
वह सूरत श्याम लखाय कै मेरी
मति हू बौराय दई सो दई।
यह भेषहू लाल सजाय के जोगिन
'प्रेम' बनाय दई सो दई।।१
भलो किधौं पोच न सोच-संकोच
गह्यौ पंथ अन्त लौं तापै चलूँ।
न उझकौं इतै, नहिं झिझकौं उतै
नहिं बैठि परूँ मग भूलि रहूँ।
अब कृपा करौ कर शीश धरौ
निशि वासर एक ही ढार ढरूँ।
रहै कृष्णे मति, बढ़ै कृष्णे रति
श्वास श्वास प्रति कृष्ण कृष्ण रटूँ।।२

आप मेरे परम सुहृद हैं, गुरु तुल्य हैं। जैसे मेरी मति रति श्रीकृष्ण में होवै वैसो ही आप उपदेश-आदेश करैं।

सार्वभौम—आपकी जब ऐसी ही आज्ञा है तो मेरी यही एक प्रार्थना है कि आप कछु काल मेरे निकट वेदान्त-श्रवण करैं। संन्यासी मात्र के लिये यह परमावश्यक दैनिक कर्त्तव्य है!

महाप्रभु—आपकी कृपा-आज्ञा शिरोधार्य है।

सार्वभौम—तो अब आप जाय करकै श्रीजगन्नाथ जी को महाप्रसाद ग्रहण करैं। फिर विश्राम करकै तृतीय पहर यहाँ पधारवे की कृपा करैं। वा समय कछु वेदान्त-चर्चा करी जायगी। और आचार्य जी! आप सों कछु परामर्श करनौ है। यासों आप नेक ठहर जाँय।

(महाप्रभु परिकर सहित प्रस्थान)

सार्वभौम—क्यों आचार्यजी! इनने केशव भारती सों संन्यास-दीक्षा लई है—यही आपने बतायो न?

गोपीनाथ—हाँ, यथार्थ है।

सार्वभौम—(रुक-रुककर) परन्तु......भारती तो.....दस नामी संन्यासिन में एक हीन सम्प्रदाय मान्यौ जाय है। अतएव.....मेरो विचार है कि....कोई सरस्वती श्रेष्ठ संन्यासी सों इनको.....पुनः संस्कार कराऊँ तथा अद्वैत-वेदान्त नित्य श्रवण कराऊँ जासों साँचौ वैराग्य उदय होवैगो और ये संन्यासिन के अद्वैत-मार्ग पै अग्रसर है सकैंगे।

गोपीनाथ—(स्वगत) एक गृहस्थी मायादास मायापति कूँ वैराग्य सिखावैगो? वेदान्त पढ़ावैगो? कूप-मण्डूक गरुड़ कूँ उड़नौ सिखावैगो? कितनी स्पर्द्धा! कितनो अहंकार! कितनी मूढ़ता!

सार्वभौम—क्यों आचार्यजी! कहा विचार में पड़ गये?

गोपीनाथ—भट्टाचार्य जी! आपकी मंगल-कामना एवं दीक्षा-शिक्षा की इनकूँ कोई आवश्यकता नहीं है। आप इनके स्वरूप कूँ नहीं जानौ हो। ये श्रीकृष्णचैतन्य देव स्वयं श्रीकृष्ण.....भग......

सार्वभौम—(बात काटते हुये) भगवान् हैं! हा हा हा! भगवान् यह संन्यासी युवक भगवान्! श्रीकृष्ण! हा-हा-हा

(सार्वभौम के शिष्यों का प्रवेश)

शिष्य १—(हँसी उड़ाता हुआ) अहो भाग्य हमारे! घर बैठे ही आज भगवान् के दर्शन है गये!

शिष्य २—अनायास ही। बिना साधन-साध्य-प्रयास। सहज ही दर्शन! साक्षात् भगवान् के दर्शन अहा हा! सुप्रभातम्! सुप्रभातम्।

शिष्य ३—यह आचार्यजी की ही कृपा है। इनकूँ– 'ढोग्' देओ। ये न बताते तो हम अन्धे कैसे पहचानते स्वयं भगवान् कूँ।

गोपीनाथ—हाँ-हाँ! खूब हँस लेओ! तानो मार लेओ। हमहू काहू दिना ऐसे ही हँस्यौ करते! ऐसे ही बक्यौ करते!

शिष्य १—परन्तु अब अर्चन-पूजन करौ हो, क्यों?

गोपीनाथ—अवश्य!

शिष्य १—तो ऐसो आपने इनमें कहा ईश्वरत्व देख्यौ, हमकूँ हू तो कछु बताओ!

गोपीनाथ (दोहा)—

लक्षण जे भगवान् के, उनकी सीम चैतन्य।
अज्ञ अन्ध लखि सकैं नहीं, लखैं सुविज्ञ जे धन्य।।

शिष्य २—अहो! हमारे श्रीगुरुदेव भारतवर्ष के एक अद्वितीय महापुरुष—वे तो अज्ञ हैं, अन्ध हैं और आप बड़े सुविज्ञ हो, तत्त्वज्ञ हैं! यह व्यंग्य! यह वक्रोक्ति!

शिष्य ३—हम ऐसे नहीं मानेंगे! प्रमाण चाहिये प्रमाण-भगवत्ता को प्रमाण। केन प्रमाणेन ईश्वरोऽयमिति ज्ञातं भवता?

गोपीनाथ—भगवदनुग्रहजन्य ज्ञान विशेषण ह्यलौकिक प्रमाणेन। भगवत्तत्त्वं लौकिकेन प्रमाणेन प्रमातुं न शक्यते, अलौकि त्वात्। भगवत्तत्त्व अलौकिक हैवे के कारण लौकिक प्रमाण को विषय नहीं है। भगवदनुग्रह सों ही भगवद्ज्ञान होय है।

शिष्य १—नायं शास्त्रार्थः। अनुमानेन कथमीश्वरः न साध्यते? भगवत्कृपा की दुहाई दैनो शास्त्रार्थ नहीं है। अनुमान-प्रमाण द्वारा ईश्वर कैसे सिद्ध नहीं है सकै है। जैसे घटकूँ देख करकै एक मूर्ख हू यह अनुमान कर सकै है कि घट को निर्माता कोई सचेतन कर्ता कुम्भकार अवश्य है। ऐसे ही जगत् कूँ देख करकै जगत्कर्ता ईश्वर को अनुमान क्यूँ नहीं है सकै है?

गोपीनाथ—नहीं है सकै है कारण कि घट प्रत्यक्ष इन्द्रिय-ग्राह्य है और कुम्हार हू प्रत्यक्ष इन्द्रिय-ग्राह्य है। हम घट कूँ देखैं हैं और कुम्हार कूँ हू देखैं हैं। यह दोनों हमारी देखी भई वस्तु हैं। और इन दोनों में जो कर्ता-कार्य को सम्बन्ध है यह हू हमारी जानी भई बात है। परन्तु यदि कोई

ऐसो मनुष्य होय कि जो या सम्बन्ध कूँ नहीं जानतो होय और वाकूँ एक घड़ा दिखायो जाय तो वह घड़ाकूँ देख करकै वाके कर्ता कुम्हार को अनुमान कदापि नहीं कर सकै है। घड़ा, कुम्हार और इन दोनोंन में सम्बन्ध—इन तीन बातन को प्रत्यक्ष ज्ञान जहाँ होय है, केवल वहीं घड़ा कूँ देख करकै कुम्हार को अनुमान सिद्ध है सकै है। अन्यथा कदापि नहीं सिद्ध है सकै है।

ऐसे ही जगत्, जगत्कर्ता ईश्वर और इन दोनोंन को सम्बन्ध—ये तीनों बात जो यदि प्रत्यक्ष इन्द्रिय-गोचर हों, तो तबही जगत् कूँ देख करकै जगत् कर्ता ईश्वर को अनुमान सम्भव है। परन्तु वस्तुत: केवल एक जगत् ही हमारे इन्द्रियन कूँ प्रत्यक्ष है तथा जगत्कर्ता एवं सम्बन्ध—ये दोनों ही हमारे इन्द्रिय-ज्ञान के अतीत हैं, अगोचर हैं। याहि कारण सों यहाँ अनुमान-प्रमाण नहीं चलै है। अतएव घट एवं कुम्भकार को दृष्टान्त जगत् एवं ईश्वर में घट नहीं सकै है। यही आचार्यपाद श्रीशंकराचार्य जी कहैं हैं—'इन्द्रियाविषयत्वेन सम्बन्धाग्रहणात्'।

शिष्य २—तर्हि 'यतो वा इमनि भूतानि जायन्ति' यह श्रुति तथा 'जन्माद्यस्य यत:' यह सूत्र क्यों कहैं हैं कि जासों ये सब प्राणी प्रगट होयँ हैं, प्रगट हैकै जामें स्थित रहैं हैं, तथा अन्त में जामें लीन है जायँ हैं—वह ब्रह्म है, वाकूँ जानौ। यह अनुमान-प्रमाण नहीं तो कहा है?

गोपीनाथ—सुनौ! याके सम्बन्ध में स्वयं आचार्यपाद श्रीशंकराचार्य ने ही यह व्यवस्था दीनी है कि 'तज्जन्मादि.सूत्रं न अनुमानोपन्यासार्थं। किं तर्हि? वेदान्त वाक्यार्थ प्रदर्शनार्थम्' अर्थात् यह सूत्र अनुमान प्रमाण की सिद्धि के लिये नहीं है—यह तो केवल वेदान्त-वाक्यन को अर्थ समझायवे के निमित्त है।

पुनश्च। अनुमान के द्वारा अधिक ते अधिक ईश्वरोऽस्ति-ईश्वर है इतनो ही सिद्ध कियो जाय सकै है परन्तु ईश्वर-तत्त्व अर्थात् ईश्वर को स्वरूप कहा, स्वभाव कहा, शक्ति कहा, गुण कहा इत्यादि रहस्म तो केवल मात्र ईश्वर-कृपा सों ही अनुभव में आय सकै है।

शिष्य सब—प्रमाणम्! प्रमाणम्!

गोपीनाथ—श्रुति-स्मृति में बहुत-से प्रमाण है।

शिष्य १—एकाध बताऔ, सुनाऔ।

गोपीनाथ—श्रुति-वाक्य तो यह है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैषात्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।

श्रुति कहै है कि यह आत्मा अर्थात् परमात्मा न वेद शास्त्र के पाठ सों, न बुद्धि सों, न बहुत-से शास्त्रन के श्रवण द्वारा प्राप्त होय है। जाकूँ यह परमात्मा कृपा करके स्वयं वरण करै है केवल मात्र वही उनकूँ पाय सकै है। वाकूँ वे आत्मदान पर्यन्त कर देयँ हैं।

याहि कारण श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण सों अपने अपराध के लिये क्षमा-याचना करते भये ब्रह्माजी बोले—

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय, प्रसादलेशानुगृहित एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो, न चान्य एकोऽपि चिरंविचिन्वन्

ब्रह्माजी बोले 'हे देव! हे भगवन्! आपके युगल चरणकमलन की लेशमात्र कृपा जाके ऊपर होय है वही आपकी महिमा के तत्त्व अर्थात् स्वरूप कूँ यत्किंचित् अनुभव कर सकै है अन्यथा दीर्घकाल पर्यन्त साधन करकै अथवा शास्त्र-विचार करके कोई आपके तत्त्व कूँ नहीं जान सकै है।

शिष्य १—तो कहा शास्त्र-विचार द्वारा भगवत्कृपा प्राप्त नहीं होय है?

गोपीनाथ—होंती तो श्रुति भगवती एवं ब्रह्माजी ऐसे क्यों कहते?

शिष्य २—तो फिर आपने काहे कूँ इतने शास्त्र घोंटे और आचार्य बने?

गोपीनाथ—शिल्प विशेष एव तत्। शास्त्राध्ययन तो नौका की चित्रकारी के समान है। नदी पार तो नौका ही करै है, नौका की चित्रकारी नहीं करै है।

पद-झूलना—

गहरी नदिया धार अगम सों नौका ही पार लगैया है।
बेल न बूटे रंग बिरंगे चित्र करै न सहैया है।
पढ़ो-पढ़ाओ पोथी सारे, मिटै न भूल भूलैया है।
सहज पार पर जाय 'प्रेम' जब, मिलै कृपा की नैया है।।

सार्वभौम—आचार्यजी! हमारे ऊपर तो भगवान् की कृपा भई नहीं है। परन्तु आपके ऊपर कृपा भई है—याको प्रमाण?

गोपीनाथ—वस्तु-तत्त्वज्ञान ही कृपा को प्रमाण है। रज्जु सर्प नहीं है, रज्जु ही जान लैनो जैसो वस्तु-ज्ञान है वैसे ही ईश्वर दर्शन करकै यह मनुष्य नहीं है, ईश्वर ही है—ऐसो पहिचान लैनो ही ईश्वर-तत्त्वज्ञान है। यह ज्ञान, यह पहचान उनकी कृपा के बिना कदापि सम्भव नहीं।

सार्वभौम—तो आचार्यजी ! आपने या संन्यासी युवक श्रीकृष्णचैतन्य कूँ ये ईश्वर ही हैं कैसे जान-पहिचान लियौ ? ईश्वर के कौन-से लक्षण आपने उनमें देखे हैं ?

गोपीनाथ (बंगला चै०च०)—

इहाँर शरीरे सब ईश्वर-लक्षण।
महाप्रेमावेश तुमि पाइया छो दर्शन।।
तबु तो ईश्वर-ज्ञान ना हय तोमार।
ईश्वर मायया कोरे एइ व्यवहार।।

सुनौ। उनको 'न्यग्रोध परिमंडल देह', सर्वचित्ताकर्षक रूपादि ईश्वर के ही लक्षण हैं।

तुमहू निज आँखिन लखे, महाप्रेम-आवेश।
नहिं मानौ ईश्वर तऊँ, भूलि माया आदेश।।

माया-मुग्ध चित्त को यही स्वभाव होय है कि वह देख करकै हू नहीं देखै है।

सार्वभौम—समझ गयौ ! आप परम वैष्णव हैं !

गोपीनाथ—श्रीकृष्ण आपकूँ हू वैष्णव बनावैं।

सार्वभौम—अलं पल्लवेन। अब आप पधारौ और मौसा काशीनाथ मिश्रजी के भवन में अपने भगवान् के निवास को प्रबन्ध करौ। नमस्कार !

गोपीनाथ—नमस्कार ! (प्रस्थान)

सार्वभौम—आश्चर्य ! गोपीनाथ आचार्य पंडित विद्वान् हैकै हू बालकन की-सी अशास्त्रीय बात करै है ! महान् भ्रम ! घोर अपराध ! शास्त्र तो कहै है कि जीव में ईश्वर-बुद्धि करे ते सर्वनाश होय है। और ये सब इनके भक्त वा सरल सुन्दर संन्यासी नवयुवक कूँ 'भगवान् भगवान्' कह कहकै अपनो और वाको हू सर्वनाश कर रहे हैं। मैं धर्माचार्य राजपण्डित हूँ। मैं या अनीति-कुनीति कूँ अवश्य बन्द करूँगो। या विष-बेली कूँ कुफल फलवे सों पहले ही निर्मूल कर डारूँगो। इनकूँ सत्पथ पै चलामनो मेरो परम कर्त्तव्य है।

ओह! वर्तमान काल को संन्यास कहा है अहंकार को वरुण-पाश है।

अहं धतूरो खाय कै, रहै सबै बौराय।
अमृतफल संन्यास को, विरलो कोई पाय।।
गेही सों न्यासी भये, 'मैं' मेटन के काज।
सो 'मैं' उलटो सिर चढ्यौ, मैं स्वामी महाराज।।
शिखा सूत्र के तजत ही पहलो लाभ यह होय।
अहंकार सौ गुन बढ़ै, करैं प्रनाम सब कोय।।

दण्ड लेत हाथ महँ उद्दण्ड ह्वै जात कोई
बनि बैठें सर्वश्रेष्ठ पूज्य महाज्ञानी है।
हाथहू न जोरैं आप, पुजावैं पाँव औरन सों
बड़े-बड़े शीश नावैं, लाजहू न आनी है।
जीव को धरम नित हरि को भजन, छोड़
हरि की बरोबरी, करैं अभिमानी हैं।
इन्द्रिन के दास होय, स्वामी नारायण बनैं
डूबैं आप 'प्रेम' वह, झूँठो ब्रह्मज्ञानी है।।

परन्तु (रुककर)......या नवीन संन्यासी में अहंकार को भाव तो नहीं है। बड़ो ही दीन विनीत है। तथापि....इतनी अल्पावस्था में संन्यासी बन जानो तो अनुचित ही है। अस्तु! अब मैं इनकूँ कोई एक श्रेष्ठ संन्यासी राज सों पुनः संन्यास संस्कार कराय कै वेदान्त-श्रवण कराऊँगो। जासों भावुकता को शमन होवैगो तथा तत्त्वज्ञान की प्रतिष्ठा होयगी। तबही संन्यास सफल होवैगो। (पटाक्षेप)

(प्रवेश संकीर्तनकारी गोपीनाथ-मुकुन्द)

गोपीनाथ-मुकुन्द—(संकीर्तन धुन)

हरे कृष्ण गोविन्द गोपाल।
जय गिरिवरधर नन्दलाल।।

कीवे कहा, पढ़िवे को कहा,
फल बूझ न वेद को भेद उचार्‌यौ।
स्वारथ ओ परमारथ को कलि कामद
राम को नाम विसार्‌यौ।
वाद विवाद विषाद बढ़ायकै छाती
परायी औ आपनी जार्‌यौ।

चारहु को छहु को नव को दस आठ
को पाठ कुकाठ ज्युँ कारयौ।।
हरे कृष्ण गोविन्द गोपाल।।

पढ़ने की हद समझ है, समझन की हद ज्ञान।
ज्ञान की हद हरि भजन है, यह सिद्धान्त उरआन।।

बुद्धी बड़ी चतुराई बड़ी, सुख सुन्दरता तम सों लिपटी है।
धर्म बड़ो धन धाम बड़ो, करतूति बड़ी जग में पलटी है।
राज सभा सन्मान बड़ो, अरु इन्द्रहू सों कछु नाहिं घटी है।
तुलसी राम सनेह बिना, मानो सुन्दर नारि की नाक कटी है।
हरे कृष्ण गोविन्द गोपाल।।

(गाते गाते प्रस्थान)

(दृश्य—महाप्रभु एवं नित्यानन्द बैठे हैं)

(प्रवेश गोपीनाथ, मुकुन्द। प्रणाम करते हैं)

गोपीनाथ—हे दीनबन्धो! एक प्रार्थना है। आज्ञा होय तो निवेदन करूँ।

महाप्रभु—निस्संकोच कहौ आचार्यजी, कहा बात है?

गोपीनाथ—प्रभो! सार्वभौम भट्टाचार्यजी पै कृपा-दृष्टि करौ। उनको उद्धार करौ।

महाप्रभु—हरे कृष्ण! यह आप कहा कहौ हो। वे तो मेरे पूज्य हैं।

मुकुन्द—परन्तु हमारे तो आपही पूज्य हैं प्रभो! आपके प्रति यदि कोई कटाक्ष करै तो वह हमकूँ बाण के समान चुभै है।

महाप्रभु—क्यों? ऐसी कहा बात भई? वे तो हमारे परम हितैषी हैं।

गोपीनाथ—प्रभो! वे कहैं हैं कि आपने हीन भारती सम्प्रदाय सों संन्यास-दीक्षा लई है। यासों वे आपकूँ उच्च सम्प्रदाय सों पुनः संस्कार करवामनो चाहैं हैं तथा भक्तिपथ सों हटाय अद्वैत ज्ञान के पथ पै चलामनो चाहैं हैं एवं इन्द्रिय-संयम की विशेष शिक्षा दैनो चाहैं।

महाप्रभु—तब तो वे मेरे परम हितैषी हैं। वे मेरे संन्यास धर्म की रक्षा करनो चाहैं हैं। यह तो आनन्द की बात है।

मुकुन्द—परन्तु हमकूँ तो यह विष-सो लगै है। भट्टाचार्यजी के एक-एक अक्षर हमारे हृदय में शूल-सों जड़े भये मर्म-छेदन कर रहे हैं। और गोपीनाथजी ने तो या दु:ख सों आज अन्न-जलहू नहीं ग्रहण कियौ है।

गोपीनाथ—प्रभो! वे मेरे भगिनीपति हैं। उनके ऊपर तो कृपा करनी ही परैगी। शास्त्र-पंक सों उद्धार करकै अपने पद-पंकज में स्थान दैनो ही परैगो। नहीं तो मैं निश्चय ही अनाहार प्राण-त्याग कर दऊँगो।

महाप्रभु—आचार्यजी! आप परम भागवत हैं तथा श्रीश्रीजगन्नाथदेव भक्तवाञ्छा कल्पतरु हैं। वे आपकी शुभेच्छा अवश्यमेव पूर्ण करैंगे। आप जायकै उनको महाप्रसाद ग्रहण करौ। यही मेरो अनुरोध है।

मुकुन्द—(सहर्ष) जय हो प्रभो! जय हो! आचार्यजी! अब कहा चिन्ता? प्रभु को वचन कदापि मिथ्या नहीं है सकै है। अब तो भट्टाचार्यजी के भाग्य खुल गये—आपके नाते सों। चलौ, अब महाप्रसाद ग्रहण करौ। हरिबोल।

(प्रस्थान। पटाक्षेप)

समाज (दोहा)—(महाप्रभुजी)

बसैं काशीमिश्र गृह, गसैं महाप्रसाद।
लसैं भाव विकार तन, बरसैं प्रेम-अह्लाद।।
जगन्नाथ दर्शन करैं, प्राणनाथ 'पहुँ' जान।
देश भेष दुहुँ ओर नयो, इकरस प्रीति प्रमान।।

(दृश्य—सार्वभौम भवन। सार्वभौम एवं महाप्रभु बैठे हैं)

गौरप्रभु दिन दिन प्रति, सार्वभौम गृह जात।
वेद वेदान्त ज्ञान की, सुनत मौन गहि बात।।

सार्वभौम—महात्मन्! मैं आपकूँ वेदान्त-ज्ञान को सार बताऊँ हूँ। जीव, जगत् और ब्रह्म को विचार ही वेदान्त को विषय है। जगत् को स्वरूप माया है। माया न सत् है न असत्। यह अनिर्वचनीय है। जीव को स्वरूप है ब्रह्म तथा ब्रह्म को स्वरूप सत् चित् आनन्द है विपरीत ज्ञान को नाम अज्ञान है। भेद-दर्शन को नाम शास्त्र-ज्ञान है। तथा अभेद-दर्शन को नाम ही विज्ञान है, विशिष्ट ज्ञान है। विज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है यह ब्रह्मज्ञान वृत्तिज्ञान नहीं है। यह ज्ञप्तिरूप चिन्मात्र है। 'अस्ति'—वह है—यह परोक्ष शास्त्र ज्ञान है। 'सोऽहम्' यह अपरोक्षानुभूति ज्ञान है।

वेद में ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी चार महावाक्य हैं। प्रथम 'प्रज्ञानं ब्रह्म'—यह लक्षण-बोध-वाक्य है द्वितीय 'तत्त्वमसि'—यह उपदेश वाक्य है। तृतीय

'अहं ब्रह्माऽस्मि'—यह अभ्यास-वाक्य है। तथा चतुर्थ 'अयमात्मा ब्रह्म'—यह अनुभव-वाक्य है यही अद्वैत-वेदान्त को सार विचार है। (ठहर कर—स्वगत) आश्चर्य! यह तो हाँ-ना, कछु बोलै ही नहीं है। कहा मूढ़ तो नहीं है? ॐ हुँ! आकृति-प्रकृति तो परम मेधावी महापुरुष की-सी है। (प्रकाश्य) महात्मन्! आपकूँ उपनिषद्, सूत्र, भाष्य टीका, व्याख्या श्रवण कराते-कराते मोकूँ आज सात दिवस है गये परन्तु आपने तो मुखसों एकहू शब्द-उच्चारण नहीं कियौ!!

महाप्रभु—भट्टाचार्यजी! आपकी आज्ञा ही कि वेदान्त-श्रवण करौ सो मैं सुन रह्यौ हूँ।

सार्वभौम—उत्तम! परन्तु श्रवण को एक फल जिज्ञासा हू तो है। आपकूँ बोध भयौ कै नहीं—सो मैं कैसे जानूँ?

महाप्रभु—मैं अज्ञ बालक हूँ एवं आप विश्वविख्यात पण्डितराज हैं। आपकी शास्त्र-व्याख्या भलो मैं कहा समझ सकूँ हूँ।

सार्वभौम—तो जिज्ञासा करनी चाहिये। आपही के बोध के निमित्त तो मेरो यह प्रयास है। और आप हैं कै मौन साधकै बैठ गये! यह कहा विचित्र भाव है?

महाप्रभु—भट्टाचार्यजी! वेदार्थ तो स्पष्ट है—समझ में आय रह्यौ है परन्तु आपकी व्याख्या क्लिष्ट है—सो समझ में नहीं आवै है!

सार्वभौम—(सविस्मय) हैं! वेदार्थ तो स्पष्ट है, मेरी व्याख्या ही क्लिष्ट है! क्यों?

महाप्रभु—हाँ ऐसी ही बात है।

सार्वभौम—तो मैं भूल व्याख्या कर रह्यौ हूँ! क्यों—स्पष्ट बात यही है न?

महाप्रभु—नहीं भूल तो नहीं है, क्लिष्ट है, सरल सहज नहीं।

सार्वभौम—यह मेरी व्याख्या नहीं—यह पूज्य भाष्यकार भगवान् शंकराचार्य कृत भाष्य है। उन्हीं के अनुसार मेरी समस्त व्याख्या है। कहा पूज्य भाष्यकार भ्रान्त हैं?

महाप्रभु—नहीं नहीं! वे तो भगवत्स्वरूप हैं। उनमें भूल भ्रान्ति असम्भव है। उनने तो बौद्ध धर्म के क्षणिक विज्ञानवाद सों वैदिक धर्म की रक्षा हेतु ही मुख्य वेदार्थ कूँ गोपन करकै मायावाद को प्रचार कियौ है। वेद-विरुद्ध सिद्धान्त मान्य नहीं होय है—यह समझ करके ही उनने अभिधावृत्ति सों

वेदार्थ प्रतिपादन न करकै लक्षणा वृत्ति सों कियो तथा ताके ऊपर मायावाद की प्रतिष्ठा करी—केवल बौद्धन कूँ परास्त करवे के हेतु सों।

सार्वभौम—(सोत्तेजना) ओ-हो! बाहर तो इतनी दीनता, भीतर इतनो अभिमान! मैं वेदाध्ययन करतो-करामतो वृद्ध है गयो! परन्तु आज पर्यन्त मैंने ऐसी बात न कहूँ पढ़ी न सुनी। भलो अब या वृद्धावस्था में मैं तुमही ते मुख्य वेदार्थ श्रवण करूँगो! करौ व्याख्या! सुनूँ मैं हू।

महाप्रभु—आप शान्त हैकै श्रवण करैं। मैं कछु निवेदन करूँ हूँ। वेद प्रायः सविशेष अद्वय तत्त्व ही कूँ प्रतिपादन करैं हैं—

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं
सा साभिधत्ते सविशेषमेव।
विचारयोगे सति हन्त तासां
प्रायेबिलीय सविशेषमेव।।

जहाँ-जहाँ वेद में निर्विशेषपरक वाक्य है, उनको तात्पर्य प्राकृतत्व निषेध करकै अप्राकृतत्व स्थापना में ही है। 'यतो वा इमानि भूतानि' या श्रुति वाक्यानुसार जीव और जगत् की सृष्टि ब्रह्म सों होय है, स्थिति ब्रह्म में होय है तथा लयहू ब्रह्म में ही होय है अर्थात् ब्रह्म ही कर्त्ता, ब्रह्म ही करण एवं ब्रह्म ही अधिकरण है। परन्तु निर्विशेष वस्तु के लिये कारणत्रय हौनो असम्भव है। अतएव वह ब्रह्म वस्तु सविशेष ही सिद्ध होय है।

पुनश्च जब ब्रह्म सों सृष्टि की उत्पत्ति होय है तो ब्रह्म में सृष्टिकारिणी शक्ति है। 'जातानि जीवन्ति' अर्थात् सृष्टि उत्पन्न है करकै ब्रह्म द्वारा ही जीवित रहै है यासों ब्रह्मा में पालिनी शक्ति हू है। ब्रह्म में ही सृष्टि स्थित रहै है यासों ब्रह्म में धारिणी शक्ति हू है। इन सब शक्तिन सों शक्तिमान् हैवे सों ब्रह्म सविशेष ही सिद्ध होय है।

यदि काहु श्रुति में ब्रह्म कूँ 'अशरीरम्' कह्यौ है तो काहु श्रुति में ब्रह्म कूँ शरीरी हू स्पष्ट कह्यौ है। यथा—

नायमात्मा प्रवचनेन....तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।

अर्थात् जाकूँ वह परमात्मा कृपा करकै अपनावै है, वाके ही निकट 'स्वां तनुम्' अपने शरीर अर्थात् स्वरूप कूँ प्रकाशित करै है।

पुनश्च। यह 'तनु' यह शरीर त्रिगुणमय नहीं निर्गुण हैं अर्थात् वाके हस्त, चरण, श्रवण, नेत्र आदि इन्द्रिय प्राकृत नहीं अप्राकृत हैं। 'अपाणि पादौ जवनोगृहीता' श्रुति में याको स्पष्ट निर्देश है कि ब्रह्म के हस्त नहीं परन्तु ग्रहण करै है। चरण नहीं परन्तु बड़ी वेग सों चलै है। 'बिनु पद चलै

सुनै बिन काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना'। (सावेश)

या प्रकार सों जो ब्रह्म षड़ैश्वर्य युक्त सच्चिदानन्द विग्रह है वाकूँ तुम निर्गुण निराकार बताओ हो। जो ब्रह्म अनन्त अचिन्त्य शक्ति को आधार है वाकूँ तुम शक्तिशून्य बताओ हो। जाकी स्वरूपशक्तित्रय, सन्धिनी, संवित् एवं ह्लादिनी के कारण ही ब्रह्म सच्चिदानन्द लक्षणवान् हैं वाकूँ तुम निर्विशेष बताओ हो। जो ब्रह्म अपनी चिच्छक्ति सों नित्यधाम में नित्य परिकरन सहित आत्मविलास करै है तथा मायाशक्ति के द्वारा सृष्टि-विलास करै है वाकूँ तुम निरीह, नि:शक्तिक निष्क्रिय बताओ हो। जो मायाधीश महेश्वर है उनके संग मायाधीन जीव को अभेद मानौ हे। जो शुद्ध सच्चिदानन्द विग्रह है वाकूँ मायिक ठानौ हो। पंडित! शास्त्र की घटाटोप सों तुम्हारी बुद्धि तमसाच्छन्न है गई है। तुमकूँ परब्रह्म की साकारता चिन्मयता एवं नित्यता में विश्वास नहीं है। बुद्धि को तर्क छूटै नहीं है! प्रमाण चाहौ हो प्रमाण? तौ लेओ प्रमाण-शिरोमणि—प्रत्यक्ष प्रमाण! देखौ मेरे प्रति! देखौ मैं कौन हूँ!

(षड्भुज रूप का आविर्भाव। त्रिभंग मूर्ति ऊर्ध्व दो भुजाओं में धनुष-बाण, मध्य द्विभुज में मुरली-अधो द्विभुज दंड-कमंडलु सहित)

समाज (दोहा)—

प्रगट रूप दुरायकै, प्रगट्यो षड्भुज रूप।
ललित त्रिभंग ठाड़े तहँ, परम तत्त्व अनूप।।
हरित वर्ण द्वै वाहु ऊर्द्ध, लिये धनुष अरु बान।
मध्य भुजा द्वै नीलमणि, मुरलीधर अधरान।।
बाहु युगल झूलत तरे, मानो कंचन दण्ड।
दंड कमंडलु धारिकै, षड्भुज रूप अखण्ड।।

षड्भुज रूप प्रकाश, झलमलात रवि कोटि जनु।
सार्वभौम जिय त्रास, ह्वै अचेत धरनी पर्यौ।।

सार्वभौम—(भू-पतन)

महाप्रभु—उठो भट्टाचार्य! तुम मेरे भक्त हो यासों दर्शन दियौ।

बंगला (चै०च०)—

संकीर्तन आरम्भे आमार अवतार।
अनंत ब्रह्माण्डे मुई बई नहिं आर।।

संकीर्तन आरम्भ हित, यह मेरो अवतार।
मैं ही अनन्त ब्रह्माण्ड महँ, मो बिन कछु नहिं आर।।
(षड्भुज रूप अन्तर्हित। महाप्रभु अवस्थित)

समाज (सोरठा)—

शनै शनै सुध पाय, उठि विलोकति सार्वभौम।
मूरति सो न लखाय, देख्यौ रूप संन्यास पुनि।।

सार्वभौम—(नत-जानु, बद्ध कर) क्षमा! प्रभो! क्षमा करौ! मैं श्रीचरनन निकट महापराधी हूँ! मैं आपको शिक्षक, गुरु उपदेशक बन्यौ! कितनी धृष्टता! कितनी मूढ़ता! परन्तु लीलामय कौतुकी मायापते! यामें मेरो कहा दोष?

नानालीला-रसवशतया कुर्वतो लोकलीलां,
साक्षात्कारेऽपि च भगवतो नैव तत्त्वबोधः।
ज्ञातुं शक्त्योहह न पुमान् दर्शनात् स्पर्शरत्नं
यावत् स्पर्शाज्जनमतितरां लोहमाभं न हेमः।।

प्रभो! आप लीलास्वादन हेतु नाना रूप धारण करकै लोकवत् लीला करौ हो। या समय कपट-संन्यासी के रूप में विचर रहे हो। अतएव मैं मायामुग्ध जीव आपके छद्मभेष कूँ कहा पहिचान सकूँ हूँ। कहा स्पर्शमणि कूँ कोई अपने आप पहिचान सकै है।

पारस हू पाय हाथ, कौन पहिचान सकै
पारस ही पहिचान आपनो कराये है।
कंचन करत जब कारो कुरूप लोह
प्रान सम प्यारो अमोल बनि जाये है।
आय आप द्वार लियो, मोकूँ सम्हार नाथ
काटि आँखिन को जार, जोति हू जगाये हैं।
वचन सुनाय रूप अद्भुत लखायकै
लोह छाती गराय दास प्रेमहिं बनाये हैं।।

पद—

जय जय गौरांग गौरहरि, जय नदिया बिहारी गौरहरि।
श्रीकृष्ण चैतन्य गौरहरि, जय षड्भुजधारी गौरहरि।
कहीं तुम राम धनुषधारी, तो कहीं तुम कृष्ण मुरलीधारी।
अब भये दंडकमंडलु धारी, जय षड्भुजधारी गौरहरि।।

काम क्रोध ओ लोभ मोह बड़े, बैरी मद मत्सर छः छः खड़े।
ये छः भुज तिनके काल बड़े, जय षड्भुजधारी गौरहरि।।
चार भुजन सों हरिजु लुटावैं, चार पदार्थ जग जो चाहैं।
द्वै भुज भक्ति-प्रेम लुटावैं, जय षड्भुजधारी गौरहरि।
नव नव रूप ओ लीला रचाओ, खेलौ आप जगत् कूँ खिलाओ।
प्रेम-सुधा निज जनन पिवाओ, जय षड्भुजधारी गौरहरि।।

वैराग्य विद्या निजभक्तियोग
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्य शरीरधारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।

तमहं प्रपद्ये, तमहं प्रपद्ये।
(साष्टांग प्रणिपात)
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधागोविन्द।।
इति सार्वभौम-उद्धार-लीला सम्पूर्ण।

संन्यास लहरी **सप्तम कणामृत**

अथ दक्षिण भ्रमण-लीलारम्भ भक्तों से विदाई, आलाल नाथ-दर्शन

पीतांशुकं परित्यज्य शोणाम्बरंधरोति यः।
तं गौरं करुणासिन्धुमाश्रये भुवनाश्रयम्।।

जय कृष्णचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्तवृन्द।।

माघ मास पूनौ तिथि, धर्यो भेष संन्यास।
जाय विराजे जगन्नाथ, प्रभुजी फागुन मास।।
चैत्र मास प्रभु तहाँ कियो, सार्वभौम-उद्धार।
कियो लगत वैसाखही, दक्षिण गमन विचार।।
दक्षिण भारत वरस द्वय, विचरे चैतन्यचन्द।
किये चरित अद्भुत बहु, दिये प्रेम हरे द्वन्द।।

तीर्थ भ्रमण मिस प्रभु किये, प्रेमभक्ति प्रचार।

कृष्ण नाम अरु प्रेम की, बहाई दिसि दिसि थार।।
अद्भुत शक्ति प्रभु दरसाई। अद्भुत प्रेम भक्ति सरसाई।।
अद्भुत करुणा उर उमगाई। अद्भुत कृपा दीन जन पाई।।
अद्भुत तन के रोग नसाये। अद्भुत मन के भोग भगाये।।
अद्भुत जन के शोक मिटाये। अद्भुत धन हरिनाम लुटाये।।
अद्भुत रूप स्वरूप बताये। अद्भुत वैभव बहु प्रगटाये।।
अद्भुत चरित महाजन गाये। अद्भुत पढ़त सुनत फल पाये।।

(दृश्य—श्रीजगन्नाथपुरी में काशीमिश्र का भवन श्रीमन्महाप्रभु श्रीनित्यानन्द, पं० दामोदर, जगदानन्द और मुकुन्द बैठे हैं)

समाज (चौपाई)—

श्रीकृष्ण चैतन्यदेव विराजहिं। काशी मिश्र सुखालय माहिं।।
ढिंग श्रीनित्यानन्द जगदानन्द। पंडित दामोदर श्रीमुकुन्द।।

महाप्रभु (पद–गौड सारंग–दादरा)—

तुम तो बन्धु सखा मेरे प्राणहू ते प्यारे हो।
प्राण तजौं पै नहिं सकौं हों करने तुमकूँ न्यारे हो।
बन्धु जन हे बन्धु सम तुम मेरो हित बहु कीन्हे हो।
लाय प्रेम धाम नीलाचल जगन्नाथ दरसाये हो।
माँगौं आज एक भीख सबसों मानि मोद देओ हो।
तीरथ हेत दक्षिण दिशि, जान मोकूँ देओ हो।।

हे मेरे प्राणबन्धुओं! मोकूँ कछु दिवस के तांई विदाई देओ। मैं दक्षिण की तीर्थ–यात्रा कूँ जानौ चाहूँ हूँ।

निताई—(दु:ख पूर्वक)

बात अचरज आज सहसा, काहे प्रभुजी बोलो हो।
होत व्याकुल प्रान मन जु भेद क्यूँ ना खोलो हो।।

प्रभो! संन्यास–ग्रहण के पश्चात् शान्तिपुर में आपने माता जी कूँ वचन दियो हो कि—

वास करिहौं नीलाचलहिं, काहे अब सो भूले हो।
बोल उलट पलट सुनिकै, जिय भय दुख घोलो हो।।

अतएव आप सूधे–सूधे बताय देओ आपके मन में कहा है? तीर्थ को बहाना न बनाओ।

महाप्रभु—(निताई का हाथ पकड़ दु:खपूर्वक) तो सुनो श्रीपाद! मैं दादा विश्वरूप कूँ ढूँढ़वे जाऊँगो।

निताई—(स्वगत) अब विश्वरूप कहाँ या लोक में?

महाप्रभु—आज पर्यन्त मैं संसार में हो यासों उनकी खोज कूँ नहीं जाय सक्यौ परन्तु अब मैं अपनो कर्त्तव्य अवश्य पालन करूँगो। उनकूँ खोजवे जाऊँगो और अकेले ही जाऊँगो। जब तक मैं लौटकै न आय जाऊँ तब तक सब यहीं नीलाचल में रहें।

समाज (बंगला) —

विश्वरूप सिद्धि प्राप्त जानेन सकल।
दक्षिणदेश उद्धारिते कोरेन एइ छल।।

दामोदर—(मुकुन्द प्रति धीरे-धीरे) देख्यौ मुकुन्द! सारी दुनियाँ जानै है कि विश्वरूप अब पृथ्वी पै नहीं हैं। परन्तु ये नहीं जानै हैं! बलिहारी!

मुकुन्द—विश्वरूपजी ने तो गृह-त्याग के दो वर्ष पश्चात् ही समाधि ले लीनी ही। या बात कूँ आज तेरह-चौदह वर्ष है गये हैं।

दामोदर—यथार्थ बात तो यह है कि प्रभु दक्षिण देश को उद्धार करनो चाहे हैं।

निताई—प्रभो! हम आपकूँ अकेले कैसे जान दै सकै हैं। हमारो हृदय मानै नहीं हैं। यासों हममें ते कोई एक द्वै जने के लिये आज्ञा है जाय! अथवा तो मोकूँ ही लै चलौ। मैं दक्षिण सब भ्रमण करि आयो हूँ। सो मैं आपकूँ सब तीर्थ कराय लाऊँगो।

महाप्रभु—(हँसकर) ना, मैं आपकूँ कदापि नहीं लै जाऊँगो।

निताई—ऐसो कहा अपराध है मेरो?

महाप्रभु—अपराध यही कि आप मोकूँ खिलौना की भाँति जैसो चाहौ वैसो नचाओ हो। मैं संन्यासी बनके चल्यौ वृन्दावन के लिये तो तुमने भुलाय कै पहुँचाय दियो शान्तिपुर में अद्वैत-भवन में। वहाँ ते मोकूँ घर लै चलवे के लिये माताजी के पीछे पड़ गये। जैसे तैसे छूट के वहाँ ते नीलाचल के लिये चल्यो तो मार्ग में, आपने मेरो दण्ड ही तोड़-मरोड़ के नदी में बहाय दियो। आपको वश चले तो आप मेरे शरीर में ते काषाय वस्त्र कूँ उतार पीताम्बर पहनाय मोकूँ घर पहुँचाय देओ। ना, आपकूँ नहीं लै जाऊँगो। आपके प्रेम ते मेरे नेम धर्म सब छूट जाय हैं।

जगदानन्द—तो इनकूँ रहन देओ। मोकूँ लै चलो प्रभो!

महाप्रभु—(हँसकर) तुमकूँ जगदानन्द ? तुम इनके हू गुरु हो। तुम लाओगे सुगन्धित तेल और कहोगे 'लगाओ प्रभो और न्हाओ।' तुम लाओगे स्वादिष्ट भोजन और कहोगे 'लेओ प्रभो, पाओ।' तुम बिछाओगे सुकोमल सेज और कहौगे 'पौढ़ो प्रभो! मैं चरण-सेवा करूँगो।' और जब मैं नहीं मानूँगो तो रिसाय करके अन्नजल सब छोड़के कमरा बन्द करके पड़ जाओगे। बताओ मैं तुम्हारो मान मनाऊँगो कै तीर्थयात्रा करूँगो ?

दामोदर—तो प्रभो! इन सबन कूँ छोड़ आप मोकूँ लै चलो आप संन्यासी और मैं ब्रह्मचारी। संन्यासी की सेवा में तो ब्रह्मचारी को पूरो अधिकार है।

महाप्रभु—हाँ हाँ, क्यों नहीं ? तभी तो दामोदरजी! तुम ब्रह्मचारी हैकै हू गुरु की भाँति मोकूँ धर्म सिखाओ हो, ये सब तो चाहें हैं कि मैं संन्यास के नियम कछु ढीलो कर दऊँ तो इनकूँ सुख होवै और तुम चाहौ हो कि मैं और कड़े नियम बनाऊँ तो तुमकूँ सुख होवे। नेक कहूँ मेरी त्रुटि देख लेओ हो तो झटै टोक देओ हो। मेरी तो आपै गति-मति कुछ स्थिर नहीं रहे है। नेम-धर्म की कहा बात मोकूँ तो अपने तन बदन की हू सुध नहीं रहे है। यासों मैं तुम्हारे शासन में नहीं चल सकूँगो। अतएव अकेलो ही जाऊँगो। नाचूँगो, गाऊँगो, रोऊँगो। काहू के अधीन नहीं रहूँगो।

निताई—(कटाक्ष पूर्वक) सत्य वचन प्रभो! हम सब तो ऐसे ही दोष के भरै हैं जैसे आप कहो हो परन्तु यह मुकुन्द तो बड़ो निरीह युवक है। आपको प्रिय कीर्तनीया है। अपने मधुर कीर्तन सों आपके भाव कूँ बढ़ावैगो ही। याही कूँ संग लै जाओ।

महाप्रभु—(हँसते हुये) मैं तो याको मुखहू नहीं देख सकूँ हूँ। याको स्वभाव अत्यन्त ही कोमल है। मोकूँ भूमि पै सोमतो देख याकूँ चित्त दूखै है। मैं त्रिसन्ध्या ठंडे जल सों स्नान करूँ हूँ तो याकूँ चिन्ता होय है कि मोकूँ कोई रोग न पकड़ लेय, परन्तु मुख खोल के कछु कह नहीं सकै है—मन ही मन में झुरतो-कलपतो ही रहे है। सो याके दुखी उदास मुख कूँ देख के मोकूँ दूनो दुःख होय है। भलो कठोर प्रवास में ऐसे कोमल साथी को कहा काम!

समाज (बंगला) —

गुणदोषोद्गार छले सभार निषेधिया।
एकाकी भ्रमिवेन तीर्थं विराग कोरिया।।
जे जे गुन गुन सों बँधे, जे जे जन के पास।
ते ते अवगुन कहि कहि, करत चतुर परिहास।।
उठि विराग लहर, एकाकी भ्रमण करूँ।
नाहक भक्तन सिर, गढ़ गढ़ दोष लगे मढ़न।।

गुन गन अवगुन कहत सिहावैं।
मीठो लागैं पुनि पुनि गावैं।।

प्रीति रीति में चतुर सदाई। सूधे बोल न जानैं माई।।
भक्त विकल सकल बल हारे। डूबत बाँह निताइ उबारे।।

निताई—प्रभो! मेरी एक अन्तिम प्रार्थना है।

महाप्रभु—

आमि नर्तक तुमी सूत्रधार।
जैछे तुमी नाचाओ नर्तन आमार।।

श्रीपाद! मैं नट हूँ आप सूत्रधार हो। आप जैसो नचामनो चाहौ वैसो ही मोकूँ नाचनो परै है। अतएव करो आज्ञा!

निताई (पद गौड़ सारंग-दादरा) —

विनती यही मानो सही, जाओ ले जाओ कोई।।

प्रभो! यह सत्य है कि आपकूँ हमारी काहू की सेवा सों कोई प्रयोजन नहीं है परन्तु कौपीन वहिर्वास और जलपात्र सों तो प्रयोजन है न?

महाप्रभु—हाँ-हाँ क्यों नहीं?

निताई (पूर्वपद) —

हाथ तिहारे नाम जपिहैं, कहो कमंडलु कौन गहिहैं।
भुजा उठाय नाचिहो जबै, काँधे वसन कैसे रहिहै।।

महाप्रभु—मैं अपनी कमर सों वस्त्र और कमंडलु कूँ बाँधिकै राखूँगो।

निताई—

भाव विवश विह्वल प्रेम, ढरि परि तन भूमि जैहै।
रहेंगे वस्त्र पात्र कैसे, तन की तनिक सुधि न रैहै।।

अतएव एक सेवक कूँ तो अवश्य स्वीकार करही लेओ। कृष्णदास नाम को एक बड़ो सरल ब्राह्मण है। वह आपके कौपीन, बहिर्वास और जलपात्र लैकै चलैगो। बिना बुलाये एक शब्द हू न बोलैगो।

महाप्रभु—जैसे आपकी इच्छा श्रीपाद!

सब भक्त—हरिबोल! हरिबोल!

(प्रवेश सार्वभौम भट्टाचार्य। महाप्रभु और निताई के अतिरिक्त और सब खड़े हो जाते हैं)

समाज (दोहा)—

सार्वभौम भाजन कृपा, कृपानिधि ढिंग आय।
सादर प्रणमि प्रभु चरण, बैठ्यौ आज्ञा पाय।।

सार्वभौम—(प्रणाम करता है)

महाप्रभु—सार्वभौमजी! विराजो। आसन ग्रहण करो। और मेरी एक प्रार्थना सुनो।

सार्वभौम—(बैठते हुये) करौ आज्ञा भगवन्!

महाप्रभु—यह तो आप जानौ ही हो कि मेरे बड़े भ्राता विश्वरूप गृह-त्याग करकै दक्षिण की ओर चले गये है।

सार्वभौम—हाँ भगवन्! जानूँ हूँ।

महाप्रभु—तो अब मैं उनकी खोज करवे के लिये दक्षिण कूँ जानो चाहूँ हूँ। आज्ञा करौ। आपकी आज्ञा के बल सों मैं शीघ्र सुखपूर्वक लौट आऊँगो।

सार्वभौम—(प्रभु के चरण पकड़ व्याकुलता पूर्वक)

जनम जनम के पुण्य बल, पायो श्रीपद संग।
भंग करन विधना चहत, ना जानौं कहा रंग।।

शिरे वज्र पोड़े जदि पुत्र मोरे जाय।
ताहा सही तोमार विच्छेद न सहाय।।

यदि मेरो पुत्र वज्रपात ते मर जाय तो मैं वाके वियोग कूँ सह सकूँ हूँ परन्तु आपको वियोग नहीं सह सकूँ हूँ। परन्तु आप स्वतन्त्र हो। आप जानौ ही चाहौ तो आपकूँ कौन रोक सकै है। अवश्य ही जाओगे। तथापि हे करुणानिधे! द्वै चार दिवस के लिये और मोकूँ चरण-सेवा मिल जाय। पश्चात् आपकी जैसी इच्छा।

महाप्रभु—अच्छो, ऐसो ही सही।

सार्वभौम—हरिबोल! प्रभो! अब द्वै-चार दिवस जब पर्यन्त आप यहाँ हो, दास की ही भिक्षा स्वीकार की जाय। और अब भिक्षा को समय है गयो है। यासों भक्त परिकर सहित मेरे घर कूँ पवित्र करें।

महाप्रभु—(उठते हुये) चलो भट्टाचार्यजी।

भक्तमंडली (कीर्तन)—

जय जगन्नाथ जय जय जगन्नाथ।
उत्तराखण्ड में करो तपस्या, द्वारिकापुरी में राज।
वृन्दावन में रास रचाओ, पाओ यहाँ प्रसाद।।
(सब चले जाते हैं)

समाज (चौपाई)—

सार्वभौम नित न्यौति बुलावें। आदर सहित भवन पधरावैं।।
भार्या सहभक्ति पाक बनावें। नितप्रति भिक्षा प्रभु तहाँ पावैं।।
पति-पत्नी प्रभु-भक्त भारी। मानें स्वयं कृष्ण अवतारी।।
तन मन धन सह प्रभु पद सेवहिं।
आस अभिलाषा न मन कछु धरहिं।।
चार दिवस यही दिवस बिताये।
पंचम दिवस प्रभु गमन जताये।।
जगन्नाथ आज्ञा निमित्त, चले जगन्नाथ पास।
नित्यानन्द सार्वभौम आदि, भक्त विप्र कृष्णदास।।
(दृश्य—श्रीजगन्नाथ-मन्दिर)
(प्रवेश महाप्रभु, नित्यानन्द, सार्वभौम, गोपीनाथ, दामोदर, मुकुन्द, कृष्णदास कमंडलु कन्था सहित)

भक्तमंडली (कीर्तन)—

जगन्नाथ हरे, जगन्नाथ हरे।
व्रजनाथ हरे, प्राणनाथ हरे।।

महाप्रभु—

कालिन्दी-तट नट साज धरे, वनराज वृन्दावन रास करे।
कमला कमला रस स्वाद करे, मनमोहन जय जगन्नाथ हरे।।

सूधे कर कमल सुवेनु धरे, शिखि पिच्छ सुगुच्छ शीश धरे।
टेढ़ी सुकटि पट पीत धरे, त्रिभंगी जय व्रजनाथ हरे।।
अब आके सागर तीर खड़े, मन्दिर प्रेम त्रिरूप धरे।
बलभद्र सुभद्रा आप हरे जगन्नाथ बने व्रजनाथ हरे।।

संकीर्तन-नृत्य (धुन)—

जगन्नाथ बने, व्रजनाथ हरे।
व्रजनाथ हरे, प्राणनाथ हरे।।

समाज (चौपाई)—

जगन्नाथ उर कंठ श्रीमाला।
विप्र पुजारी लई तत्काला।।
लाय महाप्रभुहिं पहिराये। महाप्रसाद सादर सम्हराये।।
आज्ञा रूप पाय उरमाला। प्रणमत प्रभु उर प्रेम विशाला।।

महाप्रभु—(प्रणाम कर प्रदक्षिणा देते हैं)

समाज—

प्रदक्षिणा करि दक्षिण दिशि धाये।
गले संग बहु जन दुख पाये।।

महाप्रभु—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम्।।

सार्वभौम—गोपीनाथ जी! यह श्रीजगन्नाथ जी को महाप्रसाद है। आगे अलालनाथ में यासों प्रभु की भिक्षा कराय दैनो (प्रसाद देना तथा बिप्र कृष्णदास प्रति) यह प्रभु के लिये चार कौपीन और द्वै वहिर्वास हैं कृष्णदासजी! आप ही धन्य हो जो प्रभु ने आपकूँ अपनी सेवा में स्वीकार कियो है। प्रभु हमारे प्राण हैं जिनकूँ हम आपके हाथन में सौंप रहे हैं। शीघ्र ही लायकै आप इनकूँ हमारे हाथन में सौंप दीजौ। यही हमारो अनुरोध है।

कृष्णदास—यह कार्य तो श्रीजगन्नाथ प्रभु के हाथ में है भट्टाचार्यजी! हाँ या देह में प्राण रहते प्रभु की सेवा में कोई त्रुटि नहीं होयगी। आप सबहू यही आशीर्वाद देवें।

समाज (चौपाई) —

मन्दिर तजि सागर पथ आये।
सार्वभौम प्रति वचन सुनाये।।

महाप्रभु—सार्वभौम जी! मैं अब समुद्र के किनारे-किनारे जाऊँगो और जायके आगे अलालनाथ के दर्शन करूँगो। आप सब लौट जावैं। श्रीकृष्ण को भजन करें और मोकूँ आशीर्वाद दैवैं जाते शीघ्र लौट के श्रीजगन्नाथ के दर्शन कर सकूँ।

सार्वभौम—प्रभो! मेरी एक प्रार्थना है। आगे गोदावरी तट पै एक प्रसिद्ध नगर है विद्यानगर। वह हमारे उत्कल नरेश महाराज प्रतापरुद्र के ही आधीन है। वहाँ के मुख्य अधिकारी हैं श्रीराय रामानन्द। आप उनकूँ अवश्य दर्शन देवें। वे आप के सत्संग करवे योग्य हैं। विषयी राजपुरुष समझकै उपेक्षा न करैं। उनके समान सुरसिक भक्त भूतल पै दूसरो कठिन है। वे विद्या और भक्ति दोनों के ही सागर हैं। मैंने अपने पांडित्य के मद में वैष्णव कह-कहकै उनको बहुत कछु उपहास कर्यौ है परन्तु अब आप की कृपा से मैं उनके भागवत स्वरूप को कछु समझ पायो हूँ। आप उनसों सम्भाषण करेंगे तो स्वयं सब जान जायँगे। अतएव उनसों मिलवे की अवश्य कृपा करें।

महाप्रभु—अवश्य मिलूँगो। आपने ऐसे महाभागवत को परिचय दैकै मेरो बड़ो उपकार कर्यौ। अब आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें और लौट जायँ (अंकमाल प्रदान)

समाज (सोरठा) —

करि आलिंगन दान, विदा कियो सार्वभौमहि।
व्याकुल विरह महान, पर्यौ धरन जनु प्रान बिनु।।

सार्वभौम—हा नाथ! (गिरने लगते। गोपीनाथ, निताई सम्हालते हैं। महाप्रभु तथा अन्य भक्तजन 'हरिबोल' कहते हुये चले जाते हैं)

समाज (सोरठा) —

तजि स्वभक्त अचेत, हेत विसारि कीन्हे गमन।
हृदयनाथ दुख देत, हृदय नाथ को जानिहै।।
नित्यानन्द सचेत कराये। वचन प्रवोधि भवन पठाये।।

निताई—भट्टाचार्यजी! धीरज धरो। प्रभु की आज्ञा ही हमारी इच्छा है। आज्ञा पालन में ही हमारो मंगल है। यासों शान्त होय घर लौट जावैं। हमहू अलालनाथ तक प्रभु कूँ पहुँचाय कै आवैं हैं।

समाज (चौपाई)—

सार्वभौमहिं भवन पठाये। आप धाय प्रभु पद पहुँचाये।।

महाप्रभु—(कीर्तन करते प्रवेश) कृष्ण कृष्ण....हे०।।

भक्तमंडली (चौपाई)—

भक्त सकल मिलि प्रभु संग जावहिं।
लखि लखि श्रीमुख दुख विसरावहिं।।
कृष्ण लखहिं मुख कृष्णहिं गावहिं।
आनन्द प्रेम मगन चलि जावहिं।।

सात कोस मारग चलि आये। अलालनाथ मन्दिर नियराये।।

(दृश्य—श्रीअलालनाथ का मन्दिर। चतुर्भुज श्याम स्वरूप
श्रीजनार्दनदेव की झाँकी। अधर का एक कोना श्वेत)

पुजारी—बोलो अलालनाथ भगवान् की जय।

श्रीजनार्दन देव की जय।

आओ आओ यात्रियो! अलालनाथजी के दर्शन करो। ये बड़े प्राचीन स्वरूप हैं। बड़े चमत्कारी, दीन-दुखहारी भक्तवत्सल श्रीजनार्दनदेव हैं।

एक यात्री—महाराज! इनकी कथा कछु सुनायवे की कृपा करो।

पुजारी—सुनो भैयाओ! यह स्थान ब्रह्मगिरि कहावै है जाके ऊपर अलालनाथ भगवान् विराजे हैं। वैसे इनको शुद्ध नाम अन्नवरनाथ है। ये बड़े भक्त वरदाता हैं। भक्तेच्छा-पूर्ति करवे वारे जनार्दन देव हैं। तुम इनके अधर के या कोने की ओर देखो यह श्वेत है और शेष अधर लाल है।

यात्री—यह श्वेत क्यों है महाराज! कारण कहा?

पुजारी—कारण है भक्तवत्सलता। जैसे भगवान् के वक्षस्थल के दाहिने भाग में भृगुलता उनके ब्रह्मण्यता की निशानी है—अमिट छाप है, वैसे ही यह श्वेत चिन्ह हू उनकी भक्तवत्सलता को अमिट प्रमाण है।

यात्री—यह श्वेत चिन्ह कैसे पर्यो महाराज?

पुजारी—सुनो याकी कथा। प्राचीनकाल की बात है। एक समय इनके पुजारी कूँ कार्यवश कहूँ बाहर जानौ पर्यौ तो वे इनकी सेवा अपने बालक पुत्र कूँ सौंप गये। वह पाँच-छः वर्ष को ही हो। जनेऊ तो है गयो हो पर पढ़वे नहीं बैठ्यो हो। यासों खेलकूद ही में वाको मन रहतो। वा दिना भोग के लिये खीर बनी। खीर ताती ही—ठण्डी होय तब भोग लगै। इतने में बाहर सों बहुत से बाल सखा वाकूँ बुलायवे लगे खेलवे के तांई। सो वा बालक पुजारी ने ताती-ताजी खीर उठायकै भोग धर दई और तुलसी छोड़ बोल्यो 'जल्दी खाय लेओ। मोकूँ देर है रही है। खेलवे जाऊँगो।' ठाकुरजी ने नहीं पायो तो बोल्यो 'अरे देखो कहा हो। खाओ न। जल्दी करौ। सुनौ नहीं मेरे मित्र हेला पै हेला दै रहे हैं। सो जल्दी खाय लेओ। मैं तुम्हारो हाथ-मुँह धुवाऊँगो—फिर जाऊँगो। जूठे हाथन कब तक बैठे रहोगे। मोहि तो देर है जायगी।' परीक्षा पूरी है गई। भगवान् जान गये कि यह मोकूँ मूरति नहीं मानै है, यह तो साक्षात् मोकूँ देख रह्यौ है। यह तो भाव सिद्ध है गयो। यही मूर्ति पूजा को फल है। बस भगवान् ने तुरत ही श्रीहस्त बढ़ाये और उठाय कै गर्मागर्म खीर पी गये। कंस के दावानल सों जो कोमल होंठ जरै नहीं, वह बालक भक्त के एक कटोरा खीर सों जर गये। बोलो भक्तवत्सल भगवान् की जय। सो वा गर्म खीर सों होंठ जर गयो और फफोला पर गयो या कोने में। वाही सों यह सफेद निशान बन गयो जो आज पर्यन्त बन्यो भयो है और आगे हू बन्यो रहैगो ऐसो यह अद्‌भुत चिन्ह है। याके दर्शन करो, सोचो, समझो और बोलो प्रेम सों 'भक्त और भक्तवांछा कल्पतरु भगवान् की जय'

अलालनाथ जनार्दन भगवान् की जय।

महाप्रभु एवं भक्तमंडली—(प्रवेश कीर्तन करते हुये) हरिबोल हरिबोल हरि हरि बोल।।

समाज—

आये अलालनाथ प्रभु आये। भीर भारी संग लै आये।।
कंचन सम कमनीय सुकाया। अरुन वसन रमणीक सुहाया।।
पुलक स्वेद कम्प बहुधारे। लखि लखि जन तन मन धन वारे
जो आवै सो घर नहिं जावै। मुख दर्शन करि करि न अघावै
नाचैं गावैं कृष्ण गोपाला

जनता (धुन)—कृष्ण गोपाला, गोविन्द गोपाला

समाज (बंगला) —

देखि नित्यानन्द प्रभु कहे भक्तगण।
एइ रूप नृत्य आगे दक्षिण भ्रमण।।

निताई—देख्यौ गोपीनाथ जी! याही के तांई प्रभु दक्षिण भ्रमण कर रहे हैं। अब आगेहू याही प्रकार सों ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में हरि-संकीर्तन की धूम मचैगी। राजा-प्रजा, पंडित-मूर्ख, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब कृष्ण-कृष्ण गायँगे और नाचेंगे। सेतुबन्ध, रामेश्वर पर्यन्त प्रेम-भक्ति की पावन धारा बहेगी दक्षिण-देश प्लावित है जायगो। आज वाको श्रीगणेश है।

गोपीनाथ—श्रीपाद दुपहर तो बीत गयो। भीड़ बढ़ती ही चली जाय है। जो आवै सो जावै नहीं है। प्रभु को मध्यान्ह स्नान-भिक्षा कैसे होयगी!

निताई—मैं करूँ हूँ याको उपाय। (जनता प्रति) मेरे प्यारे बन्धुओं! तुम्हारे ही भाग्य सों प्रभु यहाँ पधारे हैं। इनके दर्शन दुर्लभ, इनको कीर्तन दुर्लभ, इनकी प्रेमभक्ति दुर्लभ—सो सब तुमकूँ घर बैठे सुलभ है गई है। बोलो श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय।

जनता—सचल जगन्नाथ की जय।

निताई—अहा धन्य है तुमकूँ जो तुम प्रभु कूँ पहचान गये हो। यह वस्तुत: ऐसे ही हैं। बोलो सचल जगन्नाथ की जय। अब मेरी एक प्रार्थना पै ध्यान देओ देखो प्रभु प्रात:काल जगन्नाथजी ते चले हैं और सात कोस मार्ग चलकै यहाँ आये हैं। पहर भर सों मन्दिर में संकीर्तन कर रहे हैं। तीसरो प्रहर है आयो है। अब उनकूँ स्नान, भिक्षा एवं विश्राम के लिये अवसर मिलनो ही चाहिये। यासों तुम सब जाओ और संध्या समय फिर आमनो।

जनता—हम घर नहीं जायँगे। प्रभु कूँ नहीं छोड़ेंगे। आप प्रभु कूँ अवश्य स्नान-भोजनादि कराओ। हम यहीं शान्त बैठे रहेंगे।

निताई—प्रभो! मध्यान्ह कृत्य के लिये समुद्र कूँ पधारौ।

(महाप्रभु, निताई-भक्तवृन्द का प्रस्थान)

पुजारी—(जनता प्रति) प्यारे भक्तो! अब अलालनाथजी कूँ हूँ विश्राम कर लैन देओ। फिर सन्ध्या कूँ दर्शन खुलैंगे। यासों तुम सब मन्दिर के बाहर जायकै विश्राम करौ।

जनता—तो चलो भैयाओ! समुद्र ही कूँ चलौ। दूर ही ते प्रभु के दुर्लभ दर्शन को लाभ लेंगे। यहाँ व्यर्थ बैठे-बैठे कहा करेंगे। बोलीं श्रीकृष्णचैतन्यदेव की जय। सचल जगन्नाथ की जय। हरिबोल, हरिबोल (कीर्तन करते हुये निर्गमन)

समाज (चौपाई) —

जन गन भीर सो पाछे धाई। कमल तजै क्यों मधुकर भाई।।
भूमि पाय परत मग नाही। फूले तन मन नाचत जाहीं।।
जयकार मचावैं बोल हरि गावैं।
सुनि सुनि लोग अधिक जुर आवैं।।
करि प्रभु समुद्र स्नान, आये मन्दिर पुनि सकल।
चतुर निताइ सुजान, बन्द तुरत कपाट किये।।

पुजारी—(नेपथ्य से) प्रभो जनता भीतर न आमन पावे।

निताई—चिन्ता मत करो। मैंने कपाट बन्द कर दिये हैं।

गोपीनाथ—प्रभो! सार्वभौमजी ने यह महाप्रसाद मेरे हाथ सौंप्यौ हो। सो आप और श्रीपाद दोनों विराजौ एवं प्रसाद ग्रहण करौ।

महाप्रभु—गोपीनाथजी! आप दामोदर, मुकुन्द सबन कूँ बैठाओ और महाप्रसाद पवाओ।

दामोदर—प्रभो! हम सब पीछे पायँगे। पहले आप दोनों ग्रहण करौ।

समाज (चौपाई) —

आसन दोऊ उन पधराये। गोपीनाथ प्रसाद पवाये।।
बाहर द्वार भीर भई भारी। दूर ग्रामवासी नर नारी।।
सुनि सुनि दौरि दौरि बहु आये। लोचन दरस हेत अकुलाये।।
द्वार बन्द कोलाहल भारी। देओ दरस हम द्वार भिखारी।।
हरि बोल करैं धुनि घोरा। सुनि चंचल चित भये चितचोरा।।
देओ उघारि देओ प्रभु बोले। दयाल निताइ द्वार तब खोले।।

निताई—(पर्दा हटा देते हैं। जनसमुदाय प्रवेश करता है)

जनता—हरिबोल।

महाप्रभु—हरिबोल (पीछे-पीछे जनता बोलेगी)

पद (बंगला)—

हरि नाम बिनेरे गोविन्द नाम बिने।
विफल मानुष जनम जाय दिने दिने।।
नाम भजो नाम चिन्तो नाम करो सार।
अनन्त श्रीकृष्ण नाम महिमा अपार।।
कृष्ण केशव०। राम राघव०।।
नाम जोई कृष्ण सोई भजो निष्ठा करि।
नामेर संग सदा आछेन श्रीहरि।।
सुनो सुनो भाई सब नाम संकीर्तन।
होय नाम श्रवण सों पाप विमोचन।।
कृष्ण केशव०। राम राघव०।।
कृष्ण नाम भजो जीव आर सब मीछे।
पलाइते पंथ नाहिं जम आछे पीछे।।
कृष्ण नाम हरि नाम बड़ोइ मधुर।
जेइ जन कृष्ण भजे सेइ बड़ चतुर।।
कृष्ण केशव०। राम राघव०।

समाज—

कृष्ण कृष्ण प्रभु नाम सुनावैं। कृष्ण कृष्ण नर नारी गावैं।।
कोइ नाचैं मत्त कोई गावैं। जोय जोय कोइ अश्रु बहावैं।।

इहि विधि संध्या काल लौं, आवैं जावैं लोग।
नाचैं गावैं मोद भरि, भये वैष्णव पद जोग।।

महाप्रभु—(कीर्तन करते-करते निर्गमन। जनता अनुसरण करती। केवल नित्यानन्द-गोपीनाथ नहीं जाते हैं।

निताई—गोपीनाथ जी! प्रभु ने दक्षिण देश के उद्धार को श्रीगणेश आज यहाँ अलालनाथ सों कर्यो है। अब यह प्रेमभक्ति की भागीरथी नदी सों नद एवं नद सों महानद बनिकै सेतुबन्ध रामेश्वर में महासागर में जायकै विश्राम करैगी।

गोपीनाथ—निश्चय ही श्रीपाद! दक्षिण देशवासिन को सौभाग्य सूर्य उदय भयो है। अब अनायास ही उनकी मोह-निशा को अन्त एवं भक्ति को मंगल-प्रभात उदय होयगो। परन्तु हाय! चैतन्यचन्द्र के वियोग में हमारी दु:ख निशा को अन्त कब होयगो एवं मंगल-मिलन की शुभ घड़ी कब आयगी!

निताई—जब प्रभु की इच्छा होयगी (कहते हुए प्रस्थान)

समाज (सोरठा)—

निज प्रियजन संग, निशि निवास कियौ तहाँ।
कृष्ण कथा-रस रंग, भई रजनी प्रभात पुनि।।

न्हाय प्रात प्रभु कीन्ह पयाना। भेंटत जन जन प्राण समाना।।

महाप्रभु—(निताई का हस्त पकड़) श्रीपाद! अब गौड़िया-उड़िया भक्तन के आपही एकमात्र आश्रय हो। इन सबन के भजन-साधन की रक्षा को भार आपही के ऊपर है। अब मोकूँ विदा देओ। मैं शीघ्र ही लौट आऊँगो। (मुकुन्द का हाथ ले) मेरे प्यारे मुकुन्द! नित्य अपने सुमधुर कीर्तन के द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा करनो। मैं शीघ्र ही लौटकै तुम्हारो मधुर-कीर्तन सुनूँगो। (अन्य भक्तों के प्रति) प्यारे बन्धुओं! नित्य श्रीजगन्नाथ प्रभु के मुखचन्द्र को दर्शन करनो एवं भक्तिभाव सहित कीर्तन करनो। हरिबोल (प्रस्थान)

समाज (चौपाई)—

भेंटि सकल गमन प्रभु कीन्हे। ठाड़े विकल वारि बिनु मीने।।
मुख नहिं वैन नैन भरि आये। ठाड़े मानो मूरि ठग खाये।।
कोई विवश तन धरनि लुठाने। चेत अचेत कोई विसराने।।
तब इन सार्वभौमहिं सम्हारे। अबको इहाँ इनहिं प्रतिपारे।।
जहाँ तहाँ सब रहै मुरझाई। पूनौ पलटि अमावसि आई।।

(पटाक्षेप)

मात पिता गुरु बन्धु ते, करन अधिक जो हेत।
प्रेमसिन्धु सूख्यो सोई, पाय सुकर तब खेल।।
मूरति प्रेम अनुराग, नैन वैन भर भाव रस।
धरे भेष वैराग, करत सफल वैराग्य भग।।

मत्त सिंह प्राय कोरिला गमन।
प्रेमावेशे जाय कोरि नाम संकीर्तन।।

महाप्रभु—(कीर्तन करते हुये प्रवेश)

समाज (चौपाई)—

कंचन वरन अंग अंग झल झलके।
वयस पचीस यौवन छल छलके।।

वाहु सुगोल सुडोल उठाये। कृष्ण कृष्ण मद बोल सुनाये।।

महाप्रभु—(कीर्तन करते हुये चले जाते हैं)

समाज—

देह दिव्य दीरघ देव लाजे। भाव भव्य अंग अंग भरि भ्राजे।।
तन वैरागी कौपीन धारे। मन अनुरागी कृष्ण उचारे।।
भाव विभोर आन सुधि नाहिं। देखत पै देखत जग नाहिं।।

महाप्रभु—(कीर्तन करते हुये प्रवेश)

समाज (दोहा) —

कबहू कबहू बाहर लखैं, दृष्टि परै जन जोई।
हरे कृष्ण तासों कहैं, हरे कृष्ण कहे सोई।।

पथिक—(महाप्रभु के पीछे-पीछे 'हरे कृष्ण' कहते हुये)
प्रभु चलै सो पीछे जावै। लोचन लोभी देख्यौ चाहै।।
कृष्ण कृष्ण प्रभु गावत जावैं। कृष्ण कृष्ण वह गावत आवैं।।
इहि विधि कछुक दूर जब धाये। कृष्ण नाम कृपा फल पाये।।
उलटि प्रभु अंकम भरि लीने। भक्ति शक्ति प्रेम भरि दीने।।

पथिक—(उन्मत्त हो नाचने गाने लगता है)
प्रभु चले आगे सो निज गामा। कृष्ण कृष्ण मुख गावत नामा।।

दो-चार ग्रामवासी—(दूसरी ओर से प्रवेश करते हैं)
हँसे नाचे गावैं कभु रोवै। अचरज लखि जग अचरज होवै।।

ग्रामवासी १—देखो-देखो! यह नाथुपैया कैसे नाच गाय रह्यौ है?

ग्रामवासी २—बावरो है गयो कहा? ओ नाथुपैया! नाथु!

नाथुपैया—(हाथ उठाते पास जाकर) कृष्ण कहो, कृष्ण कहो, कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहो। फिर दूसरे के पास जाकर) कृष्ण कहो! कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहो।

सब ग्रामवासी—कृष्ण कहो, कृष्ण कहो, कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहो।
(कहते नाचते गाते चले जाते हैं)

समाज—

जोइ सोइ आगे मिल जावै। कृष्ण कहो नाम कृष्ण सुनावै।।
कृष्ण कृष्ण सब गाय गवावैं। गाम गाम वैष्णव बनि जावैं।।

जारे देखे तारे कोहे कृष्ण नाम।
एइ मतो वैष्णव कैलो सब निज गाम।।

(दृश्य—ग्राम-चौपाल। दो चार ग्रामवासी बैठे हुक्का पी रहे हैं। दो चार दूसरे गाँव वाले आते। राम राम करते। खेती की बातें करते हैं।

समाज (कवित्त)—

आवें तेहि गाँव, आन गाँव के लोग सब
सुनैं कृष्ण नाम गावैं, आप कृष्ण-कृष्ण है।
(प्रवेश नाथुपैया और दो चार) कृष्ण कहो कृष्ण कहो,

१ बाहर गाँव का—नम्बरदार! यह कहा रंग ढंग है तिहारे गाँव को?

नम्बरदार—भैय्या! यह रंग तो मैंहू आज ही देख रह्यो हूँ। मैंने तो पहले इनकूँ ऐसे बावरे बने भये नाचते गाते कबहू नहीं देख्यो!

अन्य ग्रामवासी—न हमने काहू ने यह स्वांग देख्यौ है! अरे ओ नाथुपैया! ओ रेड़ी! यह कहा सीख आये हो तुम?

रेडी, नाथुपैया—कृष्ण कहो, कृष्ण कहो, कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहो

नम्बरदार—लगै तो मीठो है! कैसे कही, फिर तो कहो?

रेडी, नाथुपैया—कृष्ण कहो, कृष्ण कहो०।

नम्बरदार सब ग्रामवासी—कृष्ण कहो, कृष्ण कहो० (कहते हुये झूमने लगते-ताली बजाते हैं। कोई खड़े ही नाचने-गाने लग जाते हैं)

समाज कवित्त—

जावैं निज गाम पुनि गावैं कृष्ण कृष्ण तहाँ
भावै मन सबन के, गावैं कृष्ण कृष्ण है।
एक गाम द्वय गाम, पाँच दस बीस गाम
ज्वार ज्यों बाढ्यो नाम, गावैं कृष्ण कृष्ण है।
चेतायो चैतन्य कृष्ण, जगायो दच्छिन देश
वैष्णव बनाये गाम, गावैं कृष्ण कृष्ण है।।

महाप्रभु—(प्रवेश कीर्तन करते हुये। पीछे-पीछे जनसमूह)

समाज (कवित्त)—

जात प्रभु मारगहिं, लावत भुज भरि हिय
धोय उर अंतर मल, जीवहिं जगाय देत।

परस सों नाचे कोई, कोई नाचे दरस सों
नाम सुनि नाचैं कोई, सबहिं नचाय देत।
फल भेद नाहिं कछु, भेद क्रिया बहु विधि
जानत सुजान प्रभु, कौन उर खेत रेति।
उमग्यौ है वारिधि उदारता को, मेंटि मेंड़
हरि के दर्बार 'प्रेम', सबहिं पहुँचाय देति।

एक ब्राह्मण—(जनसमूह में से आगे निकल महाप्रभु के चरण पकड़ लेता है)

महाप्रभु—(सचेत हो खड़े हो जाते—उसे देखने लगते)

ब्राह्मण—भगवन्! दीन दास की एक प्रार्थना स्वीकार होवै!

महाप्रभु—कहो भाई! कहा बात है?

ब्राह्मण—मैं एक विप्र अधम हूँ। मार्ग में ही मेरो घर है। मध्यान्ह बीत गयो है। न जाने आपको स्नान-आहार भयो है कै नाहीं! यासों आप दास के घर कूँ पधारो और मेरी सेवा स्वीकार करौ।

महाप्रभु—चलो! विप्रदेव! कृष्ण हे, कृष्ण हे०

(कीर्तन करते हुये प्रस्थान)

इति अलालनाथ दर्शन सम्पूर्ण

संन्यास लहरी **अष्टम कणामृत**

श्रीकूर्म-दर्शन, कूर्म विप्र पर कृपा वासुदेव-उद्धार

पात्रापात्र विचारणं न कुरुते न स्वं परं वीक्षते
देयादेय विमर्शको न हि न वा कालप्रतीक्षः प्रभुः।
सद्यो यः श्रवणेक्षण-प्रणमन-ध्यानादिना दुर्लभं
दत्ते भक्तिरसं स एव भगवान गौरः परं मे गतिः।।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जय जय अद्वैत जय गौर भक्तवृन्द।।

जावैं जाके घर प्रभु, भिक्षा काज हेत तहँ
ग्राम जुरि आवै मचे, कृष्ण नाम रौर है।

कोई मूरति इष्ट हेरि, शुभ दृष्टि पाय कोई
कोई वक्ष पाय बनैं, भक्त सिरमौर है।
आप भजे कृष्ण भजवावै जन जन कृष्ण
आचरण बनावैं प्रभु ऐसे ठौर ठौर है।
पारस तो करत है, लोह को कंचन ही पै
पारस करत प्रेम पारसमणि गौर है।।

इहि विधि बस्ती बस्ती जावहिं।
इहि विधि भक्ति शक्ति प्रकाशहिं।।
इहि विधि आचारज प्रगटावहिं।
इहि विधि वैष्णव देश बनावहिं।।

महाप्रभु—(कीर्तन करते आते, चले जाते। पीछे-पीछे कृष्णदास वस्त्र, कौपीन, कंथा-कमंडलु लिये चलता है।

समाज—

कहुँ बस्ती कहुँ वन पथ भारी।
कभु भोजन कबहू निराहारी।।
कभु गाम कभु तरु तर वासा।
भाव विभोर चिन्ता नहिं त्रासा।।
घोर जीव जन्तु निशि डोलैं। वृक श्रृगाल बाघ कहुँ बोलैं।।

(दृश्य—वन-वृक्षावली। महाप्रभु एक वृक्ष के सहारे चरण पसारे धीरे-धीरे कृष्ण-कृष्ण रट रहे हैं। कृष्णदास चरण समीप बैठा है)

एक दिवस निशि घोर, बैठे प्रभु वन तरु तरे।
कृष्णदास पद ठौर, चरण मृदु सहरावहिं।।
भावनिधि कभु मौन, कभु कृष्ण-कीर्तन करैं।
मति गति समुझे कौन, विकल कभू रोदन करैं।।

महाप्रभु पद (सिन्धु-काफी)—

श्यामसुन्दर ब्रजबिहारी, निरखौं निशिदिन मूरति तिहारी।।
शरम-धरम-गंजन तुव लोचन, मान कान कुल बन्ध विमोचन।
तन मन रंजन नैनन अंजन, हृदय चन्दन चन्द्रिका धारी।।
कुलटा कुरूप हीन शुभ गुणगण, तुम हो नागर कुल चूड़ामणि।
कैसे रिझाऊँ पाऊँ गुणखनी, हृदय धनी वृन्दावन चारी।।

तुव गुण नाम 'प्रेम' अवलम्वन, दीनबन्धु गोविन्द गिरिधरन।
गोपकुमारी तन मन भूषण, प्राण संजीवन वंशीधारी।।

समाज (दोहा) —

असन वसन निद्रा शयन, काहू की सुध नाहिं।
सुध एक बस एक दुख, प्रीतम सुरति सताहिं।।

(नेपथ्य में से सिंह-गर्जन)

गरजि उठ्यो बाघ वनमाहिं। डरपत भृत्य निकट सिमटाहिं।।
सन्मुख व्याघ्रराज चलि आयो। ठिठक ठाड़ो चितैजु भुलायो।।
बैठे प्रभु बाघ सुधि नाहीं। व्याकुल कृष्ण कृष्ण पुकारहीं।।

महाप्रभु—कृष्ण! प्यारे कृष्ण! कृष्ण हे!

समाज—

सुनि सुनि बाघ स्वभाव भुलायो।
बैठि धरनि निज शीश नमायो।।
चितै चितै पुनि निज पथ धायो।
सभय भृत्य मन धीरज आयो।।

कृष्णदास—धन्य प्रभो! तिहारी महिमा। बाघहू विलाउ जैसो बनि गयो। और प्रणाम करके चल्यौ गयो मेरी हू जान लौट आई!

समाज—

इहि विधि मारग वन पशु भेंटहिं।
लखैं ठाड़े कोई, संग कोई जावहिं।।
मत्त आवेश प्रभु चलि जाहीं।
दिवस रैन सुध कभु कछु नाहीं।।
दिन दस चलि कूर्माचल आये।
कूर्मदेव मन्दिर प्रति धाये।।

(दृश्य—मन्दिर। कूर्माकार शिला के ऊपर वस्त्र माला आदि। दाहिने श्रीगोविन्द राज चतुर्भुज। बायें भूदेवी, श्रीदेवी की मूर्तियाँ)

पुजारी—बोलो कूर्म भगवान् की जय। भगवान् गोविन्दराज की जय। भूदेवी-श्रीदेवी की जय।

(प्रवेश महाप्रभु, कृष्णदास, जनता)

पुजारी—ॐ नमो नारायणाय। आओ भगवन् पधारो। बड़े मंगल दर्शन दिये। यह स्थान कूर्माचल कहावै है। यहाँ कूर्माचल पर्वत तो नहीं है परन्तु कूर्म भगवान् की मूरति शिला के आकार में है। यह देखिए मध्य में यही हैं कूर्मदेव। और ये श्रीगोविन्दराज भगवान् हैं और ये द्वय उनकी प्रिया हैं—श्रीदेवी और भूदेवी। बोलो कूर्म भगवान् की जय। गोविन्दराज भगवान् की जय।

महाप्रभु—

ॐ नमो भगवते अकूपाराय,
सर्वसत्त्वगुण विशेषणाय,
अनुपलक्षितस्थानाय,
नमो वर्ष्मणे, नमो भूम्ने,
नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते।। (भाग०)

कीर्तन— ॐ नमो भगवते अकूपाराय
ॐ नमो भगवते कूर्माय।
नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने,
नमो नमोऽवस्थानाय

जनता—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे। कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।

समाज (कवित्त)—

प्रेम भर भार नाचैं, गावैं हँसे रोवैं प्रभु
लखि लखि लोक अति, अलौकिक ठानहिं।
अचरज धुनि सुनि, आवैं दौरि दौरि जन
रूप रंग भाव लखि, मानुष न मानहिं।

नेपथ्य में—(अरे! आज तो मन्दिर में बड़ो कोलाहल मच रह्यौ है। चलौ देखैं कहा है!)

देखैं कृष्ण सुनैं कृष्ण, बोलें कृष्ण कृष्ण सब
नाचैं बाहु ऊर्ध्व किये, भूलें तन भानहिं।
वैष्णव भये जु आप, गामहू वैष्णव किये
देश देश कृष्ण प्रेम भागीरथी आनहिं।।

महाप्रभु—(कीर्तन)

कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे। कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।

जनता—(अनुकरण करती है नृत्य-गान करती है)

समाज (चौपाई)—

सेवक कूर्म लै माल निर्माली। सादर कंठ महाप्रभु डारी।।
विप्र कूर्म सोइ गाम निवासी। भावभक्ति सह विनय प्रकासी।।

कूर्म विप्र—(हाथ जोड़)

दिवस मध्य भयो दीनदयाला। भिक्षा भोजन समय कृपाला।।
निकटहि दीन दास निवासा। पग धारहु पूरहु अभिलासा।।

महाप्रभु—तो चलौ विप्रदेव!

कूर्म विप्र—(कीर्तन करते हुये पधराता है)

कृष्ण गोपाला, दीन दयाला।
व्रज गोपाला हरि नंदलाला।।
(थोड़ी देर कीर्तन कर प्रस्थान)

समाज—

सादर महाप्रभु गृह पधराये।
पद पखारत अति सुख पाये।।

अनुकरण—(विप्र-पत्नी झारी से जल डालती है। विप्र चरण धोता है)

बार बार निज भाग मल्हाये।
चल तीरथ महिमा मुख गाये।।

कूर्म विप्र (श्लोक)—

महद् विचलनं नृणां, गृहीणां दीन चेतसम्।
निःश्रेयसाय कल्पते भगवन् नान्यथा क्वचित्।।

(चरण धोते हुए—कवित्त पाठ)

मानसर बिन्दुसर, पुष्कर प्रयाग कोई
गंग गोदावरी नदी तीरथ नहावै हैं।
हिमाचल विन्ध्याचल, मलयाचल गिरि धाय
ज्ञान योग तप तेज, सिद्धि कमावै हैं।

सत्य तीर्थ क्षमा तीर्थ, इन्द्रिय संयम तीर्थ
सर्वभूत दया तीर्थ, काहु मन भावै है।
गीता रामायण तीर्थ, हरि नाम महातीर्थ
सन्त की तो समता कोई, तीरथ नहिं पावै है।।
(कारण कि)
तीरथ हू आस करैं, आवैं सन्त हमरे तीर
दरस परस पाय हमरे पाप जायँ कट है।
गीता रामायण सभी आश करैं बार बार
गावैं हमें सन्त तो खोल दैं हृदय पट हैं।
कृष्ण नाम राम नाम, नाम शिवहू आश करै
गावैं हमें सन्त तो करैं प्रकाश रूप घट है।
तीरथ को फल तो उधार कल की बात सब
सन्त ही नगद फल, देत 'प्रेम' झट है।।

साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूताहि साधवः।
तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधु समागमः।।

दर्शन ही फल पुण्य महा, तीर्थ तीर्थ हैं सन्त।
तीर्थ फलै बहु काल में, फलै सन्त तुरन्त।।

समाज— पद पखारि सह परिजन पाये।
प्रभु पुनीत आसन पधराये।।
बहु विधि व्यंजन पाक धराये।
करि करि बहु मनुहार जेंमाये।।
बार बार निज भाग मल्हावै।
फूल्यौ अंग अन्तर उमगावै।।

कूर्म विप्र— सकल सुकृत फल आजहिं पाये।
स्वयं नारायण मो घर आये।।

समाज— बार बार वस्तु बहु परसे।
बरज न मानै नेह अति सरसे।।

महाप्रभु—बस विप्रदेव! बहुत भिक्षा कर चुक्यो!

कूर्म विप्र—प्रभो! अभी तो आपने चार कौरहू नहीं पायो है। या पायस कूँ तो नेक पाय लेओ। अच्छो यह नारियल पीठा कैसो बन्यो है, देखो न प्रभो! और यह अमरस तो आपने छियो ही नहीं। नेक याकूँ प्रसाद

कर देओ। और ये फल तो सब वैसे ही परे हैं नेक इनमें हाथ लगाय देओ (परोसते जाना)

महाप्रभु—अब और काहे कूँ डार रहे हो। इतनो सारो भोग तो जगन्नाथ देव ही पाय सकैं हैं। उन्हीं कूँ अर्पण करौ।

कूर्म विप्र—मैं उन्हीं कूँ तो अर्पण कर रह्यौ हूँ। परन्तु हाँ वहाँ मन्दिर में उनकूँ बहुत सारे पदार्थ मिलैं हैं। सो यहाँ कहाँ। याहि सों उनकी रुचि नहीं है रही है। तो लेओ प्रभो! और लेओ! घर में जो कछु है सब आपको ही तो है। लेऔ और पाओ।

समाज—

बेर बेर अति नेह जनावै। बालक सम अति हठ दरसावै।।
प्रभु अति सकुच सुशील स्वभाऊ।
परै भक्त वश चलै न उपाऊ।

महाप्रभु—देखो तो सही कितनो प्रसाद बच गयो है।

कूर्म विप्र—यह तो बहुत थोरो है। यहाँ प्रसाद पायवे वारे पचासन हैं।

आप कोई चिन्ता न करें। आप तो जेंमत जावैं—मैं परोसतो जाऊँ। बचे तो बचन देओ।

समाज—

बहु विधि भिक्षा प्रेम कराये।
जल अँचवाय मुख शुद्धि धराये।।
हरत की ऐला अमलकी दीनी।
जोरि पाणि पुनि स्तुति कीनी।।

कूर्म (सवैया)—

जे पद पदमन अज शिव ध्यावैं
परस न पावैं रहैं ललचाये।
वे ही चरण चलि नंगे आये
हम जु धोय चरनोदक पाये।
देह गेह कुल वित्त सफल भये
दरस परस अधरामृत पाये।
भाग्य सीम कहा कहिये 'प्रेम'
जब घर बैठे हरि गंगा आये।

आमार भाग्येर सीमा ना जाय कथन।
आजि मोर श्लाघ्य हैलो जन्म कुल धन।।
अब सुनहु विनती नाथ यहै तुम लाभ सों लोभ बढ़ाय दियो।
रह्यौ सोयहौं घोर तमो निशि महँ, तुम आयकै नाथ जगाय दियो
अब विषय सुख विष लागत सब तुम अमृत नाम पिवाय दियो।
जब हाथ गह्यो तबलै चलौ साथ 'प्रेम' चरनन शीशचढ़ाय दियो।

(चरण पकड़) यासों नाथ! अब मोकूँ अपने संग ही लै चलो। या गृह अन्धकूप में छोड़कर मत जाओ।

महाप्रभु—नहीं विप्रदेव! तुमकूँ सबन कूँ छोड़कै नहीं, सबन कूँ संग लैकै भजन करनो परेगो। यही तुम्हारे लिये मेरी आज्ञा है।

मुख कृष्ण कहो नैन कृष्ण लखो, घर में रहो मन घर न रहे।
ए विषय नहीं मन ही विष हैं, ए विषय रहे मन में न रहे।
मन जाय मिल्यौ मोहन सों जबै, तब कौन-से मन में मोह रहे।
फिर घर में रहे चाहे वनमें रहे, नित कृष्ण ही कृष्ण में प्रेम रहे।

अतएव घर में ही रहो, आप श्रीकृष्ण भजो औरन सों हू कृष्ण-भजन करवाओ।

जारे देखो तारे करो कृष्ण उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु होइया तारो एइ देश।।

जा काहु कूँ देखौ, जाति-कुजाति, पंडित-मूर्ख, स्त्री-पुरुष कोई होय सबन कूँ श्रीकृष्णभक्ति को उपदेश करनो। मेरी आज्ञा सों तुम गुरु बनकै या देश को उद्धार करोगे। तुम यह सत्य-सत्य जानौ कि—

कभु न वाधिवे तोमाय विषय तरंग।
पुनरपि एइ ठांई पावे मोर संग।।

यदि तुम कृष्ण भजोगे तथा कृष्ण को भजन कराओगे तो संसार रूपी महा विषय सागर के मध्य में निवास करके हू याको एकहू विषय-तरंग तुमकूँ स्पर्श नहीं कर सकैगो। तुम निर्लेप निर्विकार रहकै स्वयं हू पार होओगे एवं औरन कूँ हू पार कर देओगे। यासों मेरी आज्ञा मानो और घर ही में रहौ। लौटती समय याही ठौर पै हमारो मिलन फिर होयगो। अब हम जायँ हैं। हरिबोल (प्रस्थान)

समाज (दोहा) —

महाप्रभु कीन्हे गमन, विप्रहू पाछे जाय।
गाम बाहर प्रभु जायकै, कीन्हो पुनि विदाय।।

महाप्रभु—ब्राह्मण देव! अब तुम बहुत दूर आय गये। लौट जाओ। लौटती समय तुमसों मैं निश्चय मिलूँगो।

कूर्म विप्र—(दण्डवत् प्रणाम)

महाप्रभु—(चले जाते हैं)

कूर्म विप्र—(खड़ा-खड़ा देखता रहता फिर कृष्ण कृष्ण कहते हुये लौट जाता है)

(प्रवेश भक्ति और वैराग्य।
भक्ति पीत वस्त्रधारिणी-वैराग्य श्वेत चादर धोती)

भक्ति-वैराग्य (गाना) —

जहाँ करैं भिक्षा, वहाँ यही शिक्षा,
भजो कृष्ण कृष्ण भजवावो कृष्ण कृष्ण।।
छुड़ावैं न कर्म, सिखावैं सुधर्म
भजो कृष्ण कृष्ण, भजवावो०।।१
कूर्भ में जैसे, श्रीरंग में तैसे,
वही एक नीति वही प्रेम प्रीति।
करैं एक ज्योति से लाखों ही ज्योति
भजो कृष्ण कृष्ण, भजवावो०।।२
न नवद्वीप में ही, न नीलाचल में ही
दिखाई वह शक्ति जो अब दिखलाई।
दो-दो वरस यह गंगा बहाई,
भजो कृष्ण कृष्ण, भजवावो०।।३
गंगा बहाई प्रभु बूँद 'प्रेम' गाई
छाया के सहारे से धूप बताई।
श्रीकृष्णचैतन्य जय जय सदाही
भजो कृष्ण कृष्ण, भजवावो०।।४

(गाते-गाते दोनों का निर्गमन)

वासुदेव-उद्धार

समाज—

धन्यं तं नौमि चैतन्यं वासुदेव-दयार्द्रधीः।
नष्टकुष्टं, रूपपुष्ट, भक्तितुष्टं चकार यः।।

कूर्माचल विप्र कूर्म, गृह करि निशि वास
उठि भोर बेला प्रभु, कियो जु प्रयान है।
आय कछु दूर पुनि लौट धाय गये वहीं
दुखिया पुकार सुनि, द्रवै दयाखान है।
रोगी कुष्ट वासुदेव, पकरि लगायो हिये
कुष्ट करि दूर पुष्ट, कियो रूपवान है।
पोष करि भक्ति पुनि तोष कियो आतम को
घोष कियो वासुदेवा, मृतप्रद नाम है।।
कूर्म विप्र गृह छाँड़ि प्रभु, आगे किये पयान।
उत आयो प्रभु दरस कूँ, एक दुखी सन्तान।।

(प्रवेश वासुदेव विप्र—हाथ-पैर-होठों पर कुष्ट के चिन्ह।
कन्धे पर जनेऊ। घिसटता हुआ)

वासुदेव—(हाँफता हुआ—रुक-रुककर) कहाँ हो मेरे प्रभो! अनाथ के नाथ! (खाँसी) दीनन के बन्धो! पतितन के पावन (पुनः खाँसी) कहाँ हैं? अरे! यहाँ तो कोई नहीं है। यह तो कूर्म पंडित को घर है। पंडितजी महाराज! कहाँ हो? दर्शन देओ।

कूर्म विप्र—(प्रवेश) कृष्ण कहो प्यारे! कृष्ण कहो।

वासुदेव—हाँ हाँ कृष्ण कृष्ण! कहाँ हैं वे? यहाँ आये हे ना?

कूर्म विप्र—हाँ आये तो रहे!

वासुदेव—तो बताओ वे कहाँ हैं। लोग कहैं हैं उनके दर्शन मात्र सों भक्ति होय है, कृष्ण-कृष्ण मुख सों निकसै है। मैं रात या पापी शरीर के कारण आय नहीं सक्यौ। अब सबेरे जैसे-तैसे घिसटतो भयो आय पहुँच्यो हूँ। सो वे कहाँ है? उनके दर्शन मो नीच पातकी कूँ हू कराय देओ।

कूर्म विप्र—मेरे प्यारे बन्धु! जो-जो बात तुमने सुनी हैं वे सब साँची ही हैं। रात्रि भर उनको यहीं निवास हो। प्रातः स्नान करकै अभी-अभी वे

चले गये। आधा घंटा हू नहीं भयो। मैं संग चल्यौ तो मोकूँ लौटाय दियो और चले गये।

वासुदेव—हा नाथ! चले गये (बैठे से लुढ़क पड़ता) मैं महापातकी नारकी जो ठहरयौ! अब कृष्ण कहाँ? हा पतितबन्धो! (छटपटाता हुआ मूर्च्छित)

कूर्म विप्र—कृष्ण कहो प्यारे बन्धु! कृष्ण कहो।

वासुदेव—(चुपचाप शान्त पड़ा रहता है)

कूर्म विप्र—हाय हाय! विचारे को मूर्च्छा आय गई है। यह तनसों रोगी अवश्य है परन्तु मन सों नीरोगी है। प्रभु के दर्शन नहीं भयो तो विरह में मूर्च्छित है गयो। और मैंने दर्शन पायो, आशीर्वाद पायो और तौहू वैसो को वैसोई हूँ। ओह प्रभो! तुम्हारी कौन-पै कितनी कृपा है यह तुम ही जानो। कृष्ण कहो कृष्ण कहो (पंखा करता, आँखों पर पानी लगाता, नाम सुनाता है) कृष्ण कहो भैया! उठो! अब दुःख करवे सों कहा लाभ?

वासुदेव—(धीरे-धीरे उठ बैठता है) कृष्ण कृष्ण! हा मेरे नाथ मोकूँ महापातकी अधम समझकै दर्शन नहीं दियो वंचित कर गये! अरे मैं कमबख्त! बैठ्यो ही रह्यौ। रात में ही क्यों नहीं चल पर्यौ। घिसटते-घिसटते सबेरे ते तो पहले ही आय जातो। अँधेरे में मर थोरेइ जातो। परन्तु अब तो मरनोइ परैगो। अब जीवे सों कहा लाभ (जमीन पर से कीड़ों को उठा-उठाकर अपने घावों में रखता है)

समाज (दोहा)—

लोटत भूमि जे परै, रोग कीट बहु ठौर।
बीन बीन लै लै धरत, अपने ही अंग बहोर।।

कूर्म विप्र—यह कहा कर रहे हो बन्धु! कीड़ान कूँ उठाय-उठाय कै अपने घावन में क्यूँ रख रहे हो?

वासुदेव—पंडितजी! ये जीव तो मेरे जीवन के संगी है—मेरे पाप की सन्तान हैं। मेरे शरीर में सों उत्पन्न भये हैं। मेरे बिना इनकूँ आश्रय दाता नहीं है। मोते अलग हैकै काहू के पामन के नीचे दबकै मर जायँगे। यासों उठाय-उठायकै धर रह्यौ हूँ।

कूर्म विप्र—भक्तराज जी! आपको नाम कहा है?

वासुदेव—नाम तो मेरो वासुदेव है परन्तु भक्तराज नहीं पापीराज कहो। ये पाप ही के तो चिन्ह हैं। अंग-अंग में। पाप बिना रोग कहाँ?

कूर्म विप्र—नहीं नहीं! आप जीवन्मुक्त परमहंस महाभागवत हैं। आप देहासक्ति सों बहुत ऊपर उठ चुके हैं। जैसो आपको नाम वासुदेव, वैसी ही आप की भावनाहू वासुदेवमय है। आप सों भगवान् वासुदेव कदापि पृथक् नहीं रह सकै हैं!

वासुदेव—(व्यथित होकर) हा हा देव! मरे कूँ मत मारो। एक तो मैं अपने पापन सों मर रह्यौ हूँ। दूसरो प्रभु को विरह मोकूँ मार रह्यौ है। हा करुणासिन्धो! आपने गाँव भरकूँ दर्शन दियो। एक मैं अभागो पापी ही रह गयो। घर आई निधि चली गई हाय! अब कैसे दर्शन पाऊँ। सामर्थ्य होती तो दौड़कै अवश्य ही पकर लैतो। परन्तु हाय अब कहा करूँ! अब तो मरूँगो मरूँगो! हा गोविन्द! (लुढ़क कर अचेत हो जाना। पटाक्षेप)

महाप्रभु—(कीर्तन करते हुये आकर चले जाते हैं)

समाज (दोहा)—

भक्त भयो अचेत इत, उत सचेत भगवान।

नेपथ्य में से (वासुदेव की पुकार—'हा गोविन्द')

समाज—

तुरत ही आर्त्त पुकार वह, 'गोविन्द' पहुँची कान।।

उलटि परे पवन गति धाये। सेवक दौरत लाज न पाये।।

महाप्रभु—(दौड़ते हुये आकर निकल जाते हैं)

(पर्दा खुलता है। वासुदेव पड़ा है। कूर्म बैठे हैं)

इक कोस इक साँस में आये। लाये झपट भक्त उर लाये।।

कूर्म विप्र—(खड़ा हो—हाथ उठा) हरिबोल!

समाज—

निज कर कमल पीयूष फिराये।

रोग शोक भय भव जु नसाये।।

सुन्दर देह भई सुखदाई। जय जयकार धुनि चहँहुँ छाई।।

कूर्म विप्र—बोलो वासुदेवामृतप्रद की जय।

भक्त दु:खहारी भगवान् की जय।

वासुदेव—(दण्डवत प्रणाम कर हाथ जोड़)

क्वाहं दरिद्रः पापीयान्, क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं, बाहुभ्यां परिरम्भितः।।

(भागवत)

हे नाथ! विप्र सुदामा कूँ जब आपने हृदय सों लगायो हो तो वह बोल्यो हो कि—

मैं दुखिया दीन दरिद्र कहाँ तुम तो श्रीसम्पद निधान हरे।
मैं पापी पर्यौ भव कूप महा तुम विहरौ बैकुंठ धाम हरे।
तुम बन्धु कहि उर लाय लियो इक ब्राह्मण कुल के नाम हरे।
जगवारे तो मेल की प्रीति करैं बिन मेल की प्रीति श्याम हरे।

परन्तु सुदामा तो आपको सहपाठी सखा हो। वाकूँ आप भूल ही कैसे सकते परन्तु मैं तो—

मूरति पाप ही पाप की छाप ए नख सों शिख अंग अंग भरे।
तन माँस गरे, बहु पीव झरे, दुर्गन्ध भरे, सब दूर करे।
तुम दूर सों नियरे आय हरे, लगाय हिये दुख रोग हरे।
यह प्रेम दया नहीं जग के जीव में, एक बिना भगवान हरे।।

हे करुणासिन्धो! पतितबन्धो! आपने तो अपने सहज स्वभावानुसार ही कार्य कियो परन्तु मैं तो भारी संकट में परि गयो। मैं जो संसार सों बहुत दूर हो अब संसार में आय गयो।

गजल—

यह दुख मेरा क्यों हर लिया, मैंने कहा था कब हरे।
करके दया तुमने यह क्या किया, मैं तो भला था तब हरे।।
सुन्दर किया तन लिया जो रोग, माँगेगा तन अब विषय भोग।
कृष्ण-सुख छीन विषय क्यूँ दिया, मैंने कहा था कब हरे।।
कोढ़ी था धूल में पड़ा हुआ, ले ले के नाम तेरा रोता रहा।
यह रोना मेरा क्यूँ छीन लिया, मैंने कहा था कब हरे।।
लेता खबर न था कोई मेरी, पड़ा मैं था एक या था तूही।
अब डंका तूने क्यूँ पीट दिया, मैंने कहा था कब हरे।।
यह मौज तेरी रोग मेरा हरा, अब होगा अभिमान देहका बड़ा
प्याले में 'प्रेम' के क्यूँ विष दिया, मैंने कहा था कब हरे।।

हे पतित पावन प्रभो! मैं कोढ़ी हो, पतित हो, घृणित, समाज द्वारा लांछित हो, परित्यक्त हो। यासों दीन छीन अहंकार हीन हो। परन्तु अब मेरो मान होयगो तो मन में अभिमान आयगो और मैं आपसों दूर बिछुड़ जाऊँगो।

महाप्रभु—नहीं वासुदेव नहीं! तुमकूँ अभिमान कबहू होयगो ही नहीं।

कभु तोमार ना होइवे अभिमान।
निरन्तर कहो तुमि कृष्ण कृष्ण नाम।।

तुम उठते-बैठते, चलते-फिरते, सब कर्म करते भये निरन्तर कृष्ण कहो कृष्ण कहनो। तथा—

कृष्ण उपदेश करो जीवेर निस्तार।
अचिरात् कृष्ण तोमा करिवेन अंगीकार।।
अन्य जीवन कूँ हू कृष्ण-भजन को उपदेश करनो।

वासुदेव—(साश्चर्य) मैं उपदेश करूँगो? मैं कल को कोढ़ी, पातकी, घृणा को पात्र, मैं उपदेश करूँगो, गुरु बनूँगो?

महाप्रभु—हाँ वासुदेव हाँ! तुम गुरु बनोगे, उपदेश करोगे और लाखन जीवन को उद्धार करोगे। श्रीकृष्ण कृपा सों गूँगो हू गावै है और पंगु हू पर्वत लाँघ जाय है। श्रीकृष्ण तुमसों सब कछु करवाय लेंगे तुम तो केवल कृष्ण कहनो और कृष्ण कृष्ण कहवावनो। श्रीकृष्ण तुमकूँ शीघ्र ही अंगीकार करेंगे।

(तेजी से निर्गमन)

वासुदेव—हैं! प्रभु कहाँ चले गये?

कूर्म विप्र—अन्तर्द्धान है गये। जैसे सहसा प्रगट भये हे, वैसे ही सहसा चले हू गये!

समाज (सोरठा)—

अस कहि अन्तर्द्धान, भये आये जैसे गये।
विप्र दोऊ महान, दुखी होय मिलि विलपहिं।।

वासुदेव-कूर्म (गाना-भाँड)—

हम दीनन तजि हरि कित धाये।
वदन दिखाय कृपा दरसाय, मरे जिवाय मारि पुनि धाये।।
वह मुखचन्द्र कृपा भरि चितवन, वह बोलन नेह अमृत बरसन
वह गति मनहर नर्तन कीर्तन, भुजा उठाय कृष्ण हरि गाये।।
नाम तिहारो दियो न भूलें, नाम दियो जिन तुमकूँ न भूलें।
मगन कृपा तिहारी में डोलें, चरन कमल नित शीश झुकाये।।
चाँदहो तुम निकसो छिप जाओ, छिन शीतल छिन आग जराओ
तुम तो पतंग उड़ो जहाँ भाओ, रहिहौ नित 'प्रेम' डोर बँधाये।।

तुम आओगे प्रभो बिन ही बुलाये।
हम लायगे जैसे खींच के लाये।।

(पटाक्षेप)

इति कूर्म विप्र-वासुदेव-उद्धार।

संन्यास लहरी **नवम कणामृत**

राय रामानन्द-मिलन

समाज—

तत्रोषित्वा कतिपय दिवा दाक्षिणत्यं जगाम
कूर्मक्षेत्रे गदविरहितं वासुदेवं चकार।
रामानन्दे विजयनगरे प्रेमसिन्धुं ददौ य-
स्तं गौराङ्ग जनसुखकरं तीर्थमूर्तिं स्मरामि।।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्त वृन्द।।

विप्र कूर्म वासुदेव, करि दोउन पै सुकृपा।
श्रीकृष्णचैतन्यदेव, चले आगे दक्षिण दिशि।।

(प्रवेश कीर्तन करते हुए महाप्रभु एवं कृष्णदास)

महाप्रभु—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।

(कीर्तन करते-करते प्रस्थान)

ग्वाल वृन्द—(प्रवेश ग्वाल-बालक तीन चार। अर्द्धनग्न, शीश पर वस्त्र लपेटे, दुलँघी धोती घुटनों तक, हाथों में लाठी, गायों को हाँकते हुये। गायें इधर-उधर भागती—बालक रोकते हैं)

बालक १—एकड़ी पोतुडेरा। एकड़ी। एकड़ी। कहाँ भगी जाय है राँड! ठहर ठहर!

बालक २—आउल गाय, आउल आउल! अरी आय जा गैया आय जा! कहाँ भगी जाय है!

बालक ३—पटको पटको रे मुन्डा कोड़का! अरे छोराओ! रोकौ रे रोकौ। ये भगी जाय रही है।

बालक ४—निलवलेदु निलवलेदु। नहीं रुकीं, नहीं रुकीं! ये ये तो चली ही गईं! ये दक्षिण की ओर काहे कूँ भगी जाय रही हैं।

बालक १—काहू की गन्ध इनकी नाकन में आयी है। याहि सों ये खिंची जाय रही हैं।

बालक २—भैया! मेरी नाक में गन्ध-फन्द कछु नहीं आय रही है।

बालक ३—सारे! भूत की गन्ध होयगी, भूत-फूत की!

बालक १—भूत की नहीं सारे! कोई देवता की सुगन्ध! भूत की गन्ध सों जीव-जन्तु खिंचैं नहीं हैं, बिदककै भाग जायँ हैं। दादी माँ कहै है कि जब कृष्ण ठाकुर वृन्दावन में गैया चरायो करते.....

बालक ३—हमारी-तुम्हारी तरह चरायौ करते कहा?

बालक १—और कहा! तो ठाकुर के अङ्ग की सुगन्धि जित माहुँ ते आमती गैया सब उतमाहुँ भाग्यौ करतीं।

बालक २—हाँ यह बात तो मैंनेहू सुनी है। परन्तु यह तो वृन्दावन की कथा है। यहाँ वृन्दावन कहाँ? कृष्ण ठाकुर कहाँ?

बालक ४—अरे रे! देखो देखौ। यह आय रहे कृष्ण ठाकुर और हमारी गाय पीछे-पीछे!

(सम्मुख से प्रवेश महाप्रभु-कृष्णदास। गायें पीछे-पीछे घेरे हुये। सूँघती-चाटती हुईं)

बालक १—अरे! ये गाय तो इनके पाँवन कूँ चाट रही हैं। सूँघ रही हैं! कितनी प्रसन्न है रही हैं। प्रेम दिखाय रही हैं।

बालक २—भैयाओ! हमकूँ तो सींग मार देय, लात मार देय हैं। चाटैं तो एकहू दिना नहीं। और या संन्यासी स्वामी पै कितनो स्नेह जताय रही हैं।

महाप्रभु—हरिबोल! हरिबोल!

बालक सब—(हाथ उठा) हरिबोल! हरिबोल!

महाप्रभु (धुन)—

बोल हरि बोल हरि हरि हरि बोल।
केशव माधव गोविन्द बोल।।
(कीर्तन करते-करते प्रस्थान। ग्वाल-गौ पीछे-पीछे)

समाज (चौपाई) —

हरि के कौतुक हरि ही जानैं। कब कासों कैसो रंग ठानैं।
ज्ञानी मानी तिनसों न बोलैं। ग्वाल बाल संग हँसैं ओ डोलैं।।
बाल सुभाव सदा हरि भाये। फूल फूल हरि शीश चढ़ाये।
इहि विधि बहु कौतुक प्रगटावैं। सोते जगावैं बाट लगावैं।।
उदित दिवाकर जिमि प्रकाशा। कृष्णचैतन्य संग कृष्णप्रकाशा।
जीव चेतावैं कृष्ण गवावैं। मत्त मगन मारग चलि जावैं।।
जियड़ नरसिंह दरस करि, पहुँचे गोदावरी तीर।
वन सघन तट हरित लखि, उमग्यौ भाव गंभीर।।
गोदावरी देखि होइला यमुना स्मरण।
तीर देखि होइला वृन्दावन स्मरण।।

महाप्रभु—(प्रवेश गाते हुये। कृष्णदास पीछे-पीछे)

गीत-पद—

वन में डोलैं हरि हरि, मन में डोलैं हरि हरि।
वन में हरि मन में, नैनन में डोलै हरि हरि।।
डाल डाल सब हरि हरि, ये पात पात सब हरि हरि।
ये कदम्ब निम्ब हरि हरि, ये साल तमाल हरि हरि।।
कानन में, गानन में, प्रानन में डोलै हरि हरि।।
झर झर झरना हरि हरि, कल कल यमुना हरि हरि।
कन कन पुलिना हरि हरि, वृन्दा-व्रजविपिना हरि हरि
हरि जल में, हरि थल में, नभ पवनन डोलै हरि०।।

(गाते-गाते प्रस्थान)

भक्तभाव प्रिया भाव कबहू, करत विविध प्रकाश।
आप डूबि डुबावै जग, कृष्ण-प्रेम-विलास।।
वन वृन्दावन जान, गोदावरी कालिन्दी सम।
किये गुन बहु गान, पुनि गोदावरी पार गये।।
तहाँ न्हान गोदावरी कीन्हे। घाट दूर तजि आसन दीन्हे।।
जल समीप वट वृक्ष इकराजे। न्यासीराज तरु मूल विराजे।।

(दृश्य—गोदावरी तट। वट-वृक्ष तले महाप्रभु भाव विभोर बैठे 'कृष्ण कृष्ण' रट रहे हैं। कृष्णदास समीप)

महाप्रभु (गजल-दादरा)—

आँखों में समाये हो, घनश्याम तुम्हें देखूँ।
बाहर ही छा गये हो, घनश्याम तुम्हें देखूँ।।१
खोलूँ तो बाहर देखूँ, मूँदूँ तो भीतर देखूँ।
सब ठौर समाये हो, घनश्याम तुम्हें देखूँ।।२
तुमको ही क्यूँ मैं देखूँ, औरों को क्यूँ न देखूँ।
क्या सब में समाये हो, घनश्याम तुम्हें देखूँ।।३
कब तक यह खेल देखूँ, कब 'प्रेम' मेल देखूँ।
मुझमें समा गये हो, प्राणों में छा गये हो
घनश्याम तुम्हें देखूँ।।४

हा कृष्ण! प्राणकृष्ण। हृदय-धन! कृष्ण-कृष्ण।

समाज (चौपाई)—

बैठे प्रभु इत भाव मगन मन। कृष्ण कृष्ण मधुर सुर गुंजन।।
घाट बाट उत अति कोलाहल। आवत न्हानजु राज प्रमुख दल

(प्रवेश दो छड़ीदार सिपाही)

सिपाही—हटो हटो! एक किनारे हो जाओ। राज सवारी पधार रही है। घाट पर से दूर रहो। महाराजा साहब स्नान-ध्यान करेंगे। (प्रवेश वाद्य-वादक-दल)

समाज (चौपाई)—

वादक विविध वाद्य बजावैं। ध्वजा निसान विविध फहरावैं।।

(मन्त्र पाठ करते हुये विप्रदल)

विप्र शताधिक वेद उच्चरहिं।
पाँति पाँति गजवाजी हू चलहिं।।

(प्रवेश रायरामानन्द पालकी पर)

चढ़ि डोला आये अधिकारी। राय रामानन्द भक्त महारी।।
उत्कल राज-अधिराज जे, प्रतापरुद्र महाराज।
तिनके राज्यपाल ये, दक्षिण-देश महँ राज।।
उतरि डोला वसन तजि, गोदावरी प्रनाम।
लै अँचमन जल शीश धरि, पुनि धँसि करैं स्नान।।

लखि रामानन्द तन, मन महँ करत विचार प्रभु।
ये वेई महाजन, मिलन कह्यौ सार्वभौम जे।।

महाप्रभु—(रामानन्द की ओर देखते हुये स्वगत) कहा वे ये ही रायरामानन्द हैं जिनसों मिलवे के लिये सार्वभौमजी ने विशेष आग्रह कियौ है? हाँ! ये अवश्य वे ही हैं। इनसों मिलवे के लिये मेरो मनहू बड़ो उत्कंठित है रह्यौ है। सो चलूँ, इनसों मिलूँ (उठना चाहते पर बैठ जाते) नहीं नहीं। इनकूँ ही यहीं लै आऊँ। यही ठीक है।

समाज (दोहा) —

करि स्नान तर्पण विधि, ठाड़े कटि जल मांहि।
रामानन्द जु करत जप, ध्यान कृष्ण धराँहि।।
नीलेन्दीवर श्याम, हिय सों अन्तर्हित भये।
गौर कनकवरधाम, हृदयकमल विराजहीं।।

रामानन्द—(निमीलित नयन) हैं। यह गौर स्वरूप कौन मेरे ध्यान में आय गयो? मेरे प्राणाराध्य नीलेन्दीश्वर श्यामसुन्दर के स्थान पै यह गौरवर्ण संन्यासी कैसे उदय है आयो? अच्छो पुनः ध्यान धरूँ—

फुल्लेन्दीवर कान्तिमिन्दुवदनं........इत्यादि।।
कस्तूरी तिलकं ललाट पटले.......इत्यादि।।

ओह! पुनः वही संन्यासी रूप! उज्ज्वल सुवर्ण वर्ण अरुण वसन! कमलनयन! कमनीय वदन! परम मनोहर! परन्तु यह रूप आय कैसे गयो? श्रीकृष्ण के ध्यान मध्य सों यह गौर संन्यासी कौन प्रगट है गयो? आज पर्यन्त तो कभु ऐसो नहीं भयो! आज ही यह व्यतिक्रम क्यों? अरे! अब तो यहहू नहीं है! हाय! श्रीकृष्ण गये! गौर हू गयो! ध्यान ही नष्ट है गयो हृदय शून्य है गयो! हाय कहा करूँ? (घबड़ा कर आँखें खोलना)

समाज (सोरठा) —

खोलि आँखि अकुलाय, लख्यौ तरु तर गौर प्रभु।
निधि पाय हरषाय, धाय जाय पर्यौ चरन तर।।

रामानन्द—हाँ हाँ! यही हैं मेरे ध्यान-चोर! मेरे हृदय सों भागकै वृक्ष तरे जाय बैठ्यो है। (निकल दौड़ते हुये) प्रभो! प्रभो! शरण! शरण! (समीप पहुँच साष्टांग प्रणति)

समाज—(बंगला पयारों का अनुवाद)

सूर्य शत सम कान्ति अरुण वसन।
सुवलित प्रकाण्ड देह कमल लोचन।।

महाप्रभु लखि मन भयो चमत्कार।
धाय जाय कीन्ही दण्डवत नमस्कार।।

महाप्रभु—(बैठे-बैठे) उठौ! कृष्ण कृष्ण कहौ।

रामानन्द—(उठते हुये हाथ जोड़) कृष्ण कृष्ण!

महाप्रभु—कहा आपही राय रामानन्दजी हो?

रामानन्द—हाँ भगवन्! मैं ही वह अधम शूद्र हूँ।

महाप्रभु—(उठकर दौड़ते, लिपट जाते हैं) कृष्ण......कृ.....ष्ण

समाज—

सुनत ही उठि धाय लिपटाये। बिछुड़े मीत भाग्य जनु पाये।।
तजत कोउ न कोउ की बाँहिं। प्रेम-डोर में बँधे दोउ आहिं।।
(जो महाप्रभु) विषयी जन लखि दूर जो भागहिं।
(वे ही आज) भोगीराज कूँ हृदय लगावहिं।।
(तब तो) हरड़-संचयी गोविन्द त्यागे।
(और अब) राज स्वामि पै अति अनुरागे।।

उदय दोउ तन प्रेम-विकारा। पुलक कम्प अश्रु जलधारा।।
कृष्ण कृष्ण आधोइ उचारैं। गद्गद् कंठ न पूरौ पारैं।।
विप्र ठाड़े अचरज मन भारी। कहत परस्पर बात कहारी?

विप्र आयंगर—रंगाचारी स्वामी। देख रहे हो न यह कहा नवीन अचरज काण्ड है।

विप्र रंगाचारी—हाँ आयंगर स्वामि बड़ी ही अनहोनी बात। एक तो रमता योगी और दूसरो भ्रमता भोगी! यह प्रणयालिंगन! यह प्रगाढ़ सौहार्द्र! अपूर्व।

विश्वनाथम्—यह संन्यासी नवयुवक है तो कोई ब्रह्म-वंशज ही। कैसो ब्रह्म-तेज मुख-मण्डल पै झलमलाय रह्यौ है।

आयंगर—तबही तो आश्चर्य की बात है कि एक ब्राह्मण हैकै एक शूद्र कूँ स्पर्श करै है। स्पर्श ही नहीं आलिंगन करै है। आश्चर्य!

विश्वनाथम्— ब्राह्मण ही नहीं संन्यासी। विरक्त निर्मोही। वामें इतनो मोह! इतनी आसक्ति। आश्चर्य ही नहीं महा आश्चर्य।

रंगाचारी—और एक राजा को एक पथिक भिक्षुक युवक सों इतनो स्नेह! इतनी चंचलता, विह्वलता! मान-मर्यादा, लोक-लज्जा सब बहाय दीनी! किमाश्चर्यमतः परम्।

आयंगर—स्वामि! या मिलन में अवश्य ही कोई निगूढ़ रहस्य है। यह कोई सामान्य मिलन नहीं है! देखो-देखो! अब ये बाहुपाश सों मुक्त भये, पृथक् भये।

समाज (सोरठा)—

समुझि विप्रन भाव, प्रभु सर्वज्ञ-शिरोमणि।
दुराय जु अन्तर भाव, बैठि सहज बोले जु हँसि।।

महाप्रभु—जब मैं नीलाचल धाम ते चल्यौ हो तो सार्वभौम भट्टाचार्यजी ने आपकौ परिचय दियो हौ और आपसों मिलवे के लिये विशेष आग्रह कियौ हो। सो आपके संग-लाभ की आशा-अभिलाषा सों ही मैं यहाँ आयौ हूँ। मोकूँ यही चिन्ता रही कि आप राजा हो, मैं भिक्षु हूँ। कैसे आपसों मिलन होयगो। परन्तु श्रीकृष्ण बड़े दयालु हैं। सो अनायास ही दर्शन प्राप्त है गयो!

रामानन्द—भगवन्! सार्वभौम जी मोकूँ अपनो सेवक जान करकै सदा मेरो हित-कार्य करैं हैं। उनकी कृपा सों ही आज मोकूँ श्रीचरणन के दर्शन घर बैठे ही प्राप्त है गये। तथा उनके ही प्रेम के आधीन हैकै आपने मो जैसे अस्पृश्य कूँ स्पर्श कियौ। कहाँ मैं एक अधम शूद्र, राजसेवी, विषयी जीव और कहाँ आप साक्षात् नारायण स्वरूप यतिराज! आपकूँ न तो मोकूँ हृदय लगायवे में घृणा भई, न वेद-धर्म को ही भय भयो और लोक लज्जा ही भई! आपको करुणा गुण एवं भक्त पक्षपात्-स्वभाव आपसों सब कछु कराय देय है—यह आज मोकूँ प्रत्यक्ष अनुभव भयो। भगवान् श्रीराम ने—

विश्वामित्र पक्ष धरि, ताड़का को घात कियौ
सूर्पणखा वध करि, सीता पक्षधर हैं।
सुग्रीव को पक्ष करि, बालि निर्दोष हन्यौ
बाँधे बलि, राज हर्यौ, इन्द्रपक्षधर हैं।
भीष्म जयद्रथ हने, हने द्रोण-कर्ण सब
सुभद्रा भगाय दीनी, अर्जुन पक्षधर हैं।
दूषन नहीं 'प्रेम' यह, भूषन है सर्वोपरि
डंका बजायवे कूँ सिर मोर पक्षधर हैं।

याहि प्रकार सों आपने हू लोक-वेद-धर्म की उपेक्षा करकै मो अधम शूद्र कूँ अपने पावन हृदय सों लगाय लियौ। मैं समझा गयौ कि मेरे उद्धार करवे निमित्त सों ही आप यहाँ पधारे हैं।

आमा निस्तारिते तोमार इहा आगमन।
परम दयालु तुमि, पतित पावन।।

(प्रवेश एक विप्र)

समाज (दोहा) —

भक्त विप्र वेदज्ञ इक, आय कियौ प्रनाम।
भिक्षा हित न्यौतो दियौ, लियौ महाप्रभु मान।।

विप्र—(प्रणाम कर हाथ जोड़) भगवन्! यह वैदिक विप्र आप को दास है। कहा आज दास के घर भिक्षा स्वीकार होवैगी?

महाप्रभु—अच्छी बात है विप्रदेव! रामानन्दजी! आपके मुख सों श्रीकृष्ण-कथा सुनवे की बड़ी लालसा है। आपकूँ जब समय मिलै तब पुनः दर्शन दैवे की कृपा करनी परैगी।

रामानन्द—(हाथ जोड़) हे मेरे नाथ! हे करुणासिन्धो! जब पतितपावनी गंगा स्वयं मेरे द्वार पै पधारी हैं, तो पाँच-सात दिवस यह पतिताधम उनके दरस-परस मज्जन-पान के सौभाग्य सों अपने अनादि पाप-तापन सों मुक्त है सकै—यही मेरी विनम्र प्रार्थना है। यह दास सन्ध्या-समय श्रीचरणन की सेवा में अवश्य ही उपस्थित होवैगो (दण्डवत् प्रणति)

महाप्रभु—हरिबोल, हरिबोल!

रामानन्द—हरिबोल! हरिबोल (प्रस्थान)

समाज (चौपाई) —

प्रभु चरनन दंडवत कीन्हो। राय रामानन्द विदाई लीन्ही।।
विप्र सहित महाप्रभु सिधाये। चढ़ि डोला रामानन्दहू धाये।।
प्रगट भक्त भगवान को, मधुर प्रेम-मिलाप।
गुप्त विशाखा अलि सों, राधाकृष्ण संलाप।।
श्रीराधा अति प्रिय सखी, विशाखा जिनको नाम।
तिनके ही अवतार यह राय रामानन्द नाम।
राधा-कृष्ण ही गौर हैं, विशाखा रामानन्द।
सुनहु तिन सम्वाद अब, पैहौं प्रेमानन्द।।

संचार्य रामाभिध भक्तमेधे
स्वभक्ति-सिद्धान्त-चयामृतानि।
गौराब्धेरेतै रमुना वितीर्णै-
स्तज्ज्ञत्व रत्नालयतां प्रयान्ति।।

(प्रवेश भक्ति-वैराग्य गाते हुये)

भक्ति-वैराग्य (पद-गौड़ मल्हार)—

उदार शिरोमणि प्रभु गौर।
उरप्रेरक प्रभु आप करावैं, नाम सुयश पावै कोई और।।१

भक्ति—वत्स वैराग्य! आज श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यदेव अपनी उदारता को एक और मधुर परिचय देंगे।

वैराग्य—वह कहा मातेश्वरी?

भक्ति—मैं जो उनकी चरणदासी भक्ति हूँ। सो वे मेरे सिद्धान्त कूँ राय रामानन्द के मुख सों प्रकाशित करेंगे।

वैराग्य—तो याके संग उदारता को कहा सम्बन्ध?

भक्ति—उदारता यही है कि—'उरप्रेरक प्रभु आप कहावैं, नाम सुयश पावै कोई और' अर्थात् अपने भक्ति-सिद्धान्त कूँ पहले तो राय रामानन्द के हृदय में संचारित कर देंगे और फिर उनके मुख सों आप श्रवण करैंगे। काम करैंगे आप, नाम होयगो भक्त को! यही उदारता है।

वैराग्य—नेक स्पष्ट करकै समझाय देओ माँ!

भक्ति—अच्छो! मेघ में जल कहाँ ते आवै है?

वैराग्य—सागर में ते। सागर में ते कछु जल भाप बनकर आकाश में उड़ जाय है। वही समय पायकै मेघ बन जाय है।

भक्ति—ठीक है।

पूर्वपद—

जैसे जलधि अपने जलहिं, करत जलद मध्य संचार।
पुनि सोइ जल बरसत धरतीतल, अन्त लेत अपने विचधार।।

सागर अपनो जल मेघ कूँ देय है और मेघ वाहि जल कूँ जगत के लिये बरसाय देय है। तब वह मेघ को जल—

पूर्वपद—

शंख सीप मधि परत सोइ जल, उपजत अद्‌भुत रतन अपार।
महिमा बाढ़त मेघ जलहू की, इत सागर हू रत्नागार।।

तब वह जल सागर में रहवे वारे शंख, सीप जैसे जीवन के मुख में हू परै है और वहाँ रतन उपजावै है, जासों सागर हू रत्नागार कहायवे लगै है। यह महिमा मूल में तो सागर ही की है परन्तु नाम मेघ को होय है कि मेघ ने जल बरसायो। सागर जल ही न दे तो मेघ ही नहीं बन पातो और संसार कूँ वर्षा कहाँ ते पाय जाती! ठीक याहि प्रकार सों—

पूर्वपद—

राय रामानन्द अन्तर मध्य, निज सिद्धान्त प्रभु संचार।
दास्य सख्य मधुर भाव रतनन, प्रगटे रामानन्द मुख द्वार।।

यही है उदारता। यासों चलौ! हमहू वहाँ चलैं तथा अलक्ष्य रह करकै उनकी भक्ति चर्चा को आस्वादन करैं 'उदार शिरोमणि महाप्रभु गौर' (गाते-गाते प्रस्थान)

(दृश्य—महाप्रभु अकेले विराजमान। पर्दे की ओट में भक्ति-वैराग्य)

समाज (सोरठा)—

स्नान आदि करि कृत्य, राजत विप्र भवनहिं प्रभु।
उत्कंठित अति चित्त, रामानन्द सों मिलन हित।।

महाप्रभु—दिन तो समस्त उत्कंठा ही में बीत्यौ। अब सन्ध्या हू बीती जाय है। मैं तो स्नानादि कृत्य करकै बैठ्यौ हूँ परन्तु वे क्यूँ नहीं आय रहे हैं। अब अधिक विलम्ब सह्यौ नहीं जाय है।

भक्ति—देख्यो वैराग्य! सुन्यौ तुमने? भक्त ही भगवान् के लिये व्याकुल नहीं होय है। भगवान् हू भक्त के लिये व्याकुल होयँ हैं।

वैराग्य—धन्य है या प्रेमोत्कण्ठा कूँ! यह भक्त-भगवान् सबन कूँ नचावै हैं।

(प्रवेश रामानन्द। सादा वेशभूषा। एक सेवक पीछे)

रामानन्द—(प्रणाम करने को झुकता है)

महाप्रभु—(दौड़कर लिपट जाते हैं)

समाज (दोहा)—

आवत लखि राम राय कूँ उठि धाये अकुलाय।
करन प्रनाम न पायौ सो, झपटि लिये हिय लाय।।

भक्ति—धन्य है प्रभु की या त्वरा कूँ! प्रणामहू न करन दिये!

रामानन्द—(सेवक प्रति) जाओ! बाहर अपेक्षा करौ।

महाप्रभु—रामानन्दजी! मैं बड़ी व्याकुलता सों आपकी बाट देख रह्यौ हौ। अब आप आये हौ तो मेरी जिज्ञासा पूर्ण करो।

रामानन्द— आज्ञा करौ भगवन् मुख मेरो, बात आपकी!

प्रश्नोत्तर-(गौड़-सारंग-केहरवा)—

महाप्रभु—विद्या मध्य कौन विद्या कहिये सार?

रामानन्द—कृष्णभक्ति विद्या कहिये साराति सार।।

महाप्रभु—कीरति में कीरति कहो कौन-सी बड़ी है?

रामानन्द—कृष्ण भक्त-प्रेमी नाम कीरति बड़ी है।।

महाप्रभु—सम्पदा में सम्पद् कहो कौन-सी बड़ी है?

रामानन्द—राधाकृष्ण-प्रेमसम्पद् सबसों बड़ी है।

महाप्रभु—दु:खन में दु:ख कहो कौन सो है भारी?

रामानन्द—कृष्णभक्त विरह जैसो दुक्ख नहीं भारी।

महाप्रभु—मुक्त मध्य कौन जीव मुक्त तुम मानौ?

रामानन्द—कृष्ण प्रेमधनी सोई मुक्त बड़ो मानौ?

महाप्रभु—गीत मध्य कौन गीत जीव को निज धर्म?

रामानन्द—राधाकृष्ण प्रेमकेलि जा गीत को मर्म।

महाप्रभु—श्रेय मध्य कौन श्रेय जीव को महान?

रामानन्द—कृष्णभक्त संग जैसो श्रेय नहीं आन।

महाप्रभु—सुमिरन में सुमिरन कहा करै छिन छिन?

रामानन्द—कृष्णनाम-लीला-गुन सुमिरन यह छिन छिन।

महाप्रभु—ध्यान मध्य कहो जीव कहा करै ध्यान?

रामानन्द—राधाकृष्ण पादपद्म ध्यान है प्रधान।

महाप्रभु—श्रवण में श्रेष्ठ कहो कहा है श्रवण?

रामानन्द—राधाकृष्ण प्रेमकेलि रसायन-श्रवण।

महाप्रभु—छोड़ि सब जग, जीव कहाँ करै वास?

रामानन्द—व्रजभूमि वृन्दावन, जहाँ लीला रास।

महाप्रभु—उपास्य-स्वरूप मध्य कौन-सो प्रधान?

रामानन्द—उपास्य हैं श्रेष्ठ जिनको राधाकृष्ण नाम।

महाप्रभु—साधु! साधु! अब मैं विस्तार पूर्वक साध्य-साधन को रहस्य जाननो चाहूँ हूँ। यासों प्रथम यह बताओ जीव के लिये साध्य अर्थात् पुरुषार्थ कहा है?

रामानन्द—स्वधर्माचरण द्वारा विष्णुभक्ति लाभ ही पुरुषार्थ है।

महाप्रभु—'एहो बाह्य, आगे कहो आर।' यह तो बाहर की बात है। याते आगे कहो।

वैराग्य—माँ! विष्णुभक्ति बाहर की बात कैसे है?

भक्ति—यह सकाम विष्णुभक्ति की बात है। याको फल स्वर्ग अथवा तो निर्वाण मुक्ति है। यासों याकूँ बाहर की बात बतायी।

रामानन्द—कृष्णे कर्मार्पण ही साध्य-सार है।

महाप्रभु—'एहो बाह्य आगे कहो आर'। यहहू बाहर की बात है आगे कहो।

वैराग्य—माँ! गीता में तो भगवान् श्रीकृष्ण कहैं हैं कि समस्त कर्म मोकूँ अर्पण करदे। फिर यह बाहर की बात कैसे?

भक्ति—यह कर्म करकै कर्म-फल को अर्पण है। यामें कर्म एवं कर्म-कर्ता 'अहम्' को अर्पण नहीं है। यासों यह विशुद्ध भक्ति नहीं है। अतएव बाह्य है।

रामानन्द—'सर्वधर्म त्याग एइ साध्यसार' अर्थात् सर्वधर्म-त्याग द्वारा जो फल प्राप्त होय है वही साध्यसार है। यही श्रीमद्भागवत एवं श्रीगीता में कह्यौ है।

महाप्रभु—एहो बाह्य आगे कहो आर। आगे कहो।

वैराग्य—माँ! सर्वधर्म त्याग द्वारा भगवान् को भजन करनौ तो भागवत-गीता को चरम व परम सिद्धान्त है—यह बाह्य कैसे है गयो?

भक्ति—कारण कि सर्वधर्म त्याग के मूल में अनुराग नहीं केवल विवेक है। यह अर्जुन को सर्वधर्म त्याग है, गोपिन को नहीं। यासों यहहू विशुद्ध भक्ति नहीं। अतएव बाह्य है।

रामानन्द—ज्ञानमिश्राभक्ति ही साध्यसार है अर्थात् ब्रह्म-साक्षात्कार के लिये भक्ति करनी-साध्यसार है।

महाप्रभु—एहो बाह्य आगे कहो आर।

भक्ति—ज्ञानभिश्राभक्ति में ज्ञान ही प्रधान, भक्ति तो गौण है। यासों यहहू विशुद्धभक्ति नहीं—अतएव बाह्य है।

रामानन्द—तो प्रभो! ज्ञानशून्याभक्ति ही साध्यसार है।

महाप्रभु—प्रमाण कहा?

रामानन्द—श्रीमद्भागवत में ब्रह्माजी को वाक्य—'ज्ञाने प्रयास मुदपास्य नमन्त एव०' प्रमाण है। ब्रह्माजी कहैं हैं कि हे भगवन्! जो जन आपके स्वरूप, महिमा, ऐश्वर्य आदि काहू प्रकार के ज्ञान के लिये परिश्रम न करकै आपके साधु भक्तजनन के स्थान पै बैठकै उनके मुख सों निकसे भये आपके गुण-लीला चरित्र को केवल मात्र श्रवण ही करैं हैं वे त्रिलोकी में अजित आपकूँ हू जीत करकै अपने वश में कर लेय हैं। या प्रमाण सों ज्ञानशून्याभक्ति ही साध्यसार है।

महाप्रभु—एहो होय! आगे कहो आर। हाँ! यहहू ठीक है परन्तु आगे कहो।

वैराग्य—माँ! अब तक तो प्रभु सर्वधर्म पालन, सर्वधर्म त्याग आदि सबन कूँ 'बाह्य' बाहरी बताय रहे हे परन्तु अब यहहू 'ठीक' है काहे कूँ कहैं हैं।

भक्ति—वत्स! यह विशुद्ध भक्ति है यासों 'ठीक' कही। विशुद्ध भक्ति कर्म-धर्म-ज्ञान आदि समस्त साधनन सों निरपेक्ष एवं स्वतन्त्र होय है। कारण कि वह भगवत् स्वरूपिणी है, सच्चिदानन्दमयी है। अतः बाह्य नहीं है, अन्तरंग स्वरूपा है। परन्तु यह विशुद्ध भक्तिहू अनेक प्रकार की होय है याहि सों प्रभु और आगे-आगे की भक्ति सुननो चाहैं हैं। सो अब आगे विशेष सावधान हैकै सुननो!

रामानन्द—दास्य प्रेम ही सर्वसाध्य सार है भगवान् सेव्य स्वामी हैं, मैं सेवक दास हूँ। यह दास्य भाव ही सर्वश्रेष्ठ साध्य है।

महाप्रभु—एहो होय, आगे कहो आर। (अर्थ पूर्ववत्)

रामानन्द—सख्यप्रेम ही साध्यसार है अर्थात् ब्रज के गोपाल सखा सुबल, श्रीदाम, मधुमंगल आदि जिनका भगवान् श्रीकृष्ण में सख्यभाव है, वही श्रेष्ठ साध्य है।

महाप्रभु—प्रमाण कहा ?

रामानन्द—श्रीमद्भागवत में श्रीशुकदेव मुनि को यह वचन प्रमाण है—'इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या, दास्यंगतानां परदैवतेन' इत्यादि। श्रीशुकमुनि कहैं हैं कि ब्रह्मज्ञानिन के लिये जो मूर्तिमान ब्रह्मसुख है, दास भक्तन के लिये जो परमाराध्य इष्टदेव है तथा मायामुग्ध मूढ़ जनन के लिये जो एक सामान्य नरबालक है, उन्हीं श्रीकृष्ण के संग ये गोप बालक क्रीड़ा कर रहे हैं। इनके अपूर्व पुण्य कूँ और अपूर्व सौभाग्य को कौन पार पाय सकै है कि जिनके मित्र स्वयं 'परमानन्दं पूर्ण ब्रह्म सनातनम्।' या प्रमाण सों इनको सख्यप्रेम ही श्रेष्ठ साध्य है।

महाप्रभु—एहोत्तम, आगे कहो आर। यह उत्तम है परन्तु याते हू उत्तम कछु होय तो कहो!

वैराग्य—माँ! सख्यप्रेम कूँ उत्तम क्यूँ कह्यौ ? दास्य प्रेम कूँ तो उत्तम नहीं कह्यौ।

भक्ति—इतनी सूधी-सी बात हू नहीं समझे। दास दास ही है, सखा सखा ही है। दास की समस्त सेवा सखा कर सकै है परातु सखा की समस्त सेवा दास नहीं कर सकै है। दास अपने स्वामी के संग न खाय सकै है न सोय सकै, न हँस सकैं न हँसाय सकै, न नाच-गाय-खेल सकै है। ये सेवा तो सखा ही कर सकैं हैं। याहि कारण सख्यप्रेम में मिठास अधिक है। अतएव प्रभु ने 'उत्तम' कह्यौ।

रामानन्द—वात्सल्य प्रेम ही सर्वसाध्यसार है अर्थात् श्रीनन्दयशोदा को श्रीकृष्ण के प्रति जो ममतापूर्ण लालन-पालन को भाव है वही श्रेष्ठ साध्य है।

महाप्रभु—एहोत्तम, आगे कहो आर। (अर्थ पूर्ववत्)

रामानन्द—कान्ताप्रेम ही सर्वसाध्यसार है अर्थात् व्रजगोपिन को श्रीकृष्ण के प्रति जो पतिभाव है वही श्रेष्ठसाध्य है।

महाप्रभु—प्रमाण कहा ?

रामानन्द—प्रमाण है श्रीमद्भागवत में श्रीउद्धव-वाक्य—'नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त रतेः प्रसादः, स्वार्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याम्' इत्यादि।

श्रीउद्धव जी व्रजगोपिन के अपूर्व सौभाग्य की प्रशंसा करते भये बोले कि रासोत्सव के समय श्रीकृष्ण की भुजा कूँ अपने कण्ठ में धारण करकै जो मधुर प्रेम को प्रसाद व्रजसुन्दरिन कूँ प्राप्त भयो, वह प्रसाद न तो वैकुण्ठ की ठकुरानी नित्यप्रिया लक्ष्मीदेवी कूँ प्राप्त भयो, न स्वर्ग की कमलगन्धा देवांगनान कूँ प्राप्त भयौ अन्यान्य प्राकृत नारिन की तो बात ही कहा। या प्रमाण सों कान्ता-प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ साध्य है।

महाप्रभु—यह कान्ता प्रेम शान्त दास्य, सख्य एवं वात्सल्य प्रेम ते श्रेष्ठ कैसे हैं?

रामानन्द—कारण कि यामें अन्य समस्त भावन के गुण विद्यमान हैं तथा एक अपनो गुण विशेष हू है जो अन्य काहू भाव में नहीं है।

महाप्रभु—नेक स्पष्ट वर्णन करकै समझाय देओ।

रामानन्द—जैसे पंचभूतन में पूर्व पूर्वभूत के गुण उत्तर उत्तर भूत में रहै हैं वैसे ही पाँच भावन में पूर्व पूर्वभाव के गुण उत्तर उत्तर भाव में रहै हैं। यथा—आकाश में केवल एक शब्द गुण है। वायु में द्वै गुण हैं—शब्द गुण आकाश को एवं स्पर्श गुण अपनो। तेज में तीन गुण हैं- शब्द गुण आकाश को स्पर्श गुण वायु को और रूप गुण अपनो। जल में चार गुण हैं—शब्द, स्पर्श रूप एवं चौथो गुण रस अपनो। तथा पृथ्वी में पाँच गुण हैं— शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पाँचवों गन्ध गुण अपनो।

ऐसे ही भक्ति के पाँच भावन में हू समझनो चाहिये। यथा—शान्त भाव में केवल एक गुण है कृष्ण-निष्ठा! दास्य में द्वै गुण—शान्त की कृष्णनिष्ठा एवं सेवा गुण अपनो। सख्य में तीन गुण—शान्तभाव की कृष्णनिष्ठा, दास्यभाव की सेवा एवं तीसरो गुण अपनो निःसंकोचता। वात्सल्य भाव में चार गुण—कृष्णनिष्ठा, सेवा, निःसंकोचता एवं चौथो गुण अपनो ममता पूर्ण लालन पालन। तथा कान्त भाव में पाँच गुण—कृष्ण-निष्ठा, सेवा, निःसंकोचता, ममता पूर्ण लालन पालन एवं पाँचवों गुण अपनो—सर्वांगसमर्पण। यह गुण अन्य चार भावन में असम्भव है। या प्रकार सों कान्ताभाव में ही श्रीकृष्ण की परिपूर्ण सेवा है। अतएव यही सर्वश्रेष्ठ साध्य है—

उपाय कृष्ण पायवे के, न्यारे न्यारे हैं अनेक
पाय जाय कृष्ण तौहु, पायवे में भेद है।
एक पावै ब्रह्म कृष्ण, दूजो स्वामी कृष्ण पावै
तीजो सखा कृष्ण चौथो, लै खिलावै गोद है।

निज निज भाव भीतर, सेवा करैं और सब
कान्ता करै सेवा सब, देत सुप्रमोद है।
भावपूर्ण सेवापूर्ण, कृष्णप्राप्ति पूर्ण 'प्रेम'
कृष्णधीनता हू पूर्ण, गोपी ढिंग होत है।

कान्ताभाव में परिपूर्ण सेवा के कारण ही सत्यव्रती सत्य प्रतिज्ञ श्रीकृष्ण हू अपनी 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते'। की प्रतिज्ञा कान्ता प्रेमवती व्रजबालान के समीप नहीं निभाय सकै तथा 'न पारयेऽहं निरवद्य संयुजा' कहकै उनके प्रेम के चिर-ऋणिया बन गये।

महाप्रभु—

.... एइ साध्यावधि निश्चय।
कृपा कोरि कहो यदि आगे किछु हय।। (चै०च०)

हाँ! यह कान्ताप्रेम निश्चय ही साध्य की सीमा है। तथापि यदि याके आगेहू कछु होय तो कृपा करिकै बताय दैओ।

रामानन्द—(साश्चर्य) यातेहू आगे की वस्तु की जिज्ञासा करवे वारोहू संसार में कोई है यह आज पर्यन्त मैं नहीं जानतो। तौ आप गोपिन के कान्तभाव ते हू आगे की बात जाननो चाहै हैं?

महाप्रभु—हाँ, अवश्य ही। कारण कि—

तुम्ह रे हृदयागार महँ, भरे हैं रत्न अपार।
गोपीप्रेम अमूल्यमणि, दई मोकूँ उपहार।।
हौं लोभी संतोष नहीं, हौं भिक्षुक नहिं लाज।
सर्वोपरि अमूल्यमणि, दिखरावहु महाराज।।

रामानन्द—अहो! ऐसे अपूर्व भिक्षुक कौ दर्शन आज ही मोकूँ प्राप्त भयो—

भिक्षुक माँगै महामणि, अचरज देख्यौ आज।
लेओ साध्य मुकुटमणि, राधा प्रेम सिरताज।।

श्रीराधा-प्रेम ही सर्वसाध्य शिरोमणि है।

महाप्रभु—प्रमाण कहा?

रामानन्द—प्रथम तो पद्मपुराण को यह वचन है—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याकुण्डं प्रियं तथा
सर्वगोपीषु सैवेका विष्णोरत्यन्तवल्लभा।।

अर्थात् जैसे श्रीकृष्ण कूँ राधा प्रिय हैं वैसे ही उनको कुंड हू प्रिय है। और राधा कितनी प्रिय हैं कि समस्त गोपिन में वे ही एक श्रीकृष्ण कूँ अत्यन्त प्रिय हैं। याहि कारण सों महारास में उनहीं कूँ लैकै अन्तर्द्धान है गये। गोपी सब उनकूँ ढूँढ़वे लगीं तो एक स्थान पै उनकूँ श्रीकृष्ण के चरण चिन्हन के दर्शन भये और उनसों सटे भये कोई एक सखी के हू चरणचिन्ह दिखायी दिये तो वे बोलीं–

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो या मनयद्रहः।।

या सखी ने निश्चय ही भगवान्, हरि ईश्वर की कछु ऐसी अपूर्व आराधना करी है कि जासों प्रसन्न हैकै गोविन्द हम सब गोपिन कूँ छोड़कै या सखी कूँ ही अपने संग एकान्त में लै गये हैं। या वचन सों श्रीकृष्ण कान्तागण में श्रीराधा ही शिरोमणि प्रमाणित होय हैं तथा श्रीराधा-प्रेम ही सर्वसाध्य शिरोमणि सिद्ध होय है।

महाप्रभु—(बंगला-अनुवाद)

आगे कहो आगे कहो सुनियाऊँ सुख।
अपूर्व अमृत धार बहे तुव मुख।।

परन्तु रामानन्दजी एक शंका होय है। यदि श्रीराधा प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ है तो श्रीकृष्ण को प्रेमहू श्रीराधा के प्रति निरपेक्ष होनो चाहिये कारण कि—

प्रेम जहाँ पूरो वहीं, प्राण रहैं पूरौ वहीं
सेवा होय पूरी, करै काहू को न डर है।
(तो फिर श्रीकृष्ण)
काहे कूँ चुराय चुप, चाप लैकै राधा भागै
काहे गोपिन सों डरि, बचाई नजर है।
(तुमने कही कि)
राधा बड़ी गोपिन में, प्रेम राधा ही को बड़ो
राधा संग श्याम कूँ, न काहू की खबर है।
(तो हम याकूँ)
मानैं जब गोपिन के, मुख आगे मोड़ि मुख
छोड़ि जायँ चलैं राधा, खोजन कुँवर है।

अन्य अपेक्षा के रहत, दुर्लभ जानौ प्रेम।
मिटै अन्य अपेक्षा जब, बलिया तबही प्रेम।।

अतएव गोपिन की आँखिन कूँ बचायकै नहीं, गोपिन की आँखिन के आगे ही श्रीराधा के वियोग में उन सबन कूँ छोड़ कै श्रीकृष्ण चले जायँ तबही राधा-कृष्ण को परस्पर प्रेम प्रगाढ़ एवं परिपूर्ण मान्यौ जाय सकै है, अन्यथा नहीं।

भक्ति—सुन रहे हो न वैराग! प्रभु कैसी चतुराई सों खोद-खोद करकै खान में सों उत्तम और उत्तम, उत्तम हू ते उत्तम, सर्वोत्तम रत्न निकास रहे हैं।

वैराग्य—हाँ माँ! बलिहारी प्रभु के वाक्-कौशल कूँ!

रामानन्द—भगवन्! शरद्-महारास को उद्देश्य ही व्रजगोपिन कूँ रस प्रदान करनौ हो। अतएव जो यदि सब गोपिन के सन्मुख ही श्रीराधाजी कूँ लैकै चले जाते तो उनके मान-अभिमान की शान्ति न हैकै उल्टो चौगुनो सौगुनो बढ़ जाते—दुर्जय बन जातो। और तब रास को उद्देश्य ही विफल है जातो, इतनो उद्यम व्यर्थ है जातो। अतएव गोपिन ते डर करकै नहीं, गोपिन के ऊपर पूर्ण कृपा करकै उनकूँ रास को अधिकारी बनायवे के लिये ही श्रीराधाजी कूँ संग लै श्रीकृष्ण गुप्त रूप सों अन्तर्हित भये हे। नहीं तो श्रीकृष्ण कूँ गोपिन के प्रेम की अपेक्षा तिल भरहू नहीं है। वे तो एकमात्र राधावल्लभ, राधारमण, राधा ही के कृष्ण हैं। यह निगूढ़ रहस्य बसन्त-रास सों स्पष्ट है।

महाप्रभु—वा बसन्त-रास को हू प्रसंग सुनाय देओ।

रामानन्द (बंगला-अनुवाद)—

सुनो प्रभु कछु राधा प्रेम की महिमा।
त्रिभुवने नहीं राधाप्रेम की उपमा।।

व्रजमण्डल में गिरि गोवर्धन के समीप ही एक पारसौली गाम है
जहाँ चन्द्र सरोवर है। वहीं वासन्ती रास भयौ हो—

वसन्त मास रच्यौ पारसौली गाम रास
शतकोटि गोपिन संग सुखद विलास है।
मंडल-मध्यहिं आप, रहैं श्याम राधा संग
गोपिन संग मूरति, कोटिक प्रकास है।
(वा समय जब रासेश्वरी राधाजु ने यह देख्यौ कि)
औरन के संग जैसे, तैसे ही आपन संग
लाल-रस-चाल में न, अन्तर कोई खास है।

(यह देख राधाजी की)

तन गईं भौंह भईं, मानवती वाम प्रिया
छाँड़ि रास राधा गईं, छाई तम रासि है।

जब श्रीराधाजी मान करकै रासमंडल कूँ त्यागिकै चली गयीं तो श्रीकृष्ण के लिये—

अँधेरी भई चाँदनी कोटि चन्द्रमुखिन की
भानुकी नन्दिनी बिना, करै को प्रकाश है।
हरि के संसार को तो, सार ही निस्सार भयो
शतकोटि कामिनी हू, भईं तृन घास है।

(तब श्रीराधा बिना श्रीकृष्ण के लिये)

जग भयो सूनो, उर रस भयो ऊनो तब
ताप बढ्यौ दूनो नहीं, सागर तो पास है।
निकसिगो तार 'प्रेम', मनियाँ बिखर गईं
रासेश्वरी राधा बिना, रास भयो नास है।।

जदपि निकट कोटि कामिनी, कुल मन नहिं धीरज आने।
जै श्रीहितहरिवंश रसिक सोई, लालहिं छाँड़ि मेड़ पहिचाने।।

महाप्रभु—याको प्रमाण कहा है?

रामानन्द—प्रमाण है रसिक कविकुल कोकिल श्रीजयदेव जी के श्रीगीत गोविन्द को यह पद—

कंसारिरापि संसार-वासना-बद्ध-शृंखलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रज सुन्दरीः।।

श्रीजयदेव जी कहै हैं कि श्रीकृष्ण की जो संसार-वासना है वाकी शृंखला हैं श्रीराधा। शृंखला जब न रहीं तो रासविलास बिखर गयो तथा श्रीकृष्ण श्रीराधा को ध्यान करते भये शतकोटि गोपिन कूँ त्याग करकै उनकूँ खोजवे कूँ निकस गये।

महाप्रभु—श्रीकृष्ण की संसार-वासना सों कहा तात्पर्य है?

रामानन्द—संसार को अर्थ है सम्+सार अर्थात् सम्यक् सार अर्थात् समस्त सारन को सार अर्थात् रासविहार। रास ही श्रीकृष्ण को संसार है। तथा रास की वासना ही श्रीकृष्ण की संसार-वासना है। और या संसार-वासना की शृंखला हैं श्रीराधा अर्थात् श्रीकृष्ण के रास-विहार कूँ एक रस बाँधकै चलायवे वारी एवं उनकी रास-वासना कूँ पूर्ण करनेवारी एक श्रीराधा ही हैं। याहि सों वे रासेश्वरी कहावैं हैं।

जैसे सुवर्ण के तार में पिरोये भये मणिन के दाने शोभा और सुख देयँ हैं वैसे ही श्रीराधा के आश्रय ही सों रास-विहार की स्थिति है, प्रवृत्ति है, गति है, शोभा है, सुखरूपता है। तथा जैसे तार के बिना माला के दाने सब छिन्न-भिन्न हैकै भूमि पै बिखर जायँ हैं, हृदय को हार-सिंगार नहीं बन सकै हैं। ऐसे ही श्रीराधाजी के बिना रसिकशेखर रसराज को संसार निस्सार है जाय। तब तो शतकोटि भामिनी कामिनी हू श्रीकृष्ण के संसार कूँ नहीं बसाय सकैं हैं। उनकी संसार-वासना कूँ तृप्त नहीं कर सकै हैं।

बंगला (चै०च०)

शत कोटि गोपी ते नहे काम-निर्वापण।
इहातेइ अनुमानि श्रीराधार गुण।।

डार पात हरे भरे, फूलैं फूल फलैं बहु
तौलौं जौलौं जड़मूल, रहै जीवनमूर है।
मूल बिन ठूठ सूखे, कागहू न बैठे जहाँ
शोभारस महिमाहू सबै धूर धूर है।
श्याम तन हरे हरे, हरी हरी गोपीमन
करैं फूल फूल रास, भूलि जायँ मूल है।
मूल तो श्रीराधा, कुल-गोपी गोपवल्लभ की
पोषै तोषै 'प्रेम' जब, होय अनुकूल है।

याहि कारण सों श्रीराधा रासेश्वरी हैं, कृष्णकान्त शिरोमणि हैं, सर्वेश्वरी हैं अतएव श्रीराधा प्रेम ही सर्वसाध्य शिरोमणि है।

महाप्रभु—अहा हा! स्वादु स्वादु पदे पदे। तृप्ति नहीं, तृषा बढ़ै है। ऐसी जो रासेश्वरी श्रीराधा एवं ऐसे जो राधैक प्रिय श्रीकृष्ण हैं, उनको स्वरूप कहा है एवं उनको विलास कहा होय है—ये सब मधुर कथा सुननो चाहूँ हूँ। आप के बिना और कोई याको आस्वादन नहीं कराय सकै है। परन्तु (रुककर) लगै है कि रात्रि प्रायः समाप्त हैवे वारी है। ब्रह्ममुहूर्त है आयौ है। अतएव आप पधारौ। कल सन्ध्या समय पुनः दर्शन दैवे की कृपा करनौ। अहा रामरायजी! आज जो आपने अपनी सहज कृपा सों मोकूँ—

भक्तिप्रेमरस-रत्न के, पहनाये जो हार।
हौं भिक्षुक देऊँ कहा, लेओ क्षुद्र उपहार।।

(आलिंगन-प्रदान)

समाज (दोहा)—

प्रेमालिंगन प्रभु दियौ, कियौ स्वरूप प्रकास।
प्रश्नोत्तर दरसायो तन, राधाकृष्ण विलास।।
प्रभु कृपा पाय पुलकायौ। सादर चरनन शीश नवायौ।।
निज ऐश्वर्य प्रभु प्रगटाये। रामराय चित अति भरमाये।।

(महाप्रभु के आगे (१) श्रीकृष्ण रूप, पुनः श्रीकृष्ण के आगे (२) श्रीराधा रूप)

पुनि पुनि चकित प्रभु तन हेरत। हेरत तऊ सो रूप न हेरत।।

रामानन्द—(सचकित महाप्रभु प्रति पुनः पुनः देखता है)

हारि कछु निरधार न पायौ। संशय उर को प्रगट सुनायौ।।

रामानन्द—भगवन्! एक बड़े भारी संशय ने मोकूँ दबाय लियौ?

महाप्रभु—यह कैसो संशय आय गयो हठात्?

रामानन्द—यह आपको दर्शन ही मोकूँ संशय में डार रह्यौ हैं जब सों आप मिले हौ तबसों आज अबही तक तो मैं आपके या संन्यासी रूप को ही दर्शन पाय रह्यौ हौ परन्तु अब न जाने (पुनः आभास (१) प्रथम कृष्ण (२) पुनः उनके आगे राधा) मोकूँ संन्यासी रूप के स्थानपै एक अपूर्व अनिर्वचनीय श्रीराधाकृष्ण युगल के दर्शन है रहे हैं। (आभास अन्तर्द्धान)

पद—

गौर संन्यासी रूप न देखौं, श्याम रूप अब देखौं।
(श्रीकृष्ण के दर्शन)
श्यामहू अब श्याम नहीं हैं, श्याम में गौरहू देखौं।।
(श्रीकृष्ण के आगे श्रीराधा-दर्शन)
श्याम आगे एक कंचन मूरति, अचरज बनिता देखौं।
अंग अंग बिजुरी-सी दमकै, झलमलात तन देखौं।।
छटा घटा गोरी सों ढाँप्यौ, अंग अंग श्याम घन देखौं।
ता मधि चंचल कमलनैन हरि, वंशीवदन हू देखौं।।
सुन्यौ न देख्यौ ऐसो रूप यह, चमत्कार कहा देखौं।
(अन्तर्द्धान)
साँची बताय हरौ संशय यह, 'प्रेम', प्रभु कहा देखौं।।

महाप्रभु—यह तो आपके प्रबल प्रेम को प्रताप है—कारण कि

पद—

कृष्ण अनुरागी तुम बड़भागी, प्रेम-स्वभाव यह जानौ।
प्रेम की अँखियाँ लखैं न दुनियाँ, श्याम ही श्याम लखानौ।।
युगल उपासी मति रति वासी, उन बिन और न जानौ।
जो उर अन्तर बसै निरन्तर, बाहर सोई दरसानौ।।
मोकूँ देखौ तऊ नहिं देखौ, अचरज कछु मति मानौ।
सब में हरि हरि में सब देखै, वह उत्तम भागवत जानौ।।

रामानन्द—

वचन-रचन चतुराई छोड़ो, छोड़ो कपट बिहारी।
चोरी तिहारी अब न छिपै है, रूप चोर बलिहारी।।
राधाभाव-अंग-कान्ति चोर, तुम हो वंशीधारी।
आये करन उद्धार दास को, करुणामय बलिहारी।।

समाज (बंगला चै०च०)—

तबै हाँसि प्रभु देखाइला स्वरूप।
रसराज महाभाव दोइ एक रूप।।
(पीछे महाप्रभु ऊर्ध्वबाहु। आगे राधाकृष्ण मिलित रूप।)

पद—

छांड़ि दुराव प्रभु हँसि दरसायौ, अपनो साँचो स्वरूप।
महाभाव-रसराज-मिलित तनु, एक में एक अनूप।।
नहिं राधा नहिं कृष्ण हैं, पृथक् पृथक् द्वै रूप।
गौर श्याम दोइ ज्योति मिलि, एक में युगल स्वरूप।।
बिजुरी अन्तर बादर दीसै, बादर अन्तर बिजुरी।
ज्योति द्वै तउ एक ही दीसै, भेद अभेद दोऊरी।।
ऐसो अद्भुत रूप 'प्रेम' लखि, उमग्यौ आनन्द पूर।
रोम रोम लहर परसायौ, पर्यौ धरन भयौ चूर।।
(रामराय धीरे-धीरे बैठते हुये लुढ़क जाते हैं)

समाज—(जो राय रामानन्द महाप्रभु को)

पद—

रूप संन्यासी लखि नहिं मोह्यो, रूप श्याम नहिं मोह्यौ।
गोरी कंचन रूप न मोह्यौ, युगल एक लखि मोह्यौ।।

राधाकृष्ण विलास प्रेम को, यही रूप है अन्त।
पर ते सुपरात्पर माधुरी, यहीं एक उलहन्त।
सखी विशाखा रामराय तो, श्याम माधुरी जानै।
मोहनमोहनी राधा माधुरी, ताहू को बल जानै।।
युगल प्रेमविलास माधुरी, रस को पूर्ण परिपाक।
रमण नहीं जहाँ रमणी हू नहीं, इकरस प्रेम विपाक।।
युगल विलास निभृत निकुंज की, बाँकी झाँकी पाय।
'प्रेम' छलकसों गरक राय मन, तन सुध बुध विसराय।।

(युगल रूप अन्तर्द्धान। महाप्रभु विराजमान)

समाज (चौपाई)—

तव प्रभु उठि राय ढिंग गमने। हस्तकमल तन परसजु कीन्हे।।
होओ सचेत प्रभु बैन सुनाये। उठि देखत कछु समझि न पाये।।
नहीं वह दिव्य अपूरब मूरत। ठाड़े सोइ संन्यासी सूरत।।

बंगला (चै०च०)—

आलिंगन कोरि प्रभु कैलो आश्वासन।
तोमा बिना एइ रूप ना देखे कोनो जन।।

महाप्रभु—हे रामराय जी! आप मेरे तत्त्व, लीला एवं रस के परम मर्मज्ञ हौ। याहि सों मैंने आपकूँ यह स्वरूप दरसायौ, और काहू को नहीं। सुनौ राय! मेरो यह अंग गौर नहीं है, यह श्याम ही है परन्तु श्रीराधा जू के एक-एक अंग सों मेरो एक-एक अंग, एक-एक रोम आवृत है। याहि सों मेरो वर्ण गौर दीसै है। यह स्मरण रहै कि श्रीराधा श्रीव्रजराज कुमार नन्दनन्दन के अतिरिक्त अन्य काहू श्रीकृष्ण रूप कूँ हू कदापि स्पर्श हू नहीं करै है—

पद—

मेरे अंग को गौर रंग नहीं, मिल्यौ है राधा अंग।
राधाहू नहिं परसै काहू को, बिना कृष्ण के अंग।।
राधा अंग सों निज अंग ढाँपि, राधा भावसों चित्त।
भावित निज माधुर्य हौं भोगूँ, यही गूढ़ मो तत्त्व।।
देख्यौ सुन्यौ जो कछु इहँ तुमने, राखियो हृदय दुराय
पागल कूँ पागल ही समझैं, पागल लोग हँसाय।।

हौं एक पागल तुम एक पागल, पागल प्रेम-मिलाप।
पागल प्रेम बिना जो भाखै, ठहरै पागल आप।।

अतएव आज की या रहस्य-प्रसङ्ग कूँ अपने हृदय में ही आस्वादन करनौ—संसार के आगे प्रगट नहीं करनौ अब रात्रि समाप्त हैवे वारी है। यासों जाओ। कल पुनः संध्या-समय दर्शन दैनो।

समाज (सोरठा)—

रजनी बीतत जान, सन्ध्या काल्ह आवन कहि।
दियौ आलिंगन दान, परसि चरन सो गमन कियो।।
दस दस रजनी नित प्रति, दोउन को सम्वाद।
कथासिन्धु को बिन्दु इक, गायौ प्रेम-आस्वाद।।

(आगे चैतन्यचरितामृत ग्रन्थ की बंगला चौपाइयों का अनुवाद)

चैतन्य चरित गाढ़ो दूध है औटायो।
रामरायचरित तामे खाँड है मिलायो।।
राधाकृष्णलीला तामें कपूर सुहायो।
बड़भागी सोइ पान करि न अघायो।।
सुनो सुनो याकूँ सर्व तत्त्वज्ञान होवै।
राधाकृष्ण चरनन प्रेमभक्ति होवै।।
जानिहौ जानिहौ गूढ़तत्त्व कृष्णचैतन्य।
सुनो विश्वास करि करौ ना कुतर्क मन।।
अलौकिक लीला यह परम निगूढ़।
मिलिहै विश्वास सों ही तर्क ते है दूर।।
श्रीचैतन्य नित्यानन्द-अद्वैत-चरण।
सर्वस्व जिनके वे ही पावेंगे ए धन।।
रामानन्दराय पद कोटि नमस्कार।
कियो जाके मुखसों प्रभु रस विस्तार।।
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द।।

इति रामानन्द-मिलन-लला सम्पूर्ण।

इति तृतीय खण्ड।

।। जय गौर।।

श्रीश्रीगौरांगलीलामृत

(चतुर्थ भाग)

प्रणेता–

स्वामी श्रीप्रेमानन्दजी

प्रकाशक

ब्रज रासलीला संस्थान

गोविन्द विहार ● 535/2 रमणरेती ● वृन्दावन

अन्तिम निवेदन

कलिपावन प्रेमावतार श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के श्रीगौरांगलीला ग्रंथ के चारों भाग इस चतुर्थ भाग के प्रकाशन से सम्पूर्ण हो गये। इनमें महाप्रभु के आविर्भाव से वृन्दावन आगमन तक के मुख्य-मुख्य चरित (जगत्राथ-निवास-काल के चरित को छोड़कर) का दिग्दर्शन कराया गया है। वृन्दावन से आगे के चरित का आस्वादन करने-कराने का हमको सौभाग्य ही नहीं प्राप्त हुआ।

हाँ, आगे के चरित अर्थात् वृन्दावन, त्याग से अप्राकटय तक के चरित का एक अत्यन्त संक्षित वर्णन ग्रन्थ-परिशिष्ट (प्र 1 से 40) में जोड़ दिया गया है।) उससे जिज्ञासु पाठकों को एक अति सामान्य परिचय प्रात हो सकता है।

इस ग्रन्थ के चार भागों में जो लीलाएँ हैं। उनके सम्बन्ध में दो बातें कह देना अनुचित नहीं होग—

(1) पहली बात—प्रथम तीन भागों की प्राय: सभी लीलाएँ तो रंग मंच पर कोई पूरी कोई अधूरी रूप से खेली जा चुकी हैं परन्तु चतुर्थ भाग में जो लीलाए है उन में राय रामानन्द-मिलन आगे दक्षिण भ्रमण लीाला, पुन: जगत्राथ-आगमन तक की लीलाएँ एक बार भी रंग मंच पर प्रस्तुत नहीं हुई हैं और आगे कभी होंगी या नही-प्रभु ही जानें। वर्तमान युग स्थिती यह है कि धन है तो आँख नहीं और आँख है तो धन नही।।

(2) दूसरी बात-दक्षिण-भ्रमण से श्री जगत्राथ पुरी लौट कर महाप्रभु ढाई वर्ष तक वही रहे। उसके बाद ही जननी-जन्म भूमि-दर्शन के निमित्त नवद्वीप पधारे थे इन ढाई वर्ष में जो अनेकानेक नाना विधि प्रेरणाप्रद लीलाएँ प्रभु ने पुरी में प्रकाशित की वे तो सब के सब छूट ही गये हैं। उनका तो आभास भी हम दे नही सके है। इस असमर्थता के लिये हमें हार्दिक खेद है।

इस ग्रन्थ से किसी का कोई भला होगा यह उद्देश्य न तो ग्रन्थ के लिखते समय ही रहा न ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य के समय ही। महापुरूष का प्रोत्साहन मिला तो लिख दिया जैसा बना और जितना बना और किसी महाशय ने प्रकाशन विशेष बस आग्रह किया। एवं व्यय-भार उठाया तो दे दिया प्रकाशन

को सब अपना कार्यपूरा हुआ अब न कोई आशा है न आकांक्षा अन्त में अपनी भूल–भ्रान्ति त्रुटि–विच्युति के लिये समक्ष पाठक वृन्द से करबद्ध क्षमा याचना करता हूँ।

श्री वृन्दावन चैत अमावस्या विनीत लेखक
स० 2047–7 मार्च 1991 **प्रेमानन्द**

★ श्रीराधारमणो विजयते ★

जय गौर

दो शब्द

'श्री गौराङ्ग लीलामृत' श्री गौर लीलाभिनय के दर्शकों तथा इसके मञ्जन पटुजनों के हेतु चिरज्वलित प्रदीप है इसके परम प्रेरक युग वन्द्य सन्त श्री हरिबाबा हैं—इसके रचियता परम सरस भजन निष्ठ स्वामी श्री प्रेमानन्द जी महाराज हैं। तथा सफलता साङ्गोपाङ्ग निर्देशक-सम्पादक परम शिष्ट उत्कृष्ट शिल्पी सर्व कृष्ण एवं गौरलीला प्रेमीजन प्राण स्वामी हरगोविन्द जी हैं।

ये युग के सभी सज्जनों, सन्तों तथा श्रीराम, श्रीकृष्णऔर श्रीगौरलीला की त्रिवेणी में अवगाहन कराने वाले एक संसिद्ध-सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा सर्व प्रकार कला विदग्ध हैं। साथ ही इनकी ब्यवस्था मञ्चन पटुता अनुशासन एबं परिवेषण विधा अति विलक्षण और तद विषयक सापेक्ष सल्लक्षणों से आचित है। मैं स्वयं इनके निर्देशित लीला दर्शन का मुग्ध और अति प्रशंसक दर्शक हूँ।

श्री स्वामी हरगोविन्दजी एक अति गौर कृपाप्राप्त-सन्तानुग्रह सम्पन्न विनीत-पुनीत और संगीत अभिनय संवीत एक विलक्षण प्रतिभा विभा के महापुरुष हैं। श्री रासलीलाभिनय क्षेत्र के निरुपमेय जन हैं क्योंकि इनने अपनी इस ललित कला से केवल जन-विनोद मात्र नहीं किया है अपितु लक्ष-लक्ष जनों भक्ति धारा में प्लावित लक्ष लक्ष जनों को सद् दिशा में प्रेरित तथा अनेक जनों को सदाचार से युक्त और दुर्व्यसनों से मुक्त किया है। इनकी भावधारा वचन-धारा, पद पदावलौ-मञ्चन-सज्जा और विधा दृश्य काव्य के अनुरूप दृश्य योजना और वातावरण की सर्जना मनोमृग्धकारी और विशेष प्रतिभा का परिचायक है। कहना अतिशयोक्ति न होगा कि श्री रासलीला परिम्पर और समस्त रासलीलाओं के परिवेश में इन्होंने नयी क्रान्ति की है और नयी मौलिक क्रांति परिपूरित कर दी है। अत: ये क्षेत्र के स्तुत्य और धन्य धन्य तथा धन्यवाद के पात्र पुरुष हैं।

चार भागों में प्रकाशित इनका ये गौराङ्ग लीलामृत ग्रन्थ भी दर्शकों की पृष्ठभूमि तैयार करेंगे। रासलीला में मण्डलियों का पथ प्रदर्शन करेगा। भक्तों का मूक-रस्वादन करायेगा तथा सर्वदा अन्त: पटल पर एक भाव चित्राधार

और सरस आस्वादनाधार तैयार करेगा। ये प्रकाशन एक उत्तम सफल प्रयास है। सबको इसका लाभ लेना ही चाहिये।

श्री स्वामी हरगोविन्द जी ने ब्रज रासलीला संस्थान नाम से एक संस्थान गठित की है। उसी से यह ग्रन्थ चार भागों में प्रकाशित है। इस संस्था का स्थायी भव्य प्रसादाकार भवन है और उसमें आधुनिकतम सज्जा सज्जित मंच है। सहस्त्रों जन उसमें अवस्थित होकर भावविभोर दर्शन प्राप्त करते हैं। सम्भ्रान्त समागत अतिथियों के लिये युगानुरूप सुविधा सम्पन्न अतिथि ग्रह है।

श्री स्वामी हरगोविन्द जी अपने जीवन में एक सफल, सरस और सुयश प्राप्त, सफल श्रेष्ठ सज्जन सर्वाधिक प्रिय स्वामी हैं।

विनीत :

सन्त शान्ता तीर्थ आश्रम — चैतन्य कृष्णाश्रय तीर्थ

१०–४–३१

विषय-सूची

प्रकाशकीय

कलियुग पावनावतार महाप्रभु श्री श्री कृष्ण चैतन्य देव नित्यानन्द प्रभु पाद के लीला ग्रन्थ "श्री गौराङ्ग लीला मृत" का चतुर्थ एवं अन्तिम भाग सुधो पाठकों के कर-कमलों में प्रस्तुत है।

इस अद्‌भुत रस वर्णनकारी ग्रन्थ की रचना परमादरणीय पूज्य सन्त श्री स्वामी प्रेमानन्द जी द्वारा की गयी है, जो कि महाप्रभु लीलाभिनय के आधुनिक जनक हैं। आज जितनी भी गौराङ्ग लीला विभिन्न मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं उनके पार्श्व में स्वामी जी का कुशल निर्देशन एवं प्रस्तुति-करण ही उनमें रसाभिवृद्धि करता है। उन्होंने बड़ी कृपा करके इस ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की एक अनुपम विशेषता यह है कि इसकी रचना प्राय: नाटक शैली में की गयी है जिससे पाठकों को अध्ययन के साथ-साथ जहाँ उस वास्तविक दृश्य के दर्शन होंगे, वहीं अभिनयकारी मण्डलियों का अभिनय हेतु एक सुदृढ़ आधार मिलेगा, अभिनय हेतु पर्याप्त संकेत, दृश्यों का विवरण समाज द्वारा पद-गायन का संकलन इस ग्रन्थ की अपूर्वता का बोधक है।

इस ग्रन्थ की कीमत लागत मात्र रखी गयी है जिससे जन साधारण सहज में ही इस ग्रन्थ का लाभ उठा सकें। इससे प्राप्त धनराशि अन्य प्रकाशनों में ही व्यय की जायगी जिससे रसिक पाठकों को अन्य ग्रन्थों का भी लाभ निरन्तर मिलता रहे।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोगी सभी सज्जनों को हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

स्वामी हरगोविन्द

श्रीमल्लिकार्जुन एवं श्रीबालाजी दर्शन

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्त वृन्द।।

श्लोक

तत्रोषित्वा कतिपय दिवा दक्षिणात्यं जगाम-
कूर्मक्षेत्रे गदविरहितं वासुदेवं चकार।
रामानन्दं विजयनगरे प्रेमसिन्धुं ददौ य-
स्तं गौराङ्गं जनसुखकरं तीर्थमूर्तिं स्मरामि।।

श्लोक

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृत।।

पद

हरि कृपा को आदि न अन्त।
माया जब सों कृपाहु तबसों, संग संग युग होय अनन्त।।
वेद पुरान शास्त्र प्रगटाये, आचारज ऋषि मुनि जनसन्त।
मायातोम तिमिर-विदारन पथ पथ दीप दिव्य दिपन्त।।
(पुनि) दस चौबीस अनेक अवतारहु, रूप चरित गुनजार लसन्त।
पढ़ि सुनि सुमिरि गाय गाय जन, महा मोह दुस्तरहि तरन्त।।
(**जाके)** नैनन तीरथ चरनन तीर्थ,
तीर्थ रोम रोमन बसन्त।
(सोइ) मूरर्ति 'प्रेम' तीर्थ कोटि हरि,
तीर्थन तीर्थन तीर्थ करन्त।।

प्रवेश महाप्रभु कीर्त्तन करते हुए एवं पीछे पीछे (रामानन्द)

महाप्रभु०—काफी-३ हरे कृष्ण हरे,
कृष्ण हरे। हरे राम हरे, राम हरे।
(दुगुन)—नयनानन्दन उर-उन्मादन,
रस घन वर्षण धाम हरे।। कृष्ण हरे।।

नन्दन-नन्दन, यशोदा उर धन,

गोकुल भूषण, गोपी विभूषण।

वंशी विनोदन, विश्व विमोहन,

नटवर मोहन काम हरे।। कृष्ण हरे।।

समाज—सो०।। तव प्रभु ह्वै सचेत,

चितये रामानन्द प्रति।

बोले वचन सहेत,

कोमल सुखकर, श्रेयकर।।

महा०—राय महाशय! आप के मुख सों श्रीकृष्ण कथामृत पान करते-करते ये मेरे दस दिन बड़े ही आनन्द सों बीते आप ने मो कूँ सुदुर्लभ-रसास्वादन को अभूत पूर्व सुख दियो।

रामा०—(हाथ जोड़ दैन्य सहित) सुख तो आप ने दियो मोकूँ। साधन को सार-तत्व बतायो, साध्य प्रेमरस को आस्वादन करायो। एवं......... अपनो.........महाभावरसराज स्वरूप को प्रत्यक्ष दर्शन कराय मोकूँ सर्व प्रकार सों कृतार्थ कर दियो।

महा०—(बात टालते हुये) परन्तु मेरी तो अबहु तृप्ति नहीं भई है। और आगे-और आगे सुनवे की साध रह ही गई। अहा! जे जो कहूँ मेरे भाग्य में आपको सत्संग नित्य निरन्तर घट सकै तो जाय कै मेरी साध कछुक पूरी होदै। यासों मेरी एक प्रार्थना मानौगे कहा?

रामा०—(हाथ जोड़) प्रार्थना नहीं आदेश करैं भगवन्! सहर्ष पालन करवे की पूरी चेष्ठा करूँगो।

महा०—प्रार्थना बस इतनी ही है कि आप नीलाचल में जगद्बन्धु जगन्नाथ जी के ही समीप जाय कै नित्य निवास करौ तथा मोकूँ नित्य ही श्रीकृष्ण कथामृत को पान कराओ यासों छोड़ो या राज-काज कूँ :-

कवित्त—भीम पलासी-केहरवा (अथवा दुर्गा)

बहु दिन राज कियो, अब वह काज करो,

होय परकाज जाते, जाय दिन जाय रे।

सुख यह देख लियो, सुखबोहु देखो अब,

अन्त न जाको कभू, आय नहिं आय रे।

चाटे बहु धूर अब, घूँटो संजीवन-मूरि
दोष दुख जाय अमर, काय बने कायरे।
देखौ खोलि आँखि देखौ, सुनौ 'प्रेम' वानी सुनौ
ठाड़ो कब सौं साँवरौ, बुलाय रे बुलाय रे।।

रामा०—दई आज्ञा शीश लई, कृपा अति आज भई,
मानि अपनो ही नाथ, आये लैन आये हैं।
पर्यौ हौं तो कूप माझ, निकसि सकौं न आप,
दया के निधान आप, आये काढन आये हैं।।
कौन मुख कही कहा, गाऊँ सुव दया 'प्रेम'
मात-पिता सखा गुरु पाये साँच पाये हैं।
भेजो जहाँ-तहाँ जाउँ, भय चिन्ता कैसो अब,
(महाप्रभु के चरण पकड़)
षदयुग छत्र हम शीश पै धराये हैं

(कीर्तन एवं नृत्य)

शीश पै धराये हम शीश पै धराये हैं।
शीश पै धराये छत्र शीश पै धराये है।।
शीश पै धराये हम ताप सब सिराये हैं।
ताप सब सिराये, हम प्रेम गुन गाये हैं।।
(महाप्रभु चरण कमलों से लिपट जाना)

महा०—(उठा प्रेमालिंगन) हरि बोल।

रामा०—(उठ कर) हरि बोल! हरि बोल। अब मोकूं पूर्ण निश्चय है गयौ कि आप मोकूं या अन्ध कूप सों निकास अपने मंगल श्रीचरण समीप निवास देंगे। अब मैं राजा प्रताप रुद्र महाराज सों प्रार्थना करूंगो कि वे मोकूं राजकाज सों शीघ्र ही मुक्त करकै श्रीजगन्नाथ पुरी जायवे की अनुमति प्रदान करैं। आप की कृपा सों मेरौ कार्य अवश्य ही सिद्ध होवैगो।

महा०—(उठते हुये) अब मैं जाऊं हूँ। दक्षिण-तीर्थ यात्रा पूरी करकै लौटती समय मैं फिर यहाँ आऊँगो। एवं आपकूँ संग लैकैं नीलाचल जाऊँगो। आप प्रस्तुत रहै।

रामा०—आनन्द! आनन्द! हरि बोल (साष्टांग प्रणाम)

महा०—(कीर्तन करते हुये प्रस्थान पीछे पीछे रामानप्द)

राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव रक्ष माम्।।

(प्रस्थान। पटा क्षेप)

समाज— **दोहा**

करि विदा रामानन्दहिं, बिधा नगरहि त्याग।
चलै प्रभु दक्षिण दिशि, जागे तीरथ भाग।।

चौ०

गावत हरि हरि नाम जु धाये।
पावन प्रेम सुधा बरसाये।।
पान किये जिन जीवन पाये।
गान किये मन मैल बहाये।।
जित जावैं जन घिरि घिरि आवैं।
दरस परस दुर्लभ सुख पावैं।।
संग चलैं नाचैं हरि गावैं।
पथि सुदूर लौं लागि धावै।।
जनम रंक जनु कर निधि पाई।
सुख न समात, रहैं बौराई।।
दुख दारिद्र जुग-जुग के भागे।
हरि संग हरि रंग हरि रस पागे।।

महाप्रभु०—(प्रवेश-कीर्त्तन करते हुये। काला कृष्णदास कमंडलु कौपीन लिये। पीछे-पीछे जनता गाती-नाचती हुई।)

धुन—राम राघव राम राघव.........पाहि माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव.........रक्ष माम्।।

(नाचते-गाते प्रस्थान)

समाज **चौ०**

दक्षिण भ्रमण चरित अति भारी।
शत शत तीरथ मंगलकारी।
द्वै द्वै बरस जहाँ प्रभु विचरे।
विन वाहन पगहि पग सिगरे।।
मारग विरल अमारग बहुतै।
वन दुर्गम जनपद कछु वीचै।।

(यासो)– दच्छिन चलि पुनि पूरब आवैं।
पूरब तजि पुनि पच्छिम धावैं।।
उलट-पुलट सोई मारग आवैं।
पथ गहि पुनि दच्छिन दिशि धावै।।
जित जित तीरथ तित तित जावैं।
तीर्थन कूँ पुनि तीर्थ सुनावैं।।
दरस परस दै नाम बुनावैं।
गाम गाम वैष्णव बनि जावैं।।
को को तीरथ कब कब गमने।
क्रम क्रम कहि न आवत कथने।।
(यासो)–कछु तीर्थन को नामहि गाऊँ।
कछु तीर्थन को चरित सुनाऊँ।।

दोहा

दिन दस भ्रमि श्रीशैल गिरि, मल्लिकार्जुन ठौर।
ज्योति : लिंग प्रधान इक, आये तहँ प्रभु गौर।।

(दृश्य मल्लिकार्जुन शिवलिंग। कोने में पार्वती)

महाप्रभु-(प्रवेश कीर्तन करते हुए। कृष्णदास विल्व पत्र पुष्प सहित। पीछे-पीछे जनता कीर्तन करती हुई)

धुन--ॐ नम: शिवाय साम्ब शिवाय।

पुजारी-(कीर्तनान्ते) ॐ नमो नारायणाय! आगच्छनाम् देव! स्वागतम्। सुप्रभातमघैव यत् तीर्थ पादभवद्दर्शनं करोमि। यह मल्लिकार्जुन आशुतोष शंकर भगवान् हैं। सुप्रसिद्ध द्वादश ज्योतिलिंगन में एक माल्लिकार्जुन शिवलिंग हूँ हैं। यहाँ भगवती पार्वती कूँ ही 'मल्लिका देवी' कहे हैं। वह सामने मल्लिका देवी को मन्दिर है (पार्वती मूर्ति को) दिखाना)। और भगवान् शिव कूँ ही यहाँ 'अर्जुन' कहे हैं। पार्वती-शंकर ही या देश में मल्लिकार्जुन के नाम-सों प्रसिद्ध हैं।

बोलो मल्लिकार्जुन भगवान् की जय हो।

महा० धन्य है! भूतभावन भगवान् भोलेनाथ अनन्त नामन सों अनन्त जीवन को कल्याण कर रहै हे। विप्रदेव! भगवान् मल्लिकार्जुन के सम्बन्ध में कोई कथा होय तो सुनायवे की कृपा करे।

पुजारी–अवश्य भगवन्! संक्षेप में ही कहूँगो। हमारे गणेश जी एवं कार्त्तिकेय जी कूँ तो सब जानै ही है। ये दोनों शिव–पार्वती के पुत्र हैं। तो जब ये विवाह–योग्य भये तो कौन को विवाह प्रथम होय याके ऊपर विवाद चल पर्यो। तब माता–पिता ने यह निर्णय दियौ कि जो पृथ्वी की सात परिक्रमा पहलै दै आबैगो वाहि को व्याह प्रथम कर दियो जायगो।

तव तो कार्तिकेय जी अपने वाहन मोर पै बैठके उड़ चले। परन्तु गणेश जी अपने वाहन मूषे के ऊपर बैठे ही रह गये। वाहन छोटो भयो तो कहा बुद्धि तो गणेश जी की बिशाल है। वे तो 'बुद्धि–बिधाता' ही हैं। सो तुरन्त ही उपाय–निश्चित कर लिये गौरी–शंकर तो सम्मुख विराजमान हे ही। उनकी विधिपूर्वक पूजा करी तथा एक–एक करकै सात प्रदक्षिणा हू दे डारी। और हाथ जोड़ आगे ठाड़े है गये और बोले अब मेरो व्याह कर दैओ।" वे बोले "पहले पृथ्वी की परिक्रमा तो दे आओ।" ये बोले दे तो दीनी! शास्त्र सब एक स्बर सों कहैं हैं कि माता पृथ्वी की मूर्त्ति एवं पिता सर्व देव मय होय है। अतएव माता–पिता की पूजन करकै उनकी प्रदक्षिणा करवे सों समस्त पृथ्वी की परिक्रमा है जाय है।"

श्लोक

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा, प्रक्रान्निं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्य, फलं भवति निश्चितम्।।

या प्रमाण सों जब गणेशजी बोलें तब तो पार्वती शंकर उनकी शास्त्र–श्रद्धा एवं मातृ–पितृ भक्ति देख अत्यन्त प्रसन्न भये तथा उनको विवाह ऋद्धि–सिद्धि कन्यान के संग कर दियौ।

दूसरी और कार्तिकेयजी अपनी परिक्रमा दे ही रहे हे कि नारद जी ने जाय के गणेश जी के विवाह को वृत्तान्त सुनाय दियौ। तब तो कार्तिकेय जी रूठ करके कैलाश नहीं गये और भूतल पे यहाँ श्रीशैल पे आय रहे। उनकूँ मनायवे के लिये शंकर–पार्वती यहाँ आये तो वे यहाँ ते भाग तीन योजन दूर क्रौंच पर्वत पे चले गये। तब सो वे वहीं निवास करे हैं। उनने फिर अपनो विवाह कर्यौ ही नहीं। याहि सों वे 'कुमार कार्तिकेय' के नाम से प्रसिद्ध भये। तब सों श्रीशंकर–पार्वती हू यहीं ठहर गये एवं मल्लिकार्जुन के नाम से प्रसिद्ध भये। यह है इनके प्रागट्य की कथा से जैसी कुछ हमने सुन राखी है वह आपकूँ सुनाय दीन्ही। बोलो मल्लिकार्जुन न भगवान् की जय।

महाप्रभु० ।। स्तुति।। नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय,
तस्में नकराय नमः शिवाय।।

कीर्तन ॐ नमः शिवाय साम्ब शिवाय।

(नृत्य-कीर्तन-प्रस्थान)

समाज **दोहा**

तजि कै मल्लिकार्जुनहिं, चलै गौर गुण धाम।
वनबस्ती पावन करत, गावत मंगल नाम।।

चो०

कृष्ण-कृष्ण मुख गावैं जावैं, कृष्णदरस सुख जनगन पावैं।
तन बैरागी मन अनुरानी। आपन नाम रूप मति पागी।।
सहज ही नैनन-प्रानन करजैं। भाव अलौकिक धारा वरषैं।
चित्तधरा या विधि सरसावैं। जोति सींच सुखेत बनावैं।।
कृष्ण बीज कर्णन करि डारें। कृष्ण नाम फल लोक उचारैं।
कृष्णभक्ति अति दुर्लभ भाई। पद पद गौर लुटावत जाई।।
"अहोबल नरसिंह" तीरथ गमने। दर्शन स्तुति प्रणति कीने।
आगे 'सिद्धबट" प्रभु आये। मन्दिर सीतापति लखि पाये।।

(दृश्य : मन्दिर श्रीराम-जानकी-लक्ष्मण हनुमान)

दो०

मन्दिर रघुवर जानकी, आये महाप्रभु गौर।
करि प्रनाम स्तुति बहु, कीन्हे कीर्तन घोर।।

महाप्रभु—(कीर्तन करते हुये। पीछे पीछे कृष्णदास एवं जनता)

धुन—श्रीराम जय राम जय जय राम।।

श्लोक

आपदामपहर्तारं दातारं सर्व सम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाभ्यहम्।।
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय मानसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः।।

(प्रणाम)

महाप्रभु-(प्रणामाम्ते कीर्तन)

राजा राम राम राम, सीता राम राम राम।
सीता राम राम राम, राजा राम राम राम।।

समाज

दो०

रामपुजारी विप्र तब, लैकै माल्य प्रसाद।
सादर ऊरपे पाणी प्रभु, मानि भाग अह्लाद।।

चौ०

राम भक्त इक विप्र तहँ आइ।
नमन करी पद बिनती सुनाई।।
राम भक्त विप्र पावन करहु गेह पग धारी।
भिक्षा मम मानौ हितकारी।।
समाज मानि न्यौतहिं प्रभु संग लागे।
गावत विप्र राम अनुरागे।।
राम ही राम विप्र नित गावहिं।
राम नाम बिन आन न भाजहिं।।
राम भक्त (गाते हुये महाप्रभु को ले चलता है)

पद

मेरे राम मेरे राम।।टेक।।
राम राम मेरे राम जी आये।
राम राम मेरे रघुपति आये।।
राम राम मेरे नैनन भाये।
राम राम मेरे प्रानन छाये।।मेरे राम।।
राम राम कहा भेष बनाये।
राम राम कित लाल रंगाये।।
राम राम कित शीश मुड़ाये।
राम राम कित जटा वहाये।।मेरे राम।।
राम राम धनुष कहाँ डारे।
राम राम राक्षस हैं मारे।

महाप्रभु—हरि बोल। हरि बोल

राम मेरे राजा राम वनवासी।
राम मेरे तपसी। राम संन्यासी।।मेरे राम।।

राम राम बहुरूपिया राम।

राम राम नाम रूप राम।।

राम राम निशिदिन राम गाऊँ।

राम नाम 'प्रेम' राम पाऊँ।।मेरे राम।।

(गाते गाते महाप्रभु सहित प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

समाज **चौ०**

ता दिन ता घर भिक्षा कीन्ही।
गूढ़ कृपा कछु अटपटी कीन्ही।।
पुनि आगे पथ दच्छिन गमने।
चरित बहुत कछु इहाँ नहीं बरने।।

दो

सोइ भाव आवेश सोइ, सोइ नाम हरि गान।
सोइ काम वैष्णव-करन, गाम गाम प्रति गाम।।

चौ०

'स्कंन्द क्षेत्रं गमने हरि गौरा।
कार्तिकेय दरसन, जेहि ठौरा।।
पुनि आगे 'त्रिमठ' पग धारे।
त्रिविक्रम वपु धारी निहारे।।
उलटि पुनि 'सिद्धवट' आये।
सोई रामभक्त गृह धाये।।
उलट पलट जैसे मनमानी।
प्रभु लीला सब जनहित सानी।।

(दृश्य।। राम भक्त विप्र बैठा कृष्ण-कीर्तन कर रहा है)

रामभक्त **धुन**

कृष्ण हे कृष्ण हे, कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण हे कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।

महाप्रभु—(प्रदेश धीरे-धीरे कृष्णदास सहित (रुक जाते)

रामभक्त—(कीर्तन करता रहता है)

समाज **चौ०**

प्रभु प्रवेश कीन्हे गृह आंगन।
बन्द आँखि मगन निज कीर्तन।।
प्रभु हू अचल सुनैं करैं दर्शन।
रामभक्त मुख कृष्ण कीर्तन।।

रामभक्त--(मुद्रित नयन कीर्तन करते करते) वह आये कृष्ण! वह आये! आय गये! (सहसा नेत्र खुल जाते-आगे महाप्रभु खड़े देख सम्भ्रम सहित उठते हुये) अहा! आप पधारे प्रभो! पुनः पधारे। भले आये भले आये।

पद--मेरे कृष्ण मेरे कृष्ण।। टेक।।

दुगुन—कृष्ण कृष्ण मेरे कृष्ण जी आये।
कृष्ण कृष्ण नंदनंदन आये।
कृष्ण कृष्ण मेरे नैनन भाये।
कृष्ण कृष्ण मेरे प्रानन छाये।।
कृष्ण कृष्ण कटि काछनी नाहीं।
कृष्ण कृष्ण लाल वस्त्र धराहीं।।मेरे कृष्ण।।
कृष्ण कृष्ण कित वंशी छिपाई।
कृष्ण कृष्ण मोर पंखहु नाई।।मेरे कृष्ण।।
कृष्ण कृष्ण कित केश घुँघरारे।
कृष्ण कृष्ण कित मूड़ मुडारे।।
कृष्ण कृष्ण मेरे रास विलासी।
कृष्ण कृष्ण भये प्रेम संन्यासी।।
(पुनः कीर्तन) कृष्ण हे कृष्ण ३ हे।।

महा०—(स्मितपूर्वक) अहो ब्राह्मण देव! आज तो कृष्ण ही कृष्ण गाय के उन्मत्त है रहै हो। पहले तो आप राम ही राम रट्यौ करते। अब 'राम' की ठौर पर 'कृष्ण' कैसे आय गये?

ब्राह्मण—गजल।। दादरा।।

आये गये आप ही आय गये (कृष्ण आय गये)
लाया नहीं मैं यह आय गये (कृष्ण आय गये)।।१।।
(प्रभो! जब आप) आये जब पहले पहचान न आये।
चले भी गये आप छिपे ही छिपाये।।
ले राम को कृष्ण मुख दे गये। लाया नहीं०।।२।।

बालपने से मैं राम ही गाया।।
तुम्हें देख बारएक मुख कृष्ण आया।
छूटे नहीं अब तो मुख वस गये। लाया नहीं०।।३।।
बड़ा छोटा कौन जब मन को है भया।
तेरे नाम—'प्रेम' में नहीं भेद भाया।।
कृष्ण के अन्तर में राम दै गये। लाया नहीं मैं०।।४।।
(प्रणति)

महा०—(ब्राह्मण को उठा आलिंगन) हे बड़भागी विप्र। श्रीकृष्ण की आप के ऊपर महती कृपा भई हैं। यासों अब आप निर्भय "कृष्ण कृष्ण" कहौ और सबन सौं 'कृष्ण-कृष्ण' कहवाओ।। यही श्रीकृष्ण की सर्वोत्तम सेवा है। अब हम जायँ हैं।

ब्राह्मण—नहीं! मेरे प्रभो। मेरे कृष्ण। ऐसे नहीं जान दऊँगो भिक्षा स्वीकार करकै एवं विश्राम करकै ही जान पाओगे। भिक्षा को समय हू तो है आयो है। यासों विराजौ। भौग धर्यौ भयो है। मैं प्रसाद लैकै आऊँ हूँ।

समाज **दो०**

आसन दै पग धोय कै, कदली पात विछाय।
महाप्रसाद परोस बहु, सादर प्रभुहिं जेमांय।।

पद

कृष्ण कृष्ण धनि कृपा तिहारी।
आप हि आय दीन गृह द्वारे।
कियो अनाथ सनाथ बलिहारी।।
नाम सुनायो, नाम गवायो।
अपनायो मोहि कृष्ण मुरारी।।
पावन तन मन मंगल जीवन।
जनम सफल कीन्हो हितकारी।
जपतप तीरथ ज्ञान ध्यान बहु,
फलै न फलै जो प्रेम फलारी।।
सो फल सहज कृपा वश पावत,
विरलो जन कोई मौज तिहारी।।

कीर्तन—कृष्ण हे कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।

(पटाक्षेप)

समाज **दो**

राम भक्त ता विप्र कूँ, कृष्ण भक्त बनाय।
रजनी करि विश्राम तहँ, चलै प्रात नहाय।।

चौ०

तजि 'सिद्धबट' गौरहरि धाये।
'वृद्ध काशी' तीरथ चलि आये।।
तहँ हर-दर्शन मंगल कीन्हे।
कृष्ण भक्त वैष्णव बहु कीन्हे।
आगे पथि आयो इक गामा।
विप्र-वसति पंडित बहु नामा।।
बहु विध बाद-कुशल जन ज्ञानी।
निज निज शास्त्र वरवानैं मानी।।
बाद सकल कीन्हे प्रभु खंडन।
सार कृष्ण भक्ति किये मंडन।।
हारे सब निज मतहिं बहाये।
वैष्णव मत सब शीश चढ़ाये।।
गौर-रूप-आवेश-प्रेम लखि।
नाम कृष्ण सुनि गावैं कृष्ण लखि।।
वहु दिन चलिं 'काल हस्ती' आये।
वायु लिंग शिव लखि सुख पाये।।
भील कणथ जहँ नेत्र चढ़ाये।
सो कणपेश्वर दरसन पाये।।

दो०

'कालहस्ती' तीरथ तजि, गमने गौराराय।
आय 'बेंकट शेंल जहँ, 'बाला तिरुपति राय'।।

(दृश्य : मन्दिर—बैकटेश्वर भगवान की श्याम मूर्ति सात फुट ऊँची। चतुर्भुज शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, श्वेत चन्दन से ललाट एवं नेत्र-युगल भी ढके हुए। उभय पार्श्ढ में श्रीदेवी भूदेवी)

महाप्रभु—कृष्णदास के हाथ में पुष्पमाल्य, पूजन-सामग्री पीछे जनता)

पुजारी—ॐ नमो नारायणाय। पधारौ स्वामिन्! दर्शन करौ। यह साक्षात् विष्णु के अवतार श्रीबेंकटेश्वर भगवान् हैं। इनकूँ बाला तिरुपति हू कहै हैं।

कृष्णदास—(पूजन-सामग्री पुजारी के सम्मुख रख देते। पुजारी उठाकर माला-पुष्पादि बालाजी को अर्पण कर देते हैं)

महा०--(प्रणाम करते हैं)

पुजारी--यह बेंकटेश्वर भगवान् बेंकटाचल के ऊपर विराजमान हैं। यह पर्वत शेष जी को ही रूप है—यासों शेषाचल शेवाद्रि हू कहावे है। प्राचीन समय में याके ऊपर कोई यात्री पाँव नहीं रखतो। पर्वत के नीचे सों ही प्रणाम करवे की मर्यादा हुती। बाराहपुराण एवं भविष्योत्तर पुराण में बेंकटाचल तीर्थ को बड़ो माहात्म्य वर्णित है। "बेंकट" को अर्थ ऐसो है कि "बे" माने समस्त पाप-ताप एवं 'कट' माने काट करकै निर्मूल कर देवे वारो। यासों यह पर्वत 'बेंकटाचल' तथा भगवान् 'बेंकटेश्वर' कहावै हैं।

श्लोक

सर्वपापानि वे प्राहुः कट स्तद्दाह उच्यते।
तस्मात् बेंकट शैलोऽयं लोके विख्यात कीर्तिमान्।।

यासों दक्षिण-भारत के तीर्थ-यात्री कूँ बेंकटाचल एवं बेंकटेश्वर बालाजी भगवान् के दर्शन अवश्य करणीय हैं याहि बेंकट शैल पै माता अंजनी ने तपस्या करी ही जासों उनकूँ महावीर हनुमान जी पुत्ररूप में प्राप्त भये है।

दो०

मुनि मतंग आदेश सों, सती अंजनी माय।
तप करि बेंकटशैल पै, हनूमान प्रगटाय।।
(जय हो बेंकटेंश्वर भगवान की जय)
जय हो बाला तिरुपति जी की जय।।)

महा०--विप्रदेव! भगवान् के नेत्र युगल के दर्शन क्यूँ नहीं होय है। ये आवृत कैसे हैं। लगै है मानो तो कोई श्वेत-पत्र सों, ढक दिये होयँ! यह कहा रहस्य हैं?

पुजारी--(मुस्कराते हुए) यह भगवान् के सहज वात्सल्यस्नेह को चिन्ह विराजमान है। श्वेत-पत्र नहीं चन्दन की तिलक-शृङ्गार है। एक भोर-भारे बालक भक्त को स्मारक है।

महा०--यह चरित कैसो है देव? सुनायवे की कृपा करौ।

पुजारी--प्राचीन काल की कथा है। जब बालाजी भगवान् प्रगट भये तो उनकी सेवा-पूजा है। वे लगी। जब प्रथम पुजारी वैकुण्ठ सिधारे तो उनके पुत्र कूँ सर्वप्रथम पूजन को अधिकार दियो गयो। पुत्र हो पाँच-छः वर्ष को अबोध

बालक सेवा-पूजा-विधि कछुई नहीं जानते। तौहू बड़े भावचाव सों सेवा करवे बैठ्यौ। सो ललाट पै चन्दन-तिलक ऐसो लगायो-ऐसो लगाये कि ललाट ही नहीं दोनों नेत्र हू चन्दन सौ ढक दिये।

पश्चात् जब अन्य पुजारी ने यह दर्शन किये और बालक की भूल जानी तो पोंछ कै मिटाय दैवे को आदेश दियो। तब वा समय मन्दिर में सों आकाशवाणी भई कि--

दोहा

मेरे भोरे भक्त को, यह चन्दन सिंगार।
रहन देओ मेटौ नहीं, मोकूँ अति सुखकार।।

तब ही सों यह नियम चल्यौ आय रह्यौ है कि बालाजी के नेत्र पर्यन्त चन्दन-तिलक कर दियो जाय है। उतर्यों भयो तिलक-चन्दन प्रसाद रूप सों बँटै है। देखौ यह है चन्दन-प्रसाद! (अर्पण करना)

महा०—(मस्तक सों लगा— ! ललाट पर धारण करते हैं)

पुजारी—जय हो बाल भक्त की जय हो।
भावग्राही भगवान् बालाजी की जय।।

समाज **दो०**

भाव प्रिय भगवान चरित, दूजो सुन हु सुख होय।
चोट चिन्ह श्रीअंश पै, अजहु लेप नित होय।।

पुजारी—(अर्थ कर देता है)

महा०—यह चरित तो अवश्य ही सुनाओ विप्रदेव।

पुजारी--सुनिये भगवन्! प्राचीन काल कौ घटना है। एक भक्त भगवान् के लिए नित प्रति नेम सों दूध पहुँचायौ करतौ। अन्त में जब वह वृद्ध भयो तो वाकूँ इतनों ऊँचो पर्वत चढ़ि कै मन्दिर में दूध लैकै आयवे में कष्ट हैवे लग्यो। तब तो दयालु गोरसलोभी बालाजी बा के घर ही पहुँच जाते और चोरी सों छिप-छिप कै गाय के थन में मुँह लगाय दूध चौंख आमते। भक्त के हाथ कछुई न परतो। अब भगवान् को दूध कहाँ ते पहुँचायै। बड़ा ही दु:खी रहवै लग्यौ। सो एक दिन वह छिप करकै बैठ गयो। वालाजी एक साधारण बालक के रूप में आये और गैया के नीचे बैठ कै दूध पीवै लगै। तब तो चोर समझ कै वा भक्त ने तान के डंडा मार्यौ पीठ पै। डंडा खात ही भगवान् झट्टै प्रगट है गये-दर्शन दियो। भक्त तो विचारो पाँवन में परि कै रोमन लग्यौ। बालाजी ने वाकूँ उठाय कै धीरज बँधायो, शान्त कियौ। वा डन्डा सों जो चोट पीठ पै

आयी वाको चिन्ह भक्त भाव प्रिय भगवान् आज पर्यन्त धारण किये भये हैं। ऐसी विचित्र इनकी रीझ है। रीझैं तो मार पैहू रीझ जायँ और न रीझैं तो लाख पाठ-पूजा हू पै न रीझै।

दो०

खीझ देत वैकुण्ठ हैं, रीझ देते है लंक।
अन्धाधुन्ध सरकार की, तुलसी रहो निशंक।
बोलो सरकार की रीझ की जय
अकारणा करुणा वरुणालय बालाजी भगवान् की जय

आरती-पद। कल्याण

समाज--आरती बालाजी की गाओ।
सुमिरि सुमिरिं नित शीश नमाओ।।टेक।।
शेष रूप शेषाचल सोहैं,
पर्वत पावन पातक खोवै।
कलि में जहां हरि वास कर नित,
गाय गाय भाव सौं तिर जाओ।।१।।
नाम वेंकट वेंकट गावै,
पाप ताप सब कटि कटि जावें।
दीन दयाल सहज सुखकारी,
दर्शन करि मनवांछित पाओ।।२।।
बाल भक्त जों तिलक बनाये,
वड़ो सुक्ख बालाजी पाये।
आँखि ढके चाहे मुख ढकि जावै,
वैसोइ तिलक पै नित्य बनाओ।।३।।
भक्त भाव भोगी भगवाना,
चोरी चोरी करैं पय पाना।
मार खाय तब दर्शन दैवैं,
उलटी रीझ पै बलि बलि जाओ।।४।।
रीझ निराली खीझ निराली,
उलट-पुलट सब चाल निराली।
को जाने तुम कैसे कैसे,
ऐसे ही खेलौ 'प्रेम' खिलाओ।।५।।

महा०— हरि बोल हरि बोल।

(कीर्तन) हरि बोल, हरि बोल।।

इति श्रीमल्लिकार्जुन एवं बाला-जी-दर्शन

लीला सम्पूर्ण।

❖

संन्यास-लहरी **एकादश कणामृत**

श्रीकाँची-पथ पर

(बौद्धों पर कृपा तथा तीर्थ राम एवं वेश्या-उद्धार)

श्लोक

नानामत ग्राहग्रस्तान् दाक्षिणत्य जनद्विपान्।
कृपारिणा विमुच्यैतान् गौरश्चक्रे सर्वष्णवान्।।

पद

जय जय जग निस्तारी, गौर हरि,
जटिल कुटिल कुपथ छुड़ाय के।
सरल सुपंथ विस्तारी, गौर हरि।।
जहँ-तहँ दच्छिन मधि नाना विध,
पाखंड मत भारी जु भारी।।
ग्रसि रहै ग्राह प्रवल ताहि मारि,
जग हस्ती उद्धारी, गौर हरि।।
जावै जहँ तहँ चक्र चलावैं,
कृपा-सुदर्शन धारी जु धारी, गौर हरि।।
नाम सुनाय बनावैं वैष्णव,
कृष्ण भक्ति प्रचारी गौर हरि।।
कंटक कटुक कुकाठ छुड़ाय,
प्यायो 'प्रेम'-सुधारी सुधारी गौर हरि।।
पद पद बहावत सुरसरि हरि रस,
दक्षिण देश उद्धारी, गौर हरि।।

जय कृष्णचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्त वृन्द।।

चौ०

बेंकट शैल तीरथ बहु आहीं।
प्रभुहिं मुदित जन दरस करावहीं।।
(तव प्रभु) तिरुपति तजि चलै दच्छिन ओरा।
हरिरस मत्त भाव विभोरा।।

महाप्रभु०—(प्रवेश गाते हुए। पीछे-पीछे कृष्णदास एवं जनता)

पद दादरा आसावरी

मोहन मदन गोपाल गोविन्द गोपीनयन नन्दकारी।
दामोदर माधव मुरलीधर मधुरेश मन्मथहारी।।
ब्रज बन रमण ब्रजमन हरण व्रज जनभरण हितकारी।
आनन्दरस धन-आनन्दवर्षण, आनन्द प्रेम सुधारी।।
कीर्तन-धुन--मोहन मदन गोपाल गोविन्द।
गोपाल गोविन्द, गोपाल गोविन्द।।

(गाते गाते प्रस्थान)

समाज **चौ०**

आगे पाना-नरसिंह' आये।
मंगलगिरि मन्दिर जु सुहाये।
नरसिंह देव तहाँ सुख राजहिं।
पाना भोग शर्बत नित पावहिं।।
भरि भरि कलस विप्र, मुख डारहिं।
गटक गटक प्रभु उदर समावहिं।।
'पाना नरसिंह' ताते कहावैं।
संकट काटै मोद बढ़ाबै।।
दरसन करि प्रभु भाव विभोरा।
नृत्य, विकट हुँकारहि घोरा।।
लोक चकित 'जय नर हरि' गावैं।
दरस पाय निज भाग बढ़ाये।।
आगे बौद्ध आचारज पाये।
शिष्यन संग अति गर्व मनाये।।

दोहा

बैठे महाप्रभु वृक्ष तर, कृष्ण कृष्ण रहै गाय।

महा०—(वृक्ष नीचे-कृष्णदास समीप बैठा है)

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण। कृष्ण कृष्ण कृष्ण है।

बौद्धाचार्य—(चार-पाँच शिष्यों सहित। मुंडित मस्तक। पीली अलफी, पीली चादर ओढ़े दाहिना हाथ बाहर निकाल)

संन्यासी जो महाराज! हम शास्त्रार्थ करने आये हैं।

महा०--(अनसुने-अनदेखे 'कृष्ण-कृष्ण' जपते रहते हैं)

१. **शिष्य**—ओ स्वामिन्! सुनते नहीं? देखते नहीं? अन्ध-बधिर हो क्या?

२. **शिष्य**—हमारे आचार्य चरण की अवज्ञा करते हो?

महा०—(नेत्र खोल-देखकर) कहा है बन्धुओ?

३. **शिष्य**—बैठे ही बैठे कहा है? हमारे बौद्धधर्म के महा-महापंडित आचार्य चरण तुम्हारे सन्मुख खड़े हैं, और तुम बैठे ही हो।

महा०--(गात्रोत्थानपूर्वक) क्षमा करौ आचार्यदेव मेरे अपराध को और विराजौ।

१. **शिष्य०**—विराजें कहाँ? शून्य मैं या पत्थर पर? आसन कहाँ है?

महा०-(तुरन्त अपनी चादर उतार आसन बना) विराजिये!

बौद्धा—(आसन पर बैठ जाते है। शिष्यगण पीछे बैठ जाते हैं)

महा०--आचार्य देव! बड़ी कृपा करी जो दर्शन दियो।

२. **शिष्य**--ये दर्शन देने नहीं, शास्त्रार्थ करने आये हैं।

महा०--शास्त्रार्थ नहीं शास्त्र-चर्चा करैं तो मोकूँ बड़ी प्रसन्नता होयगी। आप अपने श्रीमुख सों कछु कृपा करैं।

बौद्ध--सर्वप्रथम तो मेरी यह जिज्ञासा है कि आप जो कृष्ण कृष्ण गाते हैं, रोते हैं, वह 'कृष्ण कौन है एवं उससे आप का क्या सम्बन्ध है? प्रयोजन क्या है?

महा०--श्रीकृष्ण सर्वात्मा हैं, परमात्मा हैं, परब्रह्म है।

बौद्धा०--आत्मा, परमात्मा, परब्रह्म - ये सब भ्रममात्र है ये असिद्ध हैं—किसी-भी प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकते।

महा०—असिद्ध नहीं स्वतः सिद्ध है सूर्यवत्। प्रमाण की कोई आवश्यकता ही नहीं।

बौद्धा०—सूर्य तो प्रत्यक्ष है, आत्मा, ब्रह्म प्रत्यक्ष कहाँ है?

महा०—जैसे "नास्ति" पद में 'अस्ति पद प्रत्यक्ष है के नहीं 'अस्ति' बिना नास्ति' पद सर्वथा असिद्ध है। अतएव प्रथम आप 'अस्ति' पद कूँ असिद्ध करो तब ही 'नास्ति सिद्ध होयगो। "मैं हूँ" या प्रत्यक्षानुभूति कूँ खण्डन करौ तब ही "मैं नहीं हूँ" यह सिद्ध होयगो।

बौद्धा--(चुप)

महा०--भगवन्, यह "अस्ति-तत्व" ही हमारो आत्म-तत्व है, ब्रह्मतत्व है।

१. **शिष्य**--परन्तु स्वामिन्! हमारे बौद्ध-धर्म में नाम रूपात्मक जगत् से पृथक् कोई एक व्यापक नित्य वस्तु अमान्य है। "सब्बासब सूत्र" में भगवान् बुद्ध की यह स्पष्ट घोषणा है कि 'आत्मा अथवा ब्रह्म यथार्थ में कुछ नहीं है, भ्रम मात्र है।' तथा "ब्रह्मजाल सूत्त" में भी प्रथम आत्मा की भिन्न-भिन्न ६२ प्रकार की कल्पनाएँ बतला कर अन्त में यही सिद्ध किया गया है कि ये सभी मिथ्या दृष्टि हैं केवल भ्रममात्र हैं। यही हमारे बौद्ध-धर्म का निर्णीत सिद्धान्त है।

महा०--तो भगवन्! यदि आत्मा अथवा ब्रह्म केवल भ्रम ही भ्रम है तब तो समस्त कर्म-धर्म ही आधार के बिना निराधार है जाय है, नींव के बिना शून्य है जाय है। जब नित्य वस्तु कोई है ही नहीं एवं जो है सो सब अनित्य ही अनित्य है--देह अनित्य, जगत् अनित्य, नाम रूप सब ही अनित्य हैं तब तो न तो नित्य सुख ही रह्यौ, न वाको अनुभव करवे वारो ही रह्यौ तो फिर कर्म-धर्म, आचार-विचार सब निष्फल निष्प्रयोजन हैं पुनः जेसे गृहस्थ को सुख अनित्य वैसे ही विरक्त को सुख हू अनित्य। तब फिर आप गृह-त्यागकर भिक्षु क्यों बनै? कौन-सो नित्य सुख प्राप्त करवे के लिये जबकि नित्य सुख नाम की कोई वस्तु आप के धर्म में है ही नहीं? सब अनित्य, सब क्षणिक, सब भ्रम है!!

बौद्धा—सुनो! हमारा साध्य है दुःखनाश एवं निर्वाण-प्राप्ति। यह गृहस्थ में सम्भव नहीं। इसी कारण गृह-त्याग एवं भिक्षु-धर्म का आश्रय परमावश्यक है।

महा—दुःख नाश सों कहा तात्पर्य है?

बौद्धा०—हमारे बुद्ध भगवान् ने अदृश्य आत्म-अनात्म का अन्तहीन विबाद त्यागकर दृश्य चार बातों पर ही विशेष बल दिया है। वे चार बातें हैं :-

१. संसार में दु:ख प्रत्यक्ष है।

२. दु:ख का मूल वासना-कामना है।

३. दु:ख का समूल विनाश ही कर्त्तव्य है।

४. दु:ख नाश का साधन वैराग्य है।

इसी को हमारी भाषा में दु:ख, समुदाय, निरोध एवं मार्ग कहते हैं। इन चार मूल तत्वों का नाम "अर्थ सत्य" है। भगवान वुद्ध ने इसी का प्रचार किया। इसी कारण वैराग्य द्वारा दु:ख का समूल विनाश करके निर्वाण अवस्था प्राप्त करने हेतु हम भिक्षु बने हैं।

महा०--"निर्वाण अवस्था" सों कहा तात्पर्य है?

बौद्धा०--'निर्वाण' शब्द का अर्थ है बिराम प्राप्त कर लेना। दीपक बुझ जाने के समान, दु:खमूलक वासना का नाश हो जाना ही निर्वाण अवस्था है।

महा०—आचार्य देव! यामें शंका की द्वै बात हैं। निर्वाण को अर्थ आपने वासना को नाश है कै दु:ख सों विराम पामनो बतायो। तो यहाँ प्रथम शंका तो यह होय है कि यह विराम पायवे वारो कौन है? वाको नाम कहा है? आत्मा तो आप मानौ ही नहीं है—भ्रम बताओ हौ। तो यह विराम-सुख पायो तो पायो कौनने पायो? वाको कोई नाम कोई परिचयहू तो हौनो चाहिये।

बौद्धा०— (चुप)

महा०—और दूसरी शंका यह है कि आपने दीपक की भाँति बुझ जायवे कूँ निर्वाण कह्यौ। तो दीपक को बुझानो एक क्रिया मात्र है। यासों 'निर्वाण' तो केवल एक क्रिया-दर्शक नाम भयो। आधारदर्शक नाम कहा है सो बतावैं। हमारे शास्त्रन में हू 'ब्रह्म-निर्वाण' पद को प्रयोग है। वहाँ वाको अर्थ है ब्रह्म के आधार में आत्मा को लय है जानो। परन्तु आपके धर्म में तो ब्रह्म तथा आत्मा दोनों ही नहीं हैं। तो फिर यह 'विराम कौनने' तो पायो तथा 'कौन में' पायौ। अर्थात् या निर्वाण क्रिया को आधार कौन है एवं आधेय कौन है? यह द्वै तत्व स्पष्ट करवे की कृपा करैं।

बौद्धा०—आधार तत्व को नाम 'शून्य' है।

महा०—और आधेय-तत्व को नाम?

बौद्धा०—(चुप)

महा०—अच्छो तो यह आपको 'शून्य' नित्य वस्तु है। कै अनित्य है?

बौद्धा०—(चुप) ?

महा०—आप ही के सिद्धान्तानुसार जब नित्य नाम की कोई वस्तु ही नहीं तो 'शून्य' हू अनित्य ही भयो। तब तो निर्वाण को कोई अर्थ ही नहीं रह्यौ। और जो यदि आप अपने सिद्धान्त के विरुद्ध 'शून्य' कूँ नित्य मानौ हौ तब तो वह आपको 'शून्य' हमारे वेदान्त को ब्रह्म तत्व ही भयो जो सत् चित् आनन्द रूप है। भयो कै नहीं?

बौद्धा०—(चुप)

महा०—अतएव आपके निर्वाण की व्याख्या शास्त्र एवं युक्ति दोनों के विरुद्ध है। तथा हमारे वेदान्त को 'ब्रह्म-निर्वाण' पद ही शास्त्रसम्मत एवं युक्ति संगत है।

बौद्धा०—मैंने तो आरम्भ में ही कह दिया कि बुद्ध भगवान् ने अदृश्य आत्मा एवं ब्रह्म के सम्बन्ध में वाद-विवाद का निषेध करकै दृश्य व्यवहार को ही बौद्ध धर्म का आधार बनाया है।

महा०—परन्तु जैसे व्यवहार के विचार में व्यवहार का सिद्धान्त ही कर्त्तव्य है, वैसे ही तत्व विचार काल में तत्व-निर्णय ही कर्त्तव्य है। तत्व-निर्वाण न करनो शास्त्रालोचना नहीं है—वह तो एक प्रकार को पलायनवाद ही है।

बौद्ध०—(चुप)

महा०—ऐसे ही आपके बौद्ध धर्म ने वैदिक कर्मवाद एवं पुनर्जन्म को ग्रहण कियौ है परन्तु वे तो एक अमर आत्मा कूँ मानै विना सिद्ध है ही नहीं सकै है।

बौद्धा०—(चुप)

महा०—कृष्ण कृष्ण (पूर्ववत् जपने लगते हैं)

बौद्धा०—(क्षण काल चुप रह) स्वामिन्! अब हम जाते हैं फिर आयँगे (उठकर चल देना। शिष्य गण पीछे-पीछे)

महा०—(गात्रोत्थानपूर्वक) कृष्ण कृष्ण।

(पटाक्षेप)

समाज　　　　　　　　　**सो०**

प्रभु सद् युक्ति विचार, बौद्धवाद खंडन किये।
गये वादी जब हार, द्वेष ज्वाला धधकी हिये।।

(प्रवेश केवल शिष्य गण)

१ शिष्य—मार कर भगा देना होगा-मार पीट कर।

२ शिष्य—नहीं श्रमण! यह जंगली कायदा है।

३ शिष्य—तो-तो-भोजन में विष मिला दो।

२ शिष्य—नहीं नहीं! हम बौद्ध हैं। अहिंसा हमारा धर्म है।

१ शिष्य—परन्तु दण्ड तो उस उद्दण्ड को मिलना ही चाहिये।

२ शिष्य—उसके लिये मैंने उपाय सोच लिया है। साँप भी न मरे और लाठी भी न टूटे।

अन्य सब—बताओ! शीघ्र बताओ! वह कैसा दण्ड है?

२ शिष्य—(एक एक करके सबके कानों में कुछ कहुता है। सुनते ही सब खुशी के मारे उछलने लगते हैं)

१ शिष्य—बहुत सुन्दर! वाह वाह वाह! बहुत ही सुन्दर विचार।

२ शिष्य—बस देर मत करो! कहीं चला न जाय।

३ शिष्य—शुभस्य शीघ्रम्। शुभस्य शीघ्रम्।

(पटाक्षेप) (कहते कहते प्रस्थान)

समाज—　　　　　　　　　**दोहा**

आये भक्त जन गाँव के, बैठे प्रभु पद ठौर।
प्रभु गात गवावत, कीर्तन धुनि मचि रौर।।

(दृश्य! महाप्रभु एवं भक्त गण बैठे हुये)

महाप्रभु—(गाते हैं। भक्तजन अनुसरण करते हैं)

पद

हरे कृष्ण हरे राम बोल रे।
नाम प्रेम फल धर्म को सार,
　　　　　　　　चखे जो हरि हरि बोल रे।।

नाम प्रेम धन अर्थ को सार,
लहे जो हरि हरि बोल रे।
नाम प्रेम रस काम को सार,
पिवे जो हरि हरि बोल रे।।
नाम प्रेम पथ मुक्ति को द्वार,
खुले जो हरि हरि बोल रे।।
नाम 'प्रेम' भाव हरि को सिंगार,
करे जो हरि हरि बोल रे।।
हरि बोल हरि बोल हरि बोल हरि बोल।

समाज **दोहा**

शिष्य वहु मिलाय भतो, लै प्रसाद भरि थार।
प्रभु ढिंग आय वदत वहु, विनय वचन मनुहार।।

शिष्य दल—(प्रवेश! एक के हाथ में बड़ा थाल। वस्त्र से ढका)

१ शिष्य—स्वामिन्! हमारे आचार्यदेव ने यह प्रसाद आपकी सेवा में भेजा है। कृपया स्वीकार करें।

महा०—प्रिय बन्धुओ! मैं तो अपने सेवक अथवा किसी भक्त ब्राह्मण के हाथ की भिक्षा ही ग्रहण करूँ हूँ।

२ शिष्य—भगवन्! हमें आपके नियम का ज्ञान हो गया था। इसी कारण हम विष्णु-मन्दिर से भगवान् का महाप्रसाद लेकर आये हैं, आप इसे अन्यथा न समझें।

समाज **चौ०**

विष्णु प्रसाद को नाम सुनाये।
वस्तु अभक्ष्य थार भरि लाये।।
हरीच्छा एक पंछी उड़ि आयो।
देह विशाल गरुड़ सम आयो।।
झपटि थार गहि चोंच उड़ायो।
ले आचारज शीश गिरायो।।

नेयथ्य ध्वनि—हाय हाय! हमारे आचार्य का मस्तक थाल ने काट दिया। सिर काट दिया। मार दिया।

शिष्य—(बाहर से भीतर दौड़ते हुये) हाय! हाय! गुरुदेव गुरुदेव! यह क्या अनर्थ हो गया।

शिष्य दल—(प्रवेश-गुरु के मृत देह को लेकर। सिर का भाग ढँका हुआ)

समाज **सो०**

मृत देह लै आय, धरि आगे बहु रोवहिं।
दैहु गुरुहिं जिवाय, हम अपराधी गुरु नहिं।।

१ शि०—भगवन् अपराधी तो हम हैं। आचार्यदेव नहीं हैं, हमको ही दण्ड दीजिये परन्तु आचार्यदेव को तो प्राण-दान देने की कृपा करें।

२ शि०—हाँ! हमने आपका धर्म भ्रष्ट करना चाहा। आचार्य तो निर्दोष हैं। हमको हाथों हाथ दण्ड मिल गया, अब क्षमा करें। हम आपकी शरण हैं। शरण हैं।

३ शि०—हम लाये अपवित्र अखाद्य पदार्थ और उसे बताया 'विष्णुप्रसाद!' घर महदपराध! परन्तु अब तो क्षमा! देव! क्षमा! गुरु को प्राण-दान।

१ शि०—आप सर्व समर्थ हैं—यह प्रत्यक्ष हो गया। हम आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके और हमारा सर्वस्व नष्ट हो गया। अब कृपा करो कृपा निधे!

सब—हम शरण हैं। प्रसीद! प्रसीद!

समाज **चौ०**

शरन शरन कहि चरन गहारे।
प्रान - दान की भीख पुकारे।।

महाप्रभु **चौ०**

कृष्ण कृष्ण सव मिलि कै गाओ।
कृष्ण कृष्ण गुरु-श्रवण सुनाओ।।
कृष्ण कृष्ण मेरे कृष्ण कृपाला।
प्रान दान करैं दीन दयाला।।

शिष्यगण—(आचार्य को बीच में कर चारों ओर बैठ कृष्ण कृष्ण संकीर्तन करने। बीच-बीच में दो शिष्य दो तरफ से दो कानों में कृष्ण सुनाते हैं)

कीर्तन—कृष्ण कृष्ण राम कृष्ण। कृष्ण कृष्ण राम कृष्ण (उठकर नृत्य-कीर्तन में तन्मय हो जाते)

समाज **दोहा**

नाम प्रमत्त करि प्रभु, गये आप पलाय।
आई चेतना नयन खुले, कृष्ण कृष्ण मुख गाय।।

महाप्रभु—(चुप चाप उठकर चले जाते। कृष्णदास पीछे पीछे)

चौपाई

कृष्ण कृष्ण कहत भये ठाड़े।
नाचत शिष्यन संग मिलि गाढ़े।।
प्रेम तरंग जब उतरायो।
लखत सचेत प्रभु नहीं पाये।।

१ शिष्य०—(सावधान हो महाप्रभु को इधर-उधर देखते हुये) हैं। वे कहाँ चले गये? यहाँ तो नहीं हैं।

२ शिष्य०—जीवन-दान करकै क्या अन्तर्द्धान हो गये?

३ शिष्य०—यहीं कहीं होंगे। अधिक दूर गये नहीं होंगे। चलो ढूँढो। उनको मनाओ। (सब दौड़ चले जाते)

आचार्य—हाँ हाँ! शीघ्र जाओ! जैसे बने वैसे उनके दर्शन मुझे करा दो। मैं उनके चरणों में पडूँगा। उनका शिष्य बन जाऊँगा। कृष्ण कृष्ण राम कृष्ण (गाते-गाते 2 प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

(तीरथ राम सेठ वेश्या-उद्धार)

समाज **चौपाई**

तीरथ "वेदगिरि" प्रभु आते।
'पक्षी तीरथ' जेहि जग गाये।।
सेत गीध द्वै तहँ नित आवैं।
करि भोजन पुनि उडि जावैं।।
'श्वेत बाराह' तीर्थ पुनि गमने।
'वृद्ध कोल' हू दरसन कीने।।
"अक्षयव" दर्शन प्रभु पाये।
तहाँ बटेश्वर शिवजु सुहाये।।
दिवस सात कीन्हे विश्रामा।
चरित एक कीन्हे अभिरामा।।

दोहा

निर्जन बट तट बैठि प्रभु कृष्ण कृष्ण जपैं नाम।
सेवक कृष्ण दास गयो, भिक्षा हेतहिं गाम।।

महा०—(वृक्ष नीचे बैठे जप-मगन) कृष्ण, कृष्ण कृष्ण

समाज　　　　**चौ०**

मारग तेहि महाजन इक आयो।
नाम तो तीरथ राम कहायो।।
गुन लच्छन विपरीत हि पाये।
चरित हीन मदिरा तिय भाये।।
सत्या बाई लक्ष्मी बाई।
लिये संग आयो तिहिं ठाईं।।

(प्रवेश तीरथ राम सेठ। दक्षिणा वेश भूषा।।
दो वेश्याएँ—लक्ष्मी, सत्या—गाती हुई)

लक्ष्मीबाई—जै जैवन्ती। ठुमरी-३

सत्याबाई—जाओ जी जाओ मैं तुमसे न बोलूँगी।
ने बोलूँगी, न बोलूँगी, न बोलूँगी, न बोलूँगी।। जाओ
यहाँ तो तहीं आते ना जानें कहाँ कहाँ जाते।
बातें बनाते झूठी, मैं न भूलूँगी, न भूलूँगी।। जाओ

तीर्थराज—(महाप्रभु पर दृष्टि जा पड़ती है। तो देखते हुये) देखो देखो वीवियो। यह कोई स्वामी बैठा है।

सत्या०—अपने भजन-सुमरन में लगे हुये हैं।

तीर्थ०—ओ स्वामी बाबा! यहाँ बैठे क्या मिल जायगा? चलो बस्ती में हमारे संग। खूब खातिरदारी करेगे।

महा०—(अनखुले-अनदेखे जपते रहते हैं)

सत्या०—(बड़े वैरागी मालूम पड़ते हैं)

लक्ष्मी०—रहन दे सत्या। हम जैसी से पाला पड़ जाय तो सब त्याग-वैराग हवा हो जायगा।

तीर्थ०—ओ स्वामी बाबा! आँख खोलो! इधर देखो।

लक्ष्मी०—हम तुम्हारौ खातिरदारी के लिये खड़ी हैं।

महा०—(आँखें खोल देखते-कुछ ठहर कर) क्यूँ भगत जी, कहा बात है?

तीर्थ०—बात यही है कि हमारे संग चलो। भूखे प्यासे होंगे भोजन-पानी करना।

लक्ष्मी०—आराम भी करना। थके होंगे!

महा०—हमारो सेवक भिक्षा लायवे गयो है।

तीर्थ०—वह मिल जायगा। उसे भी ले चलेंगे। चलो।

सत्या०—साधु बाबा। तुम ऐसे सुन्दर युवा पुरुष होकर क्यूँ भूखे-प्यासे भीख माँगते फिरते हो।

महा०—श्रीकृष्ण की इच्छा।

तीर्थ०—तो श्रीकृष्ण की इच्छा ही से हम आये हैं। उनकी अब इच्छा है कि भीख माँगना छोड़ो और मौज से रहो हमारे संग (वेश्याओं को समीप जाने के लिये संकेत करता है)

सत्या-लक्ष्मी—(समीप जा अलग-बगल मैं बैठ जाती हैं)

महाप्रभु०—(अनदेखे जपते रहते हैं) कृष्ण कृष्ण "०"

सत्या—साधु बाबा! हमारी तरफ तो देखो।

लक्ष्मी—हमारी सुनो! अपनी कहो! हम तुम्हारी बगल में बैठी है। आँखें खोलो! देखो।

महा०—(आँखें खोल देखते हुए खादर)

मेरी माताओ! कहो! पुत्र के लिये कहा आज्ञा है?

दोनों—(चौंक कर पीछे हटतीं-काँपने लगती और देखती ही रह जाती हैं)

समाज **दो०**

चकित द्रवित पुलकित भईं, मिटि गयो काम विकार।
मधुर "मात" पद कानपरत, उमग्यौ नेह शतधार।।

महा०—बोलो माताओ! आज्ञा करौ।

सत्या०—(गद्-गद् कंठ) ओह! यह तो पापिनियों को माता माता कहता है।

लक्ष्मी—(रुद्र कण्ठ-अटक-अटक) मा-ता! मेरी मा.......तो ओह! आज तक तो हमको किसी ने भी मा-ता नहीं कहा! 'माता' शब्द तो लाखबार सुना परन्तु अर्थ-बोध तो आज ही हुआ। कानों में अमृत उँडेल दिया। हृदय फूट पड़ा। छाती भर आयी। प्यार उमग रहा है। मा-ता।

सत्या०—कितना भोला-भाला मुख है। युवक नहीं बालक है। आँखों में मोती-जैसे आँसू। और मुख में मा-ता। हम पापिनी पतिताओं को माता-मेरी माता।

लक्ष्मी०—हे परमोदार परम स्नेही पथिक। आप कौन हैं जो हमको माता कह कह कै हमारे तन-मन, प्राण, आत्मा, रोम-रोम में प्यार भर रहे हैं।

दोनों-पद

पथिक तुम कौन कहाँ से आये,
ममता भरे बोल सुनाये।।टेक।।१।।
ऐसी ये आँखें कहाँ-से पाई,
जग वालों में ये नाहीं।
भेद न छेद दोष देख पाये,
तुम कौन कहाँ से०।।२।।
ऐसा यह हृदय कहाँ से पाये।
दया मया यह कहाँ से लाये।।
देख के नीच पिघल जो जाये,
तुम कौन०।।३।।
ऐसी उदारता कहाँ से पाई,
पातुरी पतिता माता बनाई।
कीच नीच ले शीश चढ़ाये,
तुम कौन०।।४।।
आँखें खुलीं खोले तुम आई,
सो न जायँ फिर करो सहाई।
देओ पद 'प्रेम' विषय नसाये,
तुम कौन कहाँ०।।५।।

महा०—माताओ! कृष्ण कहो! कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहो।

सत्या-लक्ष्मी—हा कृष्ण! कृष्ण! हमें नरक से निकालो पतित बन्धो! निकालो! दया करो।

आसा-माँड केहरवा—

हे अशरन शरन दयाल, काटो अब माया जाल।
तुम समरथ सहज कृपाल, हम पे नरक पड़ीं बेहाल।।५।।
तुम पतित पावन उदार, हम पतित अपावन नार।
अब पायो बल आधार, कही जब मात पुकार।।२।।
हम तो कपट की खान, विषय विष ही बसे प्रान।
नहीं प्रभु सौ पहचान, अब करो 'प्रेम' कन दान।।
उद्धार करो। दीनबन्धो! शरण हैं! शरण हैं।

(श्री चरण समीप लोट पड़ती है)

महा०—तुम्हारो उद्धार तो है गयो माताओ! अब तो तुमकूँ एक ही काम करनो है।

गौड़ सारंग केहरवा

कृष्ण कहो कृष्ण कहो, कृष्ण कहो कहो।
पाप ताप कोटि कटें, कृष्ण कहो कृष्ण कहो।।१।।
जब ही तुम कृष्ण कह्यो, आय कृष्ण हाथ गह्यो।
है गईं अब कृष्ण की तुम, कृष्ण कहो कृष्ण कहो।।२।।
जो मैं कहूँ साँची कहूँ, सुनो गुनो मगन रहो।
कृष्ण की तुम कृष्ण तुम्हारे, कृष्ण कहो कृष्ण कहो।।३।।
बीती सब भूल जाओ, एक ही बात याद करो।
दासो हम कृष्ण की हैं, कृष्ण कहो कृष्ण कहो।।

(अब तुम यह निश्चित समझ लेओ कि)

पतिता नहीं पावन तुम पावन औरन कूँ करौ।
तरो आप तारों 'प्रेम' कृष्ण कहो कृष्ण कहौ।।

सत्या-लक्ष्मी **धुन**

कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण। कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण।।

समाज— **सो०**

अचरज दया की रीति, लखि लखि तीरथराम हू।
पर्यौ चरण भयभीत, त्राहि नाथ कहि त्राहि माम्।।

तीरथराज—(महाप्रभु के चरणों पर पड़ते हुए) त्राहि माम्। मैं महा अधम दुष्ट हूँ। मैंने आपको अपने समान हो दीन बन्धो! मैं इनसे भी अधिक

पतित दुराचारी लम्पट हूँ। मेरा भी उद्धार करो। शरण! शरण!! (चरणो पर पड़ जाता है।

गजल

मिल गई नैया बहते कौ अब,
लेओ चढ़ाय पार करो।
धार करार न पैर सकूँ मैं,
लेओ चढ़ाय पार करो।।
तन का हारा मन का मारा,
कर्म से हीन, धर्म से छीन।
देने को नहीं कुछ दीनानाथ,
लेओ चढ़ाय पार करो।।
विषसे भरा हूँ विष से पला हूँ,
विषही कमाया विष रमाया।
यही कमाई लेओ तो लेओ,
लेओ चढ़ाय पार करो।।
कभी न मैंने हरि को ध्याया,
न उनके बन्दों से दिल लगाया।
फिर भी तुम को जब मैंने पाया,
लेओ चढ़ाय पार करो।।
न जाने दिल क्यों भर-भर आता,
क्या यह चाहता किसको चाहता।
वह कौन 'प्रेम' मुझे रुलाता,
देओ मिलाय पार करो।।
(चरणों पर पड़ रुदन)

महा—कृष्ण कहो! उठा! श्रीकृष्ण सबके हैं। तुमहू श्रीकृष्ण के हो, यासों भई सो भईं। अब चिन्ता तजो और श्रीकृष्ण को भजो। बोलो तीनों मिल करके, भुजा उठा करके—

कृष्ण हे कृष्ण हे दीन बन्धु कृष्ण हे।
कृष्ण हे कृष्ण हे दया सिन्धु कृष्ण हे।
दीनबन्धु कृष्ण हे, दया सिन्धु कृष्ण हे।।

महाप्रभु—(खड़े हैं। दोनों हस्त कमल अभय-मुद्रा में अगल-बगल में हटकर घुटनों पर बैठी हुई सत्या, लक्ष्मी के शीश पर झुके हुए हैं। चरण के

समीप नीचे तीर्थराम बैठा है। तीनों भुजाओं को उठाकर महाप्रभु के कीर्तन का अनुसरण कर रहे हैं)

(पटाक्षेप)

इति बौद्धाचार्य एवं तीर्थराम-वेश्या-उद्धार लीला। सम्पूर्ण

❖

संन्यास-लहरी **द्वादश कणामृत**

श्रीरंगनाथ-दर्शन

जय कृष्ण चैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्त वृन्द।।

श्लोक

देश देशे सुजन-निचये प्रेम विस्तारयन्।
रङ्गक्षेत्रे कतिपय दिवा भट्टपल्ल्यामवात्सीत्।।
भट्टाचार्यान् परम कृपया कृष्ण भक्तांश्चकार।
तं गोपालालय-सुखनिधिं गौर मूर्त्तिं स्मरामि।।

दो०

श्रीरंगक्षेत्र-काबेरी तट, बितये चातुर्मास।
भट्ट परिवारहिं कृष्ण भक्त, कीन्हे गौर सुख रास।।
पुनि गोपालभट्टहिं, अपनाये प्रभु गौर।
यथामति वर्णन करौं, करो कृपा की कोर।।

चौ०

पतितन कूँ प्रभु प्रेमी बनाये।
आगे चलि कांचीपुरी आये।।
जय जय जय श्रीकाँची नगरी।
हरि हर नगरी मन्दिर नगरी।।
कामाक्षी एकाम्रेश्वर हर।
वरदराज मूरति विष्णुवर।।

करि दरसन प्रभु अति सुख पाये।
तजि काँचीपुरी आगे धाये।।
कृष्ण हिं गावत कृष्ण लखावत।
चले गौर, रंग कृष्ण रंगावत।।
पंथ धन्य जित-जित पग धारे।
पथिक धन्य जिन कृष्ण उचारे।।
गाम धन्य जित गौर रमाये।
कृष्ण भक्ति सुलभ करि पाये।।

महाप्रभु—(प्रवेश कृष्णदास एवं जनता सहित कीर्तन करते हुए)

कीर्तन-पद

कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण सुखधाम हरे।
सुखधाम हरे, दयाधाम हरे, नयनाराम हरे, प्राणाराम हरे।।
कृष्ण कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, रसरास हरे।
रस रास हरे, मधु हास हरे, मृदु-हास हरे, प्रेम पाश हरे।।

(कीर्तन करते करते प्रस्थान)

समाज **चौ०**

"मधुरान्तक" महा प्रभु आये।
कोदंडधर राम दरसाये।।
'अरुणाचल' शिव कीन्हे दरसन।
आगे पुनि तीरथ 'कुंभकोनन'।।
कुम्भकारी कपाल सरोवर।
व्योम-लिंग विख्यात 'चिदम्बर'।।
'सिवाली भवानी' 'त्रिपुरासुन्दरी'।
विचरे तीरथ तीरथ गौर हरि।।
नाम हू गिनत होवै विस्तारा।
को जानै पुनि चरित अपारा।।
शिव, विष्णु, देवी, सब ठौरा।
जावैं, गावैं, नाचैं गौरा।।
भेदभाव अन्तर नहिं लेशा।
मगन भाव प्रेम आवेशा।।

देखे सो देखत रहि जावैं।
लखि सुरूप अँखियाँ सुख पावैं।।
सुनै नाम सो गावत धावै।
गावै सो वैष्णव वनि जावै।।
लै लै वस्तु नारि-नर आवैं।
प्रभु न लैयँ कछु, बहु दुख पावैं।।

दोहा

अचरज रूप अचरज दया, अचरज नाम अनुराग।
अचरज दान नाम प्रेम, अचरज जन-गन भाग।।

चौ०

तब श्रीरंगम् क्षेत्र नियराये। काबेरी दरसन सुख पाये।।
पावन परम काबेरी न्हाये। रंगनाथ दर्शन हित धाये।।

(प्रवेश महाप्रभु, कृष्णदास, जनता)

१. पुरुष—भगवन्! यह आगे श्रीरंगनाथ मन्दिर के दर्शन है रहै हैं। यह मन्दिर परम पावन काबेरी नदी की द्वै धारान के मध्य में बस्यो भयो है।

२. पुरुष—चार मील तक, भगवन्! मन्दिर की वसावट है। सात बड़े ऊँचे-ऊँचे पाषाण के परकोटे हैं- एक के भीतर एक-प्रवेश के लिये २१ द्वार हैं। परकोटेन के ऊपर २४ विशाल गोपुर हैं जिनकी शिखर बादर सों टक्कर लेय हैं। वह देखो! प्रधान गोपुर के दर्शन है रहे हैं। यहीं मुख्य प्रवेश-द्वार है। यासों भीतर पधारे भगवन्।

(प्रस्थान दूसरी ओर से पुनः प्रवेश)

१. पुरुष—प्रभो! यह तो एक परकोटा पार भयो। अब ही ऐसे-ऐसे छः परकोटा पार करने परैगे। तब जायकै श्रीरंगनाथ भगवान् के सम्मुख पहुँच पायेंगे।

२. पुरुष—भगवन्! यह मन्दिर कहा एक पूरी नगरी है। तीस हजार से अधिक जन याके भीतर बसैं हैं। या पहली परिक्रमा में चारों ओर दुकान ही दुकान है। दूसरी तीसरी परिक्रमा में पुजारी और पंडान के आवास हैं। चौथी-पाँचवीं और छठीं परिक्रमा में पचासन देवी-देवतान के मन्दिर एवं मण्डप हैं—शत शत, सहस्र-सहस्र खम्भान के मण्डप।

३. पुरुष—भैयाओ! जब तक ये छः परिक्रमा पार होयँ तब तक हमारे संन्यासी प्रभु कूँ श्रीरंगनाथ को भजन सुनामते चलो।

अन्य जन—हां भाई! सुनाओ कछु।

समाज **रसिया**

(तर्ज-जपे जा राधा राधा)
(नोट-प्रत्येक कड़ी में एक परिक्रमा)
श्रीरंगनाथ भगवान् (जय रंगनाथ भगवान)
तेरी महिमा अपरम्पारी।। तेरी महिमा श्रीरंग।।१।।
(याके) परकोटा सात बनाये, जे सात लोक कहाये।
मन्दिर वैकुण्ठ समान।। तेरी महिमा०।।२।।
द्वार इक्कीस सुहाये, गोपुर चौवीस चढ़ाये।
शीश छिये आसमान।। तेरी महिमा।।३।।
मन्दिर ए पूरी नगरी, नगरी विच दुनियाँ सगरी।
तेरे पार्षद भगवान।। तेरी महिमा०।।४।।
कहूँ शंकर राम नारायण, कहूँ लक्ष्मी गरुड़ सुदर्शन।
हजारन खम्भ दालान।। तेरी महिमा०।।५।।

१. पुरुष—यह अन्तिम परिक्रमा है भगवान्। अब हम श्रीरङ्गनाथ जो के समीप ही पहुँच गये हैं। यह श्रीरङ्गनाथ भगवान सतयुग के विग्रह है :—

(दृश्य मन्दिर में—(१) शेषशादी चतुर्भुजी भगवान्

(२) उनके आगे खड़ी चतुर्भुजी:)

जनता—श्रीरङ्गनाथ भगवान् की जय हो।

पुजारी—ॐ नमो नारायणाय। पधारो भगवन्। पधारो-दर्शन करो। ये श्रीरङ्गनाथ भगवान् विराजे हैं। यह द्वै रूप में विराजमान हैं। एक तो शेषशायी मूर्त्ति है—सो अचल है। दूसरी ठाड़ी चलमूर्त्ति है यह उत्सव मूर्त्ति है। यह सत्‌युगी विग्रह हैं। स्वयं नारायण भगवान् ने यह अपनो विग्रह ब्रह्माजी कूँ दियो हो। ब्रह्माजी सोंविवस्वत मनु के पुत्र राजा इक्ष्वाकु कूँ त्रेतायुग में प्राप्त भयो। तब सों यह श्रीरङ्गनाथ जी सूर्यवंशी राजान के आराध्य कुल देवता बन गये।

पूर्व रसिया

सतयुग में ब्रह्मा पाये, त्रेता इक्ष्वाकु के आये।
बने राम के इष्ट भगवान। तेरी महिमा०।।६।।

पश्चात् त्रेतायुग में दशरथ महाराज के अश्वमेघ-यज्ञ में हमारे यहाँ के चोल नरेश धर्म वर्मा हू अयोध्या पधारे हुते। वे श्रीरङ्गनाथ जी के दर्शन करके

मुग्ध है गये। अयोध्या सों लौट करके श्रींरग-प्राप्ति के संकल्प सों तपस्या करवे लगैं। तब सर्वस ऋषि-मुनिन के राजा कूँ समझायो कि श्रीरंग जी स्वयं तुम्हारे राज्य में पधारवे वारे हैं। तुम तपस्या त्याग करके प्रतीक्षा करो।

तदनन्तर जब भगवान् श्रीराम लंका विजय करके अयोध्या लौटे तथा उनको राज्याभिषेक भयो तो वे मुँहमांगी वस्तुदान करवै लगै। वा समय विभीषण ने श्रीरङ्गनाथ जी के लिये याचना करी उदार चक्रचूड़ामणि श्रीराम ने श्रीरङ्गनाथ जी प्रदान कर दियो।

विभीषण लै कै चल्यो तो देवता ने सोच्यो कि यह दिव्यमूर्ति राक्षसी लंका के योग्य नहीं है। सो जब विभीषण यहाँ काबेरी-तट पै आय पहुँच्यो तो वाने भगवान् रङ्गनाथ जी को विमान तट पै पधराय दियो तथा अपनो नित्य क्रिया कर्म करवे लग्यौ। जब निवृत्त भयो और विमान कूँ उठायवे लग्यौ तो विमान उठै नहीं। बड़ो दुखित भयो। तो श्रीरङ्गजी वोले "दुखी मत हो विभीषण! यह काबेरी को मध्य द्वीप परम पवित्र है। यहाँ के राजा धर्म वर्मा ने मेरी प्राप्ति के हेतु तपस्या हू करी है। ऋषि-मुनि हू राजा कूँ वचन दै चुके हैं। या सों मेरी इच्छा यहीं निवास करवे की है। तुम लंका सों नित्य यहाँ आय कै मेरो दर्शन कर जाया करौ। मैं लंका की ओर मुख करके दक्षिणमुखी है करके तुम्हारी ऊपर दृष्टि राखूँगो।

सो भगवन्! सर्वत्र तो सर्व मन्दिर में भगवन् उत्तर अथवा पूर्व कूँ मुख करके विराजे है परन्तु हमारे श्रीरङ्गनाथ जी अपने भक्त विभीषण पै कृपा करकै दक्षिणीमुखी बने विराजै हैं, ऐसो भक्तवत्सल शरणागत पालक स्वभान है इनको—

बोलो भक्तवत्सल श्रीरंगनाथ भगवान् की जय
शरणागत पालक विभीषण रक्षक की जय

पूर्व-पद रसिया

(या प्रकार सों)

ये छोढ़ अयोध्या आये, काबेरी आय बसाये।
पायो जो विभीषण दान।। तेरी महिमा०।।
लंका सों विभीषण आबैं, नित ही पूजन करि जावैं।
यह पायो है वरदान।। तेरी महिमा।।
(यहाँ) द्वापर बलराम जी आये भागवत में शुकमुनि गावे।
यह जुग जुगादि भगवान।। तेरी महिमा०।।

ये सेज पै शेष के सोवैं, सोय सोय के सृष्टि जोवैं।
करैं प्रेम-दृष्टि कल्याण। तेरी महिमा०।।

महा०—धन्य है बन्धुओ! आज आप सवने ने मो अतिथि पै बड़ी कृपा करी। भगवान् को कथामृत सुनाय बड़ो सुख दियो। और हू कछु सुनायवे की कृपा है जाय।

पुजारी—भगवन्! आप चातुर्मास्य यहीं व्यतीत करौ तो आप कूँ बहुत कछु सुनबे कूँ मिलैगो। या समय तो में एक कथा संक्षेप में सुनाऊँ हूँ।

श्रीरंगनाथ की आज्ञानुसार विभीषण जी नित्य ही लंका ते रथ में यहाँ आमते एव दर्शन-पूजन करकै चल्यौ जाते। एक दिना, दर्शन की उतावली में रथ बड़ी वेग सौं हाँक रहे है सो एक बृद्ध ब्राह्मण कुचल करकै मार्यै डार्यौ। तब तो यहाँ के ब्राह्मणान ने क्रुद्ध है कै पकड़ लियौ और उनकूँ मार डारवे के लिये पूरी चेष्टाकर डारी परन्तु वे तो एक कल्प के लिये अमर हैं। जब वे काहू प्रकार ते न मर्यौ तो उनकूँ बाँध करकै एक अँधेरे तहखाने में बन्द कर दियौ। विश्व के गुप्तचर हमारे नारदजी ने अयोध्या जाय श्रीरामजी कूँ सूचना पहुँचा दी। भक्त विपदा सों व्याकुल श्रीराम विमान में उड़े यहाँ आय पहुँचे तथा ब्राह्मणान सों कर बद्ध प्रार्थना करी कि सेवक को अपराध स्वामी को ही अपरोध मान्यो जाय है।

दोहा

सेवक को अपराध यह, स्वामी को अपराध।
देओ विभीषण छोड़ तुम, लेओ मोकूँ बाँध।।

सुनत ही ब्राह्मण सब गद्‌गद् है गये, विभीषण को मुक्त कर दियो तथा भगवान् की जय जयकार करवे लगै—

भक्तवत्सल भगवान् राम की जय।
शरणागत पालक राजा राम की जय।।

महाप्रभु—कीर्तन—श्रीराम जय राम जय राम।

जनता—(सम्मिलित हो तुमुल संकीर्तन नृत्य)

समाज **दो०**

श्री वैष्णव-आचार्य इक, श्रीवेंकट भट नाम।
भक्ति भाव प्रभु नृत्य लखि, आय कीन्ह प्रनाम।।

श्रीवेंकट०—(प्रणाम कर करबद्ध) भगवन्! यह जीव श्रीरंगनाथ प्रभु को एक तुच्छ किंकर है। आप यदि दास के गृह पधार करकै भिक्षा स्वीकार करें तो मैं कृतार्थ होऊँगो।

पुजारी—हाँ भगवन्! यह हमारे श्री सम्प्रदाय के एक विद्वान् आचार्य हैं। इनके सत्संग सों आपकूँ श्रीरङ्गनाथ प्रभु की अनेक लीला-गाथा सुनिवे को आनन्द मिलैगो।

महा०—जैसी श्रीरङ्गनाथ जी की आज्ञा।

श्रीवेंकट—तो भगवन्! अब परिक्रमा के मन्दिरन में देव-दर्शन करते भये पधार्यौ जाय।

समाज **दो०**

सेवक विप्र जु लाय कै, दीन्है माल्य-प्रसाद।
करि प्रनाम महाप्रभु चलै, श्रीवेंकटंभट साथ।।

महा०—(प्रणामान्ते) हरि बोल! (प्रस्थान)

समाज **चौ०**

निज मन्दिर बाहर प्रभु लाये। ठौर ठौर मंडम दरसाये।।
कहूँ सोहै झूला हित मंडप। कहूँ वसन्त नवरात्रि मंडप।।

(श्रीवेंकट भट्ट दर्शन कराते हुए भीतर-बाहर जाते-आते हैं)

सहस खम्भ शत खम्भ के मंडप।
गरुड़ चक्र, नटराज के मंडप।।
शंकर जम्वुकेश्वर राजैं।
सुब्रह्मण्य स्कन्द विराजैं।।
गोलाकार सरोवर सोहैं।
मन्दिर महालक्ष्मी मन मोहै।।
रङ्गनाथ कौ नाम विख्याता।
परमप्रिया जे श्रीरङ्गनाथा।।
सन्मुख सोहत सुन्दर मंडप।
तहँ बाँचत गीता इक भगत।।

विप्रभक्त—(बैठा गीता पाठ कर रहा)—
(श्लोकों का उच्चारण अशुद्ध)

समाज— **दोहा**

गद्‌गद् स्वर गीता पढ़त, नैन बहावत धार।
भावभोगी श्रीमहाप्रभु, ठाडे सुनै निहार।।

महाप्रभु—(वेंकटभट्ट सहित कुछ दूर खड़े चुपचाप सुनते रहते हैं)

समाज **सो०**

बोले शुद्ध न श्लोक, लोग हँसै निन्दैं कोई।
सहीं भक्त या लोक, मगन भाव तन्मय पढ़त।।

१. जनता—(परस्पर प्रति) कितनौ अशुद्ध बोल रह्यौ है। श्लोकन की हत्या कर रह्यौ है।

२. जनता—भगत जी जो ठहरे। संस्कृत-सों कहा मतलब!'

३. जनता—तो फिर गीत गाय लियौ करैं। 'गीता' के ही पीछे क्यों पड़े हैं। गीता पंडितन के लिये छोड़ दैवैं। सुनौ तो कितनो अशुद्ध पढ़ रह्यौ है। भगवान् प्रसन्न होंगे कै हँसैंगे?

समाज—

अपने भाव मगन पढ़ि जाहीं।
कान सुनै ना आन कहा हीं।।
क्रम क्रम गीता पाठ पुराये।
अध्याय अठारह गाय सुनाये।।
शीशहिं धारि प्रनाम जु कीन्हे।
कृष्ण कृष्ण नाम मुख लीन्हे।।
भाव चाव लखि प्रभु मन भाये।
आय समीप मृदु वैन सुनाये।।

महा०—(समीप जा) धन्य है विप्रदेव! धन्य है! आप के भावपूर्ण गीता-पाठ कूँ। देख-सुन करकै बड़ो ही आनन्द भयो। परन्तु आप यदि आज्ञा करौ तो एक जिज्ञासा है।

भक्तविप्र—(खड़ा हो हाथ जोड़) आज्ञा करो देव!

महा०—आप के पाठ सों तो यही प्रतीत होय है कि आप

पद।। **भैरव-दादरा।।**

समझौं नहीं शब्द कछु, अर्थ कहा फिर जानौं।
(तौहु) भाव इतनो चाव इतनो, अचरज ए मानौं।।१।।

भक्तविप्र—साँची कहौ मूरख हूँ, अर्थ नहीं जानौ।
आज्ञा गुरु शीशधरी, जैसे-तैसे गानौ।।२।।

(परन्तु गुरु-कृपा सों)

धरौं गीता हाथ जबै, आये हाथ कृष्ण मानौ।
आवै हियरा भरि भरि, अंगहु पुलकानौ।।३।।
खोलि लागौं पढ़न जबै, देखौं रथ आगे।
बैठ्यो पीछे अर्जुन है, आगे हरि विराजैं।।४।।
एक हस्त अश्वरास चाबुक कर दूजे।
मोरि वदन, अर्जुन तन कहैं बात बूझें।।५।।
गंडन प गालन पै, धूसर अलक सोहैं।
मन्द हँसन मोहन मन, सुधबुध सब महौं।।६।।
जब लगि करूँ गीता-पाठ, ऐसे दरस पाऊँ।
लागे तासों प्यारी गीता, पढत ही सरसाऊँ।।७।।
मन तो हेरे कृष्णमुखहिं, मुख सो गीता गाऊँ।
सो आनन्द सुख 'प्रेम' कैसे कहि बताऊँ।।८।।
छमहु भूल-दोष मेरे, कहौं सत्य सत्य।
मारग दरसाओ देव, अपनो जानि भृत्य।।९।।

(महाप्रभु का चरण-ग्रहण)

महा०—(मस्तक पर हस्त पधरा)

दो०

शुद्धि-अशुद्धि ते परे, जो हरि भाव-सिद्ध।
तुम्हरे भाव-आधीन वे, तुम हो गीता-सिद्ध।।
(बंगला)..........गीता पाठे तोमारि अधिकार।
तुमि से जानहु एइ गीतार अर्थसार।।

समाज **दो०**

अस कहि विप्र उठाय कै, भेंटे दीन दयाल।
पूरन परिपूरन कियो, दीन्हे प्रेम कृपाल।।
हरि बोल।

महा०—विप्रदेव! मैं कछु दिना यहीं निवास करूँगो। आपहू मेरे ही समीप रहौ।

भक्तविप्र—(प्रसन्नतापूर्वक) हरि बोल! जय हो अन्तर्यामी देव! आपने बिना कहै ही मेरी इच्छा पूरी कर दीनी। अब मैं एक दिना के लिये हू आपको श्रीचरण नहीं छोडूँगो।

महा०—हरि बोल (कीर्तन करते हुये प्रस्थान)

समाज **चौ०**

बेंकट भट अति ही हुलसाये।
सादर प्रभुहिं गृह पधराये।।
बन्धु भ्रात सुत सबन बुलाये।
धनि धनि अपनो भाग मनाये।।
भट्ट त्रिमल भ्राता तहँ आये।
भट्ट गोपाल पुत्र बुलाये।।
परसि प्रभुपद बन्दन कीन्हे।
भट्ट गोपालहिं लखि प्रभु चीन्हे।।

सो०

वृन्दावन राधारमण, जिन प्रगटाये देव।
वन्दत सु गौर चरन, सोइ बाल गोपाल भट।।

सो०

वरद हस्त धरि शीश पै, कृष्ण भक्ति आसीस।
अपनायो गोपाल भट्ट, अन्तर्यामी ईश।।

चौ०

मिलि सादर प्रभु पाद पखारे।
अँचये आप सहित परिवारे।।
चन्दन माल सुगन्ध धराये।
आनन्द उर अन्तर न समाये।।
दै आसन आरती उतारैं।
उमगि उमगि नारायण उचारैं।।

संकीर्तन-धुन

श्रीमन्नारायण, नारायण, नारायण।
लक्ष्मीनारायण, नारायण, नारायण।।

(पटाक्षेप)

समाज— **कवित्त**

धुम मची दूर दूर, दौरि दौरि लोग आवैं।
भट्ट गृह ठट्ट रहै, कहि नाहिं आवै है।।
गौर अंग रूप रंग, नृत्य ढंग भावावेश।
लखैं चकित थकित मोद न समावै है।।
भूलि जायँ रोग-शोक, भागि जायँ पाप ताप।
प्रेम के तरंग परै, सुध विसराबैं हैं।।
कृष्ण सुनें कृष्ण कहें, कृष्ण बिना कछु न कहैं।
कृष्ण भक्त बनैं सब, कृष्ण-कृष्ण गावैं हैं।।

नेपथ्य मैं (हरि बोल-हरि बोल-हरि बोल हरि बोल)

समाज **दो०**

श्रीरंग के विप्र सबही, एक एक करि आयँ।
सादर न्यौतहिं महाप्रभु, निज निज गृह लै जायँ।।

सो०

काबेरी नहान नित दर्शन श्रीरंगनाथ पुनि।
कथा-कीर्तन नृत्त, निशि वासर सुख वीतहिं।।

चौ०

भट्ट लक्ष्मी नारायण सेवहिं।
निष्ठा लखि प्रभुहिं सुख पावहिं।।
संग बसैं बोलैं बन डोलैं।
सखा मीत ज्यों रस रंग घोलैं।।
मधुर हास परिहास रचावैं।
प्रीति प्रतीति प्रमोद बढ़ावैं।।
एक दिवस बैठे प्रभु पाहीं। दर्शन करि करि प्राण सिहाहीं।।

(दृश्य महाप्रभु एवं वेंकट भट्ट दाक्षिणत्य भेष भूषा प्रौढावस्था)

कौतुक सरस प्रभु मन भाये। भट्ट प्रति मधु वैन सुनाये।।

महा०—भट्ट जी! मेरे मन में एक शंका बार-बार उठै है। संकोच वश मैं मुख सों कछु कह नहीं सकूँ हूँ।

बेंकट—मैं तो समझ रह्यौ हो कि आपने मोकूँ पूर्ण रूप सों अपनाय लियौ है परन्तु यह मेरी बड़ी भारी मूर्खता ही कि मैं एक शृगाल है कै अपने कूँ सिंह को मीत मान बैठयो हो।

महा०—(हँस कर) आप यदि टेड़े बोलौ हो तो मैं अब सूधो-साफ बोलूँगो। बुरो लगै तो बुरो मान लैनो। अच्छो तो यह बताओ कि आपकी आराध्या इष्ट देवी कौन हैं?

महा०—श्रीलक्ष्मी परमेश्वरी हैं।

महा०—उनको निवास वैकुण्ठ धाम में।

महा०—पर व्योम वैकुण्ठ धाम में।

महा०—श्रीमन्नारायण सों उनको सम्बन्ध कहा है?

महा०—वे उनकी नित्य हृदय विलासिनी हैं।

महा०—तब तो वे महा पतिब्रता हैं।

महा०—निश्चय! यामें शंका-सन्देह कैसो?

महा०—शंका को कारण है। परन्तु पहले यह बताओ कि हमारो ठाकुर कौन है?

महा०—गोपाल कृष्ण!

महा०—वह निवास कहाँ करै है?

भट्ट—व्रज-वृन्दावन में।

महा०—तो अब बताओ कि आपकी लक्ष्मी ठकुरानी पतिव्रता—(गाना प्रश्नोत्तरी)

प्र०—सती क्यूँ त्यागे पति? (उ०) त्यागे कहो जु कहाँ?

प्र०—चाहै वह कृष्ण पति, करै तप ब्रज महा।
त्याग वैकुण्ठ धाम, वास व्रज को चहै।।
त्याग नारायण नाथ, पति गोपाल चहै।

भट्ट—दीसत न दोष मोकूँ, शंका कित ठानौ।
नारायण कृष्ण एके, सत ना डिगानौ।।
लक्ष्मी कब त्याग्यो पति, एकै जब दोऊ।
सत्य यही, वेद कहै, तत्व एकै दोऊ।।

(बंगला) कृष्ण संगे पतिब्रता धर्म नहीं नाश।
अधिक लाभ पाइ आर रास विलास।।

जब नारायण एवं कृष्ण एक ही स्वरूप हैं तो फिर श्रीकृष्ण-संग सों लक्ष्मी को पतिव्रत-धर्म-नाश तो होयगो नहीं, विशेष लाभ ही होयगो-रास विलास को सुख मिलैगो। याहि सौं

हर्नर-कैहरवा—

लक्ष्मीहू विनोदिनी, विनोद मन आयो।
कौतुकी श्रीकृष्ण संग, कौतुक रचायो।।
लाभ ही लाभ जहाँ, हानि कहा बताओ।
दोष लेश नाम नहीं, हँसि कित उडाओ।।

महा०—दोष है कै नहीं है यह तो आप ही निर्णय करैं परन्तु श्रीकृष्ण एवं श्रीनारायण में भेद तो है ही कारण कि—

तत्व एक भले होय, रूप एक नाहीं।
लीला भेद रस भेद, भेद बहु आहीं।।
कहाँ चार चार हाथ, कहाँ द्वै भुजारे।
कहाँ धूधू शंख करै, कहाँ मुरली वारे।।

चार हाथ एवं द्वय हाथ सों आकार में अन्तर आय गयो। आकार के अन्तर सों लीला के प्रकार में एवं रस में हू अन्तर आय गयो। जैसो रूप वैसी लीला, वैसोइ रसहू होय है कै नहीं ?

भीम पद

चार भुजा वारे देव, नर न कहावैं।
नर लीला बनै तब, द्वै भुज जब पावैं।।
मन्दिर में बैठि पुजैं, चार भुजा वारे।
रास रस रंग लूटैं, व्रजनन्द लला रे।।

(एक नन्दलाल गोपाल ही में)

रूप मधुर लीला मधुर, कला मधुर सोहै।
लक्ष्मी ठकुरानी को, तव ही मन मोहै।।

(आपने कही कि लक्ष्मी कूँ हू रास लाभ होयगो)

लाभ कहाँ लिख्यौ भाग, रहीं हार तप करौ। (परन्तु) तप करि श्रुतिन ने ही, पायो जु रास हरी।। या फल भेद में कारण कहा बताओ भट्टजी ?

भट्ट—भगवन्! मैं तो

छुद्र जीव अल्पमति, समझि, नहीं पाऊँ।
ईश लीला सिन्धु कोटि-याह कैसे पाऊँ।।

आप ही कृपा करकै बतावैं।

महा०—सुनो, कारण यह है कि—

काफी पीलू-भाव व्रजवासिन को, हिय जब भावै।
भाव के प्रभाव सोंही, नन्द नन्दन पावैं।।

भट्ट—वह भाव कहा है ब्रज गोपी गोपन को प्रभो?

महा (वह भाव है)

ईश्वर भगवान् करि, कृष्ण नहीं मानैं।
अपनो बाल लाल सखा, इतनो ही जानैं।।
पुत्र निज जानि मात, ऊखल सों बाँधे।
सखा निज जानि ग्वाल-बाल चढ़ैं काँधे।।
गोपी जानैं गोप सुत, प्रीतम पियारो।
जाति एक गाम एक, नेकहू न न्यारो।।

या प्रकार सों व्रजवासिन के भाव-स्वभाव-प्रभाव कूँ समझ करकै श्रुतिन ने।

(माल कोष ३ पद)

गोपिन कूँ गुरु मानि, गोपी भाव धारी।
कीन्हे तप श्रुति तब, भईं गोप कुमारी।।
गोप गृह, ब्रज जन्म, श्रुति जब पाये।
गोपी देह पाय भज्यो, कृष्ण संग पाये।।
(परन्तु) लक्ष्मी चाहे रहूँ लक्ष्मी गोपी बनूँ नाहीं।
मानै नहीं गोपी गुरु पावै कृष्ण नाहीं।।

श्लोक (भाग०)

नायं सुखायो भगवान्, देहिनां गोपिका सुनः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां, यथा भक्तिमतामिह।।

समाज **सो०**

भट्ट हृदय वहु गर्ब, (कि) नारायण पद सर्वोपरि।
कियो महाप्रभु खर्ब, कृष्ण भक्तिमताहि।।

चौपाई

पुनि सुख दैन गौर प्रिय बोलैं।
तत्व सिद्धान्त रहसिहू खोलै।।

महा०—भट्ट जी ! दु:ख न माननो। मैं तो कछु परिहार कर रह्यौ हो। अब शास्त्र को सिद्धान्त सुनौ—

(बंगला) कृष्ण नारायण जैछे एकइ स्वरूप।
गोपी लक्ष्मी भेद नाहि, होय एक रूप।।

जैसे श्रीकृष्ण एवं नारायण एक ही स्वरूप हैं, वैसे ही गोपी राधा एवं लक्ष्मी हू एक ही स्वरूप हैं। इनमें अन्तर नहीं है मैंने जो यह बात कही कि लक्ष्मी जी कूँ कृष्ण-संग प्राप्त नहीं भयो वाको अर्थ इतनो ही है कि लक्ष्मी जी ने लक्ष्मी रूप सों श्रीकृष्ण कू नहीं पायो परन्तु गोपी देह सों राधारूप में तो पायौं ही है एवं नित्य ही पाय रहीं हैं। इनमें भेद-भाव करनो महापराध है।

(बंगला) एकई ईश्वर भक्तेर ध्यान-अनुरूप।
एकई विग्रह कोरे नानाप्रकार रूप।।

सिद्धान्तः ईश्वर एक ही है। एक ते अधिक न है, न है ही सकै है। वह एक ही ईश्वर कृष्ण, राम, नारायण, नरसिंह सदा शिव इत्यादि अनेकन रूपन में प्रकाश पाय रह्यौ है। ऐसे ही एक ही ईश्वरी शक्ति राधा, सीता, लक्ष्मी, पार्वती, दुर्गा आदि रस-वैचियत्री है। सव रस सबकूँ रुचै नहीं है। याहि कारण भक्तजन अपनी अपनी रुचि अनुसार भिन्न भिन्न ईश्वर-रूप की उपासना करैं एवं उनकी ही प्राप्ति एवं सेवा चाहैं है यासों तत्व सिद्धान्त यह है कि—

कवित्त—

ईश्वर तो सदा एक, एक ही स्वरूप वाको।
एक में अनेक रूप, वह दरसावै है।।
जैसी रुचि तैसो भाव, जैसो भाव तैसो ध्यान।
जैसो ध्यान तैसो भगवानहू लखावै है।।

(भाग)० यद् यद् धिया न उरुगाय विभावयन्ति
तद् तद् वपु प्रणयसे सदनुग्रहाय।।

एक ही वैदुर्यमणि, नील वर्ण देखै कोई
लखै कोई पीत वर्ण नाना भाँति गावैं है।
भेद है तो भेद यहाँ, दृष्टि, भाव 'प्रेम' महँ
वहाँ कहाँ भेद नेक, अभेद कहावैं हैं।।

भट्ट (हाथ जोड़) कवित्त (भगवन)
आप कहाँ, मैं जो कहाँ, कहाँ ईश जीव कहाँ।
लीला तो अशाध विन, कृपा कौन पायो है।।

भई आज पूरी भई, लक्ष्मी–नारायण–कृपा
हेत करि सत्य तत्व, आप जो लखायो है।
पुनि प्रेम–रस–सीमा, कही महिमा कृष्ण की
कृष्ण भक्ति सर्वोपरि, जानि आज पायो है।।
नर–तन लाभ लह्यौ, सफल जीवन भयो
पाये जब आप पाये, कृष्ण पद पायो है।

(महाप्रभु चरण–ग्रहण)

महा०—(उठाकर अंकमाल दान) हरि बोल

(पटाक्षेप)

(दृश्य) गोपाल भट्ट। अवस्था १४–१५। बैठा श्रीमद्‌भागवत–पाठ कर रहा है। महाप्रभु समीप बैठे श्रवण कर रहे हैं।

समाज दो०

भट्ट गोपाल प्रभु प्रिय, भक्तिमान किशोर।
पढ़ै भागवत प्रभु सुनैं, प्रेम भाव विभोर।।

गोपाल भट्ट

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं,
धरणि मण्डनं ध्येय मापदि।
चरण पङ्कज शन्तमं च ते,
रमण नः स्तनेष्वर्पयाचिहन्।।
सुरतवर्धनं शोक नाशनं,
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतर रागविस्मारणं नृणां,
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्।।
अरति यद् भवानह्नि काननं,
त्रुटि र्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते,
जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्।।
पतिसुतान्वय भ्रातृ वान्धबानति,
विलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युता गताः।
गति विद् स्तवोद् गीत मोहिताः,
कितब योषितः कत्स्यजे द्विशि।।

रहसि सं विदं हृच्छयोदयं,
प्रहसिताननं प्रेमवीक्ष्णम्।
वृहदुरः श्रियो वीक्ष्यधामते,
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः।।
व्रज वनौकसां व्यतिरङ्ग ते,
बृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम्।
त्यजमनाक् च नस्त्वत् स्पृहात्मनां
स्वजन हृद्रुजां यन्निजूदनम्।।
यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु,
भीताः शनैः प्रिय दधोमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्,
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः।।

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्ण दशन लालसाः।।
तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्वरधरः स्त्रग्वो साक्षान्मन्मथमन्मथः।।

महा०—साधु वत्स! साधु! तुमने गोपी-गीत-पाठ करके मोकूँ बड़ो सुख दियौ।

गोपाल—भगवन्! मेरो पाठ तो शुकवत् है। तोता की भाँति पाठ कर जाऊँ हूँ, समझूँ कछु नहीं हूँ।

महा०—कोई चिन्ता नहीं, श्रीभागवत जी ही तुमकूँ सब समझाय दैंगी। तुम नित्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रीभागवत् जी को सेवन कर्यौ करौ। ये श्रीकृष्ण की वाङ्मयी मूर्ति हैं—अक्षर के रूप में अक्षर श्रीकृष्ण ही हैं। भागवत् के दर्शन श्रीकृष्ण के दर्शन हैं। भागवत् को आश्रय श्रीकृष्ण ही को आश्रय है। जाने भागवत् जी कूँ पकड़ लियो वाने श्रीकृष्ण कूँ पकड़ लियो। इतनो ही नहीं, श्रीकृष्ण ने वाकूँ पकड़ लियो—वाकूँ अपनाय लियो, अपनो बनाय लियो—यह तुम ध्रुव सत्य जानौ।

गोपाल—(हाथ जोड़) कृपा करौ करुणानिधे। जासों मैं आप के इन वेद-वाक्यन कूँ न भूलूँ, इनकूँ पालन कर सकूँ! श्रीमद्भागवत कूँ साक्षात् श्रीकृष्ण जान सकूँ, मान सकूँ, अनुभव कर सकूँ, प्रत्यक्ष दर्शन कर सकूँ।

महा०—(दक्षिण भुजा उठा आशीर्वाद देते हुए) तथास्तु। ऐसो ही होयगो। श्रीकृष्ण कूँ प्रत्यक्ष करौगे। उनकी पूर्ण कृपाको पात्र बनौगे।

गोपाल—तो हे वात्सल्यसिन्धो। कल आप हमकूँ छोड़क कहा साँचे कूँ चलै ही जाओगे?

महा०—वत्स! चार मास तुम्हारे भक्तिमय परिवार में चार दिन के समान निकल गये। तीर्थ-यात्रा कूँ निकस्यौ हूँ, सो पूरी करके शीघ्र ही श्रीजगन्नाथपुरी पहुँचनौ है।

गोपाल—तो पितृ कोटि प्रिय प्रभो! मोकूँ हू संग लै चलौ मैं इन श्रीचरनन को वियोग नहीं सह सकूँगो।

(चरण पकड़ रुदन)

महा०—(उठाकर सिर पर हस्त कमल फिराते हुए) प्रिय गोपाल! इतने अधीर मत होओ। तुम कूँ मैं ले जाऊँगो! श्रीकृष्ण के समीप अवश्य लै जाऊँगो।

गोपाल—(उल्लसित-उत्कण्ठित हो) तो लै चलौ गुरुदेव! लै चलो! देर काहे की?

महा०—थोड़े-से समय की और अपेक्षा करौ!

गोपाल—कितने समय को नाथ?

महा०—यही तुम्हारे पितृ-देव के वैकुण्ठ-गमन तक!

गोपाल—(हताश हो) ओह! बड़ी कठोर आज्ञा। हाय हाय। कहा करूँ।

महा०—घबराओ मत वत्स! यह संसार है। धर्म क्षेत्र है कर्मक्षेत्र है। यहाँ कर्त्तव्य कर्म हू है। अब ही तुम्हारो कर्म कछु शेष है। वाकूँ सादर निभायो। आगे मार्ग तुम्हारो साफ है। तुमकूँ श्रीकृष्ण अपने समीप श्रीवृन्दावन लै जायँगे। एवं अपनी दुर्लभ सेवा में राखैंगे। (हरि बोल)

गोपाल—हरि बोल जैसी आज्ञा।

(श्रीचरणों में प्रणि पान)

(पटाक्षेप)

समाज **दो०**

पूरन चातुर्मास करि, श्रीरंग दर्शन कीन्ह।
पुनि यात्रा-आरम्भ हित, आज्ञा भट्ट सौं लीन्ह।।

चौ०

तजि गृह पुरी बाहर प्रभु आये।
पिता पुत्र संग ही लगि धाये।

फिरत न फेरें अति अकुलाये।
बार बार प्रभु बहु समझाये।।

(प्रवेश महाप्रभु, कृष्णदास, श्रीवेंकटभट्ट एवं गोपालभट्ट)

महा०—(वेंकट भट्ट के दक्षिण हस्त को अपने दोनों कर-कमलों में ले) भट्ट जी! अब मेरी बिनती मान लेओ। देखौ, नगर सों बाहर बहुत दूर काबेरी तक आय गये। अब कृपा करौ। मोकूँ विदा देओ।

वेंकट—(अत्यन्त कातरतापूर्वक) मेरे दयालु गुरुदेव! मेरे पाँव पीछे कूँ नहीं परैं हैं। मैं कैसे आप कूँ पीठ दिखाऊँ। हा दीनबन्धो। मोकूँ गृह-कूप मध्य छोड़कर मत जाओ।

(चरण पकड़ रुदन)

महा०—(उठाते हुये) भट्ट जी! मेरी अन्तिम प्रार्थना भूल गये कहा?

वेंकट—भूल्यौ तो नहीं हूँ भगवन्।

महा०—तो फिर यह दुर्बलता क्यो? स्मरण रक्खो कि यहाँ को समस्त भार आप के ऊपर है। (गाना)

पद-काफी छाया

भार तुम्हारे शीश पै ही,
बोलो कृष्ण बुलाओ कृष्ण।
कारज यह श्रीकृष्ण को ही,
बोलो कृष्ण०।।१।।
यह देह कृष्ण की, नहीं तुम्हारी,
कृष्ण कोही चढ़ा अव देओ।
राजी रहौ जहाँ राखैं वे पर,
बोलो कृष्ण०।।२।।
(यह) घर है कृष्ण का नहीं तुम्हारा,
दास कृष्ण के बनके रहो।
कर्म धर्म नेम प्रेम यही,
बोलो कृष्ण बुलाओ कृष्ण।
हरि बोल (तेजी से निकल जाते हैं)

वेंकट—हा नाथ। (भूमि-पतन)

गोपाल—प्रभो! प्रभो! मोकूँ मत छोड़ो। मत छोड़ो

(पीछे भागता है)

(पटाक्षेप)

महा०—(प्रवेश दूसरी तरफ से दौड़ते हुये) कृष्ण कृष्ण! (निकल जाते हैं)

गोपाल—(प्रवेश पीछे-पीछे दौड़ते हुये) प्रभो! प्रभो! (निकल जाता है)

महा०—(प्रवेश-दौड़ते हुये रुक जाते हैं) कृष्ण! कृष्ण! मेरे पिता! मेरे गुरु! लै चलौ मोकूँ! छोड़ कै न जाओ?

महा०—(शान्त गम्भीर स्वर) गोपाल! भूल गये मेरी आज्ञा जाओ। लौट जाओ! पिता की सेवा करौ। यही तुम्हारो कर्त्तव्य है। मेरो आदेश है। श्रीकृष्ण तुम्हारो कल्याण करेंगे। हरि बोल (द्रुत-गमन)

गोपाल—(स्तम्भित स्थिर खड़ा देखता रहता है)

समाज **सो०**

सुनि गिरा गम्भीर, गुरुगौर गोविन्द की।
स्तम्भित जु स्थिर, दृष्टि शून्य थिर अधर महँ।।
फुरै न वाचा वदन, छाँड़ि गये प्रभु निठुर वन।
पर्यौ रूख ज्युँ धरन, दारुन बज्रा-घातप्रहार सों।।

(गोपाल का भू-पतन। पटाक्षेप)

महा०—(प्रवेश, कृष्णदास एवं जनता)

संकीर्तन—हरिबोल हरिबोल हरिबोल हरिबोल

इति श्रीरंगनाथ-दर्शन-लीला सम्पूर्ण।

❧❖❧

संन्यास-लहरी **त्रैयोदश कणामृत**

अर्थ श्रीमीनाक्षी-रामेश्वर-दर्शन

जय श्रीकृष्ण चैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्तवृन्द।।

श्लोक

श्रीचैतन्यं प्रभुं वन्दे, वालोऽपि यदनुग्रहातु।
तरेन्नानामत ग्रहव्याप्तं सिद्धान्त सागरम्।।

पद

कहा कहा गाऊँ लीला निहसि (महाप्रभो)।
मम मति सीप तुव गति उदधि,
तीर परीपरी रही पचहारी।।१।।
लखि लखि चकित मुदित मन होवत,
भील मुनि निज और निहारी।
बाल विमूढ़ पकरि हठ चाहत,
सिन्धु भीम भरन अंकवारी।।२।।
तनक मधुर हँसि क्षमहु दया निधे,
आसरो एक कृपा को भारी।
कुकृति विकृति यह जैसी तैसी,
स्वीकृति 'प्रेमहिं' देहु बलिहारी।।

दो०

श्रीकृष्ण चैतन्य देव के, तीरथ चरित अपार।
तजौं कहा बरनौं कहा, रुचिर सकल हितकार।।
अपनाये परिवार भट्ट, कृष्ण भक्त बनाय।
तजि श्रीरंगम् प्रभु चलै, पथ-पथ भक्ति बहाय।।

महा०—(प्रवेश गाते हुये। पीछे-पीछे कृष्णदास)

काफी—कृष्ण कृष्ण मेरे प्राण कृष्ण, मेरे जीवन कृष्ण हरे।
कृष्ण कृष्ण मेरे प्राण कृष्ण, मेरे जीवन कृष्ण हरे।।
रसना रोम-रोम जो पाऊँ तो गाऊँ कृष्ण हरे।
कर्ण कोटि कोटि जो पाऊँ तो सुनूँ कृष्ण हरे।।
कृष्ण कृष्ण मेरे प्राण कृष्ण०२।।
प्राण कोटि कोटि मैं वारौं, हेरौं कृष्ण हरे।
जीवन कोटि कोटि मैं धारौं, टेरौं कृष्ण हरे।।
कृष्ण कृष्ण मेरे प्राण०।।३।।३।।
कृष्ण मनाऊँ कृष्ण रिझाऊँ, रमाऊँ कृष्ण हरे।
कृष्ण ही गाऊँ-कृष्ण गवाऊँ, समाऊँ कृष्ण हरे।।

कृष्ण कृष्ण मेरे प्राण कृष्ण० ।।४।।

(गाते गाते प्रस्थान)

समाज

चौ०

आगे ॠषभ गिरि प्रभु आये।
श्रीनारायण दर्शन पाये।।
पुरी परमानन्द भेंटे जाई।
दिवस तीन तिवसे सुखदाई।।
नीलाचल परमानन्द धाये।
दक्षिण दिशि महाप्रभु रमाये।।
मारग तीरथ तीरथ गमने।
रूप अनूप सकल मन हरने।।
नाम अनूप कृष्ण उचारैं।
पशु पन्छीहू मुदिंत निहारैं।।
मानुष मति गति कौन बखानै।
जिन देखे तिनको मन जानै।।
देखत वदन, न नयन अघावै।
प्राणन प्राण समान सुहावैं।।
सुनत नाम सुनत रहि जावैं।
मति रति गति सकल पलटावैं।।
कोई बूडै कोई उछरैं धावैं।
लगि धावैं बहु उलटि न जावैं।।
भावसिंधु हरि गौरा राई।
शत शत सरिता बहावत जाई।।
गाम गाम मग नगर वहावहिं।
भक्त अभक्त नारि नर न्हावहिं।।

दोहा

अचरज रूप स्वरूप प्रभु, अचरज हरि कृष्ण नाम।
अचरज भाव प्रभाव तन, अचरज मन दया धाम।।

सो०

अचरज रीति प्रचार, नहि आयास-प्रयास कछु।
सहज प्रकाश-प्रसार, भानु उदय जिमि दश दिसहिं।।

चौ०

पहुँचे महाप्रभु 'मदुरा' जाई, मथुरा दच्छिन की जो कहाई।
मदुरा नगरी मधुरा मनहर, वन उपवन 'कृतमाला' मनहर।।
मन्दिर अचरज दिव्यसुमनहर चित्रकला सुविचित्रहिं मनहर।
देवी 'मीनाक्षी' अति ही मनहर, सुन्दर-ईश्वर' शिवहु मनहर।।
उत्सव बारहों मासा मनहर, गौरी-शंकर-विवाह जु मनहर।
उत्सव-नगरी नाम हू मनहर, मदुरा मथुरा मधुरा मनहर।।

(प्रवेश महाप्रभु, कृष्णदास—जनता)

जनता—भगवन्! यह सामने मीनाक्षीदेवी को मन्दिर है। वहीं मदुरा को विख्यात मुख्य मन्दिर है। यामें सुन्दरेश्वर महोदव हू, विराजें हैं। मीनाक्षीदेवी एवं सुन्दरेश्वर महादेव की यह मनोहर मथुरा नगरी है। इतनो विशाल, विचित्र-कला पूर्ण, आकर्षक भव्य मन्दिर दक्षिण में तो कहा, समस्त भारतवर्ष में हूँ नहीं है। तथा मीनाक्षीदेवी तो मीनाक्षी ही हैं। उनके मीना सदृश विशाल नयन युगल के जो दर्शन करै है वह मुग्ध देखतौ ही रह जाय है पार्वतीजी ही यहाँ मीनाक्षी हैं एवं सुन्दरेश्वर महादेव हैं जय मीनाक्षी माता की जय। जय सुन्दरेश्वर बाबा की जय।

(दृश्य : मन्दिर। मीनाक्षी देवी। दक्षिण देशीय शृङ्गार)

पुजारी—ॐ नमो नारायणाय! पधारो भगवन् पधारो। दर्शन करौ। यह श्रीमीनाक्षी देवी हैं। परिक्रमा में सुन्दरेश्वर महादेव है। चैश मास में मीनाक्षी-सुन्दरेश्वर-विवाहोत्सव होय है जो दस दिन तक मनायो जाय है। पश्चात् वैशाख में वसन्तोत्सव आठ दिन तक होय है। आषाढ़-श्रावण तो उत्सव के पूरे द्वै मास हैं। आषाढ़ में मीनाक्षी देवी की विशेष पूजा है तथा श्रावण में शंकर भगवान की चौंसठ लीलान को स्मरणोत्सव होय है।

महा०—चौंसठ लीला कैसी, विप्रदेव?

पुजारी—ये चौंसठ लीला भगवान् शंकर ने मीनाक्षीदेवी जो राजा की कन्या रूप में प्रगट भईं हैं, उनके संग में प्रत्यक्ष रूप सों करी है। इन ६४ लीलान के ६४ चित्र हू बाहर खम्भान पै खुदे भये हैं। ऐसे ही प्रत्येक मास में कोई न कोई उत्सव होय है। यासौ हमारी मदुरा नगरी को नाम ही उत्सव-नगरी, त्यौहार-नगरी पर गयो है।

महा०—विप्रदेव! आपने मीनाक्षी देवी कूँ राजकन्या बतायो तथा महादेवजी के संग उनको विवाह बतायौ। सो यह कथाहु सुनायवे की कृपा करें।

पुजारी—मीनाक्षीदेवी की कथा बड़ा विचित्र है भगवन्! प्राचीन समय में एक पांड्य नरेश मलयध्वज भये हैं। उनकी रानी को नाम कांचनमाला हो—

पद

पांड्य नरेश बड़े प्रतापी, नाम मलय ध्वज गायो।
रानी कांचनमाला साध्वी, रूप नाम सम पायो।।१।।
बिन सन्तान दम्पति दुखी अति, महादेव आराधे।
रीझि दीन्हे दरस हर-गौरा, पूरी मनसा साधे।।२।।
जगन्मात कन्या बनि आईं, अँखियाँ मीन-से सोहै।
नाम मीनाक्षी पायो तासो, जो देखै सो मोहै।।३।।
भईं किशोरी, माता-पिता चित, चिन्ता व्यापी आई।
कन्या योग्य न वर कोई नर, कहा करिये अव माई।।४।।
सपनो आप दियो मीनाक्षी, चिन्ता करौ मंति कोई।
जाको तप करी तुम वर पायो, मैं हूँ गौरी सोई।।५।।
भोर भयो राजा-रानी दोऊ, कन्या सों हठ ठानै।
जो तुम गौरी तो रूप दिखाओ, साँची तब हम मानैं।।६।।
"देखन चहौ अबैं दिखराऊँ, पै मोकूँ नाहिं पैहौं।
कन्या कै माता कूँ लेओ, रुचै जोई सो दैहों"।।
दर्शन चाह्यौं, पायौ दर्शन, गौरी रूप लखायो।
निज प्रतिमा सुन्दर प्रगटाई, कन्या रूप दुहायो।।
कन्या जैसी प्रतिमा तैसी (ए) देवी मीनाक्षी सोई।
हिलि मिलि शंकर सों खेली 'प्रेम' पार न पावै कोई।।

तब तो राजा ने अपार धन-राशि व्यय करके यह विशाल मन्दिर निर्माण करवायो तथा मीनाक्षी देवी की दिव्य प्रतिमा की प्रतिष्ठा करी एवं सुन्दरेश्वर महादेव के संग उनको विवाह रचायो। बाकी स्मृति में आज पर्यन्त विवाहोत्सव चैत्र मास में दस दिना तक मनायो जाय है। बोलो प्रेम से-मीनाक्षी देवी की जय! सुन्दरेश्वर महादेव की जय!

महा०—स्तुति।। कान्हरा-३ अथवा शंकरा-३

जय अम्बे जगदम्बे, देदी मीनाक्षी नमो नमः।।१।।
रूप अनूप बहुरूप विधारिणी,
आरत शिशु जन आरति निवारिणी।

कारिणी, धारिणी, हारिणी अम्बे,
देवी मीनाक्षी नमो नमः।।२।।
नुम कामाक्षी विशालाक्षी तुम,
तुम धूम्राक्षी कमलाक्षी तुम।
अक्षणी, दक्षणी, रक्षणी अम्बे,
देवी मीनाक्षी नमो नमः।।३।।
महाविद्या परा विद्या दायिनी,
महामाया तममाया विनाशिनी।
सूक्तिदा भुक्तिदा मुक्तिदा अम्बे,
देवी मीनाक्षी नमो नमः।।४।।
सुर नर पूजैं ऋषि मुनि ध्यावैं,
कटे संकट विद्या प्रेम पावैं।
रम्या अगम्या प्रणम्या अम्बे,
देवी मीनाक्षी नमो नमः।।५।।

संकीर्तन—हरि बोल हरि बोल हरि बोल हरि बोल।

समाज **दोहा**

राम भक्त विरक्त इक, विप्र संतोष्ज्ञी दीन।
प्रभुपद प्रनामि भिक्षा हित, सादर न्योतो कीन।।

विप्र—(हाथ जोड़) मैं एक दीन-दरिद्र विप्र हूँ। कहा आप मेरे साग-पात की भिक्षा स्वीकार करेंगे?

महा०—अवश्य करूँगो! चलो-हरि बोल हरि बोल

(कीर्तन करते-करते प्रस्थान)

समाज **चौ०**

पुन्या तोया 'कृत माला' न्हाये।
वन वृक्षावली देखि सिहाये।।
पुनि चलि विप्र गृह प्रभु आये।
बैठि नाम जपत मन भाये।।

(पर्दा खुलता है)

महा०—(बैठे हुये धीरे-धीरे) कृष्ण कृष्ण कृष्ण०

कृष्णदास—(समीप बैठा हुआ) कृष्ण कृष्ण कृष्ण०

समाज **चौपाई**

वाहर गृह प्रभु निराजहीं।
भीतर विप्र रसोई साजहीं।।
पहर द्वै बीते, तीजो आयो।
विप्र न प्रभु ढिंग पलटि कै आयौ।।

कृष्ण—(स्व गत) दोपहर गयो, तीसरो पहर है गयो ब्राह्मण के ठाकुर को भोग कहा लग्यौ नहीं। प्रभुहू भूखे बैठे हैं (प्रकाश्य) प्रभो! बहुत विलम्ब है गयो। ब्राह्मण देवता तो भीतर सों निकसै ही नहीं है। आज्ञा होय तो देख आऊँ!

महा०—जैसी तुम्हारी इच्छा।

समाज **चौपाई**

कृष्णदास विप्र ढिग धाये। भाव मगन बैठे घर पाये।
(दृश्य खम भक्त विप्र चुप चाप बैठा है)

कृष्ण०—(प्रवेश) ब्राह्मण देवता!

विप्र—(अनसुने वैसे-ही चुप अन्यमनस्क बैठा है)

कृष्ण०—अजी महाराज! कृपा करकै अपनो अतिथिन की हू नेक सुध करौ।

विप्र०—(सिर उठा कर केवल देखता है)

कृष्ण०—प्रभु बैठे हैं। तीसरो पहर है गयो! कहा रामजी कूँ भोग लग्यौ नहीं!

विप्र०—कहाँ ते लगाऊँ? मैं तो जंगल मैं बैठ्यो हूँ। सामान कहाँ जो पाक करूँ। लषणलाल बन कूँ गये हैं। कन्दमूल, सागपात कछु लायेंगे। तब माँ जानकी रसोई करैंगी। तब कही रामजी कूँ भोग धर्यो जायगो।

समाज चौपाई

कृष्णदास कछु समझि न पायो।
उलटि प्रभु ढिग आय सुनायो।।
सुनि सब समझ प्रभु सुख पाये।
मानसी सेवा अति मन भाये।।

महा०—कृष्णदास! ब्राह्मण भक्त मानसी में मगन है। निष्किंचन विरक्त वैष्णवन के लिये मानसी सेवा ही श्रेयस्कर होय है। सो वह ब्राह्मण मन-ही-मन

में रामजी की सेवा कर रह्यौ है। वह वनवासी श्रीराम को उपासक है। यासों वाने अपने रामजी कूँ पंचवटी में विराजमान कर राख्यौ है। वाने तो मानसी कर लई, भोग के समय विचार में परि गयो कि रामजी के लिये भोजन तो माँ जानकी बनायँगी। वे तो चुप बैठी हुई लखनलाल की बाट देख रहीं हैं कि वे कछु कन्दमूल सागपात लावैं तो वे पाक करैं और तब रामजी को भोग लगै। या भावना में तन्मय वह ब्राह्मण देह सों तो यहाँ मदुरा में बैठ्यो और मन-सों वहाँ वहाँ पंचवटी में बैठ्यो हो। तब ही तो बाके मुख सों यह बात निकली कि मैं तो वन में बैठ्यो हूँ, मेरे पास सामग्री कहाँ जो भोजन बनाऊँ। यासों जब वाकूँ अपना ही देह की सुध बुध नहीं तो फिर हमारी तुम्हारी सुध कैसे है सकै है।

कृष्ण—परन्तु प्रभो! न जाने कब उनके लखनलाल जी वन ते लौटें और कब सीता जी की रसोई बने! तब तक आप यहाँ भूखे ही बैठे रहोगे कहा? आज्ञा होय तो बस्ती जाय कै कछु सामान लै आऊँ।

महा०—नाना! कोई आवश्यकता नहीं। मोकूँ भूख नहीं लग रही, मोकूँ तो बड़ोइ सुख-संतोष है रह्यौ है। धन्य है विप्र के भजन कूँ। भजन होय तो ऐसो होय कि एक भगवान रह जायँ और संसार सब लय है जाय। कृष्ण कृष्ण (रटने लगना)

समाज **चौ०**

कृष्ण कृष्ण प्रभु सुमरन लागै।
सहसा विप्र उचटि मन जागै।।

विप्र०—(नेपथ्य में से) हाय हाय! मेरे राम! बाहर संन्यासी महात्मा भूखे बैठे होंगे। मैं तो दूध में चांवर डार कै बैठ्यो तो सब कुछ भूल गयो! हाय मेरे राम! अब मैं कहा करूँ। आँच हू बुझ गई! परन्तु! अहा! खीर तो सिद्ध है गई। ठंडी हू है गई (बाहर दौड़ता हुआ प्रदेश)

विप्र०—(महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़ता है) क्षमा करो नाथ! क्षमा करो! हाय हाय! तीसरे पहर तक आप कूँ भूखो-प्यासो बैठार राख्यौ! क्षमा करौ दयालु! और पधारौ भिक्षा ग्रहण करो! कछुई नहीं बनाय पायो। एक खीर बन गई अपने आप।

चरन पखारि आसन पधराये। पात विछाय प्रसाद धराये।।
पायस परसि फल केरा लायो। कर जोरे सकुचि सिर नायो।।

विप्र०

धन्य दयालु देव गुसांई। मेरी चूक हृदय नहीं लाई।।
अब भयो तोष भरोसो भारी। तुम रीझै रीझैं धनुधारी।।

समाज

लेत प्रसाद प्रभु सुख पाये। उमगि विप्र राम गुन गाये।।

विप्र०

दीनन के दीनानाथ सहारे, राम हमारे राम हमारे।
भीलन को राम सखा बनाये, उनके फल फूल रुचि सों खाये।।
भीलन छवाय दई कुटिया रे—राम हमारे०।।
जटायु को राम तात बनाये, शीश वाकी गोदी धराये।
आँखन सों आँसु बहाया रे राम हमारे०।।
शबरी बुढ़िया ऐसी भाई, जैसी लागे जानकी माई।
भामिनी कहि कहि पुकारा रे, राम हमारे०।।
वानर भालू मीत सुहाये, भाई भरत सम प्यारे बताये।
रिनिया में 'प्रेम' कहारे, राम हमारे०।।

समाज— **दोहा**

भिक्षा शेष अँचवन करि, बैठे प्रभु सुखरास।
ढिग बैठ्यो प्रिय-राम को, मुख मन मलिन उदास।।

महा०—विप्रदेव! बहुत विलम्व है गयो है। अब आपहु जाय कै रामजी को प्रसाद पाय लेओ।

विप्र—(सिर हिलाता नीचे मुखकर रोने लगता है)

समाज **सो०**

बोलत ना मुख बन, शीश हलाय नटत है।
टपकत हैं दोउ नैन, आवति भरि भरि हियो मनो।।

महा०—यह कहा? आप रुदन करवे लगै। अब हीतो बड़े आनन्द सों रामजी को गुणगान कर रहे हे और अब ही रोवन लगै। यह भाव कैसे पलट गयो। सहसा कहा दुःख तुमकूँ व्याप गयौ। प्रसाद के नाम सों क्यूँ रोयवे लगै?

विप्र (रोते-रोते) **पद**—सोहनी

लै हौं नहीं प्रसाद अब मैं, देहौं प्रानन कूँ प्रभो।
मरि हौं जल-प्रवेश करि कै, जरि हौं अगिनी में प्रभो।।
छी लियो हाय छी लियो, वा दुष्ट ने मेरी माँ प्रभो।
राम भार्या महालक्ष्मी, सीता जगदम्बा प्रभो।।

यह सुन करकै, यह पढ़ करकै हु मैं जीवित हूँ, मर्यौ नहीं हूँ। छाती जरै है दिन रात परन्तु प्राण पापी निकसै नहीं है। हाय हाय! कहा करूँ, मेरी अम्बा कूँ वा राक्षस ने छी लियो! हाय हाय! मैं कहा करूँ! कैसे जिऊँ! कैसे मरूं!

महा०—मेरे राम के प्यारे बन्धु! आप तो शास्त्र पढ़े हो फिर ऐसो, भ्रम-भान्ति कैसे है गई?

सवैया

तुम ह्वै कै सुजान अजान-से बोलो,
नेक विचार करौ तो सही।
वह हाथ कहाँ जो आगि गहै,
वह आँखि कहाँ लखै भानु गही।।
वह अंग न पंचभूतन की,
वह मूरति सत् चित् आनन्द ही।
वह काया हू रावण देखी नहीं,
वह तो लै गयो माया की सीता हरी।।

ब्राह्मण—देव! वेदशास्त्रन को यह सिद्धान्त है कि जो वस्तु अप्राकृत होय है वह प्राकृत-इन्द्रियन के गोचर नहीं होय है। भगवत्प्रेयसी सीता ठकुरानी तो दिव्य चिदानन्द मूर्ति हैं। उनकूं हाथन सों छीनो-पकड़नौ तो दूर रह्यौ, रावण की आँखिन कूं तो वे देखवे कूं हू नहीं मिलीं। समझे?

ब्राह्मण—तो फिर रावण कौनकूं जेठ भर कै उठाय लै गयो हो।

महा०—नकली-सीता, माया-सीता, छाया-सीता कूं।

ब्राह्मण—और स्वयं सीता जी कहाँ गईं?

महा०—अग्निदेव की सुरक्षा में रहीं। रावण-वध के पश्चात् अग्नि-परीक्षा-काल में माया-सीता अग्नि में लीन है गई एवं मूल सीता प्रगट है गईं! यह है रहस्य! समझ गये न?

ब्राह्मण—हाँ नाथ! समझ तो गयो परन्तु ऐसो कहां लिख्यौ है?

महा०—यह है काहू पुराण में! क्यूँ तुमकूँ विश्वास नहीं होय है।

ब्राह्मण—क्यूं नहीं भगवन्। आपके वचनन पै मेरो पूर्ण विश्वास है। आप ने मेरी शंकाशूल जड़मूल सों उखाड़ करकै मेरी दीर्घ व्यथा कूँ मिटाय दई। अव कहीं मोकूं शान्ति भई है। आपने तो मोकूं संजीवनी पान करायी है—नव-जीवन-दान दियो है। आपकूं कोटि-कोटि प्रणाम है।

महा०—तो अब जाओ। प्रसाद पाओ।

ब्राह्मण—जो आज्ञा नाथ! (कीर्तन)

सीता राम राम राम राजा राम राम राम।

(गाते-नाचते प्रस्थान। पटाक्षेप)

समाज— अरिल्ल

शंकाशूल मिटाय, बिदा होय प्रभु चले।
कृष्ण कृष्ण मुख गाय, गवावत कृष्ण चले।।
सहज कृपा की धार, बहावत विषय चले।
परम उदार दयाल, लुटावत प्रेम चले।।

चौ०

जित तित तीरथ तीरथ गमने।
राम विष्णु-शिव-दर्शन कीने।
मारग एक "बगुलावन" आयो।
ग्रामवासी मुख प्रभु सुन पायो।।

दो०

डाकुन को सरदार इक, पंथभील करि नाम।
दुष्ट दुराचारी महा, दुख पावै सब ग्राम।।

महाप्रभु—(प्रवेश 'कृष्ण कृष्ण' गाते हुये कृष्णदास सहित)

दो ग्रामीण (तामिली पुरुष-तैमद् बाँधे, खुला शरीर, नगे सिर प्रवेश)

(महाप्रभु कों प्रणाम करते) स्वामी। ना ना

(हाथ हिला सिर हिला मना करते हैं) हुँ-हुँ! स्वामी! ना-ना

महा०—आगे न जायँ कहा?

दोनों०—(सिर हिला सम्मति) हाँ-हाँ! स्वामी।

महा०—क्यों? ऐसी कहा बात है?

एक—डा....डा डाकू! पंथ भील।

दूसरा—मा....रेगा! वध! हत्या! बद्.....माश डाकू।

महा०—अच्छो! डाकूँ मारेगा? हमको तो जाना ही है आगे।

दोनों—(हाथ हिला मना करते) ना स्वामी ना ना! मारेगा।

महा०—मारेगा तो मारने दे भैयाओं! हमारे पास है ही क्या जो मारेगा-लेगा! हम तो कृष्ण कृष्ण गाते हुये जायँगे कृष्ण हे कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे—

(प्रस्थान)

दोनों—(चिल्लाते-मना करते हुए पीछे-पीछे जाते) ना ना!
स्वामी! लौट-वापिस! डाकू

पंथभील—(दो चार भीलों के साथ प्रवेश करता)

महाप्रभु—(प्रवेश दूसरी तरफ से)
कृष्ण हे कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण

समाज—

कृष्ण कृष्ण प्रभु गावत पाये। पंथभील मारग महँ पाये।
ठाड़े निहारत प्रभु सुख पाये। करि जुहार कहत मन भाये।।

पंथभील—अडींग स्वामी अडींग। चलो हमारी छपरिया।
कुछ खाना-पीना। भूखे होगे।

महा०—(हँसकर) हाँ भूख लगी तो है। चलो।'
कृष्ण हे कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे

पंथ०—(पीछे-पीछे झूमते-झामते चलते हैं गाते कुछ नहीं

समाज **चौ०**

लै वन वीच गयो जहाँ बासा। छान छपरिया आसन घासा।
कन्द मूल वन फल कछु लाये। मोद सहित महाप्रभु पाये।।

पंथ०—(दो-चार भीलों के साथ बैठा चुपचाप देखत रहता है)

समाज—

वे इनकूं ये उनकूं हेरैं। ऐसे ऐसे आज ही हेरै।
इन घर ऐसो को कब आयो। इनके हाथन को कब पायो।।
इनते डरि डरि कै सब डोलैं। इनसों हँसिकै को कब बोलैं।
तासों मति गति इनकी हारी। रहैं प्रभुहिं निहारि निहारि।।

महा०— **दो०**

भिक्षा शेष करि महाप्रभु, बोले वचन उदार।
तुम तो साधू सम सबै, नहीं पुत्र परिवार।।

महा०— **दो०**

बन विच सुन्दर वास कुटी, नहीं तुम गृहस्थ समान।
त्याग सहज तुम्हरे लिये, क्यूं न भजौ भगवान।।

चौ०

बन फूल मूल कन्द मिलि जाही।
भरौ उदर रहौ सुखी सदाही।
करौ संतोष दया उर धारो।
राम के ऊपर भार तिहारो।।
काहुसों बैर न हिंसा लड़ाई।
धन्य साधु जीवन यह भाई।।
अब तुम कृष्ण कृष्ण मुख गाओ।
देओ सुख मोहिं तुम सुख पाओ।।

समाज

ज्यों ज्यों कानन विच परत, वचन मंत्र समान।
त्यों त्यों गरि गरि जात है, पाप-हृदय-पाषान।।

चौ०

पापी पापी सब जग गायौ।
साधु शब्द आजै सुनि पायौ।
सुनि सहि सक्यौ अधिक सो नाहीं।
खाय पछार पर्यौ पद माही।।
सिर धुनि धुनि रोवन सो लाग्यौ।
अपने पापहिं गावन लाग्यौ।।

पंथ७—(रोते सिर पीटते हुए) साधु नहीं! डाकू! हत्यारा! पापी! महापापी! पुराना पक्का पापी! दया! कृपा!

गजल पीलू दादरा

काँटे को कहा फूल (तो) फूल ही बना के जाना।
डाकू को कहा साधु, साधु ही बना जाना।।१।।

सन्तोष किसे कहते, दया भी कैसी होती।
सुना है नाम ही नाम, अब काम सिखा जाना।।२।।
(मैं इन पापी) आँखों को कैसे फोड़ूँ, हाथों को कैसे तोड़ूँ।
इस दिल को कैसे मोड़ूँ, अब तुम ही मोड़ जाना।।
छाती जो कुछ गली है, आँखें जो कुछ खुली हैं।
छुरी जो दिल चली है, पूरा कर 'प्रेम' जाना।।

(चरण-ग्रहण)

महा०—(उठाकर सिर पर हाथ फिराते हुए) कोई चिन्ता, शोक मत करो। भई सो भई अब कृष्ण कहो और सूधे पथ चलौ। जो कृष्ण को भजवे को दृढ़ निश्चय ठान लेय है बाके लिये स्वयं श्रीकृष्ण अपने मुख सों कहैं हैं कि वह कैसो ही दुराचारी तेहु सु दुराचारी क्यूँ न होय वह निश्चय साधु ही है, धर्मात्मा है तथा परम शान्ति सुख कूँ शीघ्र ही प्राप्त है जायगो। यासों-

गजल पीलू

कृष्ण हरे कृष्ण गाते चलो। कल तो गया आज बनाते चलो।।
बोया सो बोया अब तो न बोओ।
खोया सो खोया अब तो खोओ।।
सच्चे हो पक्के हो गाते चलो। कृष्ण हरे कृष्ण०।।
(वह) कृष्ण दयालु वह दोष न देखे।
पर्वत के पर्वत वह पाप न देखे।।
बस कान पकड़ लो और गाते चलो। कृष्ण हरे०।।
जहर पिलाने को पूतना आई।
दूध के नाते गति माँ की पाई।।
ऐसे दयालु को गाते चले। कृष्ण हरे कृष्ण०
यह सत्य है सत्य हैं सत्य ही जानो।
तुम कृष्ण ही कृष्ण रटने की ठानो।।
(तो तुम) शुद्ध हो मुक्त 'प्रेम' गाते चलो। कृष्ण हरे कृष्ण०
(कीर्त्तन-द्रुतलय) कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे। कृष्ण ३ हे।।

(कीर्त्तन करते-करते प्रस्थान)

पंथ—(पहले तो देखता रहता, फिर सब कपड़ों को उतार फेंकता। एक कच्छा या जाँघिया पहने हुये हाथ उठा कीर्त्तन करता नाचता हुआ पीछे पीछे चल देता है साथी भील भी वैसा ही करते हैं। सबों का चल देना)

समाज **सो०**

दुर्घट भयो सुघट, अघट घटावै हरि कृपा।
पहिरि जु कौपीन पट डाकू सो साधु बनि चल्यौ।।

चौ०

वसनन फैकि कौपीन धरायो। नाचत गावत पीछे धायो।।

(महाप्रभु और भील-एक बार प्रवेश करके चले जाते हैं)

कछुक दूर पीछे जब धाये। जानि प्रभु तब उलटि समझाये।

महा०—(प्रवेश-कीर्त्तन करते हुये। सहसा पीछे मुड़ देखते) प्यारे पंथ। मेरी बात मानो और लौट जाओ। यहीं वन में रहो। ये सब तुम्हारे शिष्य हैं। मैं तुमकूँ गुरु बनाऊँ हूँ। तुम सब मिल करकै कृष्ण कृष्ण गानो और गवावनो तथा जो कोई वन में सों पथिक आवै वासों हाथ जोड़ कै कृष्ण कृष्ण गवावनो। तुम्हारौ कर्म-धर्म, जप-तप, तीर्थ-व्रत, सब कुछ यही हैं—कृष्ण गानो और गवावनौ। अब लौट जाओ। यह मेरी आज्ञा है। हरि बोल (गाते हुए प्रस्थान)

पंथ—(सब खड़े चुपचाप इकटक देखते रहते हैं।

समाज **दोहा**

ठाड़े लखैं सब महाप्रभु, जब लागि सकैं निहार।
लौटि पुनि गावत चलै, हरि हरि बोल पुकार।।

पंथ—हरि बोल हरि बोल, हरि बोल हरि बोल।

(घूम-घूम कर संकीर्त्त-पुनः प्रस्थान)

समाज—

कहाँ लौ कहिये चरित अपारा।
दिन दिन कीन्हे परम उदारा।।
कृष्ण नाम महिमा रस माधुरी।
सहज सुवास सरिस शुभागरी।
कृष्ण नाम जग को को नहि गावैं।
कृष्ण नाम रस विरलो पावै।।
कृष्ण नाम प्रह्लाद लुभायो।
जल थल अनल हु कृष्ण लखायो।।

कृष्ण नाम बालक ध्रुव गायो।
कृष्ण मास षट् मधि प्रगटायो।।
कृष्ण नाम रंग मीरा राँची।
फारि घुंघट गिरधर संग नाची।।
कृष्णहिं गावत कृष्ण रंगाबत।
चलै गौर रंग कृष्ण रंगाबत।।
शैल महेन्द्र महाप्रभु आये।
परशुराम-दर्शन सुख पाये।।
रामनाथपुर राम की नगरी।
धनुष कोटि जहँ सेतु भंगकरी।।
दरस परस मञ्जन काहु ठौरा।
चलै प्रभु रामेश्वर औरा।।
सेतुबन्ध सागरहिं नहाये।
पुनिं रामेश्वर प्रभु चलि आये।।

कवित्त—शीशफूल बद्रीनाथ, कृष्ण द्वय कर्णफूल,
जगन्नाथ द्वारावती, जग-जगमगावैं हैं।
हार शुभ्र श्याम उर, बनीं गंगा यमुना धार,
कौंधनी बनी नर्मदा, चमचम चमकावै हैं।।
मधुपुरी मायापुरी, उज्जयिनी काशीकाँची,
मदुरा श्रीरंगपुरी, अंग अंग सजावैं हैं।
सिंगार 'प्रेम' कहा गाऊँ, भारत मेरो मात को तो,
रामेश्वर जु पायजेब, झन-झन झनकाबैं हैं।।
(नेपथ्य-घोष :—हर हर रामेश्वर की जय।
शिव शिव रामेश्वर की जय।।

महाप्रभु—(प्रवेश कृष्णदास-जनता सहित)

१. जन०—यही है भगवन्! भारतवर्ष को अति प्रसिद्ध महातीर्थ श्रीरामेश्वर। यही श्रीराम जी के स्थापित एवं आराधित रामेश्वर महादेव विराजै हैं। यह भगवान् राम के हू ईश्वर हैं—रामस्य ईश्वर: रामेश्वर:।

महा०—यथार्थ है।

२. जन—और भगवन्! श्रीराम हु महादेव के ईश्वर हैं राम: ईश्वरो यस्य स रामेश्वर:।

महा०—सत्य है!

३. जन०—और याते हू आगे की बात तो यह है कि जो राम हैं वे शिव हैं एवं जो शिव हैं वे राम हैं—रामश्चासो ईश्वरश्च रामेश्वरः।

महा०—सत्य सत्य परम सत्य। तुम तीनोन को कथन सत्य है। सुनिकै बड़ो भयो।

समाज दोहा

राम के ईश्वर शिव जो, शिव के ईश्वर राम।
राम ही शिव, शिव राम हैं, जानै सोइ सुजान।।

चौपाई

"सेवक स्वामी सखा सिय पीके।
हितु निरवधि सब विधि तुलसी के।।

दो०

समता साधन सार है, समता सिद्धि महान।
समता सह ममता करै, विन समता बड़ हानि।।

चौ०

प्रभु रामेश्वर मन्दिर आये। घोष जय जय सुनि हरषापे।।

(दृश्य रामेश्वर-शिवलिंग। ऊपर शेष-फला-छत्र।

कटहरा के अन्दर शिवलिंग)

पुजारी—बोलो रामेश्वर महादेव की जय! हर हर शंकर ॐनमो नारायणाय! स्वागतं भगवन् स्वागतम्! यह भारत-प्रसिद्ध श्रीरामेश्वर महादेव विराजमान हैं। प्रसिद्ध द्वादश ज्योति लिंगन में इनकी गणना है। श्रीरामचन्द्रजी ने लंका-प्रस्थान सों पूर्व इनकी स्थापना एवं आराधना करकै इनकूँ प्रसन्न कियौ हो। यह सब कथा तो उत्तर-भारत में सुप्रसिद्ध ही है। परन्तु हमारे दक्षिण देश में यह कथा कछु अन्य प्रकार सों है।

महा०—वह कथा कैसी है—सुनायबे की कृपा होवै।

पुजारी—यहाँ की कथा तो ऐसी है कि श्रीराम ने लंका जाती समय नहीं, लंका ते लौटती समय रामेश्वर की स्थापना करी है। लंका-विजय के पश्चात् जब श्रीराम पुष्पक विमान मैं बैठकर चलै तो उनके मन में यह दुख भयो कि रावण-कुम्भकर्ण आदि को वध करकै ब्रह्म-हत्या तुल्य पाप भयो है। अतएव प्रायश्चित जानवे के लिये श्रीराम जी सागर पार आय कै श्रीअगस्त्याश्रम कूँ

विमान लै गये। वहाँ उतर करकै अगस्त्य मुनि ते व्यवस्था माँगी तो उन ने यही प्रायश्चित बतायो कि शिव-लिंग-स्थापना करकै पूजन करौ। तब श्रीराम ने हनुमान जी कूँ दिव्य लिंग लायवे के तांई कैलाश भेज्यौ। वहाँ हनुमान जी कूँ शिवजी के दर्शन नहीं भये। उनने बड़ी स्तुति करी तो शंकर जी प्रगट भये और दिव्य लिंग प्रदान कियौ।

यहाँ मूर्त्ति-स्थापना को मुहूर्त बीत्यो जाय रह्यौ है। पराम्बा जानकी जी ने ऐसे कौतुहल वश बालुका को एक शिव-लिंग बनाय राख्यौ हो। ऋषिन ने आदेश दियो कि मुहूर्त्त निकस न जाय। यासों श्रीजानकी जी द्वारा निर्मित बालुकामय लिंग की ही स्थापना कर दी जाय। वही है यह श्रीरामेश्वर-लिंग।

हनुमान जी भी दिव्य लिंग लै कै आय पहुँचे तो उनके हृदय में कछु दु:ख भयो। तब श्रीराम जी बोले 'हनुमान' तुम हमारे स्थापित लिंग कूँ उखाड़ु देओं तो हमारे तुम्हारे लाये भये दिव्यलिंग की प्रतिष्ठा कर देंगे। झट हनुमान जी अपनी पूँछ को लपेटा दैके उखाड़वे लगे। नहीं उखाड़ सकै। पूरी शक्ति लगाय कै झटका दीनी तो पूँछ ही टूट गई-गिर पड़े। मूर्च्छा आय गई। या प्रकार श्रीजानकी जी द्वारा बालुका-निर्मित्त एवं श्रीराम द्वारा प्रतिष्ठित यह रामेश्वर लिंग प्रसिद्ध भये। तथा हनुमान जी द्वारा लाई हुई दिव्य लिंग की पृथक् प्रतिष्ठा कर दी गई। वह हनुमदेश्वर काशी विश्वनाथ लिंग सों प्रसिद्ध भये। उनके दर्शन यात्री कों अवश्य करने चाहिये अन्यथा यात्रा सफल नहीं मानी जाय है।

अब आप जो गंगा-जल लाये हो सो मोकूँ देओ। मैं चढ़ाय दऊँ हूँ। यहाँ कौ ऐसो ही नियम है। सेवक पुजारी के द्वारा जल चढ़ायो जाय है। स्वयं नहीं चढ़ाय सकै है।

कृष्णदास—(गंगाजल का पात्र पुजारी को दे देता है)

समाज— **शिव-स्तुति**

जय शम्भो जय शम्भे हर शिव शंकर जय शम्भो।
जय रामेश्वर जय भुवनेश्वर भूतेश्वर शम्भो।
जय विश्वेश्वर, जय काशीश्वर, गोपीश्वर शम्भो।।१।।
जय सोमनाथ, जय वैद्यनाथ, केदारनाथ शम्भो
जय भूतनाथ, जय भीमनाथ, ओंकारनाथ शम्भो।।२।।
जय त्र्यम्बक, जय जय कालान्तक, कैलाशपति शम्भो।
पशुपतिनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकाल शम्भो।।३।।

महाप्रभु **कीर्तन धुन**

जय शम्भो जय जय शम्भो। जय शम्भो जय जय शम्भो।
शिव शम्भो हर हर शम्भो। शिव शम्भो हर हर शम्भो।।
हर शम्भो बम् बम् शम्भो। हर शम्भो बम् बम् शम्भो।।
(नृत्य-कीर्त्तन-प्रस्थान)

समाज **चौ०**

रामेश्वर विश्राम सुहाये। चहुँ ओर तीरथ मन भाये।
कुंड कूप, मन्दिर महँ डोलैं, कृष्ण कीर्तन सिन्धु किलौतैं।।
कूर्म पुराण कथा इक ठौरा। बैठि सुनत तहाँ हरि गौरा।

(दृश्य : व्यासासन पर कथावाचक पंडित। पोथी सन्मुख। महाप्रभु एवं ५-७ श्रोतागण)

चौ०

राम कथा पंडित बहु गाई।
सीता हरन पुनि कहत सुनाई।

कथावाचक—सो महाराज कहा भयो कि रावण साधु यति को भेष बनाय करकै आयौ तो, जो है सो है महाराज! कुटिया में भीतर सीता जी इकली हतीं। सो महाराज वानेवा कपटी साधु रावण ने द्वार पै आय कै—

चौ०

"भिक्षा देहि" टेर लगाई।
सुनी डरपाईं सीता माई।।
"कैसे करूँ" हाय अब दैया।
संकट बीच परी मैं मैया।।
निकसूँ तो निकसूँ मैं कैसे।
आन पुरुष मुख देखौं कैसे।।
नहीं निकसूँ तो धर्म नसाय।
विमुख द्वार सों अतिथि जाय।।

तो जो है सो है सीता जी बड़ी धर्म-संकट में परि गईं। तो वे अग्नि कुंड के समीप गईं और अग्निदेव की स्तुति करवे लगीं किं मैं आप की शरण आई हूँ! या धर्म-संकट सों मेरी रक्षा करो।' तब तो महाराज! जो है सो है, एक बड़ो भारी आश्चर्य भयो :—

श्लोक

सीतयाराधितो बह्विश्छाया सीतामजीजनत्।
तां जहार दशग्रीवः, सीता वन्हिपुरे गता।।

चौ०

अग्निदेव अन्तर की जानैं। दुष्टभाव रावण को लखानैं।
माया की सीता प्रगटाई। मानो तो सीता परछाँई।।
सोइ सीता भिक्षा लै धाईं। सोई सीता रावण हरी भाई।
रावण समझ्यौ साँची सीता। साँची नहीं वह छाया सीता।।
लै गयो अग्नि साँची सीता। राम की सीता सदा पुनीता।
अग्नि पुरी में सीता मैया। जय सीते जय सीते मैया।।

या प्रकार सों महाराज! साँची राम-प्रिया सीताजी के तो दर्शन हू रावण नहीं कर पायो। भलो जो है सो है कहा दुष्ट भाव सों काहू ने जगज्जननी परमेश्वरी के दर्शन कबहू पायो, कै पाय सकै है! महाराज बड़े-बड़े जप-तप, साधन-भजन सों जब चित्त शुद्ध होय है तथा शुद्ध चित्त में जब शुद्ध प्रेम भाव उदय होय है तब—कहा नाम है उनको-भगवती परमेश्वरी आह्लादिनी पराम्बा के दर्शन होयँ हैं।

श्लोक

परीक्षां समये वन्हिं छाया सीता विवेश सा।
वह्नि सीतां समानीय स्वपुरादुदनीनयत्।।

सो यह आगे प्रसंग आवैगो कि जब रावण-वध के पश्चात् श्रीराम जी ने सीता जी की अग्नि-परीक्षा लई! क्यूँ जी! अगिन परीक्षा लई क्यूँ? कहा रामजी या रहस्य कूँ नहीं जानै हे कि मेरा प्रिया सती सीता तो अग्नि पुरी में है। यह मेरे सम्मुख तो छाया सीता ठाड़ी है? जो नहीं जानै तो जो है सो है, भगवान् ही कैसे? सर्वज्ञता ही कैसी? परन्तु महाराज! याहि को नाम है नर लीला।

चौ०

जब सर्वज्ञ अज्ञ बनि जावै।
तब ही यह नर लीला कहावै।।
(हम जैसे) छोटे भूलें दोष कहावै।
भूले बड़े तो जग गुन गावै।।
भूल ही रस को मूल कहावै।
भूल ही लीला मीठी बनावै।।

भूल ही सों नर लीला कहावै।
भूल ही हरि की लीला बढ़ानै।।
भूल मिटै (तो) लीला मिट जावै।
एकाकी भगवान रहि जावै।।

यह कारण सों महाराज! जो है सो है भगवान् राम सर्वज्ञ है कै हू मनुष्य की भाँति अज्ञानी बने भये लीला करैं हैं। एक तो या सों रस-पुष्टि होय है। दूसरे लोक-मानस की शुद्धि हू है जाय है। लोक तो यह भूल-शंका करैं ही हैं कि जब सीता जी कूँ रावण अपनी गोद में उठाय कै लै गयौ तो पर-पुरुष-स्पर्श तो भयो ही भयो। सीताजी की साँच में आँच आ ही तो गई। सो या शंका-भ्रम कूँ विध्वंस करवे के लिए अग्नि-परीक्षा को स्वांग रच्यौ गयो सो महाराज।। श्लोक।। परीक्षां समये (पुनः पाठ)

तो बा समय कहा भयो कि रावण की अशोक वाटिका ते आयी भई सीता तो अग्नि में प्रवेश कर गईं तथा अग्नि पुरी की सीता जी कूँ, अग्निदेव ने श्रीराम जी कूँ समर्पण कर दीनी! सो महाराज! रामजी की सीता रामजी के पास और माया को खेल समाप्त! कथा सम्पूर्ण। बोलो पराम्बे सीता ठकुरानी की जय।

भगवान् रामचन्द्र की जय
(उच्च घोष) जय जय सीताराम
(पंडित जी पोथी बाँधने लगते हैं)

महा०—(खड़े होकर) पंडित जी महाराज! आज आपने अपने कथामृत सों अपूर्व सुख दियो। यह कौन-से पुराण में सो आप कथा वाँच रहे हे महाराज?

पंडित—कूर्म-पुराण में सों भगवन्!

महा०—पंडित जी महाराज! छाया सीता के सम्बन्ध में जो द्वै श्लोक आपने सुनाये उनकी मोकूँ अत्यन्त ही आवश्यकता है।

पंडित—तो भगवन्! उन श्लोकन कूँ में उतरवाय दूऊँगौ!

महा०—पंडित जी! श्लोक सों ही नहीं मौकूँ, तो वा प्राचीन पन्नासों ही प्रयोजन कि जा पन्ना में ये श्लोक हैं।

पंडित—ऐसो कहा विशेष प्रयोजन है भगवन्!

महा०—है कछु विशेष ते हू विशेष प्रयोजन। तब ही मैं भिक्षा-प्रार्थी हूँ। यह पोथी हस्तलिखित है न?

पंडित—हाँ भगवन्! प्राचीन हस्त लिपि है।

महा०—तो याकी भिक्षा दैवे की कृपा करैं।

पंडित—अच्छो तो भगवन्! मैं वा पन्ना की प्रतिलिपि बनाय कै अपनी पोथी में धर लऊँगो तथा मूल पन्ना कल दै दऊँगो। आप कल कथा में पधारें।

महा०—(कीर्तन) हरि बोल हरि बोल

(पर्दा खुलता) रामेश्वर लिंग के दर्शन। आरती

इति श्रीरामेश्वर दर्शन लीला

।। सम्पूर्ण।।

❖

अथ श्रीनृत्य-गोपाल-दर्शन

जय कृष्ण चैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द।।

पद-यथा राग

दीन के दयालु दाता, बन्दौं गौर चरण।
दुखियन के दुखत्राता, बन्दौं गौर चरण।।१।।
जगत जीव कुमति हेरि, विमुख विषय-सुरति हेरि।
साधन हीन अगति हेरि, दियो हरि-कीर्तन।।२।।
पापिन को पाप लियो, पतितन कूँ लगायो हियो।
दुर्लभ नाम-प्रेम दियो, ज्वाला दुख हरन।।३।।
आये मारन प्यार पाये, गारी छोड़ि गौर गाये।
डूबत आधार पाये, अशरन के शरण।।४।।
साग-पात छीन पाये, चामर रूखे चबाये।
पीठ बेंत मार खाये, भक्त-रक्षा करन।।५।।
घर तजि घर-घरन फिरे, पाँवन बन बन विचारे।
कष्ट घोर सुख सों वारे, विश्व दुख हरन।।६।।
भूलेन कूँ दिये बताय, सोतेन कूँ दिये जगाय।
रोतेन कूँ दिये नचाय, लोह कंचन करन।।७।।

यवन डाकू म्लेच्छ होय, ज्ञानी मूढ़ दुष्ट होय।
अधम गणिका भील होय, पाये गौर-शरन।।८।।
माँगैं बस एक मोल, बोल हरी हरी बोल।
दुर्लभ वस्तु दैं अमोल, 'प्रेम' कृष्ण चरन।।९।।

दो०

अवर चरित दयासिन्धु के, कहौं वन्दि पद गौर।
राम भक्त घर आये पुनि, उलटि जु मदुरा ठौर।।

चौ०

तजि यात्रा पुनि पीछे धाये।
राम भक्त सुख देन उपाये।।
जानि शेष हिय संशय लेशा।
चलै नसावन गौर करुणेशा।।
कहाँ रामेश्वर कहाँ पुनि मदुरा।
मारग विकट चलत पग गौरा।।
सहैं आप दुख जनदुख हारी।
धन्य दयामय परहितकारौ।।

महा०—(प्रवेश गाते हुए, कृष्णदास सहित)

आसाबरी

कृष्ण कृष्ण, मन मानैं ना विन कृष्ण गाये।
कृष्ण कृष्ण, सुख मानै जब ही कृष्ण गाये।।१।।
सोई मीत सोई हितु हमारो, सोई प्राण पियारो।
कृष्ण कृष्ण, जो निशि दिन कृष्ण कृष्ण गाये।।२।।
सोई प्रीति प्रतीति हमारी, सोई नीति पियारी।
कृष्ण कृष्ण, जो निशि दिन कृष्ण कृष्ण गाये।।३।।
(गाते गाते प्रस्थान)

(दृश्य : मदुरा में विप्र राम-भक्त बैठा कीर्त्तन-मगन)

रामभक्त—

राम राम मेरे सीताराम। राम राम मेरे सीताराम।।
राम राम मेरी माता राम। राम राम मेरे पिता राम।।
राम राम मेरे स्वामी राम। राम राम मेरे बन्धु राम।।
राम राम मेरे सीता राम। राम राम मेरे सीता राम।।

समाज— **चौ०**

आये मदुरा भक्त गृह आये।

भक्त दरस हित भाव वढ़ाये।

महाप्रभु—(प्रवेश। कृष्णदास के हाथ में 'पत्रा'-वस्त्रावृत्त) रामभक्त (ससम्भ्रम खड़ा हो) अहा प्रभो! मेरे राम! प्रणाम-प्रणाम (दौड़ चरणों से लिपट जाना)

महा०—हरि बोल।

समाज— **चौ०**

दौरि चरन पर्यौ लिपटाई।

सहसा रंक महा निधि पाई।।

बड़े भाग दर्शन पुनि पाये।

राम कृपा राम ही घर आये।।

सादर आसन प्रभु बैठारे।

चरन गही प्रभु वदन निहारे।।

हेरत हेरत नयन भरि आये।

'कौन भाग, दरसन पुनि पाये।।

प्रभु मुसक्याय मधुर मृदु बोले।

लेओ पढ़ो, ए कहा जु बोले।।

(कृष्णदास के हाथ से पत्रा लेकर देना)

रामभक्त—यह कहा है नाथ?

महाप्रभु—(मुस्कराते हुए) पढ़ कै देख लेओ कहा है।

रामभक्त—(पढ़ता है)

श्लोक

सीतयाराधितो वह्निश्छाया सीतारामजीजनत्।
जां जहार दशग्रीवः, सीता वह्निपुरं गता।।
परीक्षां समये वह्निं, छाया सीता विवेश सा।
वह्निः सीतां समानीय स्वपुरादुदनीनयत्।।

(पत्रा को सिर पर रख नाचता) आनन्द! महानन्द! परमानन्द! राम राम मेरे सीताराम।

राम राम मेरे सीताराम।।

रावण लै गयो माया सीता। अग्निपुर वसी माता सीता।।
राम राम मेरे सीताराम। राम राम मेरे सीताराम।।
गईं अग्नि में माया सीता। आईं राम पै माता सीता।।
राम राम मेरे सीताराम। राम राम मेरे सीताराम।।

समाज— **दोहा**

नाचत पत्रा शीश धरि, आनन्द उर न समाय।
परि परि पायँन पुनि पुनि, गावत गुन न अघाय।।

रामभक्त— **दोहा**

आये आज आये, मेरे राम आये।
दीन जन आंगन, दीनबन्धु आये।।१।।
वह वल्कल हटा के, जटा भी कटा के।
वन कर संन्यासी, मेरे राम आये।।२।।
घाव भरने मेरे, ताव हरने मेरे।
दवा ले के आप ही, मेरे राम आये।।३।।
(आप न जाने)
कहाँ कहाँ न डोले पर मुझ को न भूले।
आँसु पोंछने को, मेरे राम आये।।४।।
ओ दीन के सहैया सीता गुन गवैया।
वे 'प्रेम' मा-बाप, मेरे राम आये।।५।।

ऐसी सहज अहैतु की दया-माया एक मेरे राम के अतिरिक्त और कौन में है? यासों आज मैं आप कूँ जान नहीं दऊँगो। वा दिना तो मैंने आप कूँ, भूखो ही बैठाय राख्यौ हौ परन्तु आज मैं सावधान है कै आप की मन-मानी सेवा करूँगो।

(पटाक्षेप)

महा०—जैसी तुम्हारी इच्छा!

समाज—

बहु विधि सुन्दर पाक बनाये।
सादर नेह प्रभुहिं जेमाये।।
निसि विश्राम तहाँ प्रभु कीने।
भोर नहाय मारग निज लीने।।

'ताम्रपर्णी' पुरानन गाये।
सरिता परम पुनीत नहाये।।
नव तिरुपति', 'नव त्रिपदी' आये।
चिमड़तला रामलषन लखाये।।
'तिनकासी', शिव-दर्शन पाये।
गजेन्द्र मोक्षण विष्णु आये।।
'पाना गुडी' सीतापति दरसै।
श्रीबैकुंठ विष्णु लखि हरषै।।
मलयाचल महाप्रभु आये।
मुनि अगस्त्य दर्शन तहँ पाये।।

दोहा

भारत दच्छिन छोर पै, कन्याकुमारी नाम।
सागर-सागर-मिलन जहाँ, अद्‌भुत संगम धाम।।
चन्द्रोदय पूरब दिशि, पच्छिम भानु-अस्त।
एक संग दीसत जहाँ, कन्याकुमारी बस्त।।

चौ०

सिन्धु न्हाय आगे प्रभु धाये।
मलाबार प्रदेश महँ आये।
तहां चरित प्रभु इक प्रगटाये।
कृष्णदासहिं निमित बनाये।।
"भट्टमारि" संन्यासी नामा।
वामाचारी पुरोहित कर्मा।।
तंत्र-मंत्र-वशीकरन मलीना।
उच्चारन अभिचार प्रबीना।।
निंज आधीन नारी बहु राखहिं।
लोग लुभावहिं, दलहिं बढ़ावहिं।।

(प्रवेश दो भट्ठचारी संन्यासी-अण्प्प) स्वामी, कण्प्प स्वामी, लाल विकच्छ वस्त्र, भस्म त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष माला। दो स्त्रियाँ-पेरीम्मा, गुड़म्मा-दक्षिणी भेष-भूषा।)

(टूटी-फूटी हिन्दी में वार्तालाप)

अण्प्प—कण्प्प स्वामि! देखा?

कण्प्प—खूब देखा अण्प्प स्वामि! शिकार बहुत अच्छा ज्वान! मोटा! बढ़िया!

अण्प्प—पेरीम्मा! गुडम्मा! यह काम तुम्हारा! समझा?

कण्प्प—छोड़ना नहीं। पकड़ लाना! फँसा-फँसा लेना!

अण्प्प—जादू-मंत्र-तंत्र! वशीकरन-वश में कर लेना।

पेरीम्मा—जरूर जरूर! कोई फिकर नहीं नहीं बचेगा! नहीं बचेगा।

गुडम्मा—कोई नहीं बचा! बहोत आया सब फँसा। यह कैसे।

पेरीम्मा—हमारा केश! काला केश देश फँसा! सब फँसा! सब बचेगा!

गुडम्मा—हमारा आँख! आँख में काला काजल! मोहिनी मोहिनी! उल्लू बन जाता! उल्लू।

पेरीम्मा—और गुडम्मा! हमारा जादू मंत्र। मंत्र पढ़ फू-फू बस भेड़ बन जाता। भेड़!

अण्प्प—शावास! जाओ भेड़ बना लाओ।

कण्प्प—उल्लू बना लाओ! जल्दी ले आओ! जाओ!

(दो मर्द एक तरफ से-दो औरत दूसरी तरफ से चले जाते)

समाज— **सो०**

कृष्णदास गयो गाम, लैन भिक्षा हेतु कछु।
प्रभु सुमिरें नाम, बैठि तरु तर तीर पै।।

चौ०

कृष्णदास मारग लखि पायो।
भयो दोउ नारिन के मन भायो।।

(प्रवेश-एक तरफ से कृष्णदास, दूसरी तरफ से पेरीम्मा, गुडम्मा)

पेरीम्मा—(गुडम्मा प्रति संकेत) मिल गया। एक।

गुडम्मा—(संकेत द्वारा) पहले यह, पीछे वह।

समाज—

कृष्णदास बचि निकसन चाहै।
रोकैं मग वे निंकस न पावै।।

दोनों स्त्री—(रास्ता रोककर खड़ी हो जाती हैं)

गुडम्मा—ओ साधु! सुनो! बात सुनो!

कृष्ण०—मैं साधु नहीं, सेवक हूँ!

पेरीम्मा—सेवक हो? स्वामी-स्वामी कहाँ?

कृष्ण०—स्वामी सरोवर पैं है। उनकी भिक्षा के लिए कुछ सामान लैवे जाय रह्यौ हूँ।

गुडम्मा—सामान? भिक्षा? हम देंगे! चलो।

पेरीम्मा—खूब देंगे। बहोन! बढ़िया।

कृष्ण०—बहुत नहीं-थोरो-सो चाँवर-दार।

पेरीम्मा—अच्छा! दाल-चाँवल देंगे! चलों।

कृष्ण०—मैं स्त्रिन के संग नहीं जाऊँगो।

गुडम्मा—क्यों नहीं? हम खाराब नहीं! अच्छा।

कृष्ण०—हमारे स्वामी की आज्ञा नहीं।

पेरीम्मा—(नाक-भौं सिकोड़ती हुई) स्वामी क्या! छोड़ो स्वामी! हमारे संग चलो।

गुड०—खूब खाना! पैसा-रुपया! औरत! मौज-सुख।

कृष्ण०—बस! चुप करौ। छोड़ो रास्ता।

मेरी०—ओह! नहीं मानेगा। जोर दिखाता तो (गुडम्मा को संकेत कर तो)

गुड०—(आँख बचा कृष्णदास के पाँवों की धूल उठा लेती। कुछ पढ़ती हुई कृष्णदास के ऊपर फूँक देती है। फिर एक हाथ पकड़) चलो जी! घर चलो।

पेरी०—(दूसरा हाथ पकड़) खाओ पीओ। मौज करो

(दोनों तरफ से हाथ पकड़े हुए ले जाती है)

समाज— **दो०**

मंत्र चलाय भुलाय कै, लै गईं दास वनाय।
लीला अचरज प्रभु की, सेवक गयो भुलाय।।

(पर्दा खुलता है। महाप्रभु बैठे नाम-मग्न)

चौ०

बैठे कृष्ण कृष्ण प्रभु गावैं।
दिन चल्यौ बीत न सेवक आवैं।।

सुध सहसा सेवक को आई।
दशा बाह्य महाप्रभु पाई।।
देख्यौ कृष्णदास ढिग नाहीं।
करत विचार प्रभु मन माहीं।।
अन्तर्यामी कछु मुसक्याये।
भये ठाड़े कछु सोच उपाये।।

महा०—(उठते हुए) तो अब मोकूँ जानौ ही परैगो।

(प्रस्थान। पुनः प्रवेश दूसरी तरफ से)

समाज—गाम मध्य प्रभु चलि आये।
भट्ट धारि बहु जुरि घिरि आये।।
(प्रवेश पाँच-सात भट्टथारि संन्यासी)

भट्टथारी दल—ॐ नमो नारायणाय! ॐ नमो नारायणाय! आओ स्वामी! आओ! स्वागतम्! मंगलम्।

१. भट्ट०—आप संन्यासी। हम संन्यासी! दोनों गुरु-भाई! एक।

२. भट्ट०—गुरुभाई! चलो हमारा आश्रम! बहुत बड़ा मठ।

३. भट्ट०—भिक्षा खूब चाँवल-भात-दाल! झोल! सब मिलेगा।

महा०—(शान्त गम्भीर) मैं भिक्षा करने नहीं आया हूँ। मैं अपने सेवक को लेने आया हूँ।

१. भट्ट—(अनजान-सा बन) कैसा सेवक-कौन सेवक? महा०- हमारा आदमी! हमारी सेवा में रहने वाला! वह तुम्हारे गाँव में है। लाओ उसे।

२. भट्ट—झूठ बिल्कूल झूठ! वह यहाँ नहीं है।

३. महा०—झूठ नहीं सच! वह भोला भाला आदमी है। उस पर जादु-मंत्र करके उसे वश में कर रखा है। लाओ उसे।

४. भट्ट—झूठ! साफ झूठ! वह आप आया! औरत देखा पीछे आया! आप आया! कोई नहीं लाया।

महा०—देखो मैं संन्यासी! तुमको मेरे साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं हूँ। मैं तीर्थयात्री हूँ, परदेशी हूँ, अतिथि हूँ। तुमको तो मेरी सहायता करनी चाहिए। लाओ मेरे सेवक को।

१. भट्ट—नहीं लायगा! नहीं छोड़ेगा! तुमको भी पकड़ेगा।

२. भट्ट—भाग जा स्वामी! हम मारेगा-पीटेगा।

३. भट्ट—ह्राँ ह्रीं हँ फट् स्वाहा।

महा०—(शान्त गम्भीर) हाँ हाँ मंत्र पढ़ो! मूठ चलाओ। मारो! जो चाहो सो करो। मैं खड़ा हूँ।

समाज—

अस्त्र-शस्त्र सब लै लै धाये।
मंत्र पढ़ैं मारन कोई चाहैं।।
हाथ उठै नहीं अस्त्र चलै नहीं।
मंत्र पढ़ैं पै मंत्र फलै नहीं।।
उलटि मंत्र तिनही पै लाग्यौ।
मति गई विगरि मोह-भ्रम जाग्यौ।।
बैरी परस्पर ही कूँ ठानैं।
लागै लड़न कोई ना पहिचानैं।।
हाथ जोइ-सोइ शस्त्र चलावैं।
फाटै शीश अंग कटि जावैं।।
भागि कोई निज प्राण बचाये।
महद् अपराध फल जु पाये।।

महा०—(इनको लड़ते-भिड़ते छोड़ भीतर चले जाते हैं और कृष्णदास को खीचते हुए बारह ले आते हैं)

समाज— **चौ०**

प्रभु आप अन्तर गृह धाये। कृष्णदास गहि केश लै आये।
भट्टमारी लै प्रान पलाये। कृष्णदास रोवत दुख पाये।।

महा०—(कृष्णदास की चोटी पकड़े हुए खड़े हैं)

कृष्ण०—त्राहि माम्! दीनबन्धों! क्षमा! क्षमा! दयासिन्धो।

समाज—त्राहि त्राहि कहि पर्यों सो चरना।
क्षमहु दोष हे आरत-हरना।।

कृष्ण०—तुम बिन कौन समर्थ गुसांई।
काढ़ै जीव नरक सों आई।।

महा०—(गम्भीर मुद्रा) कृष्णदास! यह मेरी आज्ञा-उल्लंघन को फल है! समझ गये न?

कृष्ण०—(नतमस्तक मौन)

महा०—तुमने आज प्रकृति-सम्भाषण कियौ न?

कृष्ण०—(धीरे से) हाँ प्रभो!

महा०—मेरी आज्ञा कहा है बताओ।

कृष्ण०—आप की आज्ञा तो यह है कि स्त्री-मात्र ते दूर रहनौ। उनसों कबहु बात तक नहीं करनौ।

महा०—तो फिर तुम क्यों उनके संग बातन में लग गये। कहा अपने त्याग-वैराग्य के गर्व सों, कैं मेरे सेवक हैवै के अभिमान सों? अब तो चूर भयो न गर्व, भंग भयो न अभिमान? कहाँ ते कहाँ जाय कै परै! मेरी सेवा में रहनौ चाहौ तो आगे सों सावधान! नहीं तो चलै जाओ। मैं इकलोइ विचरूँगो। ऐसे सेवक सों इकलोइ भलो।

कृष्ण०—(चरणो को पकड़ रोता हुआ) क्षमा करौ दया सिन्धों इन श्रीचरणन की सौगन्ध है अब मैं कभु तिल भर हू आपकी आज्ञा को उल्लंघन नहीं करूँगो। मोकूँ इन श्रीचरनन की सेवा ते दूर मत पटक देओ नाथ! तब मेरी रक्षा को करैगो? मैं तो नरक मैं डूबजाऊँगो-मर जाऊँगो! मेरे रक्षक-पालक माता-पिता स्वामी! मोकूँ तजि मत दैओ! शरण! शरण!! (चरण पकड़ रुदन)

महा०—अच्छो! उठौ! चलौ! हरि बोल।

(कीर्तन करते हुए प्रस्थान)

समाज— **पद**

लाज हरि के हाथ, अनत हिं।
विगारन हारे जग के सारे, सँम्हारन वारे नाथ, अनतहिं।।
विपदा घर महँ, विपदा वन महँ, विपद विना पद नाथ।
जनम कोटि लौं छूटै न माया, पल में छुड़ावै नाथ०।।
ऊँचे चढ़ि चढ़ि नीचे ही परि हैं, 'प्रेम' कृपा दिन नाथ०।।

चौ०

पयस्विनी तट तिरुवत्तर आये।
दर्शन आदि केशव पाये।।
भक्त बैठि मिलि ग्रनी विचारहिं।
मधुर कंठ सुश्लोक चारहिं।।

(दृश्य वैष्णवभक्त मंडली बैठी। एक वक्ता। सम्मुख 'ब्रह्मसंहिता' ग्रन्थ।)

वक्ता **श्लोक (गाकर)**

चिन्तामणि-प्रकरसद्मषु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभिरभिरवालयन्तम्।
लक्ष्मीशत सहस्त्र सम्भ्रम सेव्यमानं,
गोविन्दमाहिं पुरुषं तमहं नमामि।।

समाज— **चौ०**

आवत प्रभु तिन देखै। गावत कृष्ण तन प्रेम विशेष।।

महाप्रभु—(प्रवेश) श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव।।

समाज— **चौ०**

भक्त म०—(उठकर महाप्रभु के संग कीर्तन-नृत्य)
कृष्ण कृष्ण उठि गावन लागै।
नाचत प्रेम मगन रस पागै।।

दो०

पुनि आसन बैठारि प्रभु, चरण-वन्दन कीन्ह।
भाग सराहहिं आपनो, भले जु दर्शन दीन्ह।।

महा०—भक्तजनो! यह कौन-सो ग्रंथ है?

१. भक्त—यह ग्रंथ 'ब्रह्मसंहिता' है।

महा०—यह नाम तो मैंने आज ही सुन्यौ। याको कछु परिचय तो सुनाओ।

२. भक्त—यह जगत्पितामह श्रीब्रह्मा जी द्वारा रचित ग्रंथ है। या सों 'ब्रह्म संहिता' नाम है। सम्पूर्ण ग्रंथ में तो एक सौ अध्याय बतावैं हैं परन्तु वर्तमान में तो केवल पाँच अध्याय ही उपलब्ध हैं। इनमें ६२ श्लोक हैं।

महा०—यह कोई लीला-ग्रंथ है अथवा तो सिद्धान्त-ग्रंथ?

२. भक्त—यह सिद्धान्त-ग्रंथ है देव! यामें श्रीकृष्ण ही परात्पर परब्रह्म तत्त्व हैं एवं उनको गोलोक ही परम धाम है प्रतिपादित है।

महा०—अहा! तब तो श्रीकृष्णभक्तन के लिए परम-आस्वादनीय है। याको कोई एक श्लोक श्रवण करायवे की कृपा करो।

पाठक भक्त—भगवन्! याको सर्वप्रथम श्लोक श्रवण करैं

श्लोक

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिराढिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।

महा०—स्वादु स्वादु, पदे पदे! अति सुन्दर पद-योजना! चमत्कार! याके अर्थ को हू कछु आस्वादन करावैं।

पाठक—हम तो कोई विशेष अर्थ नहीं जानैं है। यह तो आप ही समझ सकौ हो।

महा०—तथापि जैसो कछु जानौ हौ वैसोइ कहौ। कृष्ण-कथा तो बालक-मुख की हू आदरणीय है। तामें आप तो सब वैष्णव भक्तजन है।

१. भक्त—परन्तु हम तो यही नहीं समझ पावैं हैं कि कौन-सो पद विशेष्य है। 'ईश्वर' पद है, अथवा 'कृष्ण' पद है अथवा 'गोविन्द' पद है। यासो अर्थहू करैं तो कैसे करैं।

महा०—मेरे विचार सों तो 'कृष्ण' पद ही विशेष्य है, एवं अन्य पद सब विशेषण हैं।

पाठक—'कृष्ण' पद ही विशेष्य क्यो है देव?

महा०—कारण कि वेदशास्त्रन ने श्रीकृष्ण के सहस्रन नामन में सों 'कृष्ण' नाम ही मुख्य मान्यौ है।

पाठक—सो 'गोविन्द' पद कहा है देव?

महा०—यह 'कृष्ण' को असाधारण लक्षण है- मुख्य पहिचान है। यह 'कृष्ण' गायन में बसै है, गायन को पालक है, गायन को रक्षक है। गायन सों ही कृष्ण, गोविन्द है, गोपाल है, गोकुल-गोलोकवासी है।

पाठक—धन्य है भगवन्! बड़ो सुन्दर अर्थ है। और 'ईश्वर' पद सों कहा अभिप्राय है?

महा०—गोविन्द' नाम सों कोई कृष्ण कूँ प्राकृत ग्वाल न समझ बैठे याके निषेध के लिए ही 'ईश्वर' पद की योजना है। अर्थात् कृष्ण कूँ कोरो ग्वारिया गोविन्द ही नहीं समझनो वह 'ईश्वर' है—चींटी सों ब्रह्मा एवं ब्रह्माण्ड सब कृष्ण के वश में हैं। वह कृष्ण सर्वतंत्र-स्वतंत्र है।

पाठक—धन्य है नाथ धन्य है। 'परमः' एवं 'अनादिरादि' को कहा तात्पर्य है?

महा०—जब कृष्ण सर्वोपरि ईश्वर' हैं तो सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तमहू सिद्ध है ही गये। याके लिये 'परमः' कह्यौ। वह कृष्ण सर्वोत्तम ही नहीं वह सबको आदि अर्थात् मूल है एवं वाको आदि अर्थात् मूल कोई नहीं यासों अनादि है।

पाठक—तथा 'सर्वकारणक रणम्' सों कहा तात्पर्य ?

महा०—जगत् की उत्पत्ति में कारण प्रकृति एवं पुरुष है। तथा इनके हू कारण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं। अतः 'सर्व कारणकारणम्' हैं।

पाठक—अब एक पद शेष रह गयो "सच्चिदानन्द विग्रहं याकूँ हू समझाय दैवे की कृपा करें।

महा०—जो कृष्ण "ईश्वर" हैं, 'परम' हैं, 'अनादिरादि' हैं एवं 'सर्वकारण कारण' हैं, उनकूँ, कोई निराकार न समझ बैठे याके निषेध के लिए "सच्चिदानन्द विग्रह" पद दियौ है। अर्थात् ऐसो जो कृष्ण है वह निराकार नहीं साकार है तथा उनको विग्रह अर्थात् शरीर पंचभूत को बन्यो भयो त्रिगुणमय नहीं, वह सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है। यह तात्पर्य है। अब एक बार पूरो श्लोक पाठ करौ।

पाठक—

श्लोक

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारण कारणम्।।

महा०—आओ। सब मिलकर कै कृष्ण-गुन-गान करैं।

रसिया

एक से एक नाम हैं कृष्ण के, सर्वशिरोमणि कृष्ण नाम।
लक्षण यही पहिचान यही है, वाको गोविन्द गोविन्द नाम।।१।।
गायन पालै गायन राखै, गायन बसै गोकुल गाम।
गायन सों गोविन्द कहावै, बिन गाय नहीं गोविन्द नाम।।२।।
वह गोविन्द तो नहीं नर-बालक, ईश्वर-परमेश्वर ए नाम।
आदि अनादि कारणकारण, पुरुष परात्पर है वो श्याम।।३।।
कौन कहै निराकार कृष्ण है, वह तो द्विभुजवारो श्याम।
पंचतत्व की देह न वाकी, आनन्दघन वह प्रेमधाम।।४।।

पाठक—(हाथ जोड़) भगवन्! आप तो कछु समय यहीं निवास करें तथा हम कूँ 'ब्रह्मसंहिता' को आस्वादन करावें।

महा०—(हँसते हुये) यहाँ निवास करवे की ही कहा मैं तो या ग्रंथ कूँ ही लै जायवे कूँ उत्कंठित है रह्यौ हूँ।

पाठक—अवश्य लै जाओ देव! परन्तु उतरवाय कै लै जाओ!

महा०—चलौ ऐसे ही सही। मिलनो चाहिये—कैसे हू होय। आज या अपूर्व ग्रंथ के दर्शन कराय कै मोकूँ, आप भक्त जनन ने बड़ो ही सुख दियौ। मैं कहा दऊँ। मोपै तो कछुइ नहीं है बस एक कृष्ण नाम है यासौं आओ मिलकर कीर्तन करैं

कीर्तन— कृष्ण गोविन्द हरे कृष्ण गोविन्द।
कृष्ण गोविन्द हरे कृष्ण गोविन्द।।
(गाते-गाते प्रस्थान)

समाज **दो०**

ब्रज संहिता ग्रन्थहिं, प्रभु लिये लिखवाय।
सादर संगहि लै चलै, निधि अमूल्य अति पाय।।

चौपाई

अनन्त वन त्रिवेन्द्रम् आये। 'पद्मनाभ' हरि दर्शन पाये।।
शेषनाग-शय्या जु विशाला। पौढ़े पद्मनाभ कृपाला।।
अति दीरघ शायित वपु सोहै। तीन द्वार सों दर्शन होवै।।

एक द्वार सों मुख दरसावैं, दूजे सों वक्ष-नाभ।
तीजे सों चरनन चमकावैं, लम्बे पद्मनाभ।।

दिन द्वै वास महाप्रभु कीन्हे। पद्मनाभ दरस-सुख लीन्हे।।
आगे 'जनार्दन' महाप्रभु' आये। रूप चतुर्भुज दर्शन पाये।।
यज्ञभूमि ब्रह्मा की कहिये। धूप-खान अजहुँ तहाँ लहिये।।
दिन द्वै वास जनार्दन कीन्हे। कृष्ण नाम बहु कीन्हे दीन्हे।।

समाज **चौपाई**

राजा त्रिबांकुर रुद्रपति राजा। भक्ति भक्त प्रिय सुखद सुराजा।।
दया धम सेवा उर धारैं। दान मान अतिथि सत्कारैं।।
संध्या समय प्रभु तरुतर बास। दौरि दौरि जन आये पास।।
क्षीण तनु धूसर पट जीरण। दमकत वदन दिव्य द्युति कंचन।।
मधुर सुमंगल नाम उचारैं। प्रेम बूँद लोचन भरि ढारैं।।

महा०—(वृक्ष तले बैठे 'कृष्ण कृष्ण' जप-कर रहे हैं कृष्ण दास समीप बैठा)

दोहा

नाम रूप सौरभ सहज, भई जन मधुकर भीर।
विनती करैं गृह गमन हित, भये हार अधीर।।

सो०

तरु तर बितये रात, गाम गमन नहिं कीन्ह प्रभु।
पाय सुधि प्रभात, राजा पठ्यो दूत निज।।

राजदूत—(प्रवेश कर) प्रणाम संन्यासी स्वामी। चलो राजमहल। राजा बुलाय। हम लेने आया।

महा०—मैं राजा के समीप जाने में असमर्थ हूँ।

राज०—क्यों स्वमाी ? राजा धर्मात्मा। बड़ा भक्त। वहोत आदर करेगा। खूब धन देगा। चलो।

महा०—मुझे धन नहीं चाहिये! मैं संन्यासी हू।

राज०—ओह! राजा बुलाता! नहीं जाता। बड़ा अभिमान राजा का अपमान! सजा मिलेगा सजा! (चला जाता)

समाज— सो०

राजा निकट रिसाय, कही झूठ सच बात बहु।
सौ तो अचरज पाय, दरस हेत चल्यौ भूपति।।
साधारण जन वेष बनायो।
मंत्रिन संग राजा तहँ आयो।।

राजा—(प्रवेश कर हाथ जोड़) ॐ नमो नारायणाय! मैं आप को अपराधी हूँ! क्षमा करौ भगवन् :-

पद-दादरा

भई भूल करो दया, आया क्षमा माँगने।
भेजा दूत लाने को, न आया आप सामने।।
(अब) विनती हाथ जोड़ यही, कृपा कर उपदेश करो।
हरो मान देओ ज्ञान, ताप मेरे पाप हरो।।

महा०—भाग्यवान भूपति हो, मति तुम्हारी धन्य है।
चाहते उपदेश ज्ञान, कामना यह धन्य है।।
(परन्तु) क्या करूँ मैं कहूँ क्या, जानूँ नहीं ज्ञान है।
जानूँ इतना ही मेरे, राधाकृष्ण प्रान है।

समाज **कीर्तन**

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण गाते, उठ खड़े नाचन लगे।।
भुजा उठाय कृष्ण गाय, नयन अश्रुझर झरे।
नाचें जोर हो विभोर, खा पछाड़ भू गिरे।।
राजा दौड़ लेके क्रोड़, प्रभु उठाय किये खड़े।
(अब तो) मत्त राजा परस पाय, नाचे कृष्ण कृष्ण कहे।।
नयन बहें कम्प उठे, पुलक रोम तन भरे।
धरन लोट पोट मत्त, कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहे।
प्रेम देख प्रेम प्रभु, प्रेम अंक ले भरे।।

महा०—हे राजन्! जा मनुष्य के—

हरि कहते हरि गाते, बहे नयन धारा है।
सत्य कहूँ वह तो मेरी, आँखों का तारा है।।

राजा—दीनबन्धो! करुणासिन्धो! जब आपने इस अधम को अपना लिया है तो अपनी पद-रज से मेरे भवन कूँ पवित्र करने की कृपा भी हो जावै नाथ!

महा०—राजन्! विषय एवं विषयी जन सों दूर रहनो संन्यास को नियम है! यासों मैं तुम्हारे संग नहीं जाय सकूँ हूँ। श्रीकृष्ण की तुम्हारे ऊपर कृपा है।

यासौं—कृष्ण भजो कृष्ण रटो कृष्ण नाम सार है।
कृष्ण को न भूलनो यही भजन सार है।।

हरि बोल— (प्रस्थान)

चौ०

आगे 'पयोष्णि' तीरथ नहाये। 'मठ श्रृंगेरी' पुनि प्रभु आये।।
शंकराचार्य आदि-जग जानै। शंकर शंकराचार्य कहानै।।
चार धाम मठ चार बनाये। मठ श्रृंगेरी मुख्य कहाये।।
शारद अम्बा दर्शन कीन्हे। पुनि तुंग भद्रा तटहिं गमने।।
'उडुपि' उदीपि जेहिं जगगाये। मध्वाचारज पीठ कहाये।।
द्वैतवादी त्रिदंडहिं धारैं। तत्ववादी कोई पुकारैं।।

दो०

उडगण-तारागण पति, चन्द्र जगतृ बिख्यात।
कृष्णचन्द्र ही उडुप कृष्ण, नाम इर्हा जु धरात।।

चौ०

मठ उडुपी मध्य विरजै। नृत्य गोपाल मूरति साजै।।
हाथ मथानी डोर जु सोहे। बालगोपाल मूरति मन मोहै।।

(दृश्य। मन्दिर। नृत्यगोपाल की खड़ी बालमूर्ति।
दाहिने हाथ में मथानी, बायें में डोर)

पुजारी—बोलो नृत्यगोपाल उडुप कृष्ण की जय।

महाप्रभु—(प्रवेश। कृष्णदास एवं जनता)

पुजारी—ॐ नमो नारायणाय:। पधारौ भगवन्! दर्शन करौ। यह उडुप कृष्ण नृत्य गोपाल है। हमारे यहाँ कृष्णचन्द्र ही उडुप कृष्ण कहैं हैं। उडगण माने तारागण। तिनके पति उडुप अर्थात् चन्द्र। अतएव उडुप कृष्ण माने कृष्णचन्द्र! भाषा अपनी-अपनी अलग है। अर्थ एक ही है। उडुप कृष्ण की यह नृत्य गोपाल मूर्ति है—हाथ में मथानी एवं डोर लिये बालगोपाल हैं। आपने तीर्थयात्रा में भगवान् के बड़े-बड़े रूप के दर्शन करै होंगे—शंख-चक्रधारी, धनुषधारी, मुरलीधारी परन्तु मथानी डोरधारी छवि के दर्शन कहूँ नहीं पाये होंगे!

महा०—(मुस्कराते हुए) सत्य सत्य! यह मधुर छवि तो हमकूँ आज ही दर्शन करवे कूँ मिलीं! अहो! धन्य है भगवान् के अनन्त रूप एवं अनन्त लींला कूँ। जीव के कल्याण के निमित्त ही यह सब आपको विस्तार-प्रस्तार है।

पुजारी—भगवन्! यह हमारे नृत्यगोपाल जी गोपी चन्दन की राशि (ढेरी) में सों प्रगट भये हैं।

महा०—याकी कथा कैसी है विप्रदेव?

पुजारी—महाराज! जा समय हमारे सम्प्रदाय के आद्याचार्य अनन्त श्री श्रीमध्वाचार्य जी महाराज यहाँ विराजमान रहै वा समय एक व्यौपारी द्वारिकापुरी सों नौका में सामान भर कैं समुद्र के किनारे-किनारे आय रह्यौ हो। वा नौका में गोपीचन्दन हू भर्यौ हो। सो यहाँ समुद्र-तट पै आय कै वह नौका डूब गई। तब आचार्य श्री कूँ स्वप्नादेश भयो कि मोकूँ जल में ते निकासो। गोपीचन्दन के मध्य में मेरी मूर्ति हैं। तब आचार्यचरण ने जाय कै नौका निकसवायी तो गोपीचन्दन की ढेरी में शालग्राम शिला की एक परम सुन्दर गोपाल मूर्ति प्राप्त भई वेही यह नृत्यगोपाल जी हैं।

नृत्यगोपाल की जय। उडुप कृष्ण की जय।

जनता महाप्रभु गीत केहरवा

जय नृत्य गोपाल जय बाल गोपाल।
यशोदा के लाल बाबा नन्द के लाल।।१।।
(तुम) छोटे-से-छोटे जैसे नर वाल,
(तुम) मोटे-से-मोटे हो काल के काल।
लम्बे-से-लम्बे तुम स्वर्ग-पाताल
नापे दो पग में, ऐसे हो वाल।।जय०।।
(तुम) नाक से निकलो खम्भ से निकलो।
गिरि में शिला में से मिट्टी से निकलो।
घट में भी पट में भी आओ दयाल,
भक्तों के काज ऐसे दीनदयाल।।जय०।।
सुदर्शन धरो धनुषवान धरो
शंख-धरो, मुरली हाथ धरो।
माखन मथानी डोर धरे बाल।
खड़े हो यहाँ बलिहारी जु लाल।।जय।।
तेरे रूप निराले पावे कौन पार,
लीला निराली गयो ब्रह्मा हू हार।
मौज निराली निराली चाल
पूरे खिलाड़ी 'प्रेम' नये नये ख्याल।।

(धुन)

जय नृत्यगोपाल, जय बालगोपाल।
बाल गोपाल जय यशोदा के लाल।
यशोदा के लाल जय नन्द के लाल।।

त्रिदंडी गुरु शिष्य—(तीन त्रिदंडी वैष्णवों का प्रवेश-एक किनारे खड़े-खड़े संकीर्तन-दर्शन करते हैं)

(महाप्रभु का दल कीर्तन करते हुए चला जाता है)

समाज चौ०

तत्ववादी तहाँ ठाडे निहारैं।
मिट्यौ भ्रम सब भये सुखारे।

१. शिष्य—गुरुदेव! हम तो इनकूँ मायावादी संन्यासी समझ करकै दूर ही दूर ठाड़े रहै परन्तु यह तो परम वैष्णव संन्यासी प्रतीत होय हैं।

२. शिष्य—ये हमारे मठ में आये, मन्दिर में पधारे। तौहु हमने इनको स्वागत-सत्कार तो दूर, इनकूँ नमस्कार तक हू नहीं कियो। इतनो सामान्य शिष्टाचार हू हमसों न भयो।

गुरु—भयो सो भयो। अब चलकै इनको यथोचित सत्कार करौ। इनके निवास-भिक्षादि को सुन्दर प्रबन्ध करौ। चलौ इनके समीप! यह कोई महापुरुष-से प्रतीत होयँ है। (प्रस्थान)

समाज— **चौ०**

जव प्रभु-कीर्तन-नृत्य निहारे।
प्रेमभाव आवेश महारे।
भई प्रतीति वैष्णव उर ठानै।
उपजी प्रीति प्रभु मन भानै।।

महाप्रभु—(बैठे हुए 'कृष्ण-कृष्ण' जप रहे हैं)

जुरि मिलि सब प्रभु ढिग आये
सादर बचन कहत सकुचाये।।

महा०—(गात्रोत्थानपूर्वक) नमस्कार भगवन्! कृष्ण-कृष्ण

तत्ववादी गुरु—नमस्कार भगवन्! नमस्कार! अहो भाग्य हमारे जो आप जैसे महापुरुष हमारे मठ में पधारे! आपके कीर्तन-नृत्य के दर्शन करकै हमकूँ बड़ो सुखद आश्चर्य भयो।

१. शिष्य—हमने आपके संन्यासी-भेष के कारण आपकूँ अद्वैतवादी संन्यासी मान लियो हो। अत: आपको स्वागत-सत्कार कछु नहीं कर्यौ। याके लिये हम दोषी हैं, क्षमा-प्रार्थी हैं।

वहा०—जो साक्षात् कृष्ण गोपाल के परिकर हैं वे तो अपने ही जन हैं। वे कछु करैं, उत्तम ही करैं हैं। उनसों कहा कबहु अनहित है सकै है?

त० गुरु—धन्य है जो आप हमकूँ अपनो करकै मानैं हैं। अब हमारे चित्त कूँ सन्तोष भयो।

२. शिष्य—आप तो भगवन्! अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्ण के कोई अन्तरंग जन हैं। अत: हमकूँ कछु श्रीकृष्ण-कथा श्रवण कराय कै कृतार्थ करैं।

महा०—श्रीकृष्ण-कथा मैं कहा कह सकूँ। मोकूँ तो साधन-साध्य को हू ज्ञान नहीं है।

(बंगला) साध्य-साधन आभि ना जानि भालो मते।
साध्य-साधन श्रेष्ठ जानाह आमाते।।
भीम पलास-पद गान केहरवा
साध्य कहा श्रेष्ठ कौन साधन है श्रेष्ठ।
जानौं नहीं नीके विधि, कहो आप श्रेष्ठ।।

त० गुरु—वर्ण अरु आश्रम के कर्म धर्म सारे।
करै कृष्ण अरपन, साधन महारे।।
साधै दृढ़ करि यह साधन सदा ही।
कृष्णभक्ति-फल तब फलिहै तहाँ ही।।

महा०—याके द्वारा साध्य कहा है?

त० गुरु—मुक्ति पाय चतुर्विध श्रीवैकुण्ठ जाये।
साध्य तो परम यही शास्त्र सब गाये।।
श्रीकृष्ण-लोक-वास मुक्ति है सालोक्य।
श्रीकृष्ण-समीप-वास मुक्ति है सामीप्य।।
श्रीकृष्ण जैसो रूप मिलै मुक्ति सारूप्य।
श्रीकृष्ण जैसो वैभव सार्ष्टि मुक्ति नित्य।।
फल यही भक्ति को तो, मुक्ति चार पावै।
बसै श्रीबैकुण्ठ नित्य फेर नहीं आवै।।

महा०—(भगवन्! अपने शास्त्र-विचार सौं तो)
वर्णाश्रम धर्मकर्म भक्ति नहीं देवै।
कृष्ण प्रेमभक्ति बस नवधा ही देवै।।
श्रवण कीर्तन सुमिरन पाद-सेवन।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यान्म निवेदन।।
नवधा ये भक्ति कृष्ण-प्रेम उपजावै।
प्रेम ही परम पुरुषारथ कहावै।।
पावै प्रेम जबै तबै कृष्ण-सेवा पावै।
सेवा बिन चारों मुक्ति, मन न लुभावै।।

श्लोक

सालोक्य - सार्ष्टि - सामीप्य - सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णान्ति बिना मत्पादसेवनं जनाः।। (भाग०)
ऐसो प्रेम कबहु न कर्म धर्म देवै।
सर्वधर्म तजि भजै प्रेमभक्ति होवै।।

धर्मत्याग कर्मनिन्दा शास्त्र सब गावैं।
गीता भागवत मधि कृष्ण ही सिखावैं।।
(भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव प्रति कहैं हैं)

लोक

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स सत्तम।। (भाग०)
(अर्थात्) जो जो धर्म मैंने कह्यौ, मानै नहीं कोई।
सर्व धर्म तजि भज उत्तम भक्त सोई।।
(भगवान् श्रीकृष्ण यह हू आदेश करै हैं कि)

श्लोक

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्वेद्येत यावता।
मत्कथा श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते।। (भाग०)
(अर्थात्) कम करैं तब लौं जब लौं वैराग न आवै।
अथवा नवधा भक्ति विच श्रद्धा नहिं पावै।।

सारांश यह भयो कि—

कर्म-साधन मुक्ति-साध्य वैष्णव न मानै।
कर्मः मुक्ति दोउ त्यागे वैष्णव कहानै।।
परम वैष्णव आप ऐसे कैसो मानौ।
मोकूँ संन्यासी मान, कर्म, मुक्ति गानौ।।

मोकूँ संन्यासी समझ कदाचित् आपने यह विचार्यो होय कि यह तो प्रेमभक्ति को विरोधी होयगो। यासो कर्म-धर्म-मुक्ति की बाह्य चर्चा सुनाय करकै विदा कर दैओ।

समाज— **(बंगला)**

शुनि तत्त्वाचार्य हैला अन्तरे लज्जित।
प्रभुर वैष्णवना देखि होइला विस्मित।।

सो०

लज्जित तत्वाचार्य, बोध विनययुत वचन सुनि।
भयो परम आश्चर्य, लखि लखि वैष्णवता प्रभु।।

त० गुरु—भगवन्! आप ने जो सिद्धान्त स्थापन कर्यौ वह सत्य है, शास्त्र-सम्मत है। तथापि हमारौ सिद्धान्त हू शास्त्र सम्मत वैष्णव सिद्धान्त है।

महा०—सोई तो मैं सुननो चाहूँ हूँ। आप मोकूँ, संन्यासी समझ कै कछु छिपा वैं नहीं। स्पष्टत: अपनो सिद्धान्त कहैं।

त० गुरु—प्रथम साधन-सम्बन्ध में हमारो सिद्धान्त श्रवण करैं। श्रवण, कीर्तन, अर्चन इत्यादि नवधा भक्ति तो हम हू करैं हैं। न करैं तो वैष्णव ही कैसे? परन्तु सर्वधर्म कर्म त्याग करकै भक्ति नहीं करैं हैं सर्व धर्मन के सहित भक्ति करैं हैं। हम श्रीभगवद्गीता में प्रतिपादित स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के या सिद्धान्त के अनुसार चलैं हैं कि जब सर्व कर्म त्याग मनुष्य के लिये सम्भव ही नहीं है तो फिर "यत्करोषि यदश्नासि" वाक्यानुसार सर्व कर्म श्रीकृष्ण कूँ समर्पण कर देवैं हैं। याहि कारण हमारे श्रीआचार्य चरण ने कायिक वाचिक एवं मानसिक भेद सों दस प्रकार के कर्त्तव्य कर्म बताये हैं तथा अन्त में उन सब कर्मन कूँ नारायण कूँ समर्पण कर दैवे कूँ भजन कहैं हैं—

"नारायणे समर्पणं भजनम्"।

जब सर्व कर्म धर्म समर्पित है गये तो फिर फल की आशा अभिलाषा, कामना-वासना कहाँ रही? यदि रह गयी, मुक्ति भक्ति तक की हू अभिलाषा रह गयी तो सर्व समर्पण समर्पण ही नहीं है।

महा०—तो साधन कर्म के द्वारा साध्यमुक्ति प्राप्त होय है याको कहा तात्पर्य है? कहा मुक्ति कर्मजन्य है?

त० गुरु—कदापि नहीं। भक्ति एवं मुक्ति उनको प्रसाद है कर्म-फल नहीं है। भगवान् की कृपा सों ही भक्ति एवं मुक्ति सुलभ है, जीव के पुरुषार्थ सों दुर्लभ है।

महा०—यह प्रसाद—यह कृपा कैसे प्राप्त होय है?

त० गुरु—सर्व समर्पण सों! याकूँ आत्म-निवेदन हू कहैं हैं। जैसे बने वैसे भगवान् कूँ प्रसन्न करनो-बस इतनो ही जीव को धर्म है यही शास्त्र को चरम सिद्धान्त है यही भागवत् धर्म है। प्रमाण—

श्रीमद्भागवत् में नारद जी कहैं हैं कि कर्त्तव्य-कर्म वही है जासों श्रीहरि प्रसन्न होवैं—"तत्कर्म हरितोषं यत्।" कश्यप ऋषि अदिति जी सों कहैं हैं कि यही यम है, वही नियम है, वही तप है, वही दान-व्रत है, वही यज्ञ श्रेष्ठ है कि जासों भगवान् प्रसन्न होवैं—

त एवं नियमा: साक्षात् त एव च यमोत्तमा:।
तपोदानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षज:।।

ऐसे ही वही भागवत् में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण मैत्रेय ऋषि के प्रति कह रहैं हैं कि इष्ट-पूर्त कर्म तप, दान, यज्ञ, समाधि को सिद्ध फल है मेरी प्रीति "मत्प्रीतिः तत्वविन्मतम्।" श्रीगीता के "स्वकर्मण तमभ्यचर्य" इत्यादि वचन सुप्रसिद्ध ही हैं।

अतएव कोई सर्व धर्म त्याग करकै भगवान को भजन करैं हैं तो हम सर्व कर्म समर्पण के द्वारा भजन करैं हैं 'भजनं भक्तिः।' सर्व कर्म समर्पण ही कूँ हमारे सिद्धान्त में 'अमला भक्ति' कही है। हमारे सिद्धान्त को संग्रह श्लोक यह है—

श्लोक

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्वतोः।
भेदो जीवगण हरेरनुचरा नीचोच्च भावं गताः।।
मुक्तिर्निज सुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं।
ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैक वेद्यो हरिः।।

महा०—धन्य है। आपने साधन रूप कर्म को सुन्दर स्पष्टीकरण कर दियौ। अब साध्य मुक्ति के सम्बन्ध में हू कछु श्रवण करायवे की कृपा करैं।

त० गुरु—हमारे सिद्धान्तानुसार वैकुण्ठ-प्राप्ति ही मुक्ति है। परन्तु मुक्त जीव हू ईश्वर को सेवक ही है। कारण कि हमारे द्वैतवाद में ईश्वर एवं जीव नित्य ही पृथक् हैं। अतः सायुज्य मुक्ति अथवा निर्वाण मुक्ति को तो कोई प्रसंग ही नहीं है। जीव सेवक ही नित्य बन्यौ रहै है। मुक्ति सेवा को विरोधी नहीं सहायक है। मुक्ति में ही सेवा है। "दीयमानं न गृह्णान्ति बिना मत्सेवनं जनाः" वचन को तात्पर्य हू यही है कि सेवा न हो तो मुक्ति नहीं चाहिये। परन्तु यदि सेवा मिलै एवं मुक्ति हू मिलै तो फिर कौन जीव नहीं चाहैगो। आशा है अब आप कूँ कछु संतोष प्राप्त भयो होयगो।

महा०—धन्य है धन्य है। आप ने यथार्थ वैष्णव सिद्धान्त प्रतिपादन करके मोकूँ अपूर्व सुख संतोष प्रदान कियौ। आज को सत्संग चिरस्मरणीय रहैगो।

त० गुरु—भगवन्! अब आप कछु दिवस हमारे मठ में विश्राम करैं तथा हमकूँ अपने सत्संग को लाभ प्रदान करैं।

महा०—धन्य भाग्य मेरे! आप जैसे वैष्णव महानुभाव को सत्संग तथा नृत्यगोपाल जैसे अद्भुत ठाकुर के दर्शन-बोनों हाथन में लड्डू! मैं कैसे त्याग सकूँ हूँ। हरि बोल (कीर्तन करते-करते प्रस्थान)

(श्रीनृत्य गोपाल की झाँकी। आरती)

इति श्रीनृत्यगोपाल दर्शन लीला

।। सम्पूर्ण।।

०ॐ❖ॐ०

संन्यास-लहरी **पंचदश कणामृत**

अथ पांडुरंग-विट्ठलनाथ-दर्शन लीला

जय श्रीकृष्ण चैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द।।

श्लोक

प्रतप्तकनकप्रभ विमलपूर्णचन्द्राननं।
गलन्नथनवारिभिः सपदिसिक्तभूमितलम्।।
सगद्गद्गिरं मुदा सकलदेवचूड़ामणिं।
शची सुतमहं भजे करुणासागर ईश्वरम्।।

स्तुति-पद

जय श्रीकृष्ण चैतन्य करुणाकर तीर्थ विहारी जय जय जय।
जय श्रीहरिनाम संकीर्तन कर, लोकोद्धारी जय जय जय।।१।।
जय वासुदेवकुष्टहर कंचनतनकारी जय जय जय।
जय रामानंदराय गुरुवर बन्धनहारी जय जय जय।।२।।
जय वेंकटभट्ट कृपाकर शिक्षाकारी जय जय जय।
जय गोपालभट्ट हितकर शरणदातारी जय जय जय।।३।।
जय श्रीरामभक्त दुखहर, संशय विदारी जय जय जय।
जय गणिकाबनभील पाप हर, पतितोद्धारी जय जय जय।।४।।
जय बहुबादकुवाद तिमिरहर, भास्करधारी जय जय जय।
जय विद्वेषीद्वेष दुखहर, प्राणदातारी जय जय जय।।५।।
जय विष्णु शिव मन्दिर-मन्दिर कीर्तनकारी जय जय जय।
जय निज इष्ट वत् दर्शनकर समभावधारी जय जय जय।।६।।

जय पद-पद विपदकष्टधर जगहितकारी जय जय जय।
जय जय तीरथतीरथकर, गौर, प्रेमावतारी जय जय जय।।७।।

दो०

वरनौं पँढरपुर-गमन, देवदासी-उद्धार।
पुनि नौरोजी डाकु अप-नाये परमोदार।।
उडुपि निवसि दिन तीन प्रभु, करि बहुशास्त्र विचार।
शुद्ध भक्तिमत पुष्ट करि, कीन्हे भक्ति प्रचार।।

चो०

फल्गु तीर्थ त्रिकूप सिधारे।
पचासर पुनि जय निहारे।।
कृष्णनाम भक्ति रस धारा।
चलैंबहावत सहज उदारा।।
भानु-उदय-स्वभाव प्रकासा।
नहीं किंचित् आयास प्रयासा।।
गौरचन्द्र-उदय जहाँ होवै।
कृष्ण नाम पहले तहाँ होवै।।

महाप्रभु—(प्रदेश कीर्तन करते हुए)

कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण। कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण।।
मोर मकुट घर, काछनी कटिधर,
वंशी अधरधर, ललित त्रिभंगधर।
मोहन नटवर कृष्ण कृष्ण।। कृष्ण कृष्ण हरे० ।।१।।
नन्दनन्दन यशोदा उरधन,
गोपिन-भूषन, नयनन-अंजन।
राधिका जीवन कृष्ण कृष्ण।। कृष्ण कृष्ण हरे० ।।२।।

(गाते गाते प्रस्थान)

समाज— **चौ०**

महादेव "गोकर्णहिं" आये।
आत्म लिंग सुदर्शन पाये।।
"हरिहर" दर्शन अति सुख पाये।
मूरति एक द्वै देव सुहाये।।

आगे क्षेत्र कोल्हापुर आये।
'करवीर क्षेत्र पुरानन गाये।।
शक्तिपीठ महालक्ष्मी राजे।
जय अम्बे जय जय जय धुनिगाजे।।
पुनि भीमा नदी प्रभु आये।
चन्द्रभागाहु नाम कहाये।।
'पंढरपुर' जहाँ विट्ठलनाथा।
भक्त पुंडरीक के वरदाता।।
(नेपथ्य में जय घोष। पांडुरंग विट्ठलनाथ कर जय
पुंडलीक वरदे की जय)

महा०—(प्रवेश-कृष्णदास-जनता गाती हुई)

जनता— **धुन**

पुंडलीक वरदे। विट्ठ पुंडलीक वरदे।।

१. जन—भगवन्! यह पंढरपुन हमारे महाराष्ट्र को वृन्दावन धाम है। अन्य तीर्थन में तो उनके अधिष्ठाता भगवान् अथवा भगवती हैं परन्तु हमारे पंढरपुर के अधिष्ठाता भगवान् नहीं भक्ति है।

महा०—ऐसे वे कौन बड़भागी भक्त हैं?

१. जन—वे हैं माता-पिता के अनन्य भक्त पुंडरीक।

जनता— **पद**

पंढरपुर पुंडरीक की नगरी, पंढरनाथ विराजैं।
पांडुरंग, विट्ठल, विठ्ठोबा, विट्ठलनाथहु बाजैं।।
भीमानाम चन्द्रभागा नदी, ताके तट पुरी सोहै।
सन्तभक्त बहु बसते आये, भक्तपुरी यह तोहै।।
पुंडरीक भये भक्त पुरातन, इष्ट मातुपितु धारै।
श्रवणकुमार दूजे कलि प्रगटे, अचरज निष्ठा वारे।।
'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव', वेद विदित ए बानी।
अक्षर अक्षर साँची करकै, पुंडरीक दरसानी।।
भक्ति ऐसी निष्ठा लखिकै, रीझि द्वार हरि आये।
"देख पुंडरीक! देख मैं आयो",
वचन पुकारि सुनाये।।

पुंडरीक-गोदी महँ सिर धरि,
माता-पिता रहे सोय।।
उठि न सक्यौ भय नींद न टूटे,
रह्यौ बैठि चुप होय।।
"करौ नहीं दर्शन, चल्यौ जाऊँ मैं",
हरि तब टेरि सुनाये।।
"आये अव, तैसे फिर ऐहो,
मैं कब तुमही बुलाये"।।
परन्तु "ऐहौ फेर तो कष्ट बहु पैहो,
ताते रहौं न ठाड़े।
लेओ ईंट विराजो यापै,
जब लगि सोवै न गाड़े।।
(जो प्रभु) पौंढ़त कोमल शेष-सेज जो,
लक्ष्मी चाँपत पाँई।
सो ठाड़े भये भक्त-ईंट पै,
त्यागी ईश्वरताई।।

सेवा करि ढिग जाय हरि के, पुंडरीक पर्यौ पाँय।
"क्षमहु नाथ! अति ढीठता मेरी, राख्यौ ठाड़ो कराय।।"

(तो प्रभु बोले)

"भक्त समान भक्त की वस्तु, अतिशय प्यारी मोय।
ईंटहू स्वर्ण-सिंहासन सुन्दर, दियौ न कवहु कोय।।
सेवा-दर्शन-हेत मैं आयो, देखि सुख अति पायी।
तुमहिं अदेय कछुई नहिं मोरे, लैओ कछु मन भायो"।।

(तो भक्त बोले)

"चहौं यहै, ठाड़े रहौ ऐसे, नित उठि दरसन पाऊँ।
मैं पाऊँ सब जग लखि पावै, और कछुइ नहिं चाऊँ"।

(तब सों प्रभु)

हस्तकमल दोउ कटि पै धारे, चरन ईंट पै राजैं।
पुंडरीक के विट्ठलनाथ ये, अब लौं 'प्रेम' विराजैं।।

पुंडरीक वरदे हरि विट्ठल की जय।

(पर्दा खुलता है। श्रीपांडुरंग विट्ठलनाथ। कटि पर दोनों हस्त। ईंट पर खड़े। मुकुट सीधा पहने)

पुजारी०—ॐ नमो नारायणाय। पधारौ भगवन्! ये हैं हमारे पांडुरंग विट्ठलनाथ। ये विष्णु भगवान् हैं। परन्तु हमारे सन्त महानुभावन को राख्यौ भयो प्यार को नाम है विट्ठल, विठोबा, बिठ्ठ! बोलो विट्ठल भगवान् की जय पुंडरीक वरदे विट्ठलनाथ की जय।

श्लोक

पीताम्बरावृत कटी क्षुल्लकादाम भूषण:।
कटिविन्यस्त हस्ताब्ज: शंख पद्म विभूषित: दो.।।
पीत वसन तन श्याम अंग, कटि किंकिणी माल।
हस्त कमल युग कटि धरै, ठाड़े विट्ठल लाल।।

भगवन्! ये मातृ-पितृ-भक्तवर पुंडरीक के प्रगटाये भये कृष्णमूर्ति देव हैं। इनकी कथा तो आप सुन ही चुके होंगे। एक भक्त-कवि की प्रसिद्ध सूक्ति को हू आस्वादन करैं। भक्त यात्रिन कूँ सावधान करै है कि भीमानदी के तट पै एक कारो नंगो बालक चोर ठाडौ है। वह हाथ नहीं चलावै है। हाथ तो अपनी कमर पै ही राखै है। वह तो आँखिन सों ही चुराय लेय है। सावधान! वा मार्ग सों मत जाओ लुट जाओगे! वह महा धूर्त्त है।

श्लोक

मा यात पान्था: पथि भीमरथ्या:
दिगम्बर: कोऽपि तमाल नील:।
बिन्यस्तहस्तोऽपि नितम्ब विम्बे,
धूर्त्त: समाकर्षति चित्त वित्तम्।।

पद

सुनो पथिक सुनो हित कौ वात
जो चाहौ रहै चित्त तुम्हारो।
मति जेयो कभु भीमानदी तट
वहाँ इक नंगो बालक ठाड़ो।।
रंग तमाल जैसो है नीलो
बड़ो ही धूर्त्त करम वारो।
हाथ चलावै ना कमर पै राखै
(तौहु) चित्त चुराय लेत अचरज भारो।।

जनता—(कीर्तन) पुंडलीक वरदे, विट्ठल पुंडलीक वरदे

(कुछ समय तक तुमुल कीर्तन। अन्त में)

महाप्रभु—(भुजा उठे कीर्तन करते) हरि बोल, हरि बोल (प्रस्थान)

समाज— **(बंगला)**

प्रेमावेशे कैलो बहु नर्तन कीर्तन।
प्रेम देखि सभार चमत्कार मन।।

दो०

विट्ठल सन्मुख महाप्रभु, कीन्हे नर्तन-गान।
मत्त प्रेम आवेश लखि, अचरज जन बहुमान।।

चौ०

विप्र एक न्यौतो प्रभु दीने।
सादर गृह पधराय जु लीन्हे।।
बहु हित करि भिक्षा करवाई।
पौढ़ाय सेवहिं सुखदाई।।

(पर्दा खुलता है। महाप्रभु लेटे हुए। विप्र चरण सेवा कर रह्यौ)

महा०—विप्रदेव यहाँ के दर्शनीय स्थान कौन-कौन-से हैं?

विप्र—श्री विट्ठल भगवान् के अतिरिक्त श्रीराधिका जी, सत्यभामाजी, महालक्ष्मी जी तथा रुक्मिणी जी के दर्शन हैं। हमारे यहाँ रुक्मिणी जी कूँ 'रखुमाई कहैं हैं और बड़ी मानता करैं हैं)

महा०—इन सब के दर्शन करामनौ। और कहा-कहा है?

विप्र—एक दर्शनीय स्थल 'मुक्ति-मंडप' है। यह वह स्थान है जहाँ कहु समय में हमारे महाराष्ट्र के विख्यात सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ आदि सन्त मंडली बैठ करके कीर्तन कर्यौ करते। 'पुंडरीक वरदे विट्ठल' एवं राम कृष्ण हरि' के मंगल घोष सों वह स्थान गुजायमान रहतो। अब वा स्थल कूँ 'मुक्ति-मंडप' कहैं हैं।

महा०—सत्य ही कहैं हैं। मैं हू वहाँ की दिव्य रज शीश चढ़ाय कै कृतार्थ हऊँगो। और कहा है?

विप्र—दूसरो दर्शनीय स्थल है "प्रतिनिधि समाधि मन्दिर"। हमारे महाराष्ट्र में जो ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ आदि महान् सन्त भये हैं उनके मूल समाधि स्थल तो अन्यत्र है परन्तु यहाँ उनके प्रतिनिधि स्वरूप समाधि मन्दिर हैं। इनमें

प्रतिवर्ष विशेष-विशेष पर्व में इन सन्तन की पालकी सवारी मूल समाधि स्थान ते यहाँ पधारै है तथा महोत्सव मनायो जाय है।

महा०—अहा! मैं हू वहाँ जाऊँगी। उन महान् सन्त की चरण-वन्दना करूँगो। और कहा है देव?

विप्र—समर्थ श्रीरामदास स्वामी के स्थापित महावीर हनुमान के दर्शन हैं। तथा वहाँ सों कोस भर पै एक विशेष दर्शन है—"जनाबाई की चक्की"!

महा०—याकी कथा कैसी है देव?

विप्र—भगवन्! सन्त नामदेव जी के घर में जनाबाई चक्की पीस्यो करती। बड़ी भक्तिमती ही। व्रज गोपिन की भाँति चक्की पीसती जाती और भगवान् के गीत गामती जाती। विभोर तन्मय है जार्ती। पीसनो हू भूल जाती और बैठी-बैठी गायौ करती। तब भगवान् आप आय के बैठ जाते। बाकी चक्की चलामते और चून पीस जाते। वह समझती कि यह चून मैंने पीस्यो है। वही है "जनाबाई की चक्की"। वाके दर्शन हैं।

महा०—अहा! धन्य है भगवन् और भक्त के मधुर सम्बन्ध को। ऐसी सौभाग्यवती पूजा चक्की के दर्शन अवश्य ही करूँगो! और कहा है?

विप्र—श्रीविट्ठल-मन्दिर में ही एक और मुख्य दर्शन है। वाकूँ कहवो तो भूल ही गयो। वह है 'पायरी'।

महा०—यह पायरी कहा है?

विप्र—यह सन्त नामदेव की समाधि है। नामदेव जी श्रीविट्ठलनाथ के सम्मुख कीर्तन कर्यौ करते। उनने देह-त्याग सों पहले यह इच्छा प्रगट करी हती कि विट्ठल मन्दिर के प्रवेश-द्वार के मध्य में ही उनकूँ समाधि दी जाय कि जासों दर्शनार्थी प्रत्येक भक्त को चरण-स्पर्श उनकूँ प्राप्त हों तो रह्यौ। तो वा समाधि-स्थल को नाम ही 'पायरी' है।

विप्र—नामदेव जी को उद्देश्य तो यही हौ परन्तु दर्शनार्थी तो उनकूँ बचाय करकै उनकी वन्दना करते भये एक पार्श्व ते निकस जायँ हैं।

महा०—याको नाम है भक्ति-रस की अतृप्ति एवं भक्त की दैन्यता।

विप्र—और भगवन्! आज कल एक अन्य संन्यासी महात्मा हू आये हैं जो बड़े भावुक प्रेमी है। उनको नाम श्रीरंगपुरी है तथा वे श्रीमाधवेन्द्रपुरी के पाद के शिष्य हैं।

महा०—(चौंककर) कहाँ ठहरे भये हें?

विप्र—समीप ही हैं। हमारे परिवार के एक पंडित के गृह में।

महा०—(उत्कंठा पूर्वक) तो पहले मोकूँ उनके समीप ही लै चलैं। अन्य दर्शन पीछे करूँगो।

विप्र—जैसी आज्ञा! आप नेक विश्राम कर लैवैं।

महा०—विश्राम है गयो! मैं अब ही चलूँगो। लै चलौ।

(पर्दा खुलता है। संन्यासी श्रीरंगपुरी लेटे हुए। एक विप्र चरण-सेवारत)

समाज— चौ०

विप्र सहित महाप्रभु धाये।
श्रीरंगपुरी निवास चलि आये।।

(नेपथ्य में--जय पुंडरीक विट्ठल हरि)

विप्र—भगवन्! बाहर द्वार पै कोई अतिथि है।

श्रीरंग—जाओ! सादर लै आओ! (प्रस्थान)

(नेपथ्य में विप्र। "ॐ नमो नारायणाय! भगवन्! भीतर पधारने की कृपा करे।)

(प्रवेश—महाप्रभु, और दोनों विप्र)

महा०—(दौड़कर श्रीरंगपुरी के चरणों को जा पकढ़ते हैं)

समाज— दो०

लखत ही श्रीरंगपुरी, परे प्रभु पग धाय।

हरबराय पुरीपाद उठे, लीन्हे प्रभुहिं उठाय।।

श्रीरंग०—उठिये। उठिये श्रीपाद! (उठाकर सम्हाले रखते हैं)

समाज— सो०

भाव विकल प्रभु देह, शिथिल सम्हाले श्रीपुरी।
उमगत अन्तर नेह, भरि-भरि आवत नयन प्रभु।।

श्रीरंग—(स्वागत) आकृति सो तो ये कोई साधारण पुरुष नहीं। प्रकृति हू विलक्षण है। संन्यासी में इतनी विनम्रता इतनी विह्वलता। ये सात्त्विक विकार! मेरे श्रीगुरुदेव की कृपा बिना यह एक संन्यासी में सम्भव नहीं! यह कौन हैं (प्रकाश्य) श्रीपाद! कहा आप कृपा करके अपनो परिचय प्रदान करेंगे?

महा०—(हाथ जोड़ प्रणामपूर्वक) श्रीश्रीमाधवेन्द्रपुरी जी महाराज के प्रधान शिष्य श्रीश्रीमद् ईश्वरीपुरी पाद जी महाराज ही मेरे वैष्णवी दीक्षा गुरु हैं एवं श्री श्रीकेशव भारतीजी महाराज मेरे संन्यास दीक्षा गुरु हैं।

श्रीरंग—(हृदय से लगा लेते हैं) तब तो आप मेरे परमप्रिय गुरु भाई के ही शिष्य हैं। मेरे परमप्रिय सम्बन्ध ही हैं।

महा०—(हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए) आप मेरे गुरुदेव के समान ही मेरे पूज्य हैं। आपके दर्शन सों आज मैं कृतार्थ भयो।

श्रीरंग—आपके पूर्वाश्रम की जन्मभूमि कहाँ हैं?

महा०—गौर देश में भागीरथी गंगा के तट पै श्रीनवद्वीप ही अपनी जन्मभूमि है।

श्रीरंग—आप श्रीअद्वैताचार्य जी सों परिचित हैं?

महा०—भली भाँति सों भगवन्!

श्रीरंग—तो प्रायः पन्द्रह वर्ष पूर्व की बात है। हमने श्रीगुरुदेव जी के सहित नवद्वीप में श्रीअद्वैताचार्य जी के गृह में कछु दिना निवास कर्यो हो। तो एक दिन हमारी भिक्षा वहीं एक बड़े श्रद्धालु विद्वान् पंडित जगन्नाथ मिश्र के गृह में भई। उनकी धर्मपत्नी तो साक्षात् जगदम्बा हैं, अतिथिन कूँ बड़े ही आदर-स्नेह सों भोजन करावैं है। उनको एक सर्वगुण सम्पन्न विद्वान् पुत्र किशोर वयस में ही संन्यासी वन गयो। परन्तु संन्यास के केवल छै ही वर्ष पश्चात् यहीं पंढरपुर में ही उननै समाधि लै लीनी। बड़ो तेजस्वी युवक हो। संन्यासाश्रम को नाम शंकरारण हो।

महा०—(साश्रू-नयन नतमस्तक बैठे रहते हैं)

समाज— दो०

भ्रातृ-वार्ता सुनत ही, प्रभु भूले मुख बैन।
सुध आई विश्वरूप की, वरवश छलकैं नैन।।
धीरज धारि पुनि प्रभु, नातो दियौ बताय।
बड़े भ्रात या देह के, गेह तजि गये पलाय।

महा०—वे ही देव के बड़े भ्राता हैं।

श्रीरंग—(चौंककर देखते हुए) ओह! तब तो दोनों ही भाई संन्यासी है गये!! घर में कोई और भाई है?

महा०—बस वे श्रीकृष्ण ही हैं एवं वृद्धा माता हैं। पिता जी तो परमधाम कूँ प्राप्त है गये।

श्रीरंग—धन्य है! धन्य है आप के कुल! आप के माता-पिता कूँ।

पद मालकोष

वंश बेलि सुफल भई, दोऊ फूलेफूल ऐसे।
फूलत ही चढ़ि गये वे, देवता कूं फूल जैसे।।१।।
जाति जननी धन्य भईं, जायो जिन फूल ऐसे।
फूलत जग-शीश चढे, स्वर्ण फूल जैसे।।२।।
धराधर नाच उठे, गोदी लै फूल ऐसे।
धरनीधर भार भूले, धरैं शीश फूल जैसे।।३।।
देवता ललचाय रहे, हम न भये फूल ऐसे।
चढ़ते प्रभुपाद तीर्थ, 'प्रेम' दिव्य फूल जैसे।।४।।

महा०—भगवन्! पूज्य भ्राता की समाधि के दर्शन की बड़ी लालसा है।

श्रीरंग—में अवश्य कराय दऊँगो। मैं अब ही द्वै-चार दिवस और यहाँ ठहरूँगो। आपकूँ हू नहीं जान दऊँगो मेरो द्वारिका जायवे को विचार है। सो मैं जब उतकूँ जाऊँगो तब ही आपहू जइयो।

महा०—आप मेरे गुरु-तुल्य हैं। आप की आज्ञा शिरोधार्य है। समाधि के दर्शन कराय दैनौ परैगो।

श्रीरंग—अवश्य! कल प्रातः चलैंगे। अब आप जाय कै विश्राम करौ।

महा०—(चरण-वन्दन करते)

श्रीरंग—(हृदय से खगा लेते)

(पटाक्षेप)

समाज— **चौ०**

दोउन मिलि दोउ सुख पायो।
गुरु नाते नेह अधिकायो।।
दौउन इष्ट-गोष्ठी नित होई।
सत्संग लाभ लहैं सब कोई।।
तैसेई पुरी भक्तरस लोभी।
तैसेई प्रभु प्रेमरस भोगी।।

तैसोई भक्त पुरी पंढरपुर।
तैसेई विट्ठल–लोभी मधुकर।।
ज्यों वृन्दावन त्यों पंढरपुर।
नाचै भक्ति बाँधि पग नूपुर।।
पग–पग भक्तिभाव इढ़ावै।
अन्तर प्रभु निरन्तर भावै।।
कृष्ण कृष्ण प्रभु गावत डोलैं।
मन्दिर–मन्दिर भक्ति किलोलैं।।
भक्त भ्रमर कुल मोद मनावैं।
पायो नहिं सोरस भरि पावैं।।

दो०

गौर कमल सों कृष्ण मधु, झरि–झरि महमहकात।
मत्त भये अलिकुल सकल, लागि फिरैं दिन रात।
एक दिवस, पुरी पाद सह, गमन किये प्रभु गौर।
दरस हेत वन्ड़भ्रात की, पुन्य समाधि ठौर।।

(पर्दा खुलता। समाधि–स्थल। दो चरण चिह्न)

(प्रवेश श्रीरंगपुरी, महाप्रभु, गृहस्वामी विप्र पुष्पहार लिए)

महा०— (गम्भीर–खड़े दर्शन करते हैं)

समाज— **चौ०**

ठाड़े हेरि रहे प्रभु, पुनि समाधि ढिग जाय।
सादर सुमन माल लै, सुमिरि दीनी चढ़ाय।।

सो०

पावन भ्राता–प्रतीक, ठाड़ै मौन निहारहिं।
कहै प्रेम किमि ढीठ, अन्तर अन्तर्यामी कहा।।

दो०

बैठे सोल्ह वर्ष, जिनकी गोद निमाई।
उनकी आज समाधि पै, ठाड़े नैन बहाई।।
तब अव एक न काहु को, यहै काल की चाल।
बचै न नर नरपति कोई, नरोत्तम हू बेहाल।।

चौ०

सुमन सुमन माला बहु अरपी।
भाव-भाव चन्दन पद चरची।
पुनि नत शीश सुप्रणति कीन्हीं।
भ्रातृ चरन विन्दु प्रेम दीन्हीं।।
नर चरित विधिवत दरसावहिं।
अन्तर भाव रहसि को जानहिं।।

महा०— (भुजा उठा) हरि बोल, हरि बोल

(कीर्तन-नृत्योप्रस्थान)

(पटापेक्ष)

समाज—

द्वारावती श्रीरंगपुरी गमने।
पंढरपुरहिं महाप्रभु रमने।।
भीमा स्नान श्रीविट्ठल दर्शन।
तीरथ भ्रमन संकीर्तन नर्तन।।
दिवस चार मुख लीन्हे दीन्हे।
पुनि आगे गमन प्रभु कीन्हे।।
कृष्णवेण्वा नदी पहँ आये।
बसैं विप्र वैष्णव मन भाये।
मन्दिर एक विप्र बहु राजहिं।
कृष्णकर्णामृत पद मिलि गावहिं।।

(दृश्य! श्रीकृष्ण मन्दिर। पाँच-सात ब्राह्मण सम्मुख 'कृष्ण कर्णामृत" ग्रंथ। गायन सम्मिलित)

पंडितजन-भैरवी

अस्ति स्वस्तरुणी कराग्र-विगलत्-कल्पप्रसूना प्लुतं,
वस्तु प्रस्तुतवेणुनाद लहरी-निर्वाण-निर्व्याकुलम्।
स्रस्तस्रस्त-निरुद्धनीवि-विलसद्-गोपी सहस्रावृतं,
हस्तन्यस्त-नतापवर्ग-मखिलोदारं-किशोराकृति।।

(प्रवेश महाप्रभु-कृष्णदास)

समाज—

विचरत प्रभु तहँ चलि आये।
उठि विप्रन आसन पधराये।।
विप्र पाठ मधुरे सुर गावहिं।
सुनि-सुनि प्रभु तन अति पुलकावहिं।।

पंडित दल— **भैरवी-दादरा**

तरुणारुण-करुणामय-विपुलायत नयनं,
कमलाकुच-कलशीभर-विपुलीकृत-पुलकम्।
मुरलीरव-तरलीकृत-मुनिमानस-नलिमं,
मम खेलतु मद चेतसि मधुराधरममृतम्।।

झपताल

करकमलदल-कलित-ललिततर-वंशी-
कलनिनद-गलदमृत-घनसरसि-देवे।
सहजरसभर-भरित-दरहसित-वीथी-
सतत-वहदधरमणि-मधुरिमणि लीये।।

रूपक

प्रेमदं च मे कामदं च मे, वेदनं च मे वैभवं च मे।
जीवनं च मे जीवितं च मे दैवतं च मे देव नापरम्।।

केहरवा

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो—'मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि-मृदुस्मितमेतदहो, मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्।।

कीर्तन

मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्।
मधु-गन्धि-मृदु-स्मित-मेतदहो,
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्।।

महा०—(जो अब तक बैठे सुन रहे थे अब खड़े हो गाने-नाचने लगते है)

पंडित०—(उठ पड़ते-महाप्रभु को घेर गाने नाचने लगते) मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्।

महा०—(उन्मत्त नृत्य करते हुए गिरने लगते, पंडित-दल सम्हार लेते)

समाज— **दोहा**

अचरज मानहिं विप्र सब, करैं जतन सम्हार।
"कृष्ण कृष्ण" कृष्णदास, कर्णन कृष्ण पुकार।।

चौ०

"कृष्ण कृष्ण" पंडित सब गावहिं।
कृष्ण नाम प्रभु कर्ण सुनावहिं।।
वाह्यदशा सुध जब प्रभु पाई।
विप्र मंडली जय जय गाई।।
सावधान प्रभु सुखसों राजैं।
चहुँ ओर पंडित दल साजै।।

महा०—मेरे प्यारे कृष्ण प्रेमियो! आज आपलोगन ने मेरे कर्णन कूँ अपूर्व रसामृत पान करायो। मेरे संतप्त हृदयकूँ शीतल करदियो। ये पद कौन-से ग्रंथन में सों आप गाय रहे हे?

१. पंडित—भगवन्! नाम तो आपके श्रीमुख सों स्वतः ही निकस गयो। यह ग्रंथ हमारे एवं आपके कर्णन के लिए ही अमृत स्वरूप नहीं है। यह स्वयं अखिलरसामृत मूर्त्ति श्रीकृष्ण के दिव्य कर्ण युगल के लिए हू रसामृतस्वरूप है। अतः स्वयं श्रीकृष्ण ने ही या ग्रंथ को नाम करण कर्यौ है, 'कृष्णकर्णामृत'।

रसिक राय रसराज के, रसमय कर्णन धाम।
अमृतरस वर्षण करै, 'कृष्णकर्णामृत नाम।।
अक्षर पद पंक्ति सरस, सरस काव्य अलंकार।
भाव वस्तु लीला सरस, सरस प्रेम-आगार।।

महा०—यथा गुण तथैव नाम! याके अनुभवकर्त्ता प्रदाता कौन-कौन महानुभाव हैं?

१. पंडित—श्रीकृष्ण कृपासिंद्ध स्वनामधन्य श्रीबिल्बमंगल हैं।

महा०—आज के अपूर्व लाभ सो मेरो लोभ बढ़ गयो है। या सों मोकूँ एक भिक्षा दैनी परैगी।

१. पंडित—भिक्षा कहा, आज्ञा करिये देव!

२. पंडित—हमारो सब कछु आप को ही है। आज्ञा करिये।

महा०—या ग्रंथ की एक प्रतिलिपि मोकूँ, प्रदान की जाय।

सब—सहर्ष भगवन् सहर्ष! आप जैसे श्रेष्ठ अधिकारी की ही तो यह वस्तु हैं। हम तो गायक मात्र हैं, आस्वादक तो आप ही हैं।

१. पंडित—आप कछु दिवस यहाँ विश्राम करके हमकूँ आस्वादन करावैं। हम याकी एक प्रतिलिपि अवश्य समर्पण करेंगे।

महा०—(उठते हुए) हरि बोल, हरि बोल।

पंडित—(उठकर कीर्तन में सम्मिलित हो जाते)

हरि बोल हरि बोल

(पटाक्षेप)

पांडुरंग विट्ठलनाथ-दर्शन-लीला सम्पूर्ण।

संन्यास-लहरी **षोड़श कणामृत**

देवदासी एवं नौरोजी डाकू-उद्धार

समाज— **चौ०**

ब्रह्म संहिता सिद्धान्त-सार।
कृष्ण कर्णामृत लीला आगार।।
ग्रंथ युगल महारतनन खान।
महाप्रभु प्रिय प्राण समान।।
महा मुदित प्रभु दोउ संगलीन।
चलि आगे तीरथ बहु कीने।।
तापति न्हाय नर्मदा न्हाये।
माहिष्मतिपुरी पुनि प्रभु आये।।
सहस्त्रबाहु रजधानी सोई।
मंडनमिश्र-भवन हू होई।।
नर्मदा रेवा पावनी भावनी।
कलि मल हारिनि सिद्धि प्रदायिनी।।
तट तीरथ दस कोटि विराजे।
रेवा-महिमा कलि महँ गाजे।।

दो०

तट नर्मदा विचरि प्रभु, ऋष्यमूक् गिरि आय।
सप्तताल उद्धार किये, दंडक बन महँ जाय।।
सप्तताल तरुवर तहँ, दीरघ काय विशाल।
भेंटे भुज भरि प्रभु तिनहिं, उड़ि गये वे तत्काल।।

चौ०

गन्धर्व सात सुरलोक ते आये।
स्राप हेतु जोनि जड़ पाये।।
(अब) मुक्ति पाय वैकुंठ सिधाये।
लोगन सूनी ठौर लखाये।।
लोगन मानै रामहि आये।
संन्यासी नव रूप धराये।।
सप्त ताल तब बान सों बेंधे।
अब उनके भवबन्धन छेदे।।
को समर्थ अस बिन श्रीरामा।
जै जै जै संन्यासी नामा।।
आगे नगर गुर्जरी आये।
वेदान्ती पंडित इक पाये।।
नाम अर्जुन ज्ञान-अभिमानी।
गौर कृपा भयो भक्त अमानी।।
वन दुर्गम कान्तार लँघाये।
जित तित तीरथ डोलत भाये।।

दो०

पहुँचे पूर्ण नगर प्रभु, "पूजा" अब कहैं नाम।
तट सरवर बैठे प्रभु, रोवत गावत नाम।।

चौ०

विरह दशा तन मन रही छाई।
बिलपत टेरत अतिं अकुलाई।।

महाप्रभु—(सरोवर-तट! वृक्ष-तले बैठे "कृष्ण-कृष्ण"-रटन एवं रुदन)

धुन— **पद**

मेरे कृष्ण हरि श्याम हरि!
हरि हरि हेरि हौं कब हाय!

कमल वदन वह कमल सदन,
रूप लखौं कब हाय।। मेरे कृष्ण०।।
कमल नयन वह करुणा अयन,
कोर लहौं कब हाय।। मेरे कृष्ण०।।
कमल अधर वह अमृत-निर्झर,
विन्दु लहौं कब हाय।। मेरे कृष्ण०।।
मधु मुसकन वह सुमन-वरसन,
सौरभ लहौं कब हाय।। मेरे कृष्ण०।।
कमल-मृनाल बाहु विशाल,
शीश लहौं कब हाय।। मेरे कृष्ण०।।
कमल चरन वे प्रेम-शरन,
नयन धरौं कब हाय।। मेरे कृष्ण०।।

समाज— **दो०**

आयो ब्राह्मण इक तहाँ, भावशून्य कठोर।
देखि प्रभु व्याकुल दशा, लेत परीक्षा घोर।।

ब्राह्मण—(प्रवेश! खड़ा देखता है) क्यों स्वामी! तुम क्यों रो रहे हो?

महा०—मेरे प्राणनाथ रूठ गये हैं। छिप गये हैं। तुमने देखा हो तो बता दो!

ब्राह्मण—किसको बताऊँ? उसका नाम क्या है, नाम बताओ?

महा०—नाम है कृष्ण! गोविन्द! वृन्दावन विहारी!

ब्राह्म—अरे वह कृष्ण! वह तो इस सरोवर के अन्दर छिपा हुआ है।

महा०—(उठकर दौड़ते और सरोवर में कूद पड़ते हैं)

समाज—

सुनत कूदि परै जल माँहीं, वचन धूर्त साँचे पतियाहीं।
भयो कोलाहल जन जुरि आये, अचरज रोष दुख प्रगटाये।।
कूदै जल बहु पकरि उठाये, काढि महाप्रभु बाहर लाये।
ब्राह्मण प्रति क्रुद्ध जन भारी, भली बुरी सब कहैं नर नारी।
लज्जा पाय गयो सो पलाई, प्रभुहिं लै गये लोग उठाई।।

(महाप्रभु को जनता सादर उठाकर ले जाती एवं हरि बोल हरि बोल गाती गाती प्रस्थान)

समाज—

घर पधराय उपचार जु कीन्हे।
भये सचेत सबन सुख दीन्हे।।
क्षमा विप्र अपराध कराये।
सादर सुख भोजन करवाये।।
करि विश्राम जु लीन्ही विदाई।
कृष्णनाम भक्ति जु सिखाई।।
पुनि गुर्जर नगरी प्रभु आये।
मन्दिर 'खांडव देव' सुहाये।।
तहाँ कुरीति लखी दुखदाई।
देवदासी प्रथा जग गाई।।

दो०

कन्यादान न करि सकै, तो मन्दिर महँ जाय।
अर्पण करिदैं देव हित, सो देवदासी कहाय।।

देवदासी तिनकूँ जग गावै।
देहदासी बनि आयु गँवावै।।
देव आगे इत नाचैं गावैं।
उत कुकर्म करि पाप कमावैं।।
हीन मति गति कौन उबारै।
कौन केश गहि नरक सों काढ़ै।।

दो०

दीनवन्धु दयासिन्धु प्रभु, हृदय दया उमगाई।
वहायो दियो यति धर्म सव, पहुँचायो तिन ठाँई।।

(दृश्य। मन्दिर श्रीठाकुर जी के सम्मुख बैठी हुई देवदासियाँ पद-गान कर रही हैं)

देवदासी वृन्द— पद। कान्हरा। रूपक

हरि तुम पतित पावन सुने।
हम पतित तुम पतित पावन, दोऊ बानक बने।।हरि०

महाप्रभु—(प्रवेश! एक कोने मैं खड़े सुनते हैं)

व्याध गनिका गज अजामिल, साखी निगमन भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने।।हरि०
जानि नाम अजानि लियो, नरक सुरपुर मने।
दास तुलसी शरण आयो, राखिये अपने।।हरि०

समाज— चौ०

गावहिं मन्दिर मधि देवदासी।
ठाड़े सुनत चैतन्य संन्यासी।।
लखि ठाड़े प्रभु गईं सकुचाई।
नमी भूमि, पुनि ठाडीं लजाई।।

देवदासी—(बैठी-बैठी भूमि पर मस्तक टेक प्रणाम करती हैं। फिर नीचे सिर किये चुपचाप खड़ी रहती हैं)

समाज— चौ०

दयासिन्धु-दया बोलन लागी।
कोमल वचन नेह हित लागी।।

महाप्रभु— विहाग (तितरला)

धन्य तुम्हारे बैन, जो हरि आगे हरि गुन गावैं हैं।
धन्य तुम्हारे नैन नित उठि हरि दरसन पावैं हैं।।
धन्य तुम्हारो नाम हू सब देवदासी कहावैं है।
धन्य करौ अब देह हू फेर ऐसो समै कब आवै है।।

केहरवा

झूठो पति झूठो सुहाग आग लगि जाय है।
साँचो पति साँचो सुहाग भाग कोई पाय है।।
हो तुम जिनकी रहौ उनकी, नाम कित लजाय है।
गोपी बनो कृष्ण भजो, काम 'प्रेम' कहाय है।।

समाज— दो०

जग-निन्दित घृणित की, करत स्तुति जान।
सुनि-सुनि मरि जाती वे, मरि मरि डूबत प्रान।।

चौ०

अधिक वयस इक इन्दिरादासी।
उठी रोय फूटी ज्वाला सी।।

इन्दिरा (प्रौढ़ा०) चौ० पीलू-करवा

फटै भूमि तौ जाऊँ समाई।
स्तुति अधिक सुनी ना आई।।
पापिनि पापिनि कहौ सौ बारा।
ठंडीं परिहै कछु उर ज्वाला।।
देवदासी कहि कहि न पुकारौ।
प्रेतदासी कहि कहि धिक्कारौ।।
हम देवदासी नाम डुबोये।
देवता सन्मुख पाप कमाये।।
जरती हमारी छाती धक् धक्।
पापिनि पापिनि हम अति धिक् धिक्।।
मारो काटौ थूकौ थूकौ।
सहिहैं करिहैं ना मुख रूखौ।।
(परन्तु) धन्य कहौ मति अन्तर्यामी।
मारौ मति मारौ मरीं स्वामी।।
तारौ तो तारौ 'प्रेम' दुहाई।
नरक परन देओ नहिं तो गुसांई।।
(श्रीचरणों पर पछाड़ खाकर गिर पड़ना)

महा०—(अचल स्थिर गम्भीर) माँ! कहौ साँचे हृदय सों। पुकारौ डूबते जरते मरते भये से! छाती शीतल है जायगी! पापन की होरी जर जायगी! शुद्ध स्वच्छ शान्त है जाओगी। पुकारो—

(भुजा उठा) हरि बोल! हरि बोल! हरि बोल!

देवदासी सब— हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल।

महाप्रभु— सोरठ दादरा

चिन्ता कहा चिन्तामणि, कृष्ण कृष्ण कहो पुकार।
लोहा होत पारसमणी, कृष्ण कृष्ण कहो०।।१।।
ऊँच-नीच देखैं नहीं 'पाप पुन्य लेखैं नहीं।
भाव को ही भूखो हरि, कृष्ण कृष्ण कहो०।।२।।

दीन हू ते दीन बनो, जग की पग धूरि बनो।
लोटि-लोटि धूरि पै, कृष्ण कृष्ण कहो०।।३।।
दुखिया हो तो दुख लाओ, पापिनि हो तो पाप लाओ।
मेरो कृष्ण लैहैं सब, कृष्ण कृष्ण कहो०।।४।।
पाप ताप जायँ पलाय, चरन-शरन जबहिं आय।
देह देहरी पै डार, कृष्ण कृष्ण कहो०।।५।।
भूलि जाओ भई भई! (तुम) आज भईं नई-नई।
अब न भूलो 'प्रेम' सदा, कृष्ण कृष्ण कहो०।।६।।
बोलो।। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

सब देवदासी—(खड़ी-ताली बजाकर गाती हैं)

(पटाक्षेप)

समाज— **दो०**

करुनामय हरि गुरु बनि, दियो नाम उपदेश।
बलिहारी तिन भाग्य की, गुरु पायो विश्वेश।।
उतारि इन्दिरा सब दई, भूषन बसन सिंगार।
प्रेम भिखारिनि बन गई, सज्जा तुलसी हार।।

सो०

बाँटि दरिद्रन दीन्ह, धन सम्पत्ति बस्तु सकल।
कर झोली गहि लीन्ह, गाय नाम, भिक्षा करै।।

चौ०

देवदासी वहु भईं तिन चेरी, बाजी गौर हरी जय भेरी।
जो देखे सो अचरज पावै, हरी कृपा पै बलि बलि जावै।।
संग विगारै संग सुधारै, संग नरक स्वरग दुआरे।
संग सम हानि लाभ न होई, आँखिन आगे लखैं सब कोई।।
फटै भाग कुसंग जव पावै, पाय सुसंग फूट्यौ जुरि जावै।
धनि धनि ये बड़भागिनि दासी, संग कृपा भईं साँची दासी।।

दो०

औरहु गौर दया चरित, कहौं कछूक बखान।
डाकु जेहि विधि साधु भो, नौरोजी आख्यान।।

चौ०

वन 'चोरानन्दी' आगे आयो।
जहाँ बटमार करैं मन भायो।।
नौरोजी डाकुन सरदारा।
क्रूर भयंकर कर्म अपारा।।
संगिन सहित वसै वन माँहिं।
लूटैं पथिक बथै कोउ नाहिं।।
कोई न चोरानन्दी जावहिं।
नाम सुनत डरपै डरपावहिं।।

महा०—(कृष्णदास सहित कीर्तन करते हुए)

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।

समाज—

लोगन विनती आय सुनाई।
बन मारग जिन जाओ गुसांई।।
बात न काहू की चित लाई।
चलै जात गावत भय नाई।।
जाय तरु तर आसन डारै।
कृष्ण कृष्ण हरि नाम पुकारै।।
सुनि नौरीजी अचरज पायो।
को वन बैठि निर्भय गायो।।
तीर तलवार शूल लै धाये।
नौराजी संग दस्यु सब आये।।
ठाड़े सुनैं अचरज बहु मानैं।
समझैं ना कछु लखत लुभानैं।।
उज्ज्वल मूरति कंचन वरना।
नयन कमल मनोहर बदना।।
बोल सुनत कानन सुख पावै।
मुख देखत अँखियाँ न अघावैं।।

महा०—(नौरोजी की तरफ देखते-मुस्कराते हुए कीर्तन करते रहते)

समाज—

मूरति ऐसी लखी नहि कवहू।
बोलहू ऐसे सुनै नहिं कबहु।।

सो०

फूटि पर्यौ पाषाण, जल शीतल निकसि पर्यौ।
जुरि गये दोऊ पाणि, बोलि उठ्यौ नौरोजी तब।।

नौरोजी—(हाथ जोड़ सुनकर झुककर) स्वामि। हमारी झोपड़ी पर चलो। वहाँ खाना-पीना करना। हम सब सुनेगा। वहोत अच्छा! चलो।

महा०—भैया! हम तो यहीं वृक्ष के नीचे ही रात बितायँगे। सबेरे उठकर चले जायँगे।

नौरोजी—लेकिन यहाँ क्या खायगा स्वामी? तुम्हारे पास भी कुछ नहीं देखता।

महा०—(मुस्करा कर) खाने की हमको कोई चिन्ता नहीं है।

कृष्ण कृष्ण.........(कीर्तन करने लगते)

समाज—

सुनि सो लोगन तुरत पठाये।
'जाओ लाओ' वस्तु जो पाये।।
दौरि दौरि फल बहु लै आये।
धरि सन्मुख निरखत मन भाये।।
मगन प्रभु कीर्तन रस भोरे।
भये मत्त उठि नाचन जोरे।।

महा०——(द्रुत लय)

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
(नृत्य करते-करते गिरने लगते)

कृष्णदास—(पकड़ लेता! बैठाता! सिर गोद में रख लेता। महाप्रभु चरण पसार शिथिल पड़े रहते) कृष्ण कृष्ण

समाज— **दोहा**

नौरोजी ठाड़ो सुनत, लखत सुकीर्तन गौर।
समझत ना कछु प्रभु दशा (पै) अन्तर उठत मरोर।।

चौ०

अगिनि ढिग कैसे हु आवै।
आँच लगै तन ताव जरावै।
तैसेइ ढिग महाप्रभु आये।
जागत जीव चेतना पाये।।
चेत भयो कर्मन सुध आई।
पर्यौ कहाँ ते कहाँ मैं आई।।
भयो सरल मति गई कुटिलाई।
पर्यौ चरन प्रभु अति अकुलाई।।

नौरोजी—(हाथ जोड़ रोते-रोते) ऐ मेरे स्वामि!

गजल

तू गा रहा है जो कुछ, मुझको सिखादे स्वामि।
इसमें भरा है जादू, इसको सिखादे स्वामि।।१।।
सम्हाला है होश जबसे, लोगों को काटा मारा।
आज तुमने मुझ को मारा, इसको सिखादे०।।२।।
मेरे दिलको यह पकड़ता, देता मसल यह उसको।
जी चाहता है कि गाऊँ, इसको सिखादे०।।३।।
आँखों में खून रहता, हर दम सवार मेरे।
किया खून पानी इसने, इसको सिखादे०।।४।।
हुए साठ साल मुझको, पत्थर बना हुआ था।
किया पत्थर मोम इसने, इसको सिखादे०।।५।।
किये की सजा लो दे दो, आगे को कसम लेलो।
देता हूँ फेंक इनको (अपने हथियारों को फेंकता हुआ)
इसको सिखादे०।।६।।
(मैं) बाँधे खड़ा हूँ दोनों, हाथों को खूनी अपने।
तेरी मौज का भरोसा, इसको सिखादे०।।७।।
कदमों पै सर को रख दूँ, किस्मत कहाँ यह मेरी।
रोना ही 'प्रेम' दे दे, इसको सिखादे०।।८।।

(चरण से दूर लम्बा लेट जाता है)

महा०—(उठकर आते हैं। नौरोजी को उठाने लगते हैं)

नौ०—(उठता नहीं! चरणों से लिपट रोने लगता है)

महा०—उठ नौरोजी! उठ! (बलपूर्वक उठाकर हृदय से लगा लेते हैं) हरि बोल।

नौ०—(दोनों हाथ उठा) हरि बोल! हरि बोल।

महा०—नौरोजी! अब तो लूटने-मारने का काम नहीं करेगा?

नौरोजी—नहीं स्वामि नहीं! हथियार फेंक दिया। फेंक दिया। अब नहीं उठाऊँगा। नहीं पकड़ूँगा! कसम-कसम है मुझे अब यह कपड़ा भी नहीं पहनूँगा (उतार फेंकता) ऐसा कपड़ा स्वामी! ऐसा कपड़ा पहनूँगा! लाल लाल! तुमने पहना जैसा। दो ऐसा कपड़ा।

महा०—(मुस्कराते हुए) मंत्र लोगे या कपड़ा। अभी तो मंत्र सिखा दो कहते थे। तो लो मंत्र!

नौ०—हाँ हाँ मंत्र लूँगा! और तुम्हारे संग गाऊँगा। तुम्हारे संग चलूँगा! तुम्हारे संग रहूँगा! यहाँ नहीं! यहाँ नहीं। इनको सब को छोड़ दूँगा! संग चलूँगा स्वामी! संग चलूँगा।

महा०—अच्छा! अच्छा! मेरे संग चलना। पहले लो मंत्र सीखे लो—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

नौ०—(दुहराता है। दो चार बार कह कर रुक जाता है) अरे स्वामी! तुमने तो खाना खाया ही नहीं (अपने आदमियों से) जाओ! खाना लाओ। पानी लाओ! स्वामी भूखा है पहले खाना पीछे गाना। हम भी खूब गायगा-नाचेगा।

समाज—

दस्युन दौरि फल जल लाये।
लै लै प्रभु सन्मुख जु धराये।

दो०

साँचो सरल सुभाव लखि, जेंमत दीन दयाल।
रीझ जाय जापै पिया, सोइ सुहागिनि बाल।।

समाज— **पद-रसिया**

कह रघुपति सुनु भामिनी बाता।
मानहुँ एक भगति कर नाता।।

कब शवरी काशी उठि धाई, कब पढ़ि आई गीता।
जूँठे फल ताके प्रभु खाये, नेक लाज नहीं कीता।।१
लंकापति को गर्व हर्यौ है, राज विभीषण दीना।
सुग्रीव सखा कियो रघुनन्दन, वानर किये पुनीता।।२
भसम रमाई कहाँ अहिल्या, गणिका योग न लीता।
तुलसीदास प्रभु शुद्ध चित्त लखि, सबहिं मोक्षपद दीता।।

दोहा

हरि स्वतंत्र स्वतंत्र कृपा, नहिं गुनदोष विचार।
नहीं तंत्र अधीन 'प्रेम' सर्व स्वतंत्र विहार।।
भिक्षा करि अँचये प्रभु, कीन्हे रजनीवास।
भोर उठि आगे चलै, लै नौरोजी दास।।

(आरती! **पटाक्षेप)**

(नीरोजी—अन्तिम-बेला)

समाज— **चौ०**

आगे खण्डला तीरथ आये, खण्डलावासी बहु सुख पाये।
अतिथि भक्त बड़े नर नारी, मची होड़ परम्पर भारी।।

(अनुकरणात्मक चौपाइयाँ)

ग्रामवासी—

कोई कहैं हम देखे पहले। हमारी भिक्षा होवै पहले।
अपनी वस्तु कोई सराहवैं। सब अपनो अधिकार जनावैं।।
कलह-प्रणय लखि प्रभु मुसकाये।
बात कही निज तिन समझाये।।

महा०— **दो०**

भिक्षा सेवक जन मेरो, लै आयौ सुनौ भाई।
लऊँ प्रयोजन बिनहिं अब, अधिकार मम नाई।

(कीर्तनारम्भ) हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

(कीर्तन करते-करते प्रस्थान)

समाज—

आगे नासिक पहुँचे जाई।
कटी शूपर्नखाँ नाक जेहि ठाँई।।
पंचवटी वन अति मन भायो।
हिय राम वनवास उमगायो।।
कीर्तन रस सब निशि बिताई।
सो आनन्द को जानै भाई।।
बहै प्रेम तनु स्वेद अपारा।
पोंछत रहत नौरोजी धारा।।
जो सेवा नृपति ललचावैं।
सो डाकू नौरोजी पावै।।
रीझ-मौज तो प्रभु-प्रसादा।
निज गुन साधन कोउ न साधा।।
पुनि सुरत भड़ौच प्रभु आये।
बलि राजा जहाँ यज्ञ रचाये।।
यज्ञकुंड तहाँ दरसन कीन्हैं।
नगर बड़ौदा पुनि पग दीन्हे।।
राजा वैष्णव भक्त महाना।
मानैं जन अम्बरीष समाना।।

दो०

मन्दिर-राज विख्यात, गोविन्द देव विराजहिं।
स्वयं भूप निज हाथ, सेवा टहल वहु विध करहिं।।

(दृश्य, गोविन्द देव-मन्दिर! राजा-जनता)

समाज—

गोविन्द लखि प्रभु गोविन्द पाये।
प्रेम भाव तन मन उमगाये।।
कीर्तन अद्‌भुत प्रभु प्रगटाये।
महाभाव आवेश जनाये।।

(महाप्रभु०)

कृष्ण कृष्ण कहि कहि हुँकारे।
नाचैं, गिरैं, खाँय पछारैं।।

मुग्ध मुदित विस्मित नर नारी।
भई भीर मन्दिर महँ भारी।।

जनता—

करैं प्रणाम कृष्ण पुकारैं।
भाँति भाँति अनुमान विचारैं।।
कहैं स्वयं नारायण आये।
संन्यासी नर रूप धराये।।
मानुष देह अस प्रेम न होई।
रूप हु अद्भुत जग नहिं कोई।।

राजा—

मन्दिर मध्य राजा ठाड़े। इकटक प्रभु वदन निहारे।।

दोहा—

जीर्ण कौपीन क्षीण तनु, धूरि धूसर अंग।
मुँदे नैन तन सुध नहीं, नाचत मत्त उमंग।।
लखि लखि राजा तन मन बारे।
आजहिं सफल नयन निज धारे।।

राजा—

उठी लालसा महल पधराऊँ।
पूजूँ चरन बहु भोग धराऊँ।।

समाज—

भीर चीर राजा तहँ आये। लोटि चरन रज देह चढ़ाये।।
पुनि उठि रह्यौ ठाड़े कर जोरे। लखिहैं कहा प्रभु नैनन कोरे।।
प्रभु तन शिथिल लखि संगी जन। गहि बैठार सम्हारत सुतन।।

राजा—

भये सचेत जब आयो राजा। विनवत सकुचत भिक्षा काजा।।
अधम तौहु कृपा कन चाहूँ। भिक्षा हित कछु आज्ञा पाऊँ।।

महा०— दोहा—

संन्यासी हित राज-अन्न, नहीं शास्त्र विधान।
भग्न-मनोरथ भूप उर, भयो दुक्ख महान।।

महा०— **सो०**

बोले करुणा निधान, राज व्यथा अनुभव करि।
मुट्ठी भीख करौ दान, इतनो ही अधिकार मम।।
दई राजा सुखमान, मुट्ठी भीख कृष्णदासाहिं।
सेवक सुख कल्यान, स्वामी मुख रुख सुख लखे।।

दोहा—

तीन दिवस लीलामय, कीन्हे तहाँ निवास।
कृष्ण नाम कीर्तन करैं, तमाल तरुवर वास।।

चौपाई

तहाँ करुन लीला प्रगटाई। नौरोजी ज्वर लियो दवाई।।
पहन लंगोटी तजि संसारा। भयो शरन अनन्य बटमारा।।
मास अधिक प्रभु संग जिमि छाया।
छिन न विलग भाग अस पाया।।
जो प्रभु भक्तन संग न लीन्हे। डाकु नौरोजी संगी कीन्हे।।
चाँपै चरन मुख कमल निहारै। बिजन करै तन पोंछे सम्हारे।।
(दृश्य! तमाल वृक्ष नीचे महाप्रभु—गोद में सिर रख नौरोजी
लेटा है। कृष्णदास बैठे धीरे धीरे हवा कर रहा—
आज गोद प्रभु सिर राखै। इकटक प्रभु मुख हेरत आँखैं।।
तन पीड़ा ज्वर सुधि सब भूले। निरखि निरखि मुदित मन फूजे।।

महा०— **दो०—**

कर कमल सिर फेरि प्रभु, बूझत बारम्बार।
व्यथा दुख तन तो नहीं, नैन बहत जलधार।।

नौरोजी—

दुख सुख जीवन मरन न जानूँ।
यह मुख तुम्हारो सर्वस मानूँ।।
कहत कहत 'हरि बोल' उचार्यौ।
उड़ि पखेरु निज नीड़ सिधार्यौ।।

महा०—(कर्ण में) कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!

समाज

'कृष्ण कृष्ण' प्रभु कर्ण सुनाये। दुर्लभ मरन न भक्तहू पाये।।
सर्व समर्थ सकैं कालहु टारी।
(परन्तु) घड़ी आज की फेर कहाँ री।।
जीवन सहज, मृत्यु यह दुर्लभ। प्रभु कृपा कियो दुर्लभ सुलभ।।
जन गन बहु तहाँ आय सम्हारैं। हरि बोल हरि बोल उचारैं।।
सुनि समाचार राजा हू आयो। देह उठाय अनत पधरायो।।
निज कर प्रभु समाधि दीन्ही। झोली पसार भिक्षाहू कीन्ही।।
संकीर्तन महायज्ञ रचाये। नौरोजी महोत्सवहिं मनाये।।
जय नौरोजी जय धुनि छाई। पतित वन्धु जय जय सब गाई।।

दोहा—

एक घड़ी आधी घड़ी, आधीहू में आध।
तुलसी संगत साधु की, हरै कोटि अपराध।।
'सत्संग फल चेखिय तत्काला।
काक होहिं पिक बकहू मराला।।
सुनि अचरज करै जनि कोई।
सत्संगति महिमा नहिं 'गोई।। (राम च० मानस)
सत् के सत् हरि परम सत्, तिनकी संगति पाई।।
भक्त-मुक्त-दुर्लभ गति, डाकु नौरोजी पाई।।

राय रामानन्द-मिलन—चौपाई

बड़ौदा—लीला-प्रभु कछु गाई। कहौं आगे संक्षेप बनाई।।
सो०—आगे अहमदाबाद, जूनागढ़ द्वारिका गमन।
प्रभास सोमनाथ, गोविन्ददास कडंचा लिख्यौ।।
सो न करौं कछु कथन, कहौं गमन विद्या नगर।
रामानन्दहिं मिलन, जगन्नाथ-दरसन पुनि।।

चौपाई

विचरि द्वारिका नर्मदा आये। दक्षिण पूरब पुनि प्रभु धाये।।
चंडपुर चन्डी दरसन कीन्हे। गोदावरी पावन तट लीन्हे।।
दंडकवन ऋस्य मूक पर्वत। पम्पासर आदि बहु तीरथ।।
विहरत विद्या नगरहिं आये। सुनत राय रामानन्द धाये।।

महा०—(प्रवेश कीर्तन करते हुये)

कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण। कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण।।

कृष्णदास—(महाप्रभु की कौपीन, कमंडलु, दो ग्रन्थ सहित)

रामानन्द—(प्रवेश) दीनबन्धो! करुणासिन्धो! (दौड़ चरण ग्रहण)

महा०—(उठा कर हृदय से लगाते) कुशल मंगल तो रामानन्द जी?

रामानन्द—आप या अधम कूँ भूले नहीं एवं दर्शन दैवे के लिये पुनः पधारे—यही सर्वोपरि मंगल है। आपकी तीर्थ—यात्रा तो सानन्द सम्पन्न भई न देव?

महा०—हाँ रामराय जी! श्रीकृष्ण-कृपा सों सर्वत्र आनन्द रह्यौ एवं द्वै अपूर्व वस्तु प्राप्त भई हैं जो मैं तुम्हारे लिये लै आयौ हूँ। लेओ, देखो, पढ़ो (दो ग्रंथ प्रदान)

रामानन्द—(लेकर पढ़ता) ब्रह्म संहिता एवं कृष्ण कर्णामृत इनको विषय कहा है प्रभो?

महा०—वही जो सिद्धान्त तुमने मोकूँ श्रवण करायौ है। वही इनमें हू वर्णित है। श्रीकृष्ण ही परात्पर तत्व हैं एवं राधा कृष्ण लीला ही माधुर्यातिमाधुर्यमयी लीला है—यही इनको विषय है। एक सिद्धान्त ग्रंथ है। दूसरो लीला ग्रंथ है। तुम पढ़ौ और मैं सुनूँ। यह तुम्हारो सत्संग मोकूँ नित्य निरन्तर जीवन भर प्राप्त होवै यही मेरी हार्दिक इच्छा है। याही के निमित्त मैं तुम्हारे समीप आयो हूँ।

रामानन्द—धन्य है प्रभो! जब आपकी या अधम क्षुद्र जीव पै इतनी कृपा है तो वही कृपा ही आगेहू सब कछु कराय लैगी। मैंने आपकी आज्ञानुसार महाराज सों प्रार्थना करी ही कि मोकूँ राजकाज ते अवकाश प्रदान कर दैवैं। सो उनने सहर्ष स्वीकार कर लियौ है।

महा०—अहा! अब तो मैं तुमकूँ संग ही लैकै पुरी जाऊँगो।

रामा०—एक ही बात को मोकूँ संकोच होय है प्रभो! मेरे संग हाथी, घोड़ा, नौकर-चाकर बहुत से चलेंगे उनसों आपकूँ अवश्य ही आशान्ति रहैगी-कष्ट होयगो। यासों मेरी प्रार्थना है कि आप आगे पधारे। मैं आपके पीछे-पीछे दसैक दिना में आपकी सेवा में जाय पहुँचूँगो।

महा०—जैसे तुमकूँ सुख-सुविधा हो—मैं वाही में प्रसन्न हूँ। "हरि बोल हरि बोल"

(कीर्तन-प्रस्थान)

श्रीजगन्नाथ प्रत्यागमन—

समाज— **दोहा—**

रामानन्द-सत्संग महँ, कछुक दिवस बिताय।
गमने नीलाचल प्रति, महाप्रभु हरषाय।।

चौपाई

चले प्रभु जिहि मारग आये।
ठौर ठौर हरि धुनि सुनि पाये।।
लखि सुनि वहु आनन्द प्रभुपाये।
इह विधि आलालनाथ नियराये।।
कृष्णदासहिं पुरी पठाये।
नित्यानन्द निज जनहिं बुलाये।।

(दृश्य! जगन्नाथ पुरी में श्रीनित्यानन्द गदाधर, नरहरि, मुरारि, मुकुन्द एवं जगदानन्द दुखित बैठे हैं)

गदाधर—हाँ प्राणनाथ गौर! तुम्हारे दर्शन के लिये-

दोहा—

हम आये नवद्वीप तजि, तुम्हारे दरसन हेत।
अब बैठे यहाँ रोय रहै, जीवित बनै जु प्रेत।।

माता शची सों—

तुम कहि आये मात सों, बसि हौं पुरी में जाय।
फिर पुरी छोड़ क्यूँ भजै, रहै कहाँ विरमाय।।

नरहरि—सखे गदाधर! हम तो नवद्वीप कूँ—

सूनो अति भयावनो, नवद्वीप अँधेरो मान।
आये चन्दा-दरस कूँ, यहाँ उज्येरो जान।।
(परन्तु) वही मावस रैन यहाँ, बीतत नहीं अँधियार।
गिनत गिनत दिन गयो बरस, आयो न चाँद उजियार।।

मुकुन्द—हाय बन्धुओ! अब मैं अपनो भजन—

पद यथाराग—

काको गाय सुनाऊँ, गौर विन।
कौन कहै अब गाओ मुकुन्द, सुनि सुनि अति सुख पाऊँ।।
सूख गयो कंठ रोय रोय, गाऊँ तो कैसे गाऊँ।
बाट निहारत अँखिया सूखी, जिम्या लै लै नाऊँ।।

(हे नाथ! आप)

भूले माता, भूले प्रिया जू, छोड़े नदिया गाऊँ।।
भूले निताई अद्वैत, जनहू जाय रमै कौन गाऊँ।

(आपने हम कूँ)

नाम कृष्ण सिखाय गवाय, दियो निज पद ठाऊँ।
"प्रेम" बढ़ाय चढ़ाय खेप भरि, अब कित बोरी नाऊँ।।

निताई—भैया मुकुन्द! गदाधर! नरहरि! धीरज धरौ एवं उनके नाम पर बैठे रहौ द्वै वर्ष तो कहा यदि दस वर्ष हू अँधेरे में रोय रोय कै बैठनो परै तौहु बैठेंगे! मेरे प्रभु बड़े ही दीन बन्धु आर्न्त दुखहारी हैं, वे कदापि हमकूँ नहीं छोड़ सकैं हैं! वे आयँगे अवश्यमेव आयँगे।

(नेपथ्य-ध्वनि! गौरहरि की जय हो! हरि बोल)

कृष्णदास—(प्रवेश-'हरिबोल' कहते हुए) श्रीपाद! प्रणाम सब भक्तनकूँ (दण्डवत्) प्रभु आय पहुँचे हैं। आलाल-नाथ में विराज रहैं हैं। मैं समाचार दैवैं भेज्यो हूँ।

निताइ आदि—हरि बोल! गौर हरि बोल! (नृत्य)

निताइ—आनन्द! आनन्द! चलौ भैयाओ दौड़ चलौ। कृष्णदास! जायकै तुम सार्वभौम कूँ सूचना र देओ। वे कीर्तन—समाज लैकै शीघ्र ही आवैं। हम आगे जाय रहैं हैं।

हरि बोल। (प्रस्थान)

समाज— चौपाई

चलै निताई परमानन्दा।
मुकुन्द गदाधर जगदानन्दा।।
बोलें हरि बोल नाचत जावैं।
सुनै जोई सोई संग धावैं।।

दौरैं कबहू कबहू नाचैं।
मति गति थिरना आनन्द राचैं।।
उत्कंठा छिन-छिन ही भगावै।
आनन्द पग पग नाच नचावै।।
चलैं कै नाचैं पथ भयो भारी।
एक संग काज द्वै द्वै नारी।।
सार्वभौम सन्देशो पायो।
धूमधाम सह साज सजायो।।
खोल करताल निसान पताका।
वाद्य विविध साज लै साथा।।
चलै सार्वभौम हृदय उमंगा।
उत्कलवासी बहुजन संगा।।
नित्यानन्द संगी जन आगे।
पहुँचे तट समुद्र प्रभु आगे।।

(दृश्य—समुद्र-तट। महाप्रभु बैठे 'कृष्ण कृष्ण जप०)

निताइ—(प्रवेश दौड़ते हुए। प्रभु चरणों पर जा पड़ते) प्रभो! प्रभो!

महा०—(हड़वड़ाकर उठते! उठते! हृदय से लगाते)
श्रीपाद! श्रीपाद।
(अनुकरणात्मक चौपाइयाँ)

समाज— दो०

लिपट-चिपट रहै जन दोऊ।
आनन्द प्रेम न कहि सकै कोऊ।।
दौरि संगीजनहु आये।
मिलन दोउ लखि अति सुख पाये।।
हरि बोल कहि भूमि लुठाये।
तजि निताइ प्रभु तिनहिं उठाये।।
लै लै नाम जन जनहिं उठाये।
अंकम भरि भरि ताप सिराये।।
जन जन लोचन नीर बहावै।
बहै पीर मुख बोल न आवै।।
खोल करताल धुनि तब आई।
जय जय घोष धुनि नभ छाई।।

सार्वभोम सह दल बल आये।
धाय धरन परै पद लिपटाये।।
आनन्द विह्वल रोवत भारी।
उठाये उठै ना विवश महारी।।
भये थिर कछु तब प्रभु उठाये।
हृदयलाय सब ताप सिराये।।

सो०

हरि बोल धुनि घोर, परमानन्द मगन सब।
चलै लै प्रभु गौर, नाचत गावत पुरी प्रति।।
जगन्नाथ पुरी जनख छायो।
"सार्वभौम संन्यासी" आयो।।
सार्वभौम राजगुरु महापंडित।
तजि पद-मान जिन पद-आश्रित।।
महाराज आप आदर बड़ करहीं।
पद रज हित नित आकुत रहहीं।।
दरसन पावन हम हू करि हैं।
अलभ लाभ सहजहिं लहिहैं।।
हरष उमंग लहर पुरी माँहीं।
द्वार द्वार पथ वीथि सजाहीं।।

दोहा

नित्यानन्द सार्वभौम, आये महाप्रभु संग।
वाजत खोल करताल वहु, जय हरिबोल अभंग।।
नर नारी जन जन हरजाये।
फूले सुमन, सुमन वरसाये।।
जोरी हाथ पुनि पुनि सिर नावैं।
हुलसि हुलसि तिय हुलुलु रचावैं।।
सिंह-द्वार महाप्रभु आये।
पड़छा पुजारी शीश नमाये।।
प्रभु कहैं उचिंत यह नाहीं।
जगबन्धु सेवक पूज्य सदाई।।
जोरी जुगल कर बन्दन कीन्हे।
पुनि प्रवेश मन्दिर महँ कीन्हे।।

चलै जाहीं सचल जगन्नाथ।
दरसन हेत अचल जगन्नाथ।।

(पर्दा खुलता—श्रीजगन्नाथ-सुभद्रा-बलराम-दर्शन)

महा०—(प्रवेश कर खड़े हो जाते हैं। निर्निमेष स्थिर खड़े दर्शन करते हैं)

समाज—

सचल विलोकत अचल जगन्नाथा।
भये अचल अति अचरज वाता।।
जो प्रभु धाय उछरि भुज भेंटे।
ठाड़े आज मति गतिहिं समेटे।।
अन्तर रति सुरति को जानै।
ये जानैं प्रेम कै वे जानै।।

समाज— पद-सारंग। दीपचन्दी।

आनन्द आनन्द आज धन्य बिरियाँ।
सुहावनी भावनी पावनी बिरियाँ।।टेक।।
जगबन्धु घर आये जगबन्धु,
दीनबन्धु पतितन बन्धु।
करुणासिन्धु प्रेमसिन्धु,
दरसन दोऊ दोऊ सुख भरियाँ।।
जन जन नयन प्रान सिराये,
मन मन भाव सुमन हुलसाये।
जय जय कंठ हरि बोल गाये,
उठत आनन्द लहर लहरियाँ।।
मंगल दोऊ मंगल मंगल,
मंगल को कहा गावैं मंगल
मंगल सों माँगे यह मंगल,
दरसन यह 'प्रेम' जीवन भरियाँ।।

हरि बोल! हरि बोल।

चौ०

लाय प्रसादी माला चन्दन।
पंडा जन प्रभु कीन्हे अरपन।।

दंडवत् महाप्रभु कीन्ही।
बिदा प्राणनाथ सों लीन्ही।।
सार्वभौम निज भवन पधराये।
भोग लगाय सुख शयन कराये।।

(बंगला) प्रभु तीर्थयात्रा शुने जोइ जन,
चैतन्य चरणे पाय गाढ़ प्रेम धन।
चैतन्य चरित शुनो श्रद्धाभक्ति करि।
मात्सर्य छाड़िया, मुखे बोलो हरि हरि।।
हरि बोल! हरि बोल! हरि बोल।

इति दक्षिण-यात्रा-लीला सम्पूर्ण।

❖

संन्यास-लहरी　　　　　　　　　　　　**सप्तदश कणामृत**

अमोघ-उद्धार

जय श्रीकृष्ण चैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द।।

दो०

पग पग डोलि डोलि प्रभु, द्वै द्वै वर्ष बिताय।
दक्षिण भारत देश महँ, कृष्ण भक्ति सरसाय।।
आये नीलाचल प्रभु, भक्तन दु:ख भयो अन्त।
चकोरन चन्दा लह्यो, रहैं सदा हुलसन्त।।
प्रतापरुद्र राजा अरु, सार्वभौम विचार।
महाप्रभु निवास हित, कियौ ठौर निरधार।।
पंडित काशीनाथ मिश्र, राजगुरु विद्वान्।
जगन्नाथ मन्दिर निकट, तिन को गृह उद्यान।।
करैं प्रभु निवास तहँ, अन्तरंग जन साथ।
गम्भीरा मन्दिर नाम सों, आज जगत् विख्यात।।
जो कन्था ओदे प्रभु, पदन पादुका दीन्ह।
जीर्ण शीर्ण वे आजहु, तहाँ विराजत चीन्ह।।

समुद्र-स्नान, मन्दिर गमन, कीर्तन अरु सत्संग।
नव नव भक्त भ्रमर मिलन, नव नव प्रेम तरंग।।

लीलारम्भ

(दृश्य : महाप्रभु, नित्यानन्द, सार्वभौम, पं० दामोदर जगदानन्द)

समाज—

चौ०

एक समय प्रभु अवसर जानि।
सार्वभौम प्रति बोले बानी।।
ढिग बैठे जहाँ नित्यानन्द।
दामोदर व जगदानन्द।।

महा०—भट्टाचार्य जी! कृष्णदास कहाँ है? वाको बुलाओ?

कृष्ण०—(प्रवेश! सिर झुका हाथ जोड़ खड़ा हो जाता है)

महा०—भट्टाचार्य जी! या कृष्णदास को चरित्र सुनौ। याकूँ आपसव के आग्रह सों में संग लै गयो। सेवाहु याने खूब करी परन्तु एक बार भटक गयो।

सार्व०—कैसे प्रभो?

महा०—दक्षिण भारत की छोर पै एक देश है मल्लार (मलावार) वहाँ 'भट्ट थारि' साधुन को एक मठ है। वेष तो उनको संन्यासी—जैसो ही है परन्तु वे बाममार्गी हैं—कामिनी-कंचन में आसक्त हैं। वहाँ ग्राम में कृष्णदास भिक्षा करवे गयो तो उनके कुचक्र में फँस गयो। संध्या तक नहीं लौट्यो। तब मोकूँ ही जानौ पर्यौ। मैंने उनसों कही कि मेरे सेवक कूँ छोड़ देओ तो वे अस्त्र-शस्त्र लैकै मोकूँ मारवे दौड़े परन्तु अन्त में आपस में ही लड़वे लगै। तब मैं भीतर जाय कै केश पकड़ कृष्णदास कूँ निकास कै लै आयो।

सार्वभौम—जय हो जय हो आपकी कृपा की! आप ही न निकासौ तो कहा जीव अपने बल-पौरुष स कूप में ते बाहर निकस सकै है!

श्लोक

समुद्धर्त्तृं हरै वेत्ति किं कूपे पतितः पशुः।
क्षिपनाङ्घ्रि मुहुः क्रन्दन् कृपां जनयति प्रभो।।

दो०

कूआ पर्यौ जीव कब, निकसि आप सकात।
हाथ पाँव पटकत मरै, करुणा ही उपजात।।

महा०—सो तो ठीक ही है परन्तु जाको कामिनी-कंचन को लोभ नहीं छूट्यौ है वह मेरे संग नहीं रह सकै है। यासों कृष्णदास यहाँ ते चल्यौ जाय जहाँ बाकी इच्छा हो।

कृष्णदास—(बैठ पड़ता! सिर जमीन पर पटक रोने लगना)

समाज— दो०

रोवत भूमि शीश दै, मुख नहिं आवत बैन।
नहिं साहस कछु कह सकै, कुपित जे करुणा ऐन।।
नित्यानन्द भक्तन सह, कछुक मतो मिलाय।
विनय करन कृष्णदास हित, चर्चा गौड़ चलाय।।

नित्या०—(जगदानन्द, दामोदर से धीरे-धीरे कुछ परामर्श कर)

हे प्रभो— दो०

जीव स्वभाव है भूलनो, सुधार तुम्हारे हाथ।
आज्ञा होय विनती करूँ, वन जाय सब बात।।

महा०— श्री पाद—

नट तुम ही मैं नर्तक, डोर तुम्हारे हाथ।
भावै ज्यूँ नचाओ मोहिं, कहौ कहा जु बात।।

नित्या०—प्रभो

गये तुम दक्षिण देश सुनि, गौड़ देश शची मात।
अद्वैत श्रीवासादि भक्त, जीवन जियो न जात।।

अब—आय गये सकुशल तुम, पुनः नीलाचल धाम।
यह सम्वाद-संजीवनी, करिये कृपा करि दान।।

यासों आपकी अनुमति होय तो कृष्णदास कूँ नवद्वीप भेज दिया जाय।

महा०—जैसी आप की इच्छा।

सब भक्त—हरि बोल (सार्व०) प्रभो! मेरी हू एक प्रार्थना है!

महा०—आज्ञा करौ भट्टाचार्य जी!

सार्वभौम—बहुत दिनान सों मेरी इच्छा है तथा गृहिणी को बड़ौ ही आग्रह है कि आपकूँ अधिक नहीं तो एक मास तक अपने ही भवन में भिक्षा करायी जाय!

महा०—एक मास? असम्भव! असम्भव!

सार्व०—भट्टाचार्य जी! आप सर्वशास्त्र विद् हैं। शास्त्र मैं तो संन्यासी के लिए घर घर सों मधुकरी माँग कै उदर-पूर्त्ति करवे को ही विधान है। हाँ एक-द्वै दिन तो भिक्षा कर सकूँ हूँ।

सार्व०—(चरण पकड़) तो प्रभो! दस दिन की ही कृपा है जाय।

महा०—(चुप)

सार्व०—अच्छो तो पाँच दिन मात्र! अब "नहीं" नहीं "हाँ" कर देओ दीनबन्धो! चिरकाल की साध पूरी कर देओ वाञ्छाकल्पतरो! पाँच दिन-केवल पाँच।

महा०—(मुस्कराते हुए) जैसी आप की इच्छा! हरि बोल! प्रभो! पाँच दिन तो केवल आप अकेले ही पधारवे की कृपा करैं। फिर आप के परिकर संन्यासी महापुरुषन कूँ पाँच-पाँच दिन के लिए भिक्षा करायँगे। अब मोकूँ आज्ञा होय! यह शुभ सम्वाद गृहिणी कूँ सुनाऊँ तथा यथोचित प्रबन्ध करूँ।

महा०—अच्छी बात है।

मुकुन्द—(प्रवेश कर) प्रभो! श्रीब्रह्मानन्द भारती जी महाराज पधारे हैं। आज्ञा होय तो भोतर लै आऊँ।

महा०—भारती जी कौन-से?

मुकुन्द—आप के गुरु श्री श्रीकेशव भारती जी के गुरु भ्राता ब्रह्मानन्द भारती जी।

महा०—(उठते हुये) तब तो वे मेरे गुरु तुल्य हैं। उनके स्वागत के लिए तो हमकूँ ही जानो चाहिए। चलौ सब।

(प्रस्थान)

समाज— **सो०**

बाहर देखे आय, संन्यासी मृगचर्म धर।
देखत देखत नाय, पूछत कहाँ हैं भारती।।

महा०—कहाँ हैं भारती जी मुकुन्द?

मुकुन्द—(साश्चर्य) आप के सम्मुख ही तो ठाड़े हैं!!

महा०—तुम बड़े अज्ञानी हो! कहा दूसरे को भारती जी बताओ हो!! भलो, भारती जी मृगचर्म क्यूँ पहनेंगे।

समाज— **सो०**

पायी हृदय चोट, पर्दा फट गयो दम्भ को।
जान परी निज खोट, खूटी आँख विवेक की।।

ब्रह्मानन्द—(स्वगत) सत्य! सत्य! यह मृगछाला तो पार नहीं लगावैगो! यह तो उलटो दम्भ व दर्प बढ़ाय कै डुबोय दैगो। आज इनकी कृपा सों आँख खुली, विवेक भयो! अब नहीं पहनूँगो मृगछाला!!

समाज—

इत भारती भाव पलटायो।
उत अन्तर्यामी जानि सब पायो।।
भक्तन प्रति इंगित प्रभु कीन्हे।
समझि लाय कषाय पट दीन्हे।।
तजि मृग चर्म वसनहिं पहने।
प्रभु तबहिं पद-वन्दन कीन्हे।।

महा०—(दण्डवत् प्रणाम करते)

ब्रह्मानन्द—(उठते हुए) हैं! हैं! आप मोकूँ प्रणाम न करैं।

महा०—क्यूँ न करूँ? आप हमारे गुरु हैं, सदैव वन्दनीय हैं।

ब्रह्मा०—और आप गुरुन केहू गुरु जगद्गुरु हैं। जीव-शिक्षा के लिए आपको यह अवतार है। आप मोकूँ प्रणाम करकै जीव कूँ गुरु-भक्ति को पाठ सिखाय रहौ हो। परन्तु अब आगे प्रणाम न करैं। मोकूँ बड़ो भय होय है।

महा०—दामोदर जी! यही मेरे समीप ही भारती जी के निवास को यथोचित प्रबन्ध है जाय तो उत्तम है।

दाभो०—जैसी आज्ञा प्रभो! और अब समुद्र-स्नान को समय है आयो है।

महा०—हाँ हाँ चलौ यदि भारती जी हू चलै तो अच्छो आनन्द रहैगो।

ब्रह्मा०—अवश्य चलूँगो। (सब का प्रस्थान)

समाज— पद

अपनो भाग मनाये, सार्वभौम।
आवैंगे आज प्रभु घर मेरे, विधना आस पुराये।।१।।
भर्यौ भंडार छिनहिं वस्तु, शत शत भाँति जुटाये।
घरनी फूली उमग भरी निज, हाथन सफल बनाये।।२।।
चामर शाल्यान्न पुष्पान्न, मेवा डार सुहाये।
मूग माष दार सुस्वादु, बड़ा प्रकार बनाये।।३।।
सूक्ति, भाजा, रसा लाफरा, बीसन साग सजाये।
छाना नारियल पीठा मिठाई, नाना मेल बनाये।।
दूध पाक मलाई पूरी, माखन वड़े सुहाये।
रसमलाई मोहन भोग, बहु पकवान बनाये।।
केला पात दोना पचासन, भरि भरि पात्र सजाये।
हरि प्रिया तुलसी मंजरी डारि, सुन्दर भोग धराये।।
जानि समय महाप्रभु पग आये, संग न कोऊ लाये।
पग पखार पौंछि सार्वभौम, भोग भवन प्रभु लाये।।
पाक पदार्थ प्रकार विपुल लखि, बोलत अचरज पाये।
अल्पकाल द्वय पहर विच इकली, घरनी कैसे वनाये।।

महा०—भट्टाचार्य जी! इतने अल्पकाल में इतने प्रकार की इतनी सारी सामग्री-अकेली गृहलक्ष्मी ने पाक कर लीन्ही धन्य है! धन्य है।

कवित्त

चूल्हो जराय सौ सौ, सौ सौ जन पाक करैं,
द्वै ही पहर विच वनाय पावैं न इतनो।
इतनो पदार्थ पाय सकैं ना पचास जन,
पाय सकैं जगन्नाथ, द्वारिकानाथ इतनो।।
इतनो सुवास दिव्य, छाय रह्यौ भौन माँझ,
निश्चय ही आज कृष्ण, पाये हैं भोग इतनो।
इतनो बड़ो भाग मेरो पैहौं प्रसाद 'प्रेम'
न्यारो आसन डारि देओ, किनका किनका इतनो।।

अहो भाग मेरे भट्टाचार्य जी! मैं हू कृष्ण-अधरामृत पाऊँगो। परन्तु एक आसन न्यारो ही डार देओ और थोरो-थोरो सबन में ते दै देओ।

सार्वभौम—

थोरो-थोरो नहीं सब, आपही को भोग 'प्रेम'
आप ही के हेत बन्यो, आप ही बनायो है।
आसन हू न्यारो कैसो, आसन तो आपही को,
आओ जु विंराजो पाओ, जो जो मन भायो है।।
थोरो कै घनो तुम कैसे जु खवैया कैसे,
जानैं हम नीके विधि, भेद ना छिपायौ है।
छप्पन प्रकार भोग तीन सौ पैसठ दिन,
खाओ जैसे गजमुख, किनका समायो है।।

यासों अब मौन है कै विराजो आसन पै और आनन्द सों भोग लगाओ। हम देखें और आनन्द पावैं। हमारी आशा लता आज ही तो फूली है।

समाज— **दोहा**

परवश प्रेम प्रभु सदा, बैठि परै सिर नाय।
जेमन लागै रुचि सहित, लखि जन नैन सिराय।।
अब सुनहु जो लीला भई, जा हित इतनो ठाठ।
प्रभु की करुणा कृपा की, एक नहीं सौ बाट।।
भीतर भवन द्वय जन धन्या।
भट्टाचार्य भार्या रु कन्या।
ओट दुरी प्रभु दरसन पावहिं।
जेंमत रुचि सों लखि अति भावहिं।।
छड़ी हाथ ठाड़े जु दुआरे।
इत उत भट्टाचार्य निहारें।।
कन्यापति अमोघ जामाता।
स्वभाव निन्दक दियो विघाता।।
छिन-छिन भट्टाचार्य भय पावैं।
कहूँ अमोघ न तहँ चलि आवै।।
चाहै अमोघ हू देखौं जाई।
कहा कहा वस्तु बनाई माई।।
ठाड़े ससुर बेंत लै दुआरे।
डोलै जमाई दाव निहारे।।
होनी वाकी करी सहाई।

परसत ध्यान गयो जु बँटाई।।
अवसर पाय जु धाय निहार्यो।
चूक्यौ नहीं कठोर उचार्यो।।

अमोघ—बाप रे बाप! इतनो भोजन! दस-बारह आदमिन को भोजन!! यह इकलो संन्यासी खाय जायगो!!

(भाग जाता)

सार्वभौम—(सुनकर पीछै दौड़ते हुए) ठहर जा दुष्ट! ठहर जा!

समाज— **सो०**

आयो नहिं वह हाथ, काम करि गयो आपनो।
मानौ बज्जर पात, परि गयो पति-पत्नीन पै।।

दो०

कौसैं दोनों अमोघहिं, मर क्यों न वह जाय।
हरि गुरु निन्दक पति सों, बेटी रांड़ है जाय।।

सार्वभौम—अरे दुष्ट! अरे पाखंडी! तेरी जीभ न गिर परी! मुँह में कीड़ा न परै! तैंने मेरे प्रभु की निन्दाकर डारी!!

सार्वभौम—बेटी साठी राँड़ है जाय! ऐसो निन्दक जमाई मर जाय तो मंगल!!

महा०—भट्टाचार्य जी! और कछु लाओ न! मैंने अब ही खायौ ही कहा! लाओ! जल्दी लाओ।

समाज— **दो०**

विलपत कोसत लखि प्रभु, माँगत लाओ और।
दुख घटाय सुन दैन कूँ, माँगि कै पावत गौर।।

चौ०

रुचि दिखाय हँसि हँसि प्रभु जैंवत।
माँगि माँगि वस्तु वहुत लेवत।।
अपनो दुख अन्तर कछु नाहिं।
भक्तन दुख ही अधिक सताहीं।।
धूम धूर रहै नभ माहिं।
नभ अलेप इक रसहिं सदाहिं।।

भोजन कराय पुनि अँचवाये।
मुख सुवास दै माल धराये।।
करत दंडवत चरन परि रोयो।
क्षमहू नाथ आप गृह बोल्यो।।

सार्व०—हाय प्रभो! मैंने आपकूँ निन्दा सुनवे के लिए ही अपने घर बुलायो! क्षमा करौ यह अपराध करुणामय!

महा०—निन्दा नहीं, साँची बात कही! मेरे पात्र में प्रसाद ही इतनो हो जो दस-बारह जने तृप्त है जायँ। या सों दोष तो मेरो है वाको नहीं। आप वाकूँ कछु न कहैं। मेरे मन में कोई क्षोभ नहीं है। आप हू क्षोभ न करैं। हरि बोल

(प्रस्थान)

समाज— चौ०

अस कहि प्रभु गमन कुटी कीन्हे।
भट्टाचार्य हू संग ह्वै लीन्हे।।
पहुँचाय पुनि प्रभु पद गहि लीन्हे।
धिक् धिक् मोकूँ कहि दुख कीन्हे।।
बहु हित करि महाप्रभु समझाये।
करि प्रवोध निज भवन पठाये।।
बुझै नहीं उर अन्तर ज्वाला।
फूट परी जाय भवन कराला।।

सार्वभौम०— पद

बोले भार्या सों अति रिसाय,
कह देओ साठी कूँ चेताय।
पति नाम वाकूँ जो देह कूँ पालैं,
आत्मा हू पालै प्रभु पथहिं चलावै।।
(परन्तु) हरिपद विमुख तो पालि सकै ना,
वह आपहू डूबे औरन कूँ डुबावै।
पति सेवा निश्चय ही धर्म बड़ो है,
पै तब ही जब पतित पति न बनावै।।
(अतः) भजे पति सोई जो पतित न होवै,
तजै पति हिं 'प्रेम' पतित जो कहावै।

"पतिं ल्वपतितं भजेत्"—यही शास्त्र को आज्ञा है। यासों साठी सों कह देओ कि अमोघ पतित है गयो है—वह अब पति नहीं रह गयो है। यासों वाकूँ तजि दैवे में कोई दोष नहीं है। (पटाक्षेप)

समाज— **दो०**

पति-पत्नी दोऊ दुखी, कन्या दुखी अपार।
एक कपूत के कारण, दुखी सकल परिवार।।
सुनि डरपाय अमोघ हू, गयो गेह ते भाग।
सार्वभौम भार्या दोऊ, दिये अन्नजल त्याग।।

चौ०

रात अमोघ घर नहीं आयो।
भोर समाचार दारुण आयो।।
रोग विसूचिका लीन्हो दबाई।
प्रान अमोघ बचै कै नाई।।
भट्टाचार्य कहत सुखपाई।
विधना मेरी करी सहाई।।

सार्वभौम०—(गोपीनाथ आचार्य प्रति) अच्छो भयो! मोकूँ दंड न दैनो पर्यौ। विधाता ने दंड दै दियौ—बारह घंटा में ही! अत्युत्कट पाप-पुण्य को फल हाथो हाथ मिल जाय है।

श्लोक

आयु: श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रम:।।

सवैया

आयु नसै सम्पदहु नसै,
धर्म नसै, सुखहू नसि जावै।
इहाँ के नसैं अरु वहाँ के नसैं,
सब मंगल वाके तो नसि जावै।।
पाप फलै जब आवै समय,
अपराध महत तो तुरन्त नसावै।
नरक की आग महँ पापी जरै,
अपराध की आग इहँ तुरन्त जरावै।।

गोपीनाथ—तो दंड तो वाकूँ मिल ही गयो। अब तो क्षमा मिलनी चाहिये। वह मृत्यु के मुँह में पर्यौ भयौ है। यह समय कर्म देखवे को नहीं। यह तो कर्म भूल कै क्षमा करवे को है। यासों चल करकै वाकूँ क्षमा करौ।

सार्व०—मैंने तो दंड नहीं दियौ जो मैं क्षमा करूँ। जो दंड दै सकै है, क्षमाहू वही कर सकै है अनुग्रह-निग्रह करवे वारे प्रभु ही हैं। वे चाहे कछु करैं मंगल ही करैं हैं। यासों मैं तो निश्चिन्त यहाँ बैठ्यो हूँ। मैं कहीं नहीं जाऊँगो।

गोपी०—धन्य है आप की निष्ठा कूँ। तो अब मैं प्रभु के समीप जाऊँ हूँ। (प्रस्थान)

समाज— **दो०**

लखि कठोर सार्वभौम कूँ, गोपीनाथ चले धाय।
धाय गये ढिग महाप्रभु, विपदा कही सुनाय।।

गोपीनाथ—(प्रवेश कर दंडवत करते)

महाप्रभु—क्यों आचार्य जी! भट्टाचार्य जी शान्त हैं न? कोई दुःख तो नहीं है?

गोपी०—उनके हृदय सों दुःख गयो नहीं हे प्रभो! वे पति-पत्नी तो अन्न-जल त्यागकर परै हैं। अमोघ हू घर ते भाग दूसरेन के घर में पर्यौ है। वाकूँ भयंकर विसूचिका रोग ने दवाय लियो है। वाके जीवन की आशा नहीं है।

महा०—तो चलौ! मोकूँ शीघ्र ही वाके समीप लै चलौ।

(प्रस्थान)

समाज—

सुनत कृपामय चले अकुलाई।
गोपीनाथ संग पहुँचे धाई।।
लखे अमोघ अचेत असहाय।
कर धर उर बोले जु सुनाय।।

महा०—(अचेत अमोघ की छाती पर हस्त रखे हुए)

कवित्त

ए हृदय ब्राह्मण को, निर्मल सहज शुद्ध,
कृष्ण को मन्दिर महा-पवित्र कहायो है।

वहाँ चंडाल मत्सर, कैसे घुसि आयो दुष्ट,
पावन ए मन्दिर अति दूषित बनायो है।।
निकस रे चंडाल कहा, जानै ना मेरी बात,
सार्वभौम नाते सों अमोघ मोकूँ भायो है।
उठ रे अमोघ कृष्ण कृष्ण नाम प्रेम ले,
नाम के प्रताप रोग पाप सब पलायो है।।

समाज—

परस पाय प्रभु कर, नाम उपदेश पाय,
उठ्यौ अमोघ मानौं, नींद सों जगायो है।
काल के जो गाल पर्यौं, उठि सों नाचन लाग्यौ,
कृष्ण कृष्ण गाय गाय, अश्रुधार बहायों है।।
लखि पायो गौर हरि, ठाड़े ठाड़े हँसि रहै,
धाय पर्यौं चरनन, 'प्रेम' लिपटायो है।

अमोघ—

छमहु दयामय देव, मेरे अपराध सब।
निन्दाकरि आप की मैं, पाप ही कमायो है।।

अमोघ—

नहीं दिखायवे योग्य, यह मुख निन्दाकारी है।
यह तो ताड़न योग्य, उचित दंड याको यही।।

(अपने दोनों गालों पर चाँटे मारने लगता)

समाज— **दो०**

असि कहि दोऊ हाथ सों, अपने दोऊ गाल।
मार मार कैं कर दियो, छिन में लाल बेहाल।।

चौ०

गोपीनाथ पकरि लियो हाथा।
हृदय लाय बोले कृपानाथा।।

महाप्रभु—(अमोघ को हृदय लगा)

पद भैरवी केहरवा

दूर करौ दुख जो हृदय बीच धारे हो।
सार्वभौम नाते सों तुम मोकूँ अति प्यारे हो।।
कन्यापति तुम तो उनके, क्यूँ न लगो प्यारे हो।
दासीदास कूकर तक हू उनके, मोकूँ प्यारे हो।।
चलो अब घर चलो भूलो दुख सारे हो।
गाओ ध्याओ रटो कृष्ण, बनौ 'प्रेम' प्यारे हो।।
हरि बोल हरि बोल (कीर्तन-प्रस्थान)

समाज— **दो०**

सार्वभौम भार्या सहित, बैठे दुखित भवन।
आवत जानि महाप्रभु, धाय गहै श्री चरन।।

महा०—(सार्वभौम को उठाकर भेंटते है)

सार्व०—(आसन पर महाप्रभु को विराजमान कराता)

महा०— **दो०**

अमोघ तुम्हरो बालक, बालक को का दोष।
काहे करौ उपवास पुनि, काहे वापै रोष।।
उठो जाय स्नान करौ, देखो जगन्नाथ मुख।
आय घर भोजन करौ, तब ही मोकूँ सुख।।
उठूँ नहीं, जाऊँ नहीं, जब लगि तुम ना आओ।
होय मोकूँ शान्ति तब, जब प्रसादहिं पाओ।।

सार्व०—(चरण पकड़) हे कृपानिधे! आप ने या दुष्ट कूँ

गजल

मरने न दिया इसको, जिलाया क्यूँ दयालो?
यह था ही मरने लायक, वचाया क्यूँ दयालो?
हो जाता बन्द मुख जो, खुला था निन्दा करने।
रह जाती बन्द ही आँखे, खिलाया क्यों दयालो।।
यह छाती जलने वाली, अच्छा था जल ही जाती।
जलने के लायक ही यह, बुझाय क्यों दयालो।।

महा०—बालक में दोष होवैं, चाहे हजार होवें।
करते क्षमा ही फिर भी, माता पिता दयालो।।

बालक अमोघ तुम्हारा, पालक पिता तुम उसके।
यह 'प्रेम' धर्म नाता, भुलाओ क्यों दयालो।।
(और अब तो) सब दोष मिटे इसके, कहता हैं कृष्ण कृष्ण।
वैष्णव बना अमोघ, असीस दो दयालो।।

सार्व— दो०

पधारो प्रभु जगन्नाथ मुख, दरसन करौ तुम जाय।
स्नान करि समुद्र हौं, मिलि हौं तहाँ आय।।

महा०—अच्छी बात है। आचार्य गोपीनाथ जी! आप यहीं बैठे रहैं। ये जब आय करकै प्रसाद पाय लैवें तब आप सम्वाद सुनायवे मेरे पास आमनो। मैं अब श्रीमुख-दर्शन करवे जाऊँ हूँ, हरि बोल! हरि बोल! हरि बोल।

(सम्मिलित कीर्तन-प्रस्थान)

समाज— दो०

श्रद्धा भक्ति सहित यह लीला करै श्रवन।
पावैगो वह शीघ्र ही श्रीचैतन्य चरन।।

इति अमोघ-उद्धार लीला सम्पूर्ण।

ଓ❖୭

संन्यास-लहरी **दशम् कणामृत**

जननी-जन्मभूमि दर्शन-लीला

(चरण पादुका दान)

★

श्लोक

जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवी च जनार्दनः।
जनकः पञ्चमश्चैव जकाराः पञ्च दुर्लभाः।।
गौड़ारामं गौरमेघः सिञ्चन् स्वालोकनामृतै।
र्भवाग्निदग्धजनता-बीरुधः सभजीवयत्।।
जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्तवृन्द।।

पद

जय नदिया नागर गौर सुन्दर, प्राणमनोहारी।
जय हेमवरन दीरघतन, नटनर्तनकारी।।
जय शचीनन्दन, विश्ववन्दन, गुप्त ब्रजबिहारी।
जय विश्वम्भरं भावसागर, कीरतन परचारी।।
जय गौरचन्द्र वरनटेन्द्र नदिया बिहारी।
जय विष्णुप्रिया प्राणश्रिया जगजन हितकारी।।
जय छद्म रूप गौर अनूप छद्मावतारधारी।
जय अरुणभेष मुंडित केश कपट संन्यासधारी।।
जय दीनशरण तापहरण, मंगल श्रेयकारी।
जय चरणद्वन्द रसमरन्द, 'प्रेमकन' भिखारी।।

(पूर्व-प्रसंग-परिचय)

चौ०

गौर हरि भये प्रेम संन्यासी।
नदिया तजि नीलाचल वासी।।
मास एक बसि दक्षिण धाये।
वर्ष द्वय भ्रमि तीर्थ बिताये।।
पुनि द्वय वर्ष रहै जगन्नाथ।
लीला विविध कीन्ह प्रकासा।।
रथ यात्रा समय नियरावै।
नदियावासी भक्त बहु आवैं।।
चार मास करैं पुरी वासा।
प्रभु संग नित नवरंग हुलासा।।
भक्तन संग गुंडीचा धोये।
सेवा धरम परम सिखाये।।
रथ यात्रा लखि अति हुलसाये।
नाचत गावत संग संग धाये।।
लक्ष-लक्ष कंठ हरि हरि गाये।
लक्ष-लक्ष पग नाचत धाये।।
लक्ष-लक्ष लोचन सरसाये।
लक्ष-लक्ष जन भक्ति पाये।।

सो आनन्द कछु कही न जावै।
ग्रंथन महँ महाजन बहु गावै।।

सो०

प्रभु अनुग्रह कीन्ह, भूपति प्रताप रुद्र पै।
प्रेमालिंगन दीन्ह, रीझे गोपी-गीत सुनि।।

चौ०

कृष्ण जन्म-उत्सव मन भाये, गोप वेष प्रभु नाचे गाये।
आश्विन विजया दसमी आयो, लंका विजय रंग रचायो।।
भक्तन वानर सेना सजाये, हनुमान भाव प्रभु दरसाये।
नित्यानन्दहिं गौड़ पठाये, नाम प्रेम प्रवाह बहाये।।
शिवानन्द शिशु कवि बनाये, पद अंगुष्ठ पान कराये।
कवि कर्णपुर नाम धराये, वृन्दावन रसयश जो गाये।।

दो०

वैष्णव मानैं कौन कूँ, प्रश्न किये समाधान।
उत्तम मध्यम कनिष्ठ, लक्षण किये प्रमान।।
द्वै वर्ष नीलाचल बसि, बहु विधि लीला कीन्ह।
पाँच सात लीलान को, नाम इहाँ लिखि दीन्ह।।
पंचम वर्ष आधो तहँ, लीलाचलहिं बिताय।
विजया दसमी दिवस प्रभु, चले नदिया प्रति धाय।।
नदिया-गमन-चरित सो, कथन चहौं जु बनाय।
मो मति-सीप ओछी अति, नहीं बूंद हू आय।।

(लीलारम्भ)

कवित्त—

आये प्रभु दच्छिन ते, जान चहैं वृन्दावन,
राखें भक्त अटकाय, बातन भुलायो है।
कहैं आगे चतुर्मास, वर्षाकाल आय रह्यौ,
तीरथ भ्रमण देश, निषेध बतायो है।।
गई वर्षा आयो शरद, कहैं आई दीपावली,
जगन्नाथ देव मन, बड़ो ही लुभायो है।
दीप दान पीछे कहैं शीतकाल आय गयो,
वृन्दावन देश पच्छिम, शीत बहु सतायो है।।

२. गयो शीत काल आयो वसन्त ऋतु कहैं,
अब तो फागुन मास, फूल डोल आयो है।
फागुन बीतत आय जात नदियावासी जन,
रथ यात्रा कृष्णजन्म, नन्दोत्सव भायो है।।
विजया दशमी गई, गये नदियावासी जन,
कहैं प्रभु जान वृन्दावन नहीं पायो है।
बहुविध युक्ति करी, सार्वभौम रामानन्द,
अटकाये वर्ष द्वय, अब न अटकायो है।।
(दृश्य : महाप्रभु, सार्वभौम एवं रामानन्द बैठे है)

समाज— दो०

पंचम वर्ष हू सकल, गौड़ भक्त जन आय।
रथयात्रा दरसन करि, गये तुरत नदियाय।।
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु, पाई अनुमति आज।
सार्वभौम रामानन्द ढिग, श्रीवृन्दावन काज।।

महाप्रभु—हाय हाय! मोकूँ वृन्दावन के दर्शन कब होंगे? दस वर्ष पूर्व मैं गया ते वृन्दावन कूँ जायवे लग्यौ तो नदिया लोट जानौ पर्यो। पाँच वर्ष पूर्व संन्यास लैकै वृन्दावन के लिये भाग्यो परन्तु आय पहुँच्यो नीलाचल। यहाँ ते जाय कै द्वै वर्ष दक्षिण डोलि आयो। अब ढाई वर्ष सों यहाँ बैठ्यौ हूँ। वृन्दावन नहीं जाय पाय रह्यौ हूँ। स्नेह बन्धन अब हू नहीं टूट्यौ है। प्रिय बन्धुओ! काट देओ मेरे बन्धन, मुक्त कर देओ मोकूँ और जान देओ वृन्दावन।

"बहुत उत्कण्ठा मोर जाइते वृन्दावन।
तोमार हठे दुई वत्सर ना कैलो गमन।।

पद

रुकत नाहीं रुकाय, मन मेरो।
वृन्दावन प्रिय दर्शन कारण, निशदिन रहे अकुलाय।।
बंध्यो तिहारे नेह-डोर में, दिये द्वै बरस बिताय।
अब ना रहि हौं जैहौं जैहौं, देओ सहर्ष विदाय।।
जैहौं प्रथम गौड़ देशहिं, पूज्य द्वै वस्तु तहाँई।
जननी अरु जाह्नवी गंगा, देखौं दयामयी जाई।।
तहाँ ते पुनि जैहौं वृन्दावन, अब न रहौं विरमाय।
देओ तुम दोऊ अनुमति प्रेम, देखूँ वृन्दावन जाय।।

सार्वभौम—नाथ! आप तो स्वतंत्र हैं। हम आप की इच्छा में कहा बाधा दै सकै हैं। आप तो अपनी सहज करुणा गुण सों हमारे मध्य रहौ हो तथा हमकूँ सुख-शान्ती दैओ हो।

रामा०—हमारो हठ तो बाल हठ जैसो है प्रभो! माता-पिता यदि स्वयं करुणा न करैं तो बालक को हठ कहा कर सकै है। द्वय वर्ष तक आपने हमारो हठ पूरो कियो। अब हम अधिक हठ नहीं करेंगे। आप अवश्य वृन्दावन पधारें।

सार्व०—आपके प्रिय गौड़ीय भक्त प्रतिवर्ष विजय दशमी तक यहाँ ठहर जाते परन्तु अब के तो रथयात्रा के दर्शन करकै तुरन्त ही लौट गये। अवश्य ही वे आपके भाव कूँ समझ गये हैं कि आप गौड़ देश जायँगे। यह शुभ सम्वाद सुनायवे के ताँई वे चले गये, रुके नहीं। अतएव आप की जननी एवं जन्म-भूमि परम उत्कंठित हृदय सों आप की प्रतिक्षा कर रहीं होंगी। आप जाय कै उनकूँ, आनन्द प्रदान करैं। परन्तु अब ही सावन-भादौं दो मास वर्षा के शेष हैं, वाके पश्चात् आश्विन विजया दशमी कूँ आपहु विजय-प्रस्थान करैं। यही हमारो निवेदन है।

महा०—अच्छो! ऐसो ही सही! हरि बोल।

(पटाक्षेप)

(दृश्य! नवद्वीप में गंगा-तट)

वैरागी—(प्रवेश इकतारा हाथ में गाता हुआ)

गजल बागे श्री

ऐ चाँद तू बतादे, नदिया का चाँद कहाँ हैं?
तू है यदि गगन पर, धरती का चाँद०।।१।।
उतरा या जव जमीं पर, किस लोक से न जाने।
काला तू पड़ गया था, वह गौर चाँद कहाँ है।।२।।
गंगा के जल व थल पर, रंगरेलियाँ था करता।
हरिबोल गाता फिरता, वह निमाई चाँद कहाँ है।।
करताल खोल धुनि से, यह गूँजती थी नदिया।
अब रो रो पूछती है, मेरा नाथ चाँद कहाँ है।।
(यद्यपि) तेरे जनों के दिल में, जलवा है 'प्रेम' हर दम।
(मगर) आँखें तड़फ रहीं हैं, वह गौर चाँद कहाँ।।

(गाते गाते प्रस्थान)

समाज— **दोहा**

आश्विन शुक्ल पक्ष शुभ, विजयी दशमी भोर।
जगन्नाथ मन्दिर गये, बिदा हेत हरि गौर।।

(दृश्य—श्रीजगन्नाथ मन्दिर-त्रिमूर्ति दर्शन)

महाप्रभु—(प्रवेश सपरिकर-कीर्तन करते हुये)

धुन

जय जगन्नाथ प्राण जगन्नाथ।
जगबन्धु दीनबन्धु करुणासिन्धु नाथ।।

समाज— **दोहा**

माला चन्दन प्रसाद लै, पुजारी प्रभुहिं दीन्ह।
अनुमति जगन्नाथ की, समझि शीश धर लीन्ह।।

(दण्डवत् प्रणति। हरि बोल कीर्तन करते हुए प्रस्थान)

समाज— **दो०**

गौड़ीय उड़िया भक्त जन चलै प्रभु संग धाय।
लौटाये बहुजन प्रभु, बहुतेक न अटकाय।।

चौ०

तिन महँ नदियावासी गदाधर।
पंडित युवा प्रभु प्रिय परिकर।।
मानै गौर प्रभुहिं प्राणनाथा।
गौर हेत तज्यो नदिया वासा।।
क्षेत्र संन्यास व्रत सो धारे।
पुरी बाहर पग कबहु न पारे।।
चलै गौर जब प्राणनाथ।
चल्यौ गदाधर तजि जगन्नाथा।।

(प्रवेश महाप्रभु, गदाधर, सार्वभौम, रामानन्द)

महा०—(गदाधर का हाथ पकड़) प्रिय गदाधर! तुम तो घर-द्वार सब त्यागकर क्षेत्र-संन्यास की प्रतिज्ञा कर यहाँ जगन्नाथ क्षेत्र में निवास कर रहे हो। यहाँ सों बाहर न जायवे की तुम्हारी प्रतिज्ञा है। यासों—

पद

तजौ न जगन्नाथ क्षेत्र, करौ मत व्रत भंग।
मान जाओ गदाधर, चलौ मत मेरे संग।।

गदा०

जहाँ जहाँ तुव पद, तहाँ-तहाँ जगन्नाथ।
तुम संग वास मेरौ, वास सदा जगन्नाथ।।
टूटै तो टूटै व्रत, जाय रसातल व्रत।
छूटै ना तुम्हारे संग, यही है मेरौ व्रत।।

महा०—गोपीनाथ सेवा करो, काहे छोड़ो देव-सेवा।

गदा०—तुव पद-दरसन, कोटि गोपीनाथ-सेवा।।

महा०—मेरे लिये यदि तुम, तोड़ो व्रत छोड़ो सेवा।
चढ़ै पाप शीश मेरे, रुष्ठ पुनि होवैं देवा।।

गदा०—तुमहिं न लागै पाप, पाप चढ़ै मेरे सिर।
तोड़ूँ छोड़ूँ मैं ही दोषी, तुम निरदोषी चिर।।

और यदि आप

संग चलिवे में मेरे निज अपराध मानौ।
(तो) नहीं चलूँगो तुम संग, चलूँगो इकलो जानौ।।
न तुम्हारे संग जाऊँ, न तुम्हारे लिए जाऊँ।
मैं तो शची मात-पद, दरसन काज जाऊँ।।
चिन्ता तजो अब प्रभो, तुमहिं न लागै पाप।
अपराध मेरो 'प्रेम', लगैगो मोकूँ सब पाप।।
लेओ! अब मैं इकलो ही जाऊँ हूँ।

(चल देना)

समाज— दो०

अति संकोची गदाधर, चल्यौ आज रिसाय।
प्रणय-कोप समझि प्रभु, मनहिं मन मुसकाय।।

महा०—हरि बोल (कीर्तन करते हुए प्रस्थान)

समाज—

मध्य दिवस भवानीपुर आये।
पाय प्रसाद भुवनेश्वर धाये।।
निशि बिताय चलै पुनि आगे।
जन-गन भमर भीर संगलागे।।

(अनुकरणात्मक चौपाईयाँ)

राजधानी कटक नियराये। राजा प्रतापरुद्र सुनि धाये।।
दूरहिं पालकी तजि मंत्रीजन। धाय लुठत प्रभु श्रीचरनन।।
धूरि धूसर तन सुध नाई। विह्वल लोटत नैन बहाई।।
भूप भक्ति लियो प्रभुहिं रिझाई।
लिये उठाय हिय बरवस लाई।।
भूप भाग्य लखि बलि बलि जावैं।
हरि बोल जय जय जन गावैं।।

राजा—एक अधम विजयी जीव पै इतनी करुणा! इतनी कृपा! हे मेरे परमोदार प्रभो! आप की दया कूं न भूलूं, याके योग्य बन सकूँ! इतनी ही शक्ति-भक्ति मिल जाय दीनबन्धो।

महा०—राजन्! आपके ऊपर जगद्बन्धु, पतित पावन नीलाचलनाथ श्रीपुरुषोत्तम देव की पूर्ण कृपा हैं। आप उनके प्रिय सेवक हो यासों मोकूँ हू प्रिय हो। मैं वृन्दावन यात्रा के लिये निकस्यो हूँ। गौड़ देश है कै वृन्दावन जायवे को विचार है।

राजा०—पुन: कब श्रीचरणन के दर्शन को सौभाग्य प्राप्त होयगो देव!

महा०—श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र कूँ त्याग करकै अधिक समय बाहर नहीं रह सकूँगो। शीघ्र ही लौट आयवे को विचार है।

राजा०—भगवन्! आगे महानदी की धारा चित्रोत्पल नदी आवैगी। वहाँ आप के लिए नौका प्रस्तुत मिलैगी। आगे हू राज्य-सीमा गंगा जी तक सब प्रबन्ध है। तथा राज कर्मचारी हू आपकी सेवा में चलैंगे। शीघ्र ही दर्शन दैवे की कृपा करैं।

महा०—(उठते हुए) हरि बोल (प्रस्थान)

राजा०—(दण्डवत् प्रणति) हरि बोल।।

समाज—

राज बहु निज लोग पठाये।
ठौर ठौर प्रबन्ध सुहाये।।
चित्रोत्पल नदी पहँ आये।
जानि प्रभु ढिग बोलि पठायो।।
पुनि सोई बात कही समुझाई।
सुनत गदाधर गयो मुरझाई।।

गदाधर—जाकर प्रणाम करता है।

महा०—(उसका हाथ पकड़) प्रियबन्धु! मेरे संग-सुख के लिए तुम जो अपराध कर रहै हो और मोकूँ अति दुखित कर रहै हो वाकूँ नेक विचार तो करौ-५

कवित्त

क्षेत्र-वास छोड्यो तुम, छोडी गोपीनाथ सेवा।
द्वै द्वै धर्म त्यागि अपराध ही कमायो है।।
निज सुख लागि दुख मोकूँ बड़ो दै रहै।
तीजो यह दोष अनजाने तुम पायो है।।
(मैं) हार्यौ समझाय नहीं लौट रहे 'प्रेम'-वश।
टारि रहै आज्ञा चौथो दोष यह आयो है।।
(अतएव) मेटन चहौ जो दोष, दैंन चहौ सुख मोकूँ।
(तो) लौटि जाओ बिन बोले, आदेश (मैं) सुनायो है।।

(नाव पर चढ़ जाना)

समाज—

सो०

चढ़ै नाव प्रभु जाय, आज्ञा कठोर सुनाय कै।
गिर्यौ पछाड़ खाय, गदाधर प्राणनाथ बिन।।
कह्यौ प्रभु पुकार, भट्टाचार्य सार्वभौम सुनो।
तुम्हरे ऊपर भार, लै जाओ संग गदाधर।।
आज्ञा दई 'चलाव', निंजजन निष्ठुर' गौर हरि।
चल दीनी सो नाव, संग गौड़ीय भक्त कछु।।

दो०

सार्वभौम हू जान न पायो।
व्याकुल विरह व्यथा सतायो।

धरि धीरज गदाधरहिं उठाये।

बैठे सिर अंकम पधरायै।।

सार्व०—गदाधर जी! धीरज धरो! यह वियोग-दु:ख तुमकूं ही नहीं, प्रभु कूं हू है परन्तु उनने यह दु:ख स्वेच्छा सों वरण कियो है कि जासों तुम्हारे धर्म की, तुम्हारी प्रतीक्षा की रक्षा है सकै। ठीक जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी प्रतीक्षा तोड़कर भीष्म जी की प्रतिज्ञा की रक्षा करी हती। यही तो भगवान् को अनादि स्वभाव है।

१. सवैया

छल छिद्र विहीन निरमल जो हरि,

वे भक्तन हित छल कपट करैं।

नहिं राग न रोष समान हरि वे,

'प्रेम' के वश पच्छपात करैं।।

जो सत्य स्वरूप सत्यव्रतौ,

वे अपनी प्रतिज्ञा भंग करैं।

'प्रेम' एक ही धर्म कर्म हरि को,

भक्त के धर्म की रक्षा करैं।।

२. सवैया

यह भक्त करैगो त्याग कहा,

जो भक्त के हित भगवान् करै।

यह माया हू नहिं त्याग सकैं,

वे ईश्वरताई त्याग करैं।।

यह सेबा कहा करि सकै उनकी,

जो वे भक्त की सेवा करै।

यह बूँद ही दै सकै 'प्रेम' उन्हें,

वे सिन्धु अपनकूं दान करै।।

३. सवैया गदाधर

तुमकुं जैसे वे गौर हैं प्राण,

वैसे तुम उवके प्रान रवरे।

तुम उनके विछोह में जैसे दुखी,

वे तुम्हारे विछोह दुक्ख भरे।।

तुम अपनो सुख न छोड़ि सकैं,
उनकूं दुख दै उन सुख हरे।
(परन्तु) वे अपनो सुख तजि दुख सह्यौ,
पै तुम्हारो धर्म बचायो हरे।।

अतएव ऐखे भक्त जन हितैषी परमोदार प्रभु के कार्य में हमकूं सदैव मंगल ही समझ कै प्रसन्न रहनौ चाहिए। तुम तो भागवती पंडित हो, प्रभु के कोमल-कठोर स्वभाव के रहस्य कूं जानवे वारे है। अतएव धीरज धरो, श्रीजगन्नाथ क्षेत्र लौट चलौ तथा श्रीगोपीनाथ जी की सेवा करौ। वे तुम्हारी सेवा के बिना दुखी होंगे। उठौ, चलौ।

(प्रस्थान)

समाज— **पद १ ताला**

जय मातृभक्त गौर हरि।
नीलाचल वास करैं, मातृ-आज्ञा शीश धरि।।१।।
नदिया जन जात जब, बूझत कुसलात सबै।
लोचन भरि भरि आत, छद्म जात सब ढरि।।
सोई शची को कुमार, करुणासागर अपार।
आवत अब जन्म भूमि, सुध नेह भरि।।
धन्य यतिराजराज, श्रीकृष्ण चैतन्य आज।
कर्म धर्म सर्व मर्म, परम सार 'प्रेम' धरि।।

(नदिया पथ! श्रीवास, मुरारि, दामोदर, मुकुन्द आदि भक्त मंडली)

श्रीवास—अहा! हमारे गौरचन्द्र, हमारे नदिया विहारी पुनः नदिया में आयँगे। नदिया की धरा पुनः उनके पावन चरणन को स्पर्श पावैगी। नदियावासी पुनजन-परिजन के तापित नयन-प्राण उनके मुखचन्द्र के दर्शन सों शीतल होंगे।

मुरारि—परन्तु श्रीवास जी! नदिया विहारी के नहीं श्रीकृष्ण चैतन्य संन्यासी के! घुंघुराली अलकावली नहीं, रुण्ड-मुण्ड मस्तक! पीतपटधारी मालती-मालधारी नहीं, काषायवसनधारी! विष्णुप्रिया..........।

मुकुन्द—(बात काटते हुए) परन्तु हैं तो वही शचीनन्दन! वे केश न सही, वह वेष न सही परन्तु प्राणेश तो वे ही हैं। देश में रहे, परदेश में रहें, काहू भेष में रहे हैं, तो हमारे ही जीवन सर्वस्व! अहा! वे ही ज नो-जन्मभूमि कूं दर्शन दैवे पुनः आय रहे हैं।

मुरारि—दर्शन दैवे नहीं, दर्शन करवे आय रहे हैं। और आय रहे हैं क्षमा-माँगवे—माता के दूध के निकट एवं पत्नी के सुहाग के निकट।

श्रीदास—चलौ भैयाओ! या शुभ सम्वाद कूं शची माता कूं जाय सुनावैं। माता को हृदय एक बार पुनः हुलसैगो।

मुकुन्द—विष्णुप्रिया देवी कूं हू एक बूँद संजीवनी मिलैगौ।

श्रीदास—हरि बोल (कीर्तन करते हुए प्रस्थान)

समाज— दो०

श्रीवासादि भक्तजन, मात शची ढ़िग जाय।
गौर-आगमन-वार्ता, मंगल दई सुनाय।।
(श्रीवासादि भक्तों का प्रवेश। शची माता को प्रणति)

श्रीदास—माँ! आशीर्वाद देओ। हम लोग सकुशल नीलाचल धाम की यात्रा कर आये हैं।

शची—भगवान् में तुम लोगन की सुदृढ़ मति-रति होवै। भले आये श्रीवास जी भले आये। कहो मेरो निमाई तो कुशल है? अपनी दुखिनी माता को कबहु नाम लेय है कहा? मेरे लिए कछु कह्यो है? बोलो, बताओ, कैसो है मेरो चाँद?

श्रीवास—माँ आप के निमाई चाँद ने आपके श्रीचरणन में कोटि-कोटि प्रणाम निवेदन कियो है तथा आपके लिए श्रीजगन्नाथ जी को यह प्रसाद भेज्यो है (देनो) एवं पंडित दामोदर जी के हाथ..........।

दामोदर—हाँ माँ! मेरे हाथ यह साड़ी भेजी है। यह साड़ी उड़ीसा के महाराजा गजपति प्रताप रुद्र ने प्रभु कूँ भेट करो ही सो उनके यहाँ भेज दीनी है (देना) वे आपकूँ बार-बार स्मरण करैं हैं एवं प्रणाम करैं हैं।

शची—(आक्षेपपूर्वक) चलो 'इतने दिनन बाद वाकूँ याद तो आई कि कहूँ वाकी एक गर्भधारिणी जननी है। यही कहा मेरो कम सौभाग्य है! वहाँ वाके भक्त बहुत, सेवक भक्त! यहाँ कौन है? कोई नहीं! वह मेरे कूँख में आयो, या घर में खेल्यो, बड़ो भयो अवश्य, परन्तु हम वाकी कोई सेवा न कर सकीं। यासों वह हमें छोड़ कै चल्यौ गयो। जहाँ वाकूँ आदर-स्नेह मिल्यौ वहीं चल्यौ गयो यासों यदि वह हमकूँ भूल जाय तो कोई आश्चर्य नहीं! आश्चर्य है तो यही है कि वह मो अभागिनि कूँ याद कैसे कर लेय है! बेटा! (रुदन)

श्रीदास—ऐसे दुखन मानैं माँ! आपको निमाई मातृ-भक्त शिरोमणि है—यह मैं आपके श्रीचरण-स्पर्श करकै कहूँ हूँ! माँ! जब कबहू काहू के मुख सों

आपको नाम सुन पावैं हैं तो विह्वल है जायँ हैं, आँख गीली है जाय हैं। हम सों, एक-एक नदियावासी सों, हाथ पकड़-पकड़ कर, आपकी बात पूछैं हैं और बोलते-बोलते गद्‌गद् है जायँ हैं। और अब तो आपके दर्शन करवे कूं शीघ्र ही यहाँ आय पहुँचवे वारे हैं।

शची—(सहर्ष) कहा कही? मेरो निमाई नदिया आय रह्यौ है। कहाँ मैं साँची सुन रही हूँ।

श्रीदास—हाँ माँ! यह सम्वाद उननै ही आपके समीप भेज्यो है।

शची—(शंकापूर्वक) परन्तु वह तो संन्यासी है! वह यहाँ क्यों आवैंगो? वह तो हमकूं छोड़ गयो है! छोड़ गयो है।

श्रीदास—परन्तु जननी एवं जन्मभूमि के दर्शन संन्यासी हू करैं हैं। इनके लिए शास्त्र में निषेध नहीं है)

शची—(सानन्द) अहा! तब तो मैं अपने निमाई चाँद कूं फेर देख पाऊँगी! पाँच वर्ष बाद! ये आँख रोय-रोय कै सूख गईं है। शीतल होंगी! छाती जर चुकी है-कुछ ठंडी होयगी। कब आय रह्यौ है?

श्रीदास—माँ! वे याही विजया दशमी कूं चले होंगे। मार्ग में हमारो गाँव कुमारहाटी है। वहाँ अवश्य ही आवेंगे। सो सब समाचार आपकूं मिल जायगो।

शची—श्रीवास जी! यह आप सम्वाद नहीं, संजीवनी लाये हो-हम दुखिनी अबलान कूं जिवायवे! याके तांई मेरो रोम-रोम तुम लोगन कूं असीसै है कि यहाँ-वहाँ तुम्हारो सदैव मंगल होवै।। चलूँ! विष्णुप्रिया कूँ हू यह संजीवनी बूटी पिवाऊँ। वह बेचारी डार सों कटी-छँटी-सी दिन-दिन सूखती जाय है। वह सोने की प्रतिभा कारी पड़ती जाय है। चलूँ वाकूँ यह अमृत-सन्देश सुनाऊ।

श्रीवासादि-भक्त— (प्रणाम करते) (पटाक्षेप)

(स्थान नदिया! शची-भवन। गौर-शयनागार। शय्या पर गौर सुन्दर कर पीताम्बर। सन्मुख भूमि पर बैठीं विष्णुप्रिया। लालकिनारीदार धोती पहने।)

समाज— दो०

भक्त गये निज-निज भवय, सुख सम्वाद सुनाय।
मात गईं ढिग विष्णुप्रिया, हर्ष-शोक उमगाय।।

चौ०

जब सों भवन त्यागी प्रभु गमने।
विष्णुप्रिया-जग सुख भये सपनो।
तजि पर्यंक अंक-भू सोवति।
तरफि-तरफि निशि दिवसन खोवति।।
उदर न अन्न नदीं न रैना।
मुख नहिं बैन, सूख गईं नैना।।
तन मन क्षीन बरन मलीना।
गेह कोन छाया ज्युँ लीला झावै।।
लखि लखि शची प्रान अकुलावै।
भरि-भरि अंग बहुत समझावै।।

शची—(प्रवेश! विष्णुप्रिया को उठाती हुई) बेटी! विष्णुप्रिये! उठो बैठो! तुम क्यों अपनी देह कूँ ऐसे नष्ट कर रही हो। जो यदि तुमकूँ कछु है गयो तो मैं कौन को मुख देख कै जीऊँगो! मो अनाथा वृद्धा विधवा के संसार में एक तुम ही तो शेष रह गई हो—मेरे जीवन, प्राण, आधार, सर्वस्व एक तुम ही हो। तुम बुद्धिमती हो, भक्तिमती हो! अपने पति के अन्तिम आदेश कूँ सदा स्मरण रखो। तथा जब तक मैं जीती बैठी हूँ, तब तक नेक हँस-बोल लियौ करौ। देखो (साड़ी को दिखाती हुई) दामोदर पंडित के हाथ निमाई ने यह साड़ी भेजी है। यह मेरे पहनवे योग्य नहीं है। बेटी! मेरी अभिलाषा है कि तुम याकूँ पहनो मैं देखूँ! मेरी साध पूरी कर देओ बेटी।

विष्णु०—(नीचे सिर किये चुप खड़ी रहती हैं)

शची—(हृदय से लगाती हुई) यह कहा? तुम तो रोयवे लगी। स्थिर होओ। बोलो मेरी इच्छा पूरी करौगी न?

विष्णु०—(रोती हुई) अहो भाग्य मेरे जो दासी कूँ उननै स्मरण तो कियो:-

सवैया

साड़ी दई सों मैं शीश लई,
उन सुध तो लई, यह भाग्य महाई।
सुक्ख यही महा दुक्ख निशा मधि,
एक कना कृपा दासी हू पाई।।

(परन्तु) साध न साज्य सिंगार कछु,
साध यही पद रज मिलि जाई।
पुन्य बड़ो होम मात देओ काहु,
विप्र कन्या कूँ यह साड़ी धराई।।

शची—(मर्माहत होकर) हाय बेटी! घाव पै नोन मत बुरके। मो मरी पै नेक दया कर। जो बेटी तू यह नहीं पहनेगी तो मेरे निमाई को बड़ो अमंगल होयगो और मेरे हू चित्त पै चौट पहुँचेगी। यासों मान जा बेटी! पहन ले।

विष्णु०—(चुपचाप खड़ी रोती रहती हैं)

समाज— दो०

अमंगल प्राणनाथ सुनि, पुनि माता उर दुक्ख।
ठाडीं धर्म-संकट मधि, निसरत वचन न मुक्ख।।
इत आज्ञा उत सती धर्म, उचित न अंग सिंगार।
जा हित साज सिंगार तन, सो तजि गये भरतार।।

विष्णु०—(सम्हलती हुई) माँ वात्सल्यमयी! आप पुत्र-स्नेह के परवश होय जो आज्ञा कर रही हो वह मोकूँ शिरोधार्य है। जो आप या कंगालिनी कूँ राजरानी सजाय कै सुख लैनो चाहो तो देओ साड़ी, मैं पहनूँगी। लोक की कान ओर स्वाभिमान दोउन कूँ बहाय दऊँगी। अपनपौ नहीं राखूँगी। आप की आज्ञा-पालन ही मेरो परम धर्म है। लाओ, देओ!

शची०—(साड़ी देती हैं। विष्णुप्रिया मस्तक से लगा भीतर जा पहन कर आती हैं)

समाज— चौ०

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा।
परम धरम यह नाथ हमारा।।
माता-पिता गुरु प्रभु की बानी।
बिनहिं विचार करिअ शुभ जानी।।
उचित कि अनुचित किये विचारु।
धरम जाय सिंर पातक भारु।।

दो०

मातु पितु गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेऊ लाभ तिन्ह जन्म कर, नतरु जनम जग जाय।।

(रामचरितमानस)

दो०

तासों पट ल शीश धरि, धारण कीन्हे अंग।
आय गही शची मात पद, दीन असीस उमंग।।

शची—(हृदय लगाती हुई) चिरंजीवी होओ बेटी! सदैव जन्म-जन्म तुम ऐसेई साड़ी पहनौ, राजरानी वनौ। अब एक आनन्द-समाचार हू सुन लैओ! निमाई यहाँ नवद्वीप आय रह्यौ है। नीलाचल ते वह चल पर्यो है।

विष्णु०—(सचकित) यह कहा सुनूँ हूँ! कहा साँचेई वे आय रहे हैं।

शची—हाँ हाँ बेटी! पंडित श्रीवास यह समाचार लाये हैं। वे मिथ्या काहे कूँ बोलेंगे।

विष्णु०—(चुप! सोच मैं पड़ जाती हैं)

शची—क्यूँ बेटी! चुप कैसे पर गई? कहा सोच रही है?

विष्णु०—(दीर्घ निःश्वास त्याग) ठीक है! वे आय हू सकै हैं वृद्धा जननी कूँ दर्शन दैवे। परन्तु......वे यहाँ घर नहीं आयँगे!

शची—क्यों?

विष्णु०—मैं काल सर्पिणी जो बैठी हूँ यहाँ उनके घर में!! मेरेइ डसवे के डरसौं वे घर ते भागे, नदिया ते भागे, शान्तिपुर ते भागे तथा दूर जगन्नाथ जाय के बसे। हाय धिक् मोकूँ! मेरे नारी-जीवन कूँ!

सवैया

भूलन चहौं ना भूलि सकौं,
हा दिन-दिन दुख दूनोहि बढ़ाये।
आये शान्तिपुर नगरी जब,
नदिया वासिन बोलि पठाये।।
"आवैं सब नर नारी आवैं,
विष्णुप्रिया इक आन न पावै।"
अमृत दरसन पान किये सब,
घूँट हलाहल अभागिनी पाये।।

ओह! जो यदि मैं आपकी पुत्र-वधू न होतीं, तो कौन मोकूँ उनके सुख कमल, चरण-कमल के दर्शन सों रोक सकतो? वही तो मैं यहाँ उनके घर में बैठी भई हूँ! फिर भलो वे यहाँ कैसे आय जायँगे? नहीं, कदापि नहीं! जब तक यह मेरी पाप-देह जर-बरकर धूर में नहीं मिल जायगी, तब तक वे मोकूं

दर्शन नहीं देंगे, नहीं देंगे-दर्शन के लिए मोकूं घुल-घुल कै, तरफि-तरफि कै मरनौ ही परैगो।

पद-सोहनी

अब तो अधिक सह्यौ नहिं जाय।
अबला की को करै सहाय।।टेक।।
उर अन्तर ज्वालामालाकुल, धधकत जारत हाय।
बूड़ि गंगा महँ शीतल होऊं, आन न कोई उपाय।।

समाज—

भई उन्मादिनी बिरहिनि बाला, बोली कोप जनाय।

विष्णु०—

कहा दोष जो त्याग्यो मोकूं, निज पद-दासी बनाय।।
(तुमकूँ) दया प्रेम सुधा रस-सागर, कहत न लोग अघाय।
भली दया दिखराई, दासी—निरदोषी ठुकराय।।
दरस दियो नदियावासिन कूँ, मोकूँ ही अलगाय।
वाहर वारेन कूँ अपनाओ, घर के 'प्रेम' जराय।।
करी सो करी अबहु कछु हेरो, टेरन टेर्‌यो न जाय।
चरणकमल रज देओ शीश पै, प्राणपखेरु बचाय।।

शची—(शोकोन्मत्त होकर) बस कर बेटी! बस कर! तुम्हारे ये वचन नहीं घृणाहुति हैं। इनसों मेरी शोकाग्नि फिर सों धधक उठी है। वाके आयवे के सम्वाद सो जो अग्नि कछु शान्त भई ही वह फेर भभक उठी है। मैं समझ गई वह नहीं आवैगौ! वाके आयवे की आशा मिथ्या! संवाद मिथ्या! केवल प्रवंचना! हम दुखियान की सान्त्वना के तांई भक्त की एक युक्ति मात्र!

पद मालकोष

(ओह) मरूँगी मरूँगी मैं जर जर माय।
अपनी व्यथा सहूँ तो सहूँ पै तुम्हरी सही ना जाय।।
अति कोमल तुव उर अन्तर महँ, ज्वाला जरन सदाय।
सो कछु निकसि आज मुख बाहर, तन मन मेरे जराय।।

(परन्तु यामें)

दोष नहीं कछु तुम्हरो सरले! दोष मेरो ही हाय।
मैं ही तुभकूं व्याहलाई घर, पुत्र-वधू जु बनाय।।

निठुर वह पूत, निठुर यह जननी, पुत्र कूं दई बिदाय।
जरती जर-जर जर्जर छाती, प्रान न निकसत हाय।।

(अरे निमाई)

बड़ो मातृभक्त कहैं सब तोकूं, भली भक्ति दिखाय।
बारेक आय देख अँखियन सों, मरती 'प्रेम' तुव माय।।

अरे निमाई! बेटा! चाँद! लाल! (पतन)

विष्णु०—(सम्हालने को भुजाएं बढ़ाती हुईं) माँ! माँ!

(पटाक्षेप) (पतन)

समाज— **सो०**

गिरीं धरन शची माय, विरह वेग जर्जर सुतनु।
द्विगुन व्यथा उर पाय, विष्णुप्रियाहू संग परी।।

दो०

प्रेम विरह सागर दोऊ, जननी घरनी गौर।
छिन-छिन उमड़े ही रहैं, प्रबल स्मृति झकोर।।

चौ०

छिन बूड़त छिन उछरत जावैं।
लहर भँवर को अन्त न पावैं।।
दोउ दोउन की करैं सम्हारा।
दोउ दोउन के प्राण अधारा।।
दोउ दोउन के दुख लखि रोवैं।
दोउ दोउन को मुख लखि जीवैं।।
दोउ दोउन की जीवन-नैया।
गौर नाम दोउन को खिवैया।।
गौर नाम मुख गावैं ध्यावैं।
कलपि कलपि दिन कल्प बितावैं।।

दो०

गौर चन्द विन गौर भवन, निशि-दिन तम घन वास।
गौर-प्रेम के दीप द्वै, करैं क्षीण प्रकास।।

वैरागी—(प्रवेश गाते हुए)

गौर हे गौर हे गौर हे गौर हे।
गौर गौर गौर हे, गौर गौर गौर हे।।
गौरचन्द्र हृदयचनद्र जीवनचन्द्र गौर हे।
दीन शरन, दुक्खहरन, परम करुन गौर हे।।
गौर हे गौर हे गौर हे गौर हे।
गौर गौर गौर हे, गौर गौर गौर हे।।

(प्रस्थान! आरती! विश्राम)

महाप्रभु—(संकीर्तन भक्तमंडली सहित)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

(प्रस्थान)

(नेपथ्य-ध्वनि)—जाओ गफूर! गंगा पार जाकर तो देखो। आज रात भर वहाँ बड़ा शोर-गुल रहा है। दुश्मन की फौज तो इकठ्ठा नहीं हुई है? कहीं उड़ीसा का हिन्दु राजा तो गौड़ पर हमले की तैयारी नहीं कर रहा है। तुम खुफिया तौर से जाकर पता लगाओ और जल्दी खबर लेकर आओ।

गफूर—जी हजूर! जा रहा हूँ हिन्दू उड़िया बनकर (प्रवेश एक किसान के भेष में गाता हुआ) (प्रस्थान)

गजल काफी

देखो तेरी खुदाई मौला, देखी तेरी खुदाई।
छोटे ढोल मैं पोल भो थोड़ा बड़े में गाड़ी समाई।।
मौला देखी तेरी०।।१।।
ख्याल से खेल बना करके फिर खाक में देता मिलाई।
बच्चों की-सी तबिअत मौला, कहो कहाँ से पाई।।२।।
करामात बेशक तुझ में पर, होश में शक है साईं।
खुद पागल-सा होकर तूने, पागल दुनियाँ बनाई।।
बिन पैसे का नट वाजीगर, क्या दुकान फैलाई।
दुनियाँ भर की चक्की पीसे, जैसे बुढ़िया माई।।
पेट लगाकर पाप लगाया, (और उस पर)
आँखे लाल दिखाई।

दोजख की भट्ठी सुलगाकर, हाथ हम से जुड़वाई।।
बुरा बनाकर खौफ दिखाना, वाह रे मौज इलाही।
पाक मोहब्बत का आलम कर, तब तो तेरी खुदाई।।
मालूम होता फिक्र तेरे दिल, नाहक यह समाई।
बिना पेट के हज़रत बन कहीं, कर दें मेरी सफाई।।
दुनियाँ भर की गाली खाता, वाह रे मौला सांई।
खेल 'प्रेम' फिर भी न छोड़े, क्या कहना बेहयाई।।
मौला देखी तेरी०० ।।

पेट पेट पेट! दुनियाँ भर का सेठ! खुदा ने तो बनाया इन्सान और पेट न बना दिया हैवान! खुदा ने तो मुझे बनाया मुसलमान और पेट ने बना दिया एक हिन्दू उड़िया किसान! नीचे से दाढ़ी गई लो ऊपर से चोटी निकल आई! या अल्लाह! नहीं–नहीं सेठ पेट, साहब पेट! अल्लाह ने फरमाबा 'ओ आदम! तू मेरी बन्दगी कर!' पेट से का फौरन हुक्म हुआ, 'नहीं! पहली बन्दगी मेरी, बाद में और की!' खुदा की शरियत खुदा का कानून तो किताबों में ही बन्द रह गया। और पेट सेठ का कानून दुनियाँ भर में लागू हो गया। लाचार, सुबह की मेरी नमाज भी छूट गई! और हिन्दु बनकर पेठ की गुलामी करने निकलना पड़ा। वाहरे इस पेट का बनाने वाला! क्या खूब तरीका अपने पुजवाने का निकाला! इसके बिना तुझे कहता ही कौन खुदा ताला।

नेपथ्य-ध्वनि—हरि बोल, हरि बोल—संकीर्तन

गफ्फूर—(चौंककर) ओफ् वही आवाज! और बड़ी साफ-साफ। मालूम होता है मैं करीब ही पहुँच गया हूँ। पूरी होशियारी रखनी पड़ेगी। कहीं भंडा न फूट जाय और बेमौत मारा जाऊँ।

नेपथ्य—से-पुन: हरि बोल संकीर्तन भवनि)

गफ्फूर—(चलते-चलते रुककर) ओफ्! यह कैसी गूँज आई? कँपा दिया मुझको! कैसी लहर यह हवा में? यह कौन मेरे दिल को खींच रहा है? यह क्या जादू है?

नेपथ्य—(वही हरि बोल संकीर्तन)

गफ्फूर—(घबड़ाकर) ओफ्। यह आवाज तो इधर ही आ रही है। कहाँ जाऊँ? कैसे बचूँ क्या करूँ? अरे! ये मेरे पाँव क्यों नहीं चलते (खड़ा रह जाता)

महाप्रभु—(संकीर्तन मंडली सहित कीर्तन करते हुए)

संकीर्तन

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

गफ्फूर—(खड़ा-खड़ा सुनता है। थोड़ी देर बाद 'कृष्ण-कृष्ण' कहता हुआ धीरे-धीरे मस्ती से नाचने लगता है। फिर चारों ओर चक्कर लगाता-नाचता हुआ भाग जाता है)

महाप्रभु—(संकीर्तन मंडली सहित थोड़ी देर बाद चले जाते हैं)

(दृश्य! गंगा तट पर डेरा! हाकिम जफरशाह और दिवान मिर्जा साहब बैठे हैं)

मुसलमान सिपाही—(प्रवेश दौड़ता हुआ) सरकार! सरकार! गफूर तो पागल हो गया बिल्कुल!

मिर्जा—आ गया क्या?

सिपाही—आ तो गया हजूर! मगर होशो हबास खोकर! कभी गाता है नाचता है और कभी रोने लगता हैं। न जाने क्या वला उस पर सवार है।

गफ्फूर—(प्रवेश मस्त झूमता हुआ) हरि बोल! हरि हरि बोल (नाचता)

मिर्जा०—गफूर! अबे ओ गफूर! होश सम्हाल! जुबान बन्दकर जानते हो किनके रूबरू क्या बक रहे हो?

गफ्फूर—(जोरों से हँसते हुए) हा हा हा! हरि बोल! हरि हरि बोल!

जफर—(साश्चर्य) कहने दो मिर्जा साहय! यह नाम तो मैं कई मरतबे पहले भी सुन चुका हूँ मगर आज तो इस नाम में कुछ अजी़ब ही लुत्फ आ रहा है। कहो तो गफूर! फिर तो कहो।

गफ्फूर—हरि हरि बोल! हरि हरि बोल!

जफर—(बैठा-बैठा झूमता हुआ) कहते जाओ! कहते जाओ! रुको मत।

मिर्जा—लेकिन सरकार! वहाँ की कुछ खबर भी तो सुन लेनी चाहिए—आखिर माजरा क्या है? अरे ओ गफूर। तू जिस काम के वास्ते भेजा गया था वह कुछ कर भी आया या यह कला सीख आया और यह बला खरीद लाया।

गफ्फूर—(गाना) हा-हा हा!

सब काम कर आया, बड़ा काम कर आया।

मैं हरे कृष्ण हरे राम नाम लेकर आया।

मैं हरे कृष्ण हरे राम नाम लेकर आया।

मैं दिलकर का इन आँखों से दीदार करके आया।।

जफर—(सोत्कण्ठा) दिलवर? कंसा दिलवर! कौन दिलवर! किसको तुम देख आये?

गफूर—उसको उसको उसको जिसने आलम यह बनाया।

तुमको मुसलमान मुझे हिन्दू तो बनाया।।

मिर्जा—(गर्म होकर) चुपकर काफिर! क्या बकता है?

जफर—खामोश रहें मिर्जा साहब! मुझे सुन लेने दें। मेरे दिल में कोई मीठी-मीठी चुटकी ले रहा है। हाँ गफूर! कहो तो वह दिलवर कैसा है? उसकी सूरत-शक्ल कैसी है?

गफूर—(गाना) रंग उसका ऐसा जैसा सोना है तपाया।

चाँद ही उतर कर गोया जमीं पर है आया।।

जफर—(गाना)

आँखे तो हिरन सी क्या नशा उनमें छाया।

लाखों को मतवाला इक नजर से बनाया।।

हजारों-लाखों दुनियाँ बच्चे-जवान-बूढ़े-जईफ। मर्द-औरत अमीर-गरीब उसके दीदार से दिवाना बन रही-नाच रही गा रही है। उसने जब—

हाथों को उठा कर हरे कृष्ण कृष्ण गाया।

जीभ मेरी नाच उठी, मैं भी कृष्ण गाया।।

जफर—ओह! इतनी रुहानी ताकत! यह इलाही करामात? वह कौन है ऐसा? कहाँ से आया है? बताओ तो कुछ।

गफूर—पीर है पैगम्बर है या आदम है खुदा या।

हाय! उस दिलवर ने तो 'प्रेम' दिल चुराया।।

जफर—नाम? नाम क्या है उसका?

गफूर—नाम उसका श्रीकृष्ण चैतन्य सुन पाया हूँ। हिन्दुओं के फकीरों की तरह कफनी लपेटे हुए है। इससे ज्यादा मुझे कुछ पता नहीं। पता लगाता ही कौन? उसने मुझे दिवाना बना दिया! लूट लिया। हरि बोल! हरि बोल! (चला जाता है)

जफर—(उठते हुए) ठहरो गफूर ठहरो! में भी चलता हूँ। मुझे भी ले चलो (चलना है)

मिर्जा—(हाथ पकड़) कहाँ जाना चाहते हैं सरकार?

जफर—वहीं! उसके पास जिसने इस गफूर के मुख से मुझे पैगाम भेजा है, हुक्म सुनाया है।

मिर्जा—लेकिन वह तो उस पार दुश्मन के इलाके में है।

जफर—तो क्या हुआ? मैं वही जाऊँगा।

मिर्जा—दुश्मन आप को गिरफ्तार कर सकते हैं।

जफर—मैं उससे पहले ही गिरफ्तार हो चका हूँ। जाने दो मुझे! छोड़ो मेरे हाथ (छुड़ा लेना) गफूर गफूर! मैं भी आ रहा हूँ! ठहरो ठहरो! (चला जाता है)

मिर्जा—ठहरिये सरकार ठहरिये! जल्दबाजी न करिये। मेरे ऊपर आप की तमाम जिम्मेवारी है। आप को कुछ हो गया तो नवाब साहब मेरी गर्दन उड़वा देंगे। मैं उस पार के हिन्दु हाकिम से इजाजत मँगवा कर आपको फौरन पार पहुँचा दूँगा। ठहरिये। (चला जाना)

समाज— **चौ०**

गंगा पार भी बहु भारी।
घन-घन कीर्तन धुनी महारी।।
तीन दिवस बीते प्रभु आये।
दिन-दिन जन गन बढ़त सवाये।।
केहि विधि होवैं गंगा पारा।
चिन्ता भक्तन चित्त अपारा।।
चिन्ताहर हरि लीलाकारी।
मोहनी यवनराज सिर डारी।।
आपहि गंगा पार सो आयो।
धन्य भाग शरन प्रभु आयो।।

दोहा

इत गंगातट महाप्रभु, राजत भक्तन संग।
राज-अधिकारी हू तहाँ, आनन्द कीर्तन रंग।।

(दृश्य : महाप्रभु, हिन्दु अधिकारी गोपीनाथ आदि भक्तवृन्द)

(प्रवेश एक हिन्दु सिपाही)

सिपाही—(अधिकारी प्रति) सरकार! गंगा पार को मुसलमान हाकिम प्रभु के दर्शन की इच्छा सों आये भये हैं।

अधिकारी—(उठते हुए) चलो! मैं स्वयं उनकूँ लिवाय लाऊँ हूँ। प्रभु के दर्शनच्छुक जोहू कोई होवैं, धन्य हैं, आदरणीय हैं।

(बाहर जा जफरशाह का हाथ पकड़े हुए आना)

जफर—लाख शुक्रिया आप को जो आपने मुझे अपनी इजाजत बख्शी और मेरी मुराद पूरी कीं। मैं आप का हमेशा मशकूर रहूँगा (सिर झुकाना)

अधि०—मुझे शार्मिन्दा न करें शाह साहब! आप हमारे और हम आप के हो चुके हैं। आइये, तशरीफ लाइये।

जफर—कहाँ हैं वे आपके हजरत पैगम्बर साहब?

अधि०—(महाप्रभु को दिखाते हुए) वे बैठे हैं! करिये दर्शन।

जफर—(साष्टांग दण्डवत् करते हुए) हरे कृष्ण! हरे कृष्ण।

भक्तजन—हरि बोल।

जफर—हरि बोल।

महा०—(ध्वनि सुन नेत्र खोलते)

अधि०—प्रभो! ये गौड़ देश के नवाब के हाकिम जफरशाह है आपके दर्शन की पवित्र लालसा सों आये हैं। आप इन पर कृपा-दृष्टि करैं।

महा०—(जफरशाह की ओर कृपा-दृष्टि करते हैं)

भक्तजन—हरि बोल!

जफर—हरि बोल! ऐ मेरे मालिक! मैं बड़ा ही गुनाहगार हूँ। जाने कितने बेगुनाह शख्सों के खून से मैंने इन हाथों को नापाक किया है। उन्हीं खूनी हाथों को बाँधकर यह गुनहगार आपके रूबरू खड़ा है। ऐ मेरे करीम। ओ मेरे रहीम! रहम कर रहम! (साष्टांग प्रणति)

महा०—कृष्ण कहो! कृष्ण!

जफर—(प्रेमोन्मत्त) कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!

अधि०—कृतार्थ हो गये आप जर साहब। मुराद पूरी हुई आपकी! प्रभु की कृपा दृष्टि हो गई है। अब हमारा कार्य प्रभु का कार्य पूरा करिये।

जफर—(हाथ जोड़) बेशक! सर-आँखों से तामील करूँगा। हुक्म फरमाइये।

अधि०—प्रभु पाँच सात भक्त के साथ गौड़ देश जानो चाहैं है।

जफर—कितनी दूर तक जाना चाहते हैं?

गोपीनाथ—पानीहाटी तक! फिर वहाँ ते आगे मार्ग सुगम है।

जफर (बंगला)—

चैतन्यदेवेर आमि साहाय्य कोरिबो।
मनुष्य जन्म आज सफल होइलो।।

मैं प्रभु की मदद जी-जान से करूँगा। आज ही मेरा मनुष्य जन्म सफल हुआ। प्रभु के वास्ते मैं एक नई किश्ती सजवा देता हूँ। और दस किश्तियों में मय सिपाहियों के मैं भी चलूँगा। रास्ता खतरनाक है। डाकुओं का पूरा डर रहता है। अब मुझे इजाजत फरमायी जाय (कुर्निस करता है)

अधि०—तशरीफ ले जाइये शाह साहब और जल्दी-से-इनायत फरमाइये।

जफर—हरि बोल (चला जाता है)

गोपी०—एक तीर अनेक शिकार! यह है लीलामय प्रभु की लीला! कौतुकी का कौतुक। जन्मभूमि-दर्शन को तो एक छल है फल न जाने कहा कहा है कौन-कौन के भाग्य में है। सो तो समय ही बलावैगो।

भक्तजन— हरिबोल! (पटाक्षेप)

(प्रवेश नदियावासी जनता की भीड़। आगे-आगे वैरागी गाते हुए)

वैरागी- **गीत**

हम निरखेंगे गौर, हम निरखेंगे गौर,
हम निरखेंगे गौर गौर गौर।
(दुगुन) नदिया इन्दु करुणा सिन्धु,
पतित बन्धु गौर गौर गौर।।
हम न जा सके वहाँ, आये हैं आप ही यहाँ।
नदिया विहारी आये, जगन्नाथ आये आये।।
आये हैं करुणासिन्धु पतितबन्धु गौर गौर गौर।।
अँखियाँ सिरायँगे, विरहा मिटायँगे।
खुशियाँ मनायँगे, नाचेंगे गायेंगे।
बिछुड़े प्रीतम से मिलेंगे मिलायेंगे।
भेटेंगे 'प्रेम' हम गौर गौर गौर।।

चलो नदियावासियो! चलो। गंगा पार कुलिया ग्राम में हमारे गौर सुन्दर, निमाई चाँद, नदिया बिहारी आये हैं जगन्नाथ सों आये हैं। मार्ग में मुसलमान

अधिकारी को भक्त बनाते भये आये हैं। पानी हाटी, कुमारहाट, शान्तिपुर आदि ग्रामन में होते भये आज भोर अँधेरे में नवद्वीप में विद्यानगर में आय पहुँचे हे। परन्तु भीड़ के भय सों यहाँ चुप कै ही भाग निकसे और गंगा पार कुलिया में जाय पहुँचे हैं। अपने घर आय कै हू भाग गये। पुराने भगौड़ा जो हैं। पुरानी टेव नहीं छूटी है। यासों चलो गंगा पार! घेर लेओ माधवदास बाबा की कुटिया! वहीं जाय कै छिपै भये हैं। चलो सब! घेर लेओ कुटिया! कहूँ फिर भाग न जायँ—

(गाना)

"हम निरखैगे गौर इत्यादि (गाते हुए प्रस्थान)

(प्रवेश दुखित विरोधी पंडित कालीचरन, तारा-पद, प्रफुल्ल चाटुञ्जे)

तारापद—ओ कालीबाबु! प्रफुल्लबाबु! कहैं हैं जगन्नाथ धाम सों निमाई नदिया आय रह्यौ है।

काली०—निमाई नहीं तारापदबाबु! संन्यासी कृष्ण चैतन्य! नदिया बिहारी नहीं नदिया त्यागी।

कवित्त

गंग को न्हवैया लूट पूजा को खवैया नित,
ऊधम मचैया वह, निमाई नहीं आयो है।
तर्क को करैया तर्क-दिग्गज हरैया नव-
द्वीप को रमैया वह निमाई नहीं आयो है।।
हार को धरैया बाँध नूपुर नचैया रास-
कीर्तन रचैया वह निमाई नहीं आयो है।
शीश को मुडैया कटि कौपीन डोर बँधैया,
श्रीकृष्ण चैतन्य 'प्रेम' संन्यासी इक आयो है।।

प्रफुल्ल०—और यह सब हमारी-तुम्हारी करतूतन को ही तो फल है। हम ही वा नदिया चाँद के लिए राहू बने।

सवैया

लखि नदिया नागर नैन जरै,
विद्या लखि छाती जरी पजरी।
लखि भाव को ताव चाढ्यौ हमरे,
लखि मान बड़ाई को नीद मरी।।

हम गारी दई बदनामी दई,
चुगलाई झुठाई हू कम न करी।
वह सहतो गयो कहतो ही गयो,
मुख मन सों प्रेम हरि ही हरी।।

तारा-पद—साँची कहो है :—

हम छेड़त गये उकसात गये,
वह नाचत रोवत गाय गयो।
उन मारन कूँ हम चक्र रच्यौ,
हम तारन कूँ उन योग लियो।।
घर बार सबै सुख स्वाहा करि,
उन शीश मुडाय कै दंड लियो।
हम पापी दुष्टन पाप किये अरु,
प्रायश्चित 'प्रेम' प्रभु ने कियो।।

यासों अब हम कौन से मुँह-सों वा जगद्गुरु के दर्शन करें। हमारे भाग्य में शान्ति नहीं, ज्वाला चिरज्वाला ही लिखी है।

काली०—भैयाओ! बात तो ऐसी ही है। सूर्य के ऊपर धूर उछारवे गये तो अपनी ही आँखिन कूँ दुखाय लीनी। अपनी करनी को फल तो भोगनो ही परैगो। वह तो संन्यासी बन ही चुक्यौ। अब न तो हम वाकूँ गृहस्थी बनाय सकैं हैं और न अपने ही घर बार में आग लगाय कै वाके संग जाय सकैं हैं। अब करैं तो करैं कहा करैं। हाँ एक उपाय तो है—निमाई के चरण पकरैं और अपनो अपराध क्षमा करावैं।

तारा०—परन्तु कहा वह हमकूँ समीप आगमन दैगो? हमारो मुख देखैगो?

वैरागी—(प्रवेश करते हुए) क्यों नहीं? दुखिया दीन सरल के लिए ही तो हमारे गौर हरि को दरबार है। जो यदि तुम दीन हो दुखी हो तो कहो यहीं सों, कहो कपट छल-छिद्र छोड़ कै, कहो प्राणन की आतुरता लैकै, गौर हे! मो पै दया करो! पतित पावन! मेरो हू उद्धार करो। बोलो भुज उठाय के गौर! रक्षा करो! गौर हे गौर!

(कहते-कहते प्रस्थान)

सब—गौर हे गौर हे (पीछे-पीछे चले जाते हैं)

समाज—

रस प्रेम की मूरति गौर हरि,
तिनकूँ जो जन प्रनाम करै।
जय गौर नमो जय गौर नमो,
जय गौर नमो कहि भूमि परै।।
सन्मुख ही परै घर माहिं करै,
चाहे दूर विदेश सों नमन करै।
ऊषर सों ऊषर होत हरे,
जो गौर कहि परनाम करैं।।

(प्रवेश काँचना और अमिता सखियाँ)

अमिता—सखी काँचने! हमारे नदिया नागर निमाई चाँद नदिया पधारे हैं।

काँचना—नदिया नागर नहीं अमिते! नदिया त्यागी संन्यासी, कपट संन्यासी श्रीकृष्ण चैतन्य।

अमिता—नहीं नहीं संन्यास-आश्रम-पावनकारी, न्यस्त-दण्ड-दण्डधारी, सर्वभूतहितेरत.......।

काँचना—(बात काट कर) बस अमिते बस! क्षमा कर!! उनके गुणगान की पिटारी बन्द करकै यह तो बताओ कि तुम विष्णुप्रिया की प्यारी सखी हो या कृष्ण चैतन्य की भक्त?

अमिता—(चुप)

काँचना—जानू हूँ, तुम बड़ी गम्भीर स्वभाववारी हो परन्तु मैं कहूँ हूँ कि वा कपट संन्यासी की ये सब ऐश्वर्यमयी गुण-गाथा कूँ तो जगत-भगत के लिए ही रहन देओ। अन्त-महल में रहवेवारी हमकूँ उनके ऐश्वर्य रूप गुणन सों कहा प्रयोजन? हमारे नेत्रन् में तो वे नित्य ही विष्णुप्रिया के प्राण धन सर्वस्व नदिया नागर हैं और सदा रहेंगे। अतएव उनको यह संन्यास रूप हमसों देख्यौ नहीं जाय है—छाती फाटै है। पीताम्बर नहीं कटिवस्त्र! लहलहाते केश-कुन्तल नहीं रुण्ड-मुण्ड! मधुर मोहन हास्य नहीं, उदास विरस वदन! हाय हाय! विष्णुप्रिया कैसे देख सकैगी?

अमिता—क्यों नहीं सखी! उनकूँ अपने प्राणपति के दर्शन करने हैं कै उनके रूप और भेष को।

सवैया

न रूप पति है न भेष पति,
सम्बन्ध है जिनसों वे ही पति।
वे तबहू वे अब हू पति,
आगे हू रहि हैं वे ही पति।।
घर भीतर रहै कै रहैं बाहर,
काहु देश बसें जाय वे ही पति।
यह तो टूटै बन्धन देह की को,
भाव-प्रेम न टूटै वे ही पति।

यासों चलो भीतर चलो उनकूँ यह शुभ संवाद सुनावै

(दृश्य : विष्णु प्रिया पूर्व-कथित शयन-कक्ष में शय्या पर सिर रक्खे भूमि पर उदास शोक-मग्न)

काँचना—सखी विष्णु प्रिये? विष्णु० (चुप)

काँचना—(समीप जा कँधे पर हाथ रख) सखी!

विष्णु०—(चौंक कर देख) तुम हो काँचना, अमिता! बैठो बहनाओ! अच्छे आईं! मैं एक चिन्ता में परी ही आज प्रातःकाल बैठे बैठे ही मोकूँ एक स्वप्न आयो। तुमकूँ सुनायवे के तांई ही मैं अधीर बैठी ही।

काँचना—अच्छो तो पहले तुम ही अपनो स्वप्न सुनायो फिर हमहू तुमकूँ एक महामधुर स्वप्न सुनावेंगी।

विष्णु— पद—१ ताला भैरवी

नहीं बात कछु कहन की, घटन निपट अघटन की।।टेक।।
आये हैं आये सोई, कहत कान लागि कोई।
नेह-डोर बँधे, लैन, सुधि अपने जनन की।।१।।
सुनि हौं बानी देखति नैन, मूरति यति भेष मैन।
ठाड़े द्वार बाहर सखी, भीर बहु जनन की।।२।।
तब ही तुम सकल आली, हाथ गही द्वार चाली।
कही न जाय आगे कछु, दशा 'प्रेम' तन की।।३।।

काँचना—सखी! यह तुम्हारे स्वप्न-दर्शन नहीं, सत्य-है। तुम्हारे प्राणनाथ आज ही वा पार कुलिया गाम में आय पहुँचे हैं। उनके दर्शन कूँ सारी नदिया उलटी जाय रही है। नर-नारी, युवा-वृद्ध। कोई नौंका में तो कोई तैर करके गंगा पार कर रहे हैं।

विष्णु०—(चंचल-विह्वल हो) परन्तु मैं-मैं.......मेरे प्राणनाथ.......मैं मैं हूँ जाऊँगी! दर्शन करूँगी!

काँचना—तुम क्यूँ जाओगी? तुम यही बैठी रहो। वे ही स्वयं आयकै तुमकूँ दर्शन दैंगे! तुम्हारे प्रेम के आगे वे चिरकाल के रिनियाँ हैं, बँधे भये हैं और रहैंगे। तुमकूँ शीघ्र ही याको प्रमाण मिल जायगो अपनी प्रीति को बल, अबला को बल, तुम प्रत्यक्ष देख पाओगी।

विष्णु०—(साकुल) कैसी मेरी प्रीति? कैसो मेरो बल? और कौन मेरो रिनियाँ! मेरी समझ में तो कछु नहीं आवै है जो मैं घर में ही बैठी रहूँ और वे कहूँ बाहर के बाहर ही चले गये तो फिर वहाँ पाऊँगी उनको? अभिमान? मेरे लिये अभिमान कैसो? कौन बात को? वे मेरे प्राणनाथ हैं, मैं उनकी चरण-दासी हूँ। वे जगन्नाथ हैं मैं एक दीन कंगालिनी भिखारिनी हूँ। उनके दर्शन अभिमान करके नहीं, अभिमान बहाय करके ही होयँ हैं। ओह! नदियावासी नर-नारी सब जाय रहे हैं। एक अभागिनी मैं ही नहीं जाय सकूँ हूं। काँचने! अमिते! मेरी प्यारी सखियो! मोकूँ लै चलौ। दर्शन कराय देओ! मेरे प्राण के एक बार दर्शन कराय देओ! मैं तुम्हारी शरण हूँ! कृपा करो! कोई उपाय करो। (गले लिपट रोती)

अमिते—धीरज धरो सखी! हम माताजी सों प्रार्थना करैं हैं। उनके संग हम तुमकूँ गंगा-तट पै लै चलैंगी। वहीं दूरसों संन्यासी पति के दर्शन है जायँगे। नेक धीरजधारी। हम माँ के समीप जायँ हैं।

(सखियों का प्रस्थान। पटाक्षेप)

(दृश्य! गंगातट! माधवदास बाबा की कुटिया)

समाजी— **दो०**

माधोदास साधु कुटिर, भई भीर अपार।
आकुल गौर दरस हित, नदिया के नर-नार।।

संकीर्तन धुन—राधे गोविन्द भजो राधे गोविन्द।।

माधोदास—(छत पर खड़े—भीड़ को देखते हुये) राधे! राधे! कितनो अपार भीड़ है। यह दुनियाँ है कै कोई दरिया उमड़ परी है। आज मेरी कुटिया बचैगी नहीं! संन्यासी प्रभु तो सबेरे अँधेरे में ही चुपचाप यहाँ आये परन्तु दुनियाँ में खबर कैसे फैल गई? सों चारों ओर सों उमड़ी आय रही है। कुलिया और नदिया एक है गई। इतनी भीड़! अरे! काशी नहीं, कुरुक्षेत्र नहीं प्रयाग नहीं, पुष्कर नहीं, यह तो गरीब माधोदास की कुटिया है। और न कोई

मेला-ठेला, चढ़ाव-पड़ाव, कुम्भी अधकुम्भी, न माघी न ग्रहणी। तौहू इतनी भीड़? इतनी जनता? यह कैसो आकर्षण, कैसो चमत्कार! राधे गोविन्द! राधे.......

(प्रवेश जनसमुदाय)

जनता—१. ओ बाबा जी मोशाय! गौरेर दर्शन कोरान?

२. गौर सुन्दर के बाहिर कोराओ! दर्शन कोराओ!

३. गौर! दर्शन दाओ! दया कोरो प्रभो!

४. ऐसे नहीं! फाटक तोड़ डालो दिवाल कूद जाओ!

माधो—(हाथ जोड़) भैयाओ! शान्त होओ! मेरी विनती सुन लेओ। संन्यासी प्रभु की आज्ञा नहीं! क्षमा करो। मेरी कुटिया पै दया करौ।

जनता—(गर्म हो) आज्ञा नहीं? झूठी बात! खोलो किबाड़।

माधो—झूठी नहीं साँचो बात! प्रभु की आज्ञा नहीं।

जनता—१. हम नहीं मानेंगे ऐसी आज्ञा! हम दर्शन करवे आये है और करकै जायँगे। उनकूँ दैनो ही परैगो।

२. हम धरनो दैकै बैठे जायँगें। अन्नजल मुँह में नहीं दैंगे। परन्तु दर्शन करकें ही जायँगे।

३. अरे बातान कूँ छोड़ हाथन सों काम लैओ। तोड़ दैओ किबाड़ और घुस जाओ! देखैं कौन रोकै है?

४. हाँ हाँ! घुस जाओ और कंधा पै बैठार कै लै जाओ और सब कूँ दर्शन कराओ! हम दर्शन करकै ही हटैंगे—वे हमारे और हम उनके। यह माधोदास बीच में कौन होय है? तोड़ो याके किबाड़-फिबाड़!

माधो०—(ऊपर से) प्रभो! प्रभो! रक्षा करो! मेरी मढ़ी कूँ बचाओ! इनकूँ दर्शन देओ! आप तो स्वतंत्र हैं परन्तु मेरी कुटिया तो परतंत्र हैं—यह अब जायगी। बचाओ तो बचाओ! आपकी आज्ञा-फाज्ञा कोई नहीं मानै है। यहाँ आयजाओ छतपै और दर्शन देओ! मेरी बिनती मान जाओ। तब ही ये शान्त होंगे।

समाज— **दो०**

तब चढ़ि आये छत प्रभु, दर्शन दीन्हे गौर।
चहुँ ओर जय जय धुनि, उठी प्रेम घन-घोर।।

जनता—

श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो।
श्रीशची नन्दन निमाइ चाँद की जय हो।।
नदिया बिहारी गौरचन्द्र की जय हो।
विष्णुप्रिया प्राणधन की जय हो।।
पाहिमाम्! रक्षमाम् (जनता की साष्टाँग प्रणति)

महाप्रभु—(भुजाएँ उठा) हरि बोल!

जनता—हरि बोल।

समाज—

दोहा

गंगापार जन भीर महँ, विष्णुप्रिया शची मात।
लखि पाये निज प्रान धन, मिलन हेत अकुलात।।

काँचना—देखो माँ देखो! गंगा पार वा मकान के छत पै आप के ही निमाई ठाड़े हैं संन्यासी भेष में।

शची—(भुजाएँ फैलाती हुई) अरे निमाई! चाँद! बेटा इतनी दूर क्यों? नजदीक आय कै दर्शन दै। पाँच वर्ष की भूखी-प्यासी आँखिन के लिए एक बूँद तो डार जा! निमाई! गौर।

महा०—मेरे प्यारे कृष्ण के प्यारे भक्तों। या कलिकाल में केवल एक हरिनाम ही समस्त साधनन को सार है, जीव को परमाधार है—

श्लोक

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

पद

कलिकाल में हरिनाम रूप में कृष्ण को अवतार है।
नाम ही से विश्वभर का सहज ही उद्धार है।।१।।
नाम हरि का नाम हरि का नाम हरि का ही सार है।
ज्ञान योग तप क्रिया जप, कलि में सब निस्सार है।।
नाम बिना कलि में नहीं नहीं नहीं कोई आधार है।
(यह) सत्य सत्य मैं सत्य कहता, पुकार बारम्बार है।।

प्रिय बन्धुओ! या श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन सों तुमकूँ सात महाफल सहज अनायास ही प्राप्त है जाय है :—

श्लोक

चेतो दर्पणमार्जनं भवदावाग्निनिर्वापणं।
श्रेयः कैरवचन्द्रिका बितरणं विद्या वधू जीवनम्।।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्।
सर्वात्मस्नपनं, परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्।।

भक्तजनो! यह श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन चित्तरूपी दर्पण कूँ स्वच्छ करै है, संसाररूपी दावानल कूँ बुझावै है, प्रेम-भक्तिरूपिणी कमलिनी कूँ खिंलायवे वारी चाँदनी है, विद्या-वधू को सुहाग है, आनन्द सागर कूँ बढ़ायवे वारो है, पद-पद में परमपीयूष को पान करावै है तथा सर्व प्रकार सों आत्मा को परम शान्ति प्रदान करै है। अतएव सब मिल करके नित्य संकीर्तन कर्यौ करौ। यही भीख तुम मो भिखारी कूँ देओ। बोलो

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

(कीर्तन करवा नीचे उतर जाते हैं)

जनता—श्रीकृष्ण चैतन्य की जय। श्रीगौरचन्द की जय।

शची—(नदी पार खड़ी) हाय काँचना! अब तो मेरो निमाई बाबा दिखायी नहीं देय है। निमाई! लाल! कहाँ छिप गयो तू! दूज के चन्दा की नांई एक झलक दिखाय कै छिप गयो। हाय रे वत्स।

(नेपथ्य में श्रीकृष्ण की जय जयकार)

अमिता—बहु सुनो माँ। तुम्हारे लाल की जय-जयकार है रही है।

शची—और यहाँ हा-हाकार है रही है। याकूँ कौन सुनै है। हाय जहाँ नित्य शरद-पूनौ हो वहाँ नित्यकारी अमावस है—अरे मेरे चाँद। इन हमारे आँखिचकोरनि कूँ एक बार दर्शन तो दै जा।

अमिता—माँ। कहा भयो हमारी तुम्हारी चार आँखिन कूँ उनके दर्शन न भये, लाख-लाख लोचन तो आज शीतल है रहे हैं। हमारे तुम्हारे चार कानन ने उनके वचन न सुनै तो न सुनै, कोटि-कोटि कर्ण तो उनके मुखारविन्द सों हरिनामामृत कूँ पान कर रहै हैं, पान करके गाय रहै हैं और गाय-गाय कै तर रहै हैं। आज संसार मत्त है, मुग्ध है, कौन पै? तुम्हारे ही लाल पै तो। कृतज्ञ है, ऋनियाँ है, कौन को? तुम्हारे ही मूलधन को तो। माँ। साँची पूछो तो यह गौरव उनको नहीं, तुम्हारे कूख को है, तुम्हारे दूध को है :—

पद

तिहारे कुल के दीपक सै यह सब जग में दिवाली है।
तिहारे लाल के सन्मुख यह दुनियाँ सब भिखारी है।।
तिहारे दान ते ही तो पाया जग ने दातारी है।
तिहारे आँसुओं से ही यह गंगा प्रेमऽवतारी है।।

कांचना—

तिहारे लाल को पाकर यह दुनिया ही नहीं नाचे।
पितर नाचें मनावें मोद, सुमन बरसाय सुर नाचें।।
हरि हरि गावें ब्रह्मा चतुर्मुख,
डमरू बजाय शंकर नाचें।
शेष सहस मुख हरि हरि गावैं,
चौदह भुवन हरि प्रेम में नाचें।।

अतएव समझलेओ माँ। यह तुम्हारो लाल कौन है, तुम कौन हो और कैसो तुम्हारो अनुपम सौभाग्य है!!

शची—और कैसो मेरो अनुपम दु:ख है, याकूँ कौन समझेगो? कोई नहीं। कोई नहीं। संसार में समझायवे बारे ही बहुत हैं, समझवे बारे विरले ही हैं, पुरानो दु:ख हो सो तो हो ही, आज तो एक नयो दुख, नयी ज्वाला जराय रही है।

काँचना—कहा नयो दु:ख माँ?

शची—यही, कि नदिया आय कै हू वाने मेरी सुध न लीनी। आज वाकूँ आये पाँच दिना है गये। न तो वह स्वयं आय कै मिल्यौ, न मोकूँ ही बुलवाय भेज्यौ। उलटो गंगा पार जायवे की हू मनाई कर भेजी है। तब तो उतनी दूर शान्तिपुर ते डोली भेज कै बुलवाय भेज्यौ और अब घर के सामने, आँखिन के सामने आय कै हू आँख नहीं मिलावै है। अरे निमाई! मैं तेरी माँ है करकै हू आज तांई यह न समझ पायी कि तेरो हृदय कोमल है कै कठोर बज्र है।

अमिता—माँ! एक तो संन्यासी-धर्म ही बड़ो कठोर है। दूसरे वे वाकूँ अत्यन्त कठोरता सों पालन करैं हैं। याहि कारण वे बाहर-सों इतने कठोर प्रतीत होय हैं परन्तु वास्तव में उनके समान कोमल स्नेही हृदय संसार में दुर्लभ है।

शची—परन्तु हठीलो हू उतनो ही है। कहीं अपने हठ में आय कै बाहर को बाहर ही न चल्यौ जाय (मुख फेरकर स्वगत) हाय! मोकूँ अपने दु:ख सों या वेचारी को अधिक दु:ख है। मैं तो सहत्तर (७०) वर्ष पार कर चुकी हूँ

परन्तु बीस वर्ष की विरहिनी की तो सारी आयु परी है। अहा! एक बार हू यदि देख पाती अपने पति कूँ।

विष्णु०—माँ! कहा सोच में पर गयी?

शची—(चुप)

विष्णु०—हाँ! मैं समझा गयी! मेरे ही कारण वे आपसों मिलवे नहीं आय रहे हैं।

शची—नहीं बेटी! नहीं! कोई और ही कारण है।

विष्णु०—माँ! एक विनती करूँ हूँ। मोकूं पीहर भेज देओ कदाचित् तब वे यहाँ आप सों मिलवे आय जायँ।

अची०—(हृदय से लगा) नहीं! मैं तुमकूँ अपनी छाती पै सों दूर नहीं करूँगी! वाकूँ मोसों मिलनो ही होयगो तो घर न आय कै वहाँ हू मोकूँ बुलाय सकै है।

विष्णु०—माँ! मैं तुम्हारे हाथ जोरूँ, पाँव छीऊँ हूँ। द्वै दिना के लिए ही भेज देओ पीहर। वे आयँगे तो तुमकूँ सुख होयगो, उनकूँ सुख होयगो, तो मोकूँ हू सुख होयगो। नहीं तो मोकूँ बड़ो दुख होयगो। माँ माँ। मेरी प्रार्थना स्वीकार करौ (पाँव पकड़ना)

काँचना—(मुख फेर स्वगत) धन्य हिन्दु पतिव्रता सती। धन्य तेरे हृदय के पावन एवं निःस्वार्थ त्याग कूं।

शची—(उठा हृदय से लगा) नहीं बेटी। यह मोते नहीं होयगो वह आवै चाहे न आवै परन्तु तोकूँ मैं अपनी आँखिन ते दूर नहीं करूँगी। गर्भ की आशा मैं गोदी कूं सूनी नहीं कर सकूं हूँ। एक आँख फूटी तो फूटी दूसरी नहीं फोर सकूं हूँ। वह आवै न आवै, मेरे लिए तो अब एक तुम में दोनों हैं। मैं तुमकूं नहीं नहीं भेजूंगी।

काँचना—माँ। अब तो दुपहरी चढ़ि आयी। वेहू नहीं दिखाय देय हैं। अब यहाँ गंगा किनारे ठाड़ी रहवे सों कहा लाभ? चलो, घर लौट चलौ। सेवा पूजा हू तो करनी है। सबेरे की आयी हैं। अब संध्या कूं फिर आयंगी।

शची—अच्छा चलो (प्रस्थान। मुड़-मुड़कर देखते जाना)

समाज— **दो०**

नदिया भक्तन संग मिलि, बैठे प्रभु हरषाय।
निकसि भीर ते एक जन, पर्यौ चरनन धाय।।

देवानन्द—त्राहिमाम् प्रभो! पाहिमाम्। शरणागतोऽस्मि।

महा०—कौन? देवानन्द पंडित हैं कहा?

देवा०—पंडित नहीं मूर्ख। अपराधी। भक्त-विरोधी, भक्ति-विरोधी, महापराधी देवानन्द।

महा०—आप ऐसे काहे कूँ बोलो हो? आप तो श्रीमद्भागवत के बड़े भारी पंडित कथा वाचक हैं।

देवा०—भागवत् को पंडित नहीं, भाग-त्याग को पंडित। मैंने भागवत् में सो भक्ति भाग कूं त्याग करकै ज्ञान भाग कूं ही पकड़नो सीख्यो है। मैं भागवत की कथा तो बाँच्यो करतो परन्तु भक्त एवं भक्ति की महिमा पढ़ करकै जर्‍यौ करतो। यासों मैंने आप के प्रिय भक्त पंडित श्रीवास जी कूं अपनी कथा में रोमतो देखकै कथा में विघ्न डारवे वारो समझ करकैं वहाँ ते बाहर करवाय दियौ हो। एक दिन नदिया में स्वयं आपने हू मेरी भक्ति-विरोधी व्याख्या सुन कै मोकूँ डाट्यौ हो। तथापि मैंने अपनी कुचाल नहीं छोड़ी परन्तु अब....... (चुप)

महा०—परन्तु अब कहा? छोड़ दई वह कुचाल कहा?

देवा०—छोड़ी नहीं, छूट गई। जो आपने हू नहीं छुड़वाई, वह आपके भक्त की कृपा सों छूट गई।

महा०—ऐसो कौन-सो वह भक्त हो जाकी ऐसी कृपा भई?

देवा०—आप को प्रिय भक्त पं० वक्रेश्वर। वे एक रात्रि हमारे घर ठहरे। कीर्तन कियो, नृत्य कियो तथा मेरे चित्त-कलुष कूँ धोय दियो। मेरी आँख खुल गई, भूल मालूम भई कि मैंने भक्ति-भक्त सों विरोध करके कितनो घोर भागवतापराध कियो है। तब ते मैं पश्चात्ताप के दावानल सों जर रह्यौ हूँ। आपके बिना मेरी या ज्वाला कूँ, कोई शान्त नहीं कर सकै है। यासों प्रभो! क्षमा करौ। हृदय शीतल कर देओ। पाहिमाम्! प्रसीद! प्रसीद (साष्टांग प्रणति)

महा०—उठो पंडित जी! उठो! शान्त होओ! आपके सब अपराध क्षय भये।

देवा०—(उठ हाथ जोड़) कृपा सिन्धो! या आशीर्वाद सों मोकूँ सम्पूर्ण संतोष नहीं भयो।

महा०—(स्मित पूर्वक) यह कैसी उलटी बात! अब या ते अधिक और कहा चाहिए?

देवा०—हे मेरे पारसमणि प्रभो! आप के दर्शन मात्र सों ही मेरे हृदय के समस्त पाप-ताप-दोष-दु:ख सब विलीन है गये। अब मोकूँ अपनी चिन्ता नेक हू नहीं है। अब तो........(चुप)

महा०—बोलो! चुप कैसे है गये? आहा! ज्ञान के बाद तुम्हारी भक्ति भावना बड़ी ही प्यारी लगै है। यासों बोलो। संकोच मत करो।

देवा०—तो सुनो उदार शिरोमणि।

सवैया

असीस दई सो तो शीश लई,
बखशीश कछु अब पाऊँ हरे।
(आप तो) अपराध हरो, हरते आये,
हरि हौ, यही काम व नाम हरे।।
पै विरद बढै जो आय यहाँ,
जन कोई पुकारे 'गौर हरे'।
(और) कहै 'भई सो भई अब माफ करो',
करियो तिनके सब माफ हरे।।

महा०—(मुस्कराते हुए) तथास्तु। धन्य है देवानन्द जी! आपकी परहित भावनाकूँ। अब आप साँचे भक्त बने। साँचो भक्त अपनी चिन्ता कबहू नहीं करै है। वह तो सदा श्रीकृष्ण की चिन्ता करै है कै परोपकार की भावना करै है, अब तो आपकूँ पूर्ण संतोष भयो न?

देवा०—हाँ दया सिन्धो। दीन बन्धो। है गयो।

(घोषण—एक उच्चस्थान पर खड़े होकर)

सुनो सुनो हे पृथ्वी के निवासियो।

सवैया

सुनहु सुनहु हे भूतलबासी,
कुलिया छोटो ग्राम हमारो।
(परन्तु अब) गौर कृपा सों करिहै आज सों,
तीरथ में यह नाम हमारो।।
गंगा-तट पै गंगा-सी
'अपरांध-भंजन' धाम हमारो।
गंजन करै अघपुंजन को,
साक्षी है 'प्रेम' हरि गौर हमारो।।

आज सों यह हमारो गाम कुलिया "अपराध भंजन" तीर्थ नाम सों विख्यात होयगो। जो कोई यहाँ आय—

सवैया

पापी तापी नीच अपराधी,
हाथ उठाय कहे गौर हरे।
जीवन भर कुकर्म किये बहु,
अब ना करि हौं गौर हरे।।
पाऊँ क्षमा सब पापन को,
न भौगूँ यम दंड गौर हरे।
वह पाप रहित निर्मल होवैगो,
'प्रेम' हैं साक्षी गौर हरे।।

वह निष्पाप निर्मल बन जायगो। याके साक्षी हैं गौर-हरि। उनको यह अमोघ वरदान है कुलिया गाम के लिए। बोलो 'अपराध भंजन' तीर्थ की जय हो।

हरि बोल (संकीर्तन)

समाज— **दो०**

एक दिवस प्रभु जन सहित, चलै जु गंगा पार।
उतरे सोई घाट पै जहँ विहरे बहु वार।।

(अनुकरणात्मक चौपाइयाँ)

(गंगा-घाट। नौका पर से महाप्रभु भक्तमंडली सहित उतरते हैं। महाप्रभु चरण-पादुका धारण किये हुए धीरे-धीरे गमन करते हैं)

समाज—

नदिया जन्मभूमि प्रभु आये।
सुरसरि उतरि पयादे धाये।।
भीर तीर अति वरनी न जाई।
हेरन हित संन्यासी निमाई।।
चरन पादुका प्रभु जु धारे।
अरुन बसन तन अरुण प्रभारे।।
भेष उदासी हियो तपावै।
रूप माधुरी ताप सिरावै।।

चले जात प्रभु धीरे धीरे।
निरखत बाट घाट तरु तीरे।।
इन घाटन बहु धूम मचाई।
इन घाटन नाचे हरि गाई।।
इन घाटन कियो विद्या विलासा।
दिग्विजयी पंडित मद नासा।।
इहीं जगाई मधाई लाये।
पापदान लैं शुद्ध बनाये।।
इहीं लक्ष्मीप्रिया पूजी जु पाई।
इन्हीं बिष्णुप्रिया हू लखि पाई।।
इहीं घाट घर तजि के आये।
कूदी पार संन्या हित धाये।।

दो०

वर्ष बीस अरु चार जहाँ, क्रीड़ा कीनी अपार।
तहाँ आज नूतन रचत, लीला प्रभु करतार।।

(गंगा तट-त्याग नगर-प्रवेश)

गंगा तट तजि पुर पथ लागे।
दरस हेत जन जन अनुरागे।।
अटा अटारिन चढ़ीं कुल बाला।
पुष्प लाज बरसावती माला।।
हुलसि हुलसि हूलु धुनि करहीं।
निरखि निरखि मुख अँसुवन धोवहीं।।
मन्द मन्द प्रभु गति अति धीरा।
को जाने उर भाव गम्भीरा।।

(प्रस्थान)

(दृश्य : शची-भवन।। शची, विष्णुप्रिया, काँचना आदि महिला जन आँगन में एकत्रित)

शची—ओहो हो! यह गंगा जी की ओर तो बड़ो भारी कोलाहल है रह्यौ है। बार-बार हरि बोल धुनि गूँज रही है। कहूँ निमाई तो नहीं आय रह्यौ होय। बहन मालिनी। कहा मेरो ऐसो भाग्य होयगो? कहा अपने निमाई चाँद को मुख फेर देख पाऊँगी?

विष्णु०—(शची का अंचल पकड़ रोती हुई) माँ! वे ही आय रहैं हैं, अवश्य वे ही हैं। माँ! आपके चरणन में मेरी एक विनती है। उनकूँ एक क्षण मात्र के लिए भीतर लायवे की कृपा करैं।

शची—हाँ हाँ बेटी। अवश्य भीतर लाऊँगी।

विष्णु०—हाँ माँ। मैं एक बार उनके युगल चरण कमलन के दर्शन कर लैनो चाहूँ हूँ। यही एक मेरी आनीम साघ है। बाहर लोगन की भीर मैं यह साध कैसे पूरी है सकै है?

शची—ठीक कहै है बेटी। वह भीतर आवैगो। क्यूँ नहीं आवैगो अपने घर भीतर। तब तू अपनी साध पूरी कर लीजौ।

विष्णु०—माँ। यह मेरी अन्तिम प्रार्थना उन तक पहुँचाय दैनो। यदि वे सुन करके चुप रहैं, भीतर आयवे में संकोच करैं तो फिर कछुई न कहनौ। फिर मोकूँ जो कछु करनो होयगो सो मैं ही करूँगी। (रुदन)

शची—धीरज धर बेटी। रोवै मत। वह आवैगो। मैं लाऊँगी। आमन तो दै वाकूँ। शान्त हो।

श्रीदास—(दौड़ते हुए प्रवेश) माँ। आपके पुत्र आपके दर्शन कूँ आय रहैं है। आप चल कै द्वार पै ठाड़ी है जायँ।

(चला जाता है)

समाज— दो०

शची मालिनी नारी जन, रहीं द्वार पै जाय।
दुख सुख प्रबल बेग उर, मथि-मथि डारत हाय।।

चौ०

मारग प्रभु निज गृह नियराये।
चार बीस जहां बरस बिताये।।
दूर हीं सों हेरत गृह ओरा।
कों जाने उर भाव हिलोरा।।
देखि मात शची ढिग आईं।
सम्भ्रम नेह वरनै को माई।।
मात चरन प्रभु परसे आई।
रहै मौन ठाड़े सिर नाई।।

शची—(महाप्रभु को हृदय से लगा) निमाई। वत्स। मेरी खोयी निधि। चल भीतर चल बेटा (हाथ पकड़ती यहाँ क्यों ठाड़ो है? चल भीतर अपने घर में।

समाज— सो॰

ठाड़े शान्त अविचल, सुत संन्यासी लखि समझि।
सम्भ्रम सनेह विकल, छूट्यौ हाथ मुख बात हू।।

चौ॰

भेष भाव प्रभाव निहारी। मर्माहत विवश रहीं हारीं।।
हृदय कहत ए निमाई तिहारो। नैन कहत संन्यासी ठाड़ो।।
प्रीति परतीती वीच लराई। मात विकल मुख बात हराई।।
समुझि मात दशा करुनामय। बोले वचन मृदु मंगलमय।।

महा॰—माँ! आशीर्वाद देओ जासों श्रीकृष्ण चरण में मेरी मति रति दृढ़ होवै। माँ! तुम तो मोकूँ श्रीकृष्णार्पण कर चुकी हो। दान दई भई वस्तु पै दृष्टि डारवे सों धर्म की हानि होय है—

पद-पीलू ८ वरवा। दादरा

दियो दान तुम जो बरस पाँच पहले,
वह दै ही तो डरो (माँ) दै ही तो डारो।
वह तो वस्तु कृष्ण की, रही ना तुम्हारी,
दृष्टि न डारो वापै दृष्टि न डारो।।
मेरे धर्म की तव रक्षा करी तुम,
अब हू करौ रक्षा अब हू करौ।
मेरे शीश हाथ धर्यौ जैसे तब तुम,
अब हू धरौ हाथ अब हू धरौ।।
तुम्हारी कृपा सों बन पायो संन्यासी,
बनाये रहो अब बनाये रहो।
तुमही ने नीलाचल में बसायो,
बसाये रहो अब बसाये रहो।।
कृपा जब इतनी तुम्हारी है मोपै
औरहू करो एक औरहू करौ।
ज्ञान चहौं अब मैं धाम वृन्दावन,
आज्ञा करौ माँ आज्ञा करौ।।

जो कछु आज मैं, जो कछु है मों में,
दूध सों पायो तुव दूध सों पायो।
चरणरज पाऊँ 'प्रेम' वृन्दावन जाऊँ,
कृष्ण बुलायो माँ कृष्ण बुलायो।।

शची—(रोती-काँपती हुई) निमाई! मेरे चाँद! तू युग युग जी मेरे लाल! तेरे रोम रोम सों कृष्ण निकसै। और मैं कहा कहूँ—

पद— मिश्रवसन्त-केहरवा—

बात हजारन भरी हैं मन में,
आवै न मुख में आवै नहीं है।
ठाड़े ढिंग ही (पर) दूर है इतनो,
आवै पकड़ नहीं आवै नहीं है।।१।।
तेरी बात सही है सही है,
मेरो नहीं तू मेरो नहीं है।
यहाँ तेरो अब कोई नहीं है,
तेरो वही सब तेरो वही है।।२।।
जा वृन्दावन वाके घर जा,
यह घर नहीं अब तेरो नहीं है।
दूध को नातो टूट गयो अब,
जोर नहीं मेरो जोर नहीं है।।३।।
एक ही दावा अब तो मेरो,
झूँठो नहीं दावा झूँठो नहीं है।
तू है दयालु 'मैं कंगालिनी'
माँगू भीख दया माँगू यही है।।४।।
जहाँ चाहै जा जो चाहै कर,
तू है सभी को तेरे सभी हैं।
भूल न जाना कंगालिनी "प्रेम",
मेरो नहीं कोई मेरो नहीं है।।५।।

हाय बेटा निमाई! कहा मैं तोकूँ फिर देख सकूँगी
(व्याकुल बैठ पड़ती हैं)

विष्णुप्रिया—(नेपश्य में से करुण ध्वनि)

सखियो! अब तो मैं ही बाहर जाऊँगी। छोड़ दऊँगी लज्जा! तोड़ दऊँगी बन्धन। पडूँगी उनके चरणन पै वे भीतर नहीं आयँगे। यदि चले गये तो फिर कहाँ पाऊँगी। नाथ! नाथ! (दौड़ पड़ती हैं)

समाज— **दोहा**

कहत कहत भई बावरो, दौड़ उठी अकुलाय।
लईं पकरि सहेली सव, चलीं बाहर लिवाय।।
ढाँपि सब तन बसन सों, गृह द्वार पथ आय।
धाय परीं चरणन निकट, परसि सकीं ना हाय।।

महा०—(पीछे हटकर) कौन?

विष्णु०—आपकी चरण-दासी।

महा०—(दृष्टि अन्यत्र) श्रीकृष्णे मतिरस्तु! कृष्ण कहो! कृष्ण भजो!

विष्णु०—मेरे कृष्ण तो आप हैं। आपने जगत् कूँ शरण दियो मोकूँ हू शरण देओ। कृपा करकै दर्शन दियौ तो कृपा-चिन्ह हू दै जाओ। प्राणन कूँ आधार दै जाओ डूबते जीवन के लिये नौका दै जाओ। कृपा सिन्धो कृपा! दीनवत्सल! दासी पै कृपा!

महा०—(ऊर्ध्व दृष्टि)

आमि जे संन्यासी कि दिबो तोमारे।
काष्ठ पादुका दीनु उपहारे।।
चिरशान्ति इथे होइबे तोमार।

मैं अकिंचन संन्यासी हूँ। मेरे पास दैवे कूँ कछुई नहीं है। ये काठ कै खड़ाऊँ हैं। लेओ इनकूँ। इनसों तुमकूँ शान्ति मिलैगी। घर में ही रह करकै श्रीकृष्ण भजन करनौ। वे दयामय हैं—अवश्य दया करेंगे। (खड़ाऊँ उतार देना)

विष्णु०—(खड़ाऊँ को प्रणाम कर मस्तक पर धारण करतीं। फिर हृदय से लगाये धीरे-धीरे चली जाती हैं)

समाज— **दोहा—**

प्रणाम करि प्रभु पादुका, लीनी शीश चढ़ाय।
हृदय सों पुनि लाय कै, लीनी शेष बिदाय।।

महा०—माँ चित्त कूँ स्थिर करो। धीरज धरो! एक श्रीकृष्ण बिना कोई अपनो नहीं, सब सपनो है। श्रीकृष्ण को ही सदा सुमरन भजन करनो। अब

जाओ माँ भीतर। मैं हूं जाऊँ हूँ वृन्दावन के लिये। आशीर्वाद देओ मोकूँ श्रीकृष्ण मिलैं। जननी! माँ! प्रणाम (घुटने पर बैठ प्रणाम करते। उठकर)

हरि बोल, हरि बोल (कहते हुये प्रस्थान)

सब लोग—हरि बोल आज भगवान हारे, भक्त जीते! (कहते हुये प्रस्थान)

वैरागी—(प्रवेश करते हुये) तो कौन-सी नयी बात भई? भगवान् भक्त सों जीते ही कब हैं।

पद— मालकोष-तिताला—

भक्तन सों कब जीते गुसांई।
बलिया होय तो बल करि जीते, निर्बल सों तो हारे भलाई।।
मात जसोदा सुत वाँधन हित, बल बुधि बहुत कीन्हे उपाई।
बल तजि निर्बल वनि जब बैठी, दिये दामोदर आप बँधाई।।
बन बन ढूँढत फिरीं गोपिका, पाये ना मन मो न माई।
बैठि यमुन तट रोवन लागीं, रिनियाँ बन गये आय कन्हाई।।
मेघनाद बलबीरहिं मारै रोवति नारि सुलोचना आई।
बीर कूँ जीत नीर सों हारै, बोले राम दऊँ पतिहिं जिवाई।।
ज्ञानी ध्यानी खोजत सारे, दर्शन हित सदा रहैं ललचाई।
'प्रेम' पुकार सुनि अबला की, (प्रेम टेरि सुनि विष्णुप्रिया की)।
दे गये दरसन घरहिं आई।।

हरि बोल हरि बोल (गाते हुये प्रस्थान)

इति श्रीपादुका-दान लीला

❧❖❧

श्रीगौर-रूप-सनातन-मिलन

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्त वृन्द।।

चौ०

जय वृन्दावन मारगचारी। जय वृन्दावन नामौच्चारी।
जय वृन्दावन रसप्रचारी। जय वृन्दावन-प्रेमदातारी।।

दोहा

नवद्वीपधाम जननी निकट, लै आज्ञा मन भाई।
प्रेम संन्वासी गौर हरि, चलै वृन्दावन धाई।।
भक्त उड़िया गौड़ीय, धन्य सुअवसर पाई।
श्री वृन्दावन दरस हित, चलै संग उमगाई।

चौ०

कभु कहैं कृष्ण वृन्दावन।
नयन नीर तन पुलक सरस मन।।
कभु आतुर दौरैं अकुलाई।
बिवश विकल कभु परैं मुरझाई।।

(प्रवेश महाप्रभु, नित्यानन्द, हरिदास, गोविन्द घोष)

महाप्रभु— **भैरवी-दादरा**

धीरे धीरे धीर समीरे, यमुना तीरे चलरी चल।
बाजत जहाँ वंशी कान्ह करत पंछी प्रेम गान।।
यमुना हू लेत तान, कल कल बहे नीरे।।धीरे०।।
गूँजत जहाँ भौंरा भौंरी, नाचत जहाँ मोरा मोरी।
निरखत कुंजन में जोरी, लोचन भरि नीरे।।धीरे०।।
कन कन रज चिन्तामणि, वन वन तरु तिलकमणि।
धन धन गौर श्याम मणि, बरसत 'प्रेम' नीरे।।

महाप्रभु—

हा वृन्दावन हा गिरधारी।
लेवहु सुधि मम दीन दुखारी।।

दरस परस दै हिय सरसाओ।
बहुत दिनन की आश पुराओ।।
तुम बिन बहु दिन बादहिं बीते।
लेवहु शरन गहौ बाँह मीते।।

हा नाथ! तुम ही मेरे एक भात्र मीत हो, साँचे मीत हो! मो दीन पै कृपा करौ। मेरी बाँह गहौ! हा वृन्दावन! हा कृष्ण।

(प्रस्थान)

समाज—

इहि विधि आरति प्रीति सिखावैं।
लखि जन चकित मुदित हरि गावैं।।
जन गन बाढ़त बाढ़त जाई।
शत सहस्त्र सहस्त्र अधिकाई।।
शरद ऋतु कार्तिक सुखदाई।
नाचैं गावैं श्रम नहिं भाई।।
धन्य सो पथ प्रभु पावन कीन्हे।
धन्य ते जन प्रभु दरसन दीन्हे।।
धन्य नयन मुख चन्द निहारे।
धन्य श्रवन हरिनाम सुनारे।।
धन्य धन्य रसना ते महाई।
हरि संग बोले हरि हरि गाई।।

दोहा

मध्य दिवस भक्तन मिलि, पाक रसोई बनाय।
भोग अरपि भगवान कूँ, प्रभुहिं देत जेंमाय।।

चौ०

मारग प्रथम भिक्षा प्रभु कीन्ही।
हस्त परवार आँचवन लीन्ही।
(अनुकरण) पुनि श्रीहस्त प्रभु जु बढ़ाये।
भाव समझ भक्त सकुचाये।।
गोविन्द घोष भक्त इक आहीं।
नदिया वास करत प्रभु पाहिं।।

धाय माँग इक हरितकी लायो।
प्रभु कर अरपत जिय सुख पायो।।
पुनि घड़ी द्वय विश्राम प्रभु कीन्हे।
भक्त सकल प्रसादुहिं लीन्हे।।

(पटाक्षेप)

समाज— **दो०**

गौड़ देश राजायवन, नाम जु शाह हुसैन।
मंत्री ताके भ्रात-द्वय, विप्र सकल गुन ऐन।।
नाम 'अमर' बड़ भ्रात पुनि 'साकर मल्लिंक' नाम।
पुनि महाप्रभु कृपा करि, धर्यौ 'सनातन' नाम।।
'संतोष' नाम लघु भ्रात को, 'दबीर खास' पद नाम।
वेई महाप्रभु कृपा सों, भये 'रूप' गुन धाम।।

चौ०

दोऊ भ्रात विद्या गुन सागर।
करत गाम रामकेलि उजागर।।
सुनि सुजस शाह मन भाये।
आदर सह दरबार लिवाये।।
राज्य भार सब अर्पन कीन्हे।
अनिच्छा भय वश उन हू लीन्हे।।
"सनातन रूप आनि दिलो राज भार।
म्लेच्छभय विषय कोरिलो अंगीकार।।
(भक्ति० रत्ना०)

चौ०

रीझि शाह बहु वैभव दीने।
भौन भूमि वाहन जु नवीने।।
गौड़ निकट राम केलि ग्रामा।
बसैं तहाँ दोऊ भूप समाना।।

दो०

रूप सनातन सभा महँ, सोहैं इन्द्र समान।
पंडित कोविद कवि गुनी, पावै बहुसन्मान।।

चौ०

सर्व शास्त्र चर्चा नित करहीं।
भक्ति ज्ञान वैराग अनु सरहिं।।
इष्ट मदनमोहनहिं सेवहिं।
श्रीमूरति अजहू तहाँ राजहिं।।
राधा कृष्ण द्वय कुन्ड बनाये।
केलि कदम्ब तमाल लगाये।।
बैठें तहाँ निर्जन दोऊ भाई।
ध्यावैं वृन्दावन सुखदाई।।
यश रस गावैं हिय हुलसावैं।
लखि निज दशा पुनि अति मुरझावैं।।
(दृश्य। बाग–सरोवर। रूप–सनातन कीर्तन रत)

रूप सनातन पद।। तिलक कामोद।।

ब्रज अद्भुत लीला तिहारी।
गावत सुर नर मुनि ईश्वर हू।
समुझत नहीं पचिहारी।।१।।
वास करौ जग भीतर बाहर,
यह नहीं अचरज भारी।।
रास करौ गोपिन संग थेइ थेइ,
यही अचरज है भारी।
दास तिहारे सुरगन सारे,
रवि शशि आज्ञाकारी।।
दासी रमा–सी खवासी करति है,
सो व्रजदास महारी।
एक पुत्र विधि जगत वनावै,
एक नचावै भारी।।
सोइ पिता के पिता के पिता कूँ,
नचावैं 'प्रेम' नारी।।

रूप श्लोक

चरितं कृष्ण देवस्य सर्व मेवादभुतं भवेत्।
गोपाल लीला स्तथापि, सर्वतोऽति मनोहरा:।। (पद्म पु०)

दादा! भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण चन्द्र के समस्त चरित ही अद्भुत हैं। उनकी मथुरा लीला द्वारिका लीला तथा हस्तिनापुर लीला सब ही मनोहारी हैं परन्तु श्रीब्रज मंडल की जो उनकी गोपाल लीला है वे तो सर्व प्रकार सों समस्त लीलानसों अत्यन्त ही मनोहारिणी हैं। धन्य है ब्रज एवं ब्रजवासी गोपी गोप गौऊन की सौभाग्य-सीमा कूँ।

सनातन—साधु-साधु भैया! गोपाल कृष्ण की लीला ऐसी ही हैं परन्तु उनकी वाल लीला तथा कौमार लीला सोहू उनकी कैशोर लीला ही सर्वाधिक मनो मुग्धकारिणी हैं। तथा कैशोर लीलान में हू श्रीरास लीला तो लीला मुकुटमणी, माधुर्य मुकुटमणि एवं त्रिलोक सौभाग मुकुटमणि हैं।

श्लोक

देवस्त्रिलोकी-सौभाग्य-कस्तूरी-मकरांकुर।

जीय द् ब्रजाङ्गनानङ्गकेलिलालित विभ्रमः।। (कृ० कर्णा०)

(प्रवेश सेवक पत्र लिए हुए)

सेवक—(प्रणामपूर्वक) स्वामिन्! एक विप्र नवद्वीप ते यह पत्र लै कै आयो है। (पत्र-प्रदान)

सनातन—(पत्र ग्रहणपूर्वक) जाओ! शीघ्र ही उनके स्नान भोजनादि को सुन्दर प्रबन्ध करौ। पश्चात् मैं उनके दर्शन करूँगो।

सेवक—जो आज्ञा (प्रणाम। प्रस्थान)

सनातन—(पत्र खोल पाठ करते)

माननीय मंत्री प्रवरेषु।
नमस्कारपूर्वकं सादर निवेदनमिदम्:-

पख्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु।
तदेवास्वादयन्त्यन्तर् नवसङ्ग रसायनम्।।

दर्शवाकांक्षी पं ७ निमाइ

भैया! यह हमारे प्रार्थना-पत्र को उत्तर प्रभु ने कृपा करकै दियौ है। याको तात्पर्य तो समझ गये न?

रूप—हाँ दादा! समझ गयो! प्रभु ने हमारे लिए विषय-भोग के मध्य में जीवन व्यतीत करते भये हू भजन-साधन करवे की एक युक्ति बतायी है—एक कुलटा नारी के उदाहरण द्वारा। वह

सवैया

तन सों बसै पति के घर कुलटा,
मन ती कहीं जार के पास रहे।
तन लगि रहै घर काजन पर,
मन लागे नहीं बेदाग रहे।।
नहिं भावै घर के सुख कछु मन,
यार मिलन रस पाग रहे।
संसार सों लागि रहौ तुम 'प्रेम',
संसार न तुम सों लागि रहै।।

कुलटा नारी की भाँति हमहू बाहर सों संसार के विषय-कर्मन को निर्वाह करैं तथा मन सों सदैव श्रीहरि स्मरण करैं—यही प्रभु को हमारे लिए आदेश-निर्देश प्रतीत होय है।

सनातन—प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है परन्तु है यह अत्यन्त ही दुष्कर कार्य, काजर की कोठरी में रहै और बेदाग रह आवै! अग्नि की ज्वाला-माला में रहै और नेकहू आँच न लगै! यह अनुराग-सिद्धन को कार्य है—विदेह-स्थिति है। हम में अनुराग-वैराग कहाँ? हम तो विषय के कीट, असत्संगी, राजान्न-म्लेच्छान्न भोंगी, पतित अधमाधम है। भैया! कुलटा कूँ तो।

सवैया

संग मिल्यौ तब रंग चढ्यौ,
कुलटा रस फूली जग भूली।

(हमकूँ तो)

हरि संग नहीं फिर रंग कहाँ,
रस 'प्रेम' कहाँ रहैं जग भूली।।

(हर हरिकूँ)

छिन याद करैं छिन भूलि मरैं,
विष कीरा ज्यूँ विष में फूली।

(यासों हे प्रभो)

इक बार मिलौ चित्त-वित्त हरौ,
कर दी कुलटा रहैं रस में फूली।।

रूप—सत्य है दादा! कुलटा जैसी मति-गति हमारी कहाँ? तथापि जब जान-बूझकर सर्वज्ञ प्रभु ने हमारे लिए ऐसो ही असम्भव उपाय बतायो है, यही 'बुद्धियोग' दान कियो है तो सामर्थ्य हू अवश्य प्रदान करैंगे। हमारे लिए सब असम्भव है, उनके लिए सब सम्भव है :—

मेरी ना बनै, बनाये मेरे कोटि कल्प लौं,
राम! रावरे बनाये, बनै पल पाउ में।
(विनय० प०)

शैर

तू गर चाहे तो तेरी एक अदाये-रंगी,
ज़्रये रेगे-बियाबाँ को गुलिस्तां कर दे।
जो कुन से खलक, रूह मिट्टी में फूँक सकता,
वह चाहे तो नजर से स्याह को सुर्ख कर दे।।

सनातन—हाय भैया! हम कैसी घोर पतित अवस्था में परै हैं :—

कवित्त

विप्र कुल उच्च पायो, पायी विद्या-बुद्धि बहु,
पायो शास्त्रज्ञान, संग पंडितन पायो है।
जग बहु मान पायो, राज सन्मान पायो,
वैभव सम्पद सब, ठाठ-बाट पायो है।।
लोक सुख जेते भाल भरि लिखि दीने 'प्रेम'
लक्ष्मी सरस्वती, अनूठो मेल पायो है।
पै चूक्यौ ना बिधाता चाल उलटी पुरानी निज,
(हाय!) दुष्ट राज संग गुड़, गोबर बनायो है।।

हाय भैया! एक ओर तो प्रभु की इतनी कृपा कि—

कवित्त

आय कै सपैन माझ, रूप धरि महापुरुष,
अपनो स्वरूप भागवत् दान दै गये।
आप हू विग्रह बनि मदन मोहन देव,
हमरे भवन बीच आय के विराज गये।।
दरस दिखाय सेवा दास सों कराय नित,
भोग खाय खाय 'प्रेम' हमहीं भुलाय रहे।

इतनी तो कृपा करि कैसे कृपानाथ फेर,

सत्यानाशी म्लेच्छ को गुलाम ही बनाय रहे।।

(दोनों हाथ उठा) रक्षा करो दीन बन्धो! दुष्ट-संग छुड़ाय सत्संग प्रदान करो! अब सह्यौ नहीं जाय है! अशरण! शरण! उद्धार करो।

कीर्त्तन

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव रक्षमाम्।
राम राघव राम राघव राम राघव पाहिमाम्।।

(पटाक्षेप)

समाज— चौ०

अब सुनहु इक चरित सुहाई।
भक्त भाव की महिमा महाई।।
ब्रह्मचारी इक नरसिंह उपासी।
नरसिंहानन्द नदियावासी।।

(दृश्य : ब्रह्मचारी नृसिंहानन्द बैंठे हैं।)

प्रभु प्रसाद मन निर्मल निश्चल।
भावुक भावना मानसी परवल।।
सुन्यौ प्रभु वृन्दावन जावहिं।
मन मन मग मानसी रचाबहीं।।

(बंगला)

वृन्दावन जावेन प्रभु शुनि नृसिंहानन्द।
पथ साजाइला मने पाइया आनन्द।। (चै० च०)

नृसिंहा—अहा! मेरे प्रभु श्रीगौर सुन्दर श्रीवृन्दावन कूँ, जाय रहै हैं। यह तो द्वै चार दिना की यात्रा नहीं, महिना दिन की दीर्घ यात्रा है। मार्ग कठोर, चरण सुकोमल, यान-वाहन नहीं! नंगे, उघारे, पैदल इतने दिन चलनो परैगो। हाय हाय! कितनो कष्ट होयगो!! (विचार-मग्न! पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक) नहीं नहीं! मैं उनकूँ कोई कष्ट नहीं होन दऊँगो। उनके मार्ग में फूल बिछाय दऊँगो—नदिया सों वृन्दावन पर्यन्त! उपाय तो मेरे आधीन है। बैठकर मानसी भावना द्वारा सुन्दर सुखमय रचना करूँगो। फूल बिछाय धरती सुकोमल बनाऊँगो, दोनों पार्श्व में हरी-भरी वृक्ष-श्रेणी की छाया कर दऊँगो तथा बीच-बीच में फुलवारी-फव्वारा, बावड़ी-झरना द्वारा शीतल सुखद कर दऊँगो। ऐसे सुखमय मार्ग पै अपने प्राण प्रभु कूँ, वृन्दावन लै चलूँगो।

नृसिंह— **कवित्त**

रतन जड़ाऊँ भूमि पुहूप विछाऊँ पुनि,
दुहुँ ओर घने-घने तरुवर लाइये।
फूलैं फूल भौंरा गुंजैं, नाचैं बहु मोरी मोर,
सुआसारी कृष्ण कृष्ण नाम मधु गाइये।।
बिच-बिच फुलवारी, सरोवर निरझर,
कमल अमल खिलै, शोभा सरसाइये।
व्यार बहै सीरी-धीरी, तन श्रम करै दूरी,
तन-मन मोद 'प्रेम', प्रभु पधराइये।।

अतएव चलूँ! स्नान करकै शुद्ध है कै पूजा-गृह में अपने नृसिंहदेव जी के सन्मुख बैठ भावमयी सेवा के द्वारा भावग्राही भावमूर्ति प्रभु को सुख साधन करूँ। (प्रस्थान)

समाज— **चौ०**

भाव मगन मग रचै ब्रह्मचारी।
इत प्रभु चले जात सुखकारी।।
भावमय भावुक मन सेवा।
जानै न कोऊ जानैं हरि देवा।।
करि विश्राम मारग चलि जावहिं।
कबहु मगन मन कभु हरि गावहिं।।

(प्रवेश महाप्रभु—भक्त-मण्डली एवं जन-समुदाय सहित)

महा०— **(संकीर्तन)**

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

(कीर्तन करते-करते गमन)

समाज—

गाम गाम मग दरसन पाबहिं।
हरि मुख नाम सुनी हरि गावहिं।
अग्रद्वीप ग्राम प्रभु आये।
निशि विश्राम हेत ठहराये।।

दो०

कीर्तन, निशि-विश्राम करि, प्रात:काल नित कृत्य।
ठौर ठौर जन-जन बहु, करत कीर्तन नृत्य।।
कछु भक्त करी पाक रसोई।
विधिसों भोग धरे जस होई।।
आसन दै प्रभुहिं पधराये।
सादर भिक्षा दै हुलसाये।।
(दृश्य महाप्रभु—पत्तल पर भिक्षा-ग्रहण)
पात प्रसाद प्रभु सुख पावहिं।
हरि अधरामृत महिमा गावैं।।

महाप्रभु—

धन्य हाथ हरि भोग बनावैं।
चुनि-चुनि मंजरी तुलसी चढ़ावैं।।
धन्य पदारथ जो प्रभु पावैं।
परसि अधर अधरामृत कहावैं।।
धन्य रसना अधरामृत पावै।
पाक स्वाद विसरि सब जावै।।
ग्रास ग्रास अधरामृत भासै।
सो प्रसाद माया तम नासै।।
धन्य-धन्य तुम सवही भाई।
दियौ प्रसाद मोकूं सुखदाई।।
सादर भाव सहित सब पावौ।
भोजन बुद्धि न कबहु लावौ।।
मन भर भोजज भजन बिगारै।
कन प्रसाद हू जनम सुधारै।।

समाज— **दो०**

भिक्षा-अन्त अँचबन करि, प्रभु पसारै हाथ।
खोलि आँचर हरतकी, गोविन्द दीन्हौ हाथ।।

सो०

लै हरतकिहिं पाणि, कछुक चकित-से प्रभु रहै।
पुनि बोलै मृदु बानि, 'लाये कहाँ ते तुरतहि?"

गोविन्द—(हाथ जोड़) प्रभो! कल एक हरड़ माँग लायौ हो। सो आधो टक आप कूं अर्पण किया हो। आधो आज के लिए राख लियौ हो। सो तुरन्त ही अर्पणकर दियौ। कहूँ जाय कै लानौ न पर्यौ।

महा०—(मुस्कराते हुए) कल की वस्तु में ते आज के लिए बचाय लीनी!! क्यों? जाने कल दई वह कहा आज नहीं दैतो। घर-परिवार तो सब छोड़ि आये पर संचय की वासना नहीं छोड़ सकै। तो जाओ गोविन्द! वहीं घर कूं ही लौट जाओ। यह संचय गृहस्थ कूं तो शोभा देय है परन्तु साधु को तो स्वरूप ही नष्ट कर देय है। यासों जाओ, लौट जाओ घर कूं। तुम मेरे संग नहीं रह सकौ हो।

समाज— दो०

वज्रपात हठात् भयो, पर्यौ चरन अकुलाय।
क्षमा सिन्धो! करुणा निधे! देओ जिन ठकुराय।।

गोविन्द—हे क्षमा सिन्धो! हे करुणानिधे! या अपराध के लिए क्षमा पाऊँ। आगे मैं सावधान रहूँगो! फूंक-फूंक कै पाँव धरूँगौ। परन्तु इन श्रीचरनन सों दूर मत करि देओ। दीनबन्धो! क्षमा करौ! दया करौ।

(चरण पकड़ रोदन)

महा०—(पीठ पर हस्त फेरते हुए) उठो गोविन्द! उठो! दुख मत करौ। तुम्हारो कोई दोष नहीं है। हरीच्छा सों ही तुम्हारे हृदय में यह संचय-वासना हठात् उदय भई ही। वैसे तुम्हारे हृदय में कोई वासना नहीं है। तुम बड़े भागवत हो मेरी इच्छा है कि तुम यहीं अग्रद्वीप में गंगा किनारे कुटिया बनाय कै वास करौ और व्याह कर लैओ।

गोविन्द—(चौंककर) व्याह कर लऊँ? यह कैसी आज्ञा प्रभो? मैं तो घर-द्वार सब छोड़ आप की शरण आयो हूँ।

महा०—(कन्धे पर हस्त रख सस्नेह) मेरी आज्ञा नहीं, गोविन्द! श्रीकृष्ण की आज्ञा है। नहीं-नहीं कृपा है। वे तुम्हारे पुत्र बनकर तुमकूं सुख दैनो चाहैं हैं।

गोविन्द—मेरी समझ मैं कछु नहीं आयो प्रभो! यह कहा लीला?

महा०—समय पै सब समझ जाओगे। तुमकूं गंगा में सो श्रीगोपीनाथ जी को श्रीविग्रह प्राप्त होयगो। तुम उन पै वात्सल्य भाव करौगे। तुम्हारो एक पुत्र होयगो परन्तु वाकी मृत्यु है जायगी। तब गोपीनाथ जी ही तुमकूं पुत्र की भाँति सब सुख दैगे तथा अन्त समय में तुम्हारी क्रिया-कर्म वे ही करैंगे श्राद्ध करैंगे

पिण्ड भरैंगे तथा तुम्हारे ही नाम सों जगत् में प्रसिद्ध होंगे—गोविन्द घोष के गोपीनाथ कहायँगे। दुनियाँ भक्त—भगवान् की एक संग जय जयकार करैगी। यासों तुम यहीं अग्रद्वीप में रहौ और व्याह कर लैओ। मैं तुम सों फेर मिलूंगो। हरि बोल!

(भक्तों सहित प्रस्थान)

समाज— **दो०**

चले गौर, गोविन्द रह्यौ, विवश विकल अकुलाय।
कहा सों कहा छिनहिं भयौ, प्रभु गति समझि न जाय।।
बसेन उजाड़ैं छिनहिं मह, उजड़ै देत बसाय।
खुले भये बँधि जात हैं, बंधे भये तिर जाय।।

चौ०

हरि राखै तैसे ही रहिये।
घर वन की चिन्ता नहीं करिये।।
चिन्ता चिन्तामणि की करिये।
राग वैराग धोय सब धरिये।।
भक्ति भक्त लक्षण यही कहिये।
गो पद सम भव-सागर तरिये।।
गंगा तीर भीर बहु भारी।
चलत प्रभु संग नाम उचारी।।
दर्शन नैनन ताप सिरावै।
श्रवण नाम सुनि पाप नसावै।।
रसना नाम प्रेम उमगावै।
वैकुंठ सुख पथ-पथ बहि जावै।।

सो०

पावन श्रीपद धूरि, गाम गाम बहु गाम किये।
दई संजीवन मूरि, नाम नाम हरि नाम दिये।।

चौ०

गंगा पश्चिम तट इक ग्रामा।
नाट्यशाला कन्हाई नामा।
तहाँ आय विश्राम जु कीन्हे।
संग सहस सहस जन लीन्हे।।

राम केलि पूरब तट गामा।
रूप सनातन बसैं जिहि ठामा।।
निकट गौड़, यवन रजधानी।
शाह हुसैन विधर्मी गुमानी।
(दृश्य! हुसैन शाह टहल रहा (नेपथ्य में जन कोलाहल हरि बोल)
हरि धुनि घोर उठत पर पारा।
सुनि समझत नहिं करत विचारा।।
भय शंका निज कहत सुनाय।
केशवसिंह निज मंत्री बुलाय।।

केशवसिंह—(मंत्री प्रवेश कर कुर्निश करते हुए) शाह साहब की जय हो। जहाँ पनाह को बन्दे का आदाब-अर्ज कबल हो।

हुसैन०—आइये वजीर साहब! आइये! तशरीफ रखिये!

केशव—(बैठते हुए) हुक्म फरमाइये सरकार! कैसे तलब किया।

हुसैन—केशव सिंह! वह देखो गंगा के उस पार! बेशुमार भीड़!

(नेपथ्य में से जन समुदाय—हरि बोल)

वह सुनो! कितनो बुलन्द पुर जोश आवाज है! हजारों-लाखों गले एक साथ क्यों चीख रहे हैं। यह माजरा क्या है वजीर साहब? किसी दुश्मन का हमला तो नहीं है?

केशव—नहीं सरकार नहीं। तसल्ली रखिये यह फौज-वौज कुछ नहीं। यह तो एक संन्यासी महात्मा अपने भक्तों के साथ वृन्दावन जा रहे हैं। आज रात ठहरेंगे। सुबह चले जायँगे। उनके दर्शन के वास्ते गाँव के लोग कुछ इकट्ठे हो गये है। वे ही नाच-गाकर खुशी मना रहे हैं। इसी से यह शोरोगुल है और कोई वजह नहीं। हजूर बेफिक्र रहें।

हुसैन—मगर ताहम एक खूफिया को भेजकर पूरी खबर तो मँगवावो। यह कैसा संन्यासी फकीर आया है कि जिसके दीदार के वास्ते इतनी खलकत इकट्ठी हो गयी है जो चीख-चीखकर आसमान सर पर उठा रही है। जल्दी ही इसकी खबर पेश करो।

केशव—जो हुक्म सरकार! (चला जाता है। पर्दा! दूसरी तरफ से निकल महल की तरफ देखते हुए) यह वही हुसैन है जो किसी समय इसी गौड़ देश के हमारे राजा सुबुद्धिराय का जर-खरीद गुलाम था और आज उन्हीं के ताज-ओ तख्य का मालिक बना बैठा है। गुलाम हुसैन से शाह हुसैन बन

गया है। राज-ताज छीना सो छीना, उस बेचारे राजा के मुँह में अपने हुक्के का पानी जबरदस्ती डलवा कर उसकी जाति भी छीन ली। यह वही हुसैनशाह है जिसके शिक्षा-गुरु चाँद खाँ काजी ने नवद्वीप में संकीर्तनकारी भक्तों के ऊपर जुल्म ढाया था। और भी यह वहीं हुसनैशाह है जिसने काम रूप और उड़ीसा के देव-मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं बाकी रक्खी है। ऐसा यह हिन्दुओं का पक्का दुश्मन, जालिम-दग़ाबाज है। इसका कोई ऐतबार। नहीं-बाहर से शर्बत, अन्दर से जहर! बाहर से पानी अन्दर से आग! इस वास्ते मुझे अपना एक विश्वास पात्र दूत भेजकर श्रीकृष्ण चैतन्य देव को सावधान कर देना उचित है कि वे यहाँ ठहरे नहीं। शीघ्र से शीघ्र चले जायँ।

(प्रस्थान)

(दृश्य! मन्दिर! नृसिंह देव का चित्र! नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ध्यानस्थ बैठे हैं)

समाज— **चौ०**

नित ही नित नव मारग रचहीं।
नृसिंहानन्द मानसीं करहीं।।
भूमि मणि रतनन सों जड़ाये।
कोमल कमलन दलन विछाये।।
तरुवर बकुल-पाँति लगाये।
सरवर सजल विमल सज ये।।
प्रफुल्लित कमल मधुप गुँजारैं।
शुक पिक कल कलरव उच्चारैं।।
बहै समीर शीतल सुखदाई।
मारग मनहर सुखद सुहाई।।

दो०

कन्हाई नाट्यशाला लौं, मारग लियौ बनाई।
आगे बनावत वनै नहीं, मानस गति अटकाई।।

(बंगला)

आगे मन नाहिं चले, ना पारे बाँधिते।
पथ बाँधा न जाय, नृसिंह होइलो विस्मिते।।

नृसिंहा०—(आँख खोल-सोचता हुआ) बड़े आश्चर्य की बात है। या मेरे मन कूँ है कहा गयो! और दिना तो मेरी भावना तैलधारवत् मार्ग बनायवे में

अखण्ड लगी रहती और मार्ग हू झटपट बनतो ही जातो। कन्हाई नाट्यशाला तो सुन्दर मार्ग बाँधतो भयो मन पहुँच गयो परन्तु अब आगे मन चलै ही नहीं है। प्रयत्न करवै पै हू आगे बढ़ै ही नहीं है। अटक जाय है। अब आगे मार्ग कैसे बने कहा कहूँ आहार-बिहार में तो कोई दोष नहीं पर्यौ? (विचारता है। सिर हिलाते हुए) ऊहूँ। मोकूँ अपनो कोई दोष, कोई अशुद्धि, कोई भूल-चूक-कछुई दीखै नहीं है। मैं तो सब बातन में बड़ी सावधानी बरतु हूँ। तब फिर आज यह विघ्न क्यों पर रह्यो है। (विचार-लीन)

समाज— सो०

रह्यौ यतन करि हार, भई पंगु मन गति मति।
कियौ तबै निरधार, 'आगे प्रभु नहीं जाइ हैं'।।

नृसिंह—(मुस्कराते हुए) ओहो! समझ गयो। यह तो लीलामय प्रभु की ही एक लीला है। उनकी इच्छा को ही एक संकेत है कि वे कन्हाई नाट्यशाला ते आगे नहीं जायँगे। और जब नहीं जायँगे तो पीछे ही लौटेंगे नदिया कूँ (सोल्लास) आनन्द! आनन्द! प्रभु लौटि आयँगे, हमारे पास आय जायँगे! हम फिर दर्शन पायँगे। आनन्द आनन्द अरे! मैं तो या मन कूँ गारी दै रह्यौ है यह तो बड़ो उपकारी यंत्र निकस्यौ! याने ऐसो सुन्दर समाचार लाय कै दियौ। सो चलूँ! भक्त मंडली कूँ आनन्दित करूँ।

हरि बोल हरि बोल (कहते हुए प्रस्थान)

समाज— चौ०

उर प्रतीति शाह नहिं आई।
जद्यपि केशव कहि समुझाई।।
'दबीर खास' अरु 'साकर मल्लिक'।
भ्राता दोउन बोल लिए दिग।।

(प्रवेश-दवीर खास और साकर मल्लिक मार्ग चलते हुए)

विप्र वंश सहोदर भाई।
विद्या बुद्धि अगाधहि पाई।।
भाषा संस्कृत फारसी जानैं।
शाह हुसैन अधिक सन्मानैं।।
पद प्रधान सचिव दोउ भाई।
नीति निपुन गुन कुशलाई।।

यवन संग वंश यवन समाना।

भूषा भेष वचन अरु नामा।।

देखत लागैं यवन नवाबा।

अन्तर धर्म भक्ति अनुरागा।।

शास्त्र पढ़ैं पंडित बहु पोषैं।

छात्रन वृत्ति, साधुन तोषैं।।

दोहा

पावन पतित गौर हरि, आय आप इन गाम।
विषय-कूप सों काढ़ि दियो, रूप सनातन नाम।।

(दोनों चले जाते। पर्दा खुलता। हुसैनशाह महल में बैठे)

दोनों भाई—(प्रवेश कर कुर्निश करते हुए) शाह साहब की जय हो)

हुसैन—आइये साहेबान आइये! मैं आप लोगों की ही इन्तजारी में बैठा हूँ। तशरीफ रखिये।

हुसैन—दबीर खास जी! (द.खा.)-जी हजूर!

साकरमल्लिक जी! (सा.म.)-हुक्म सरकार

हुसैन—आप दोनों हिन्दू हैं लेकिन हैं मेरे दो हाथ, मेरी दो आँख! मैं अपने से ज्यादा ऐतबार रखता हूँ। यकीन करता हूँ। मेरा एक सवाल है। सही-सही जवाब फरमावें।

दबीर—बेशक जहाँपनाह! फरमाइये तो।

हुसैन—गंगा के उस पार रामकेलि गाँव में कोई एक हिन्दू फकीर आया है न?

दबीर—सही है शाह साहब! एक संन्यासी महात्मा आये हैं।

हुसैन—वह कौन है? कहाँ से आया है? खुफिया के जरिया मालूम हुआ कि वह नौजवान है, हसीन है, इलाही नूर उसके चेहरे से बरसता है। वह गाता है नाचता है रोता है। दुनियाँ भी उसके साथ-साथ गाती, नाचती, रोती है। ऐसा वह दिवाना और दिवानागर कौन है? कहाँ से आया है? नाम क्या है? जानते हैं तो बतलाइये।

दबीर—खुदा बन्द! इस नौजवान संन्यासी का जन्म हजूर के ही राज्य में हुआ है।

हुसैन—(चौंककर) मेरे राज्य में? कहाँ? फरमाइये तो।

दबीर—नवद्वीप में जहाँ आपके गुरु चाँद खाँ काजी साहब हुकुमत करते हैं। यह भी हमारी खुश किस्मती है।

हुसैन—उनका पाक नाम?

दबीर—श्रीकृष्ण चैतन्य देव।

हुसैन—क्या आप लोगों को उनका पाक दीदार नसीब हुआ है?

साकर—ऐसा कोई खास नहीं! मगर हाँ जिनको नसींब हुआ है। वे कहते हैं कि खुद श्रीकृष्ण भगवान् ही संन्यासी फकीर के रूप में पृथ्वी को पावन करते हुए लीला कर रहे हैं।

हुसैन—सुभान अल्लाह! क्या आप लोगों को भी यही ख्याल है। साफ-साफ जाहिर कर दीजिये न?

साकर—तो सुनिये साफ-साफ ही शाह साहब! ये श्रीकृष्ण चैतन्य देव ही हैं कि जिनकी मेहरे-नज़र से आप को यह तख्त ओ ताज नसीब हुआ है। और जिनकी भौंह चढ़ाते ही आपके गुरु चाँद खाँ काजी उनकी कदम बोसी कर उनके शार्गिद गुलाम हो गये। ज्यादा क्या अर्ज करैं आप अपने दिल से ही सवाल कर देखें आप मालिके-मुल्क हैं, खुदा का नूर आप में रोशन है। आप ही खुद फरमाइये, ये आपको कैसे लगते हैं।

हुसैन—मेरा दिल भी कुछ-कुछ ऐसा ही गवाह देता है। हालांकि मैं मालिके-मुल्क हूँ, रिआया की जिन्दगी व मौत मेरी मुट्ठी में है, ताहम अगर मैं किसी अमला को तनख्वाह न दूँ तो वह मेरे खिलाफ हो जायगा। इस्तीफा दे देगा और अगर मेरी फौज को ६ महीने तक तनख्याह न मिले तो मुमकिन है कि वह मेरी जान का ही दुश्मन बन जाय। और उधर वह एक फकीर-तवंगर है, देने को पास में न दिरम है न ज़र है, लेकिन लाखों बशर अपने घर-दर को छोड़कर, बिना खाये पिये सोये उसके पीछे-पीछे भागे जा रहे हैं, उसके इशारे पर नाच रहे, दिवाने बन रहे हैं। लिहाजा मानना ही पड़ेगा, यह कोई इन्सानी ताकत नहीं, इलाही ताकत करिश्मा दिखा रही है। खैर, इतना जरा और फरमाइये कि अगर मैं सिज्दा करने के वास्ते उनके कदमों में हाजिर होना चाहूँ तो वे मना तो नहीं करेंगे?

साकर—यह हम कैसे कहें सरकार? न हम उनसे, न उनकी तवियत से वाफिक।

दबीर—हाँ जहाँपनाह! फकीर और अमीर तो अपनी मौज-मर्जी से ही चलते हैं।

हुसैन—खैर कल कोई तजबीज गौर करेंगे। रात अन-करीब है। आप साहेबान तशरीफ ले जायँ। शुक्रिया।

दोनों—(कुर्निश कर चले जाते। पर्दा। दूसरी तरफ से निकल)

दबीर—समझे कछु दादा?

साकर—बड़ो मीठो है मुख को तो, भीतर की भगवान् जानैं।

दबीर—परन्तु या समय तो याको मुख और मन एक जैसो ही लगै है।

साकर—भैया! यह प्रभु गौर सुन्दर के नाम की महिमा-उनकी कथा की महिमा है। हमने याकूँ उनको श्रीकृष्ण चैतन्य नाम सुनायो तथा द्वै-चार बात उनकी महिमा की सुनायी। बस इतने में ही या कपटी क्रूर म्लेच्छ को मन पलट गयो। यह हमारे शब्दन को प्रभाव नहीं, प्रभु के नाम-गुण को प्रभाव है।

दबीर—सो तो सत्य है दादा! परन्तु यह कितनो हिन्दू-विद्वेषी है यह तो हम आप सब जानैं ही हैं। सर्प को विश्वास कर लैवे पर दुर्जन को सहसा विश्वास न करै। यासों मेरी आत्मा कहै है कि चल कर प्रभु कूँ सावधान कर देयँ। वे शीघ्र ही अन्यत्र चले जायँ।

साकर—उत्तम विचार! परन्तु प्रभु कूँ हम कहा सावधान कर सकै हैं। वे तो सदा सावधान ही हैं। और तापै 'प्रभु' को कोई 'जीव' कहा हानि कर सकै है। हाँ उनके समीप जायवे सों हमारो कल्याण अवश्य ही है जायगो! या विषयी संसारी जीवन ते वे अवश्य ही हमारो उद्धार करेंगे।

दबीर—यथार्थ है दादा! वे दीन बन्धु करुणासिन्धु हैं। आज तक तो हमने पत्र-द्वारा ही उनसों कृपा-प्रार्थनाकरी है। आज चल कै, श्री चरणन में पड़ कै कृपा की भीख माँगैंगे।

साकर—तो भीख माँगवे के लिए भिखारी ही बन कर चलौ। उतार फेंकौ या राजभेष, या संसारी भेष कूँ और दीन-हीन, दुखारी भिखारी भेष में प्रभु के दरबार में हाजिर होओ।

दबीर—(सगद्‌गद्) धन्य दादा! धन्य आप की अनमोल वाणी कूँ। आप की मंगल सीख कूँ! आप कूँ मेरो शतशत प्रणाम है (चरणों पर झुकना। साकर उठाकर हृदय से लगा लेते। हाथ पकड़े हुए दोनों धीरे-धीरे चले जाते है)

(पटाक्षेप)

महाप्रभु—(नित्यानन्द, हरिदास आदि भक्त जन तथा ग्रामवासी जनता संकीर्तन करते हुए प्रवेश)

गोविन्द दमोदर माधवेति।
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।।
मन्दारमूखे वदनाभिरामं, विम्बाधरे पूरित वेणुनादम्।
गो गोप गोपीजन मध्य संस्थं, गोविन्द दामोदर माधवेति।
श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश, गोविन्द गोवर्धननाथ विष्णे।
उच्चस्वरैस्तवं वद सर्वदैव (ऊँचे स्वर से बोलो सदा ही)
गोविन्द दामोदर माधवेति।
(संकीर्तन करते हुए प्रस्थान)

समाजी—

अब सजे भिखारी दोऊ। निकसे आधी रात दोऊ।।

(अनुकरणात्मक)

दिये राज वेष उतारी। तन मलिन वसन धारी।।
पट छोर गरे चहुँ डारे। मानो पर्यो पाश माया रे।।
हाथन तृन-गुच्छ धारे। हम गाय दुखी अवलारे।।
तन-मन दुखी दीन मलिना। कंगाल सकल सुख हीना।।
कहि कौन सकै ये वे ही। कहा ते कहा भये ये वेही।।
यह लगन को खेल सुहाई। लोहा कंचन है जाई।।

दोहा

दींन दरिद्र वेश साजे, चले जात दोउ भाई।
राम केलि जहँ गाम महँ, राजत गौरा राई।।

सो०

मध्य निशा चहूँ और, हरि बोल ध्वनि माचहीं।
(नेपथ्य में 'हरि बोल' संकीर्तन)
नहिं जानत केहि ठौर, श्रीगौरचन्द्र विराजहीं।।

साकर—भैया! हमारे गाँव के समीप गंगा तट पै तो सहस्र-सहस्र लोगन की भीर जुरी भई है। जहाँ देखो वहाँ लोग नाँच-गाय रहै हैं। न जानै श्रीकृष्ण चैतन्य देव कहाँ हैं? उनकी मंडली कहाँ हैं? हम तो खोजते-खोजते हार गये। कोई हमारी सुनैइ नहीं हैं? ऐसे उन्मत्त है रहै हैं।

दबीर—हे दीनबन्धो! दर्शन दैओ! हे दयासिन्धो! दया करौ यहाँ तक तो हम आये है पर आपकूँ पावैं कैसे? अब आप ही कृपा करौ। द्वार आये भिखारिन की आशा-अभिलाषा पूर्ण करै।

समाज— **चौ०**

खोजत बूझत डोलत हारे।
दरस निताइ दयाल लहारे।।

नित्यानन्द—(प्रवेश करते। हरिदास पीछे-पीछे)

दोनों भाई—(दूर से साष्टांग प्रणिपात पूर्वक) हम पतित ब्रह्म बन्धुन को श्रीचरणन में प्रणाम स्वीकार होवै।

निताई—(दौड़कर उठाने लगते) उठो उठो! तुम पतित हो तो मेरे प्रभु पतित बन्धु हैं—पतितन के लिए ही पधारे हैं। बोलो गौर हरि।

दोनों—(भुजायें उठा) गौर हरि! गौर हरि भगवन्! कहा हमकूँ उनके दर्शन है सकै हैं?

हरिदास—क्यों नहीं (निताई को दिखलाते हुए) जानते हो वे कौन हैं?

साकर—अवश्य ही गौर हरि के कोई अन्तरंग जन हैं।

हरिदास—अन्तरंग में हू अन्तरंग-उनके द्वितीय स्वरूप उनसे अभिन्न है। इनको नाम है निताई दयाल। पहले कृपा इनकी होय है पीछे गौर प्रभु की। जब तुमकूँ ये पाय गये तो वे हू पाय गये।

निताई—चलौ! मैं तुमकूँ उनके समीप ले चलूँ हूँ।

(प्रस्थान)

दोनों—जय हो निताई दयाल की जय! निताइ गौर हरि बोल (अनुगमन)

(दृश्य! महाप्रभु भाव मग्न विराजमान। दूसरी ओर से प्रवेश)

निताई—(हरिदास! पीछे-पीछे दोनों भाई) हे दीनबन्धो! ये दीन दुखी प्रियबन्धु आप के चरण-शरण आये हैं। कृपादृष्टि कर अपनावैं।

साकर—विप्रबन्धु नहीं ब्रह्म-बन्धु! जातिभ्रष्ट! म्लेच्छ-सेवी!!

दबीर—यवन ग्रास भोजी! गो ब्राह्मण देव द्रोही संगी!!

दोनों—त्राहि दीनबन्धो त्राहि! शरणागतोऽस्मि (कह मुँह में तृणगुच्छ दबा दूर से दण्डवत् पतन)

महा०—(दौड़ कर उठाने लगते। पर वे उठते नहीं)

समाज—

दौरि चहत प्रभु तिनहिं उठाये।
उठत नहीं चरनन लिपटाये।।
'उठहु उठहु' कहैं प्रभु पुकारी!
मंगल करैं हरि मंगलकारी।।

महा०—उठो! रोओ मत। दुःख मत करौ। श्रीकृष्ण तुम्हारो मंगल करेंगे।

समाज— **(बंगला)**

उठि दुई भाई तबे दन्ते तृण धरि।
दैन्य कोरि स्तुति कोरे जोड़ हाथ कोरे।। (चै० च०)

साकर दबीर०—(धीरे-धीरे उठ हाथ जोड़)

पद केदारा-तिताला

जय गौर जय कृष्ण श्रीकृष्ण चैतन्य देव।।टेक।।
जय शान्तमूर्ति जय क्षमासिन्धो,
जय करुणामूर्ति जय दयासिन्धो।
जय भाव मूर्ति जय प्रेमसिन्धो,
जय देव मूरति विश्वम्भर देव।।१।।
जय अधमतारन जय दीनबन्धो,
जय पतितपावन जय पतित बन्धो।
जय अशरण शरण जय प्रणतबन्धो,
जय जगतारन जगन्नाथ देव।।

गज़ल केदारा-दादरा

नाम सुनकर तेरे दर पर,
आये दो पापी हे गौर सुन्दर।
न मुख फेरना न रुख बदलना,
देख दो पापी हे गौर०।।१।।
सुनायें कैसे करम हैं जैसे,
न होंगे जगाई-मधाई भी ऐसे।
दया तुम्हारी तभी है भारी,
तारो हम पापी हे गौर०।।२।।
वे मतवाले हम होशवाले,
वे थे अन्धे हम आँख वाले।

वे थे साँप, हम साँप पाले,
पेट के पापी, हे गौर० ।।३।।
वे थे नीच, हम नीच-संगी,
वे थे रंग में, हम बदरंगी।
वे थे शेर हम भेड़िया संगी,
दो कुत्ते पापी हे गौर० ।।४।।
वे तेरे धाम नवद्वीपवासी,
हम नीच म्लेच्छ राज खवासी।
वे तेरे भक्तों के देखें मुख तो,
हम देखें पापी हे गौर० ।।५।।
वहाँ हवा में नाम हरि है,
उनके कानों में गया हरि है।
यहाँ कटतीं गाय व टूटें मन्दिर,
हम सोवैं पापी हे गौर० ।।६।।
(हमारे) हाथ ओ पाँव ये बंधे हुए है,
मुख में ताले जड़े हुए हैं।
घुट रहा दम बस पड़े हुए हें,
कुये में पापी हे गौर० ।।७।।
न छूट सकते निकल न सकते,
न टेर सकते गुहार सकते।
पड़े सिसकते हें आँसू पीपी,
दो 'प्रेम' पापी हे गौर० ।।८।।
भाहि दीनबन्धो! शरण शरण! कृपा करौ। उद्धार करौ।
(श्रीचरणों पर पतन)

समाज— **दो०**

चरनन परि रोदन करैं, गर्व गुमान भुलाय।
दीन भाव लखि दीन तन, दीनबन्धु गर जाय।।

महाप्रभु (उठाते हुए)— उठौ भैयाओ! तुम्हारी यह दीनता मोकूँ बड़ो दुख देय है। हृदय फटै है। तुम दोनों तो परमभागवत हो। श्रीकृष्ण के प्रियजन हो। तुमने बार-बार मोकूँ पत्र लिख-लिख कै जो करुण प्रार्थनाकरी ही वह सब मोकूँ स्मरण है। मैंने जो उत्तर दियो हो वह हू तुमकूँ स्मरण ही होयगो।

साकर०—हाँ नाथ! आपने "परव्यसनिनी नारी" "श्लोक" के द्वारा कुलटा स्त्री के आचरण को उल्लेख कर्यौ है जो देहसों तो गृह के काम काजन में बड़ी व्यस्त रहै है परन्तु मन ही मन में जार पुरुष के संग को ही रस-आस्वादन करती रहै है।

महाप्रभु—या दृष्टान्त सों मेरो अभिप्राय यही हो कि तुमहू संसार के काम काज करते भये भगवत्-स्मरण को सुख लै सकौ हो। हाथ सों काम करनो, मुख सों नाम लैनो तथा मन सों उनके रूप-लीला को स्मरण करनो यही या श्लोक को तात्पर्य है।

साकर०—हे मायानाथ! यह हू आपकी कृपा सों ही सम्भव है। कृपा बिना मुख में एक नाम हू नहीं आय सकै है, मन में रूप-गुण-लीला को स्मरण तो बहुत ऊँची वस्तु है। हमसों आप को उपदेश कछु पालन भयो कै नहीं सो आप अन्तर्यामी हैं—स्वयं निरख-परख लैवें। हम जैसे कछु हैं आप के सन्मुख ठाड़े हैं।

दबीर०—दीन दुखारी, कृपा के भिखारी ठाड़े हैं। परीक्षा न लैवें मायाधीश! हम चरण-शरण आय परैं हैं। ठेल नहीं दैनो, स्थान दैनो दीनबन्धो! जगाई-मधाई के पीछे हमारो हू नाम गिन लैनो। पाहि पतित बन्धो! करुणासिन्धो पाहि।

(दोनों भाई चरणों को पकड़ लेते)

महा०—श्रीकृष्ण तुम्हारो मंगल करेंगे-तुम्हारे ऊपर शीघ्र ही कृपा करेंगे। अब शोक-सन्ताप दूर कर देओ एवं निश्चिन्त रहो मैं यहाँ तुम्हारे ही दर्शन के लिए आयो हूँ—अन्य कोई प्रयोजन नहीं है—

"गौड़ निकट आसिते नाहि मोर प्रयोजन।
तोमा दोहाँ देखिते मोर इहाँ आगमन।।

और एक विशेष बात! आज सों तुम दोनों भाई रूप-सनातन के नाम सों विख्यात होओगे। हरि बोल।

दोनों०—हरि बोल!

(चरणों को छोड़ घुटने पर बैठ जाना)

महा०—(एक-एक हस्त कमल उनके मस्तक पर रख)

जनता—हरि बोल! हरि बोल।

समाज— दो०

वरद हस्त मस्तक दिये, नाम दिये अभिराम।
कृपा पाय विह्वल लुठत, करत पुनि प्रनाम।।

चौ०

गहि वरबस प्रभु हिय सों लाये।
प्रेम भक्ति धन धनी बनाये।।
पुनि भक्तन प्रति कहत गुसांई।
कृपा करो सब इन पै भाई।।

महा०—श्रीवास जी मुकुन्द मुरारि, हरिदास सब भक्त मेरे रूप-सनातन पै कृपा करैं।

समाज— **चौ०**

भक्त पग गहि-गहि लपटानैं।
देत असीस सकल मन भानैं।।
नित्यानन्द अरु हरिदासा।
मुकुन्द मुरारी अरु श्रीवासा।।
कहत धन्य धन्य तुम भाई।
गौर हरि भेटे उर लाई।।
भई कृपा उर ताप भुलाओ।
गौर गुणाकर निसि दिन गाओ।।

सनातन—(हाथ जोड़) एक प्रार्थना है प्रभो।

महाप्रभु—'हाँ हाँ'! कहो कहा इच्छा है?

सनातन—आप स्वतंत्र इच्छामय है। अपनी इच्छा सों ही यहाँ पधारे हैं तथा अपनी इच्छा सों ही यहाँ ते पधारेंगे। हम तो केवल निमित्त मात्र हैं। हमारे हृदय में तो यही प्रेरणा होय है कि आप यहाँ ते शीघ्र ही यात्रा करें तो उत्तम है। यद्यपि गौड़ को नवाब हुसैनशाह भक्त की-सी बात करै है परन्तु वह स्वभाव सों दुष्ट है यासों विश्वास योग्य नहीं है और हू एक डीठता कूँ क्षमा करेंगे। आप वृन्दावन की यात्रा कूँ गमन कर रहे हैं। लाख-लाख जनता की भीर साथ में है। दूर देश की यात्रा है। अत्याचारी म्लेच्छन को राज्य है। यदि आप कूँ मार्ग में काहु प्रकार को उद्वेग पहुँच्यो तो आपके आनन्द में बाधा परैगी। आगे आप स्वतंत्र हैं—जैसो उचित समझें।

महा०—साधु! सनातन! साधु! उत्तम परामर्श दियो। मैं अवश्य विचार करूँगो।

निताई—प्रभो! रात प्रायः बीत चुकी है। प्रातः कृत्य के लिए आज्ञा होवै।

महा०—हाँ हाँ श्रीपाद चलौ (उठते हैं)

रूप-सनातन—(चरणों में प्रणाम करते)

महा०—(अभय मुद्रा) श्रीकृष्णेमतिरस्तु। जाओ! निश्चिन्त रहौ श्रीकृष्ण मंगल करेंगे।

समाज— चौ०

रूप सनातन पग गहि लीन्हे।
प्रभु सप्रेम विदा उन कीन्हे।।

रूप-सनातन—(महाप्रभु को सन्मुख रखते हुए हाथ जोड़ पीछे हटते हुए प्रस्थान)

महा०—श्रीपाद! सनातन के मुख सों श्रीकृष्ण ने ही आज मोकूँ उत्तम शिक्षा दीन्हीं है। श्रीवृन्दावन परम पवित्र रहस्य स्थल है। भावना एवं शान्ति के लिए जन कोलाहल महान् बाधक होय है। जनता दिन-दिन बढ़ती आय रही है- रोक ही नहीं सकै हैं। यासों श्रीपाद अब मैं आगे न जाय जगन्नाथ धाम कूँ ही लौट जाऊँगो। फिर काहु समय अकेलो ही वृन्दावन जाऊँगो। अवश्य जाऊँगो। (विह्वलतापूर्वक) मेरे जीवन की साध वृन्दावन! श्रीकृष्ण भक्ति को फल वृन्दावन! हाय! कब मेरी साध पूरी होगी। कब तिहारी पावन रज पर लोटूँगो।

(विह्वल भू-लुण्ठन एवं महिमा गान। भक्तों द्वारा अनुसरण)

पद-दादरा-विभास

कृष्ण रूप, कृष्ण प्रेम, कृष्ण केलि काम धाम।
कृष्ण नयनमन विश्राम, कोटि कोटि करौं प्रणाम।।
कृष्ण चरण श्रीललाम, कृष्ण-अम्बु सिक्त धाम।
कृष्ण कुंज पुंजाराम, कोटि कोटि करौं००।।२।।
कृष्ण गान खग वितान कृष्ण नाम मुखर धाम।
कृष्ण रज पै वारौं प्राण, कोटि कोटि करों००।।

(गाते गाते प्रस्थान)

इति

०३❖६०

श्री श्री नीलाचल-प्रत्यागमन

श्लोक

वृन्दारण्येक्षणकपटतो गौड़देशे प्रसूतिं
दृष्ट्वा स्नेहाद् यवनकलनात् साग्रजं रूपमेवम्।
उद्त्यौढं पुनरति ययौ यः स्वतंत्र परात्मा
तं गौराङ्गं स्वजनतरणे हृष्टचित्तं स्मरामि।।

श्रीकृष्ण चैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द।।

पद

सुमिरौं मंगलमय पद गौर।
सर्वतंत्र स्वतंत्र परात्पर, तदपि बँधे नेह डोर।।१।।
वृन्दावन मिस नीलाचल तजि, आये स्वदेशहिं गौर।
जन्मभूमि जननी जाह्नवी पुनि, दरस दिये किये गौर।।
मुक्त किये पुनि यवन ग्रास ते, द्वय भ्राता दुःख घोर।
नयो जन्म नयो नाम पाय भये, रूप सनातन जोर।।
उलटि शान्तिपुर, सीतानाथ शची, भक्तन ढिग आये गौर।
चलै जहाँ ते पुनि वहीं पहुँचे, नीलाचल 'प्रेम' गौर।।

दो०

राम केलि तजि गये प्रभु, नाट्यशाला कन्हाई।
कृष्ण लीला मूरति बहू लखि हिय ताप सिराई।।

चौ०

पुनि चलि शान्तिपुर प्रभु आये।
लखै अद्वैत प्रान जन्तु पाये।।
समाचार सुनि शचीहू आई।
अन्ध नयनमनि मनो पाई।।
सात दिवस प्रभु इहँ निवासा।
नव-नव चरित विविध परकासा।।

दास रघुनाथ प्रभु ढिग आये।
करि प्रबोध बहु घरहिं पठाये।।
सो लीला सुनहु सुखदाई।
रीति वैराग प्रभु समुझाई।।

रघुनाथ०—(दो सिपाहियों सहित प्रवेश)

(भक्ति-वैराग्य: अन्तर्पट)

भक्ति०—वत्स वैराग्य! वह देखो रघुनाथदास प्रभु सों मिलवे आय रह्यौ है।

वैराग्य—परन्तु ये द्वै सिपाही संग में कैसे हैं माँ?

भक्ति०—ये अंगरक्षक हैं। इनके पहरे में पिताने अपने पुत्र रघुनाथदास कूँ भेज्यौ है, जासों कि वह कहूँ भाग न जाय।

रघुनाथ—(सिपाहियों सहित चले जाते हैं)

वैराग्य—यह रघुनाथदास कौन हैं माँ और काहे कूँ भागनो चाहै हैं। इनको कछु परिचय बताय देओ न माँ।

भक्ति—सुनो तात! बंगाल में हुगली जिला में सप्तग्राम एक बड़ी भारी जागीर है। बाँके मालिक हैं द्वै भाई-हिरण्य एवं गोवर्द्धन न मजुमदार। ये बड़े भारी रईस हैं। बारह लाख की वार्षिक आय है। गोवर्द्धनदास के ही सुपुत्र यह रघुनाथदास है। दोनों भैयान की यही एक मात्र सन्तान है। यही दोनों न की समस्त सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं। परन्तु यह बाल्यकाल सों ही संसार सों उदासीन हैं। इनके ऊपर तुम्हारी विशेष कृपा है वैराग्य।

वैराग्य—माँ! महाप्रभु के दर्शन कूँ कहा यह पहली बार जाय रहै हैं।

भक्ति—नहीं वत्स! यह दूसरी बार है। पहली बार जब महाप्रभु संन्यास ग्रहण करके शान्तिपुर पधारे रहै तब यह रघुनाथ उनके श्रीचरणन में आय पर्यौ हो। महाप्रभु ने इनके शीश पै अपनो श्रीचरण पधरायौ हो तथा अद्वैताचार्य जी ने इनकूँ महाप्रभु को अधरामृत प्रसाद दियौ हो। पाँच-सात दिन अपने समीप राख कै महाप्रभु ने इनकूँ घर भेज है दियौ हो और आप जगन्नाथपुरी पधारे हते। रघुनाथ घर चल्यौ तो गयौ परन्तु प्रभु के विरह में पागल सरीखो गयौ। कई बार घर छोड़-छोड़ कै जगन्नाथपुरी के लिए भज्यौ परन्तु पिता ने मार्ग में ते पकड़ कै मँगवाय लियौ। यह बिचारो घर में कैदी तरह बास कर रह्यौ है। पाँच सिपाही, चार सेवकं और द्वै ब्राह्मण—ये ग्यारह जने दिन रात याकी रखवारी करैं हैं।

वैराग्य—तो अब के इनकूँ कैसे आमन दै दियो?

भक्ति—आमन तब दियो कि जब इनने स्पष्ट कह दीनी कि जो तुम मोकूँ प्रभु के दर्शन कूँ नहीं जान देओगे तो मैं अपने प्राणन कूँ नहीं राखूँगो। तब जाय कै पिता ने सिपाहिन के पहरे में भेज्यौ है और शीघ्र ही लौट आयवे को आदेश कियौ है। देखो, सुनो यह रघुनाथ कहा कह रह्यौ है।

रघुनाथ—(उदास गाते हुये)

पद—राग वैरागी तिताला—

सारी दुनियाँ सपने की माया।
झूठ की छाया से इसे बनाया।।

इतनी बातें सब कोई भूले, झूठे ही इसको दोष लगाया।। (या झूठ कूँ समझूँ तो मैंहू हूँ तौहु छूट तो नहीं सकूँ हूँ। छूटवे के लिये कितनी चेष्टा करो—जाल तुड़ाय तुड़ाय करकै भाग्यौ परन्तु पकड़ पकड़ कै फिर जाल में जकड़ दियौ गयो। यासों हे प्रभो)

पूर्व पद—

छूटै वही जिसे तूने छुड़ाया, अपने बल कोई छूट न पाया।
कर दे मेहर नज़र अब अपनी, 'प्रेम' भिखारी दर पै आया।।

हाय! इन पहरेदारन की कैद सों कैसे छूटूँ। दिन रात घर-बाहर सब ठौर मोकूँ घेरे रहैं हैं। हाय! कैसे प्रभु के संग ही संग नीलाचल जाऊँ! प्रभु तो सर्वज्ञ हैं। मेरी दुर्दशा सब जानैं हैं। वे अवश्य ही कृपा करेंगे मायाजाल में ते निकास कै लै जायँगे। चलूँ उनके दर्शन कूँ (प्रस्थान)

समाज— **दो०**

नित्यानन्द अद्वैत आदि, भक्तन मधि प्रभु गौर।
आयु रघु चरनन पर्यौ, "शरण शरण हे गौर।।"

रघुनाथ—(प्रवेश) शरण हूँ प्रभो! शरण! पाहिमाम्! प्रसीदनाथ (साष्टांग दण्डवत्)

महाप्रभु—उठो रघुनाथ! बैठो! शान्त होओ।

रघुनाथ—(उठ कर घुटने टेक सामने बैठ जाता है)

महाप्रभु—सुनो रघुनाथ! मेरी बात ध्यान दै कै सुनौ। मैं तुम्हारे अन्तर-बाहर की दशा सब जानूँ हूँ। सुनहू चुक्यौ हूँ। तुम श्रीजगन्नाथ पुरी जानौ चाहौ

हो—यह तो उत्तम बात है। परन्तु अबैइ नहीं। एक ही क्षण में न माया बन्धन छूटै है, न संसार-सागर को किनारो मिल जाय है।

कवित्त—१

छिन में न छूटै टूटै नेह गेह जाल जग,
छिन में न कोऊ भव-सागर पाटि रहै।
चाहिबे अरु पाइवे में अन्तर समय को,
समै पाय काज सब, समयो ताकि रहै।।
जतन बढ़ाय रहै लगन छिपाय रहै,
लोगन भुलाय प्रेम भावहिं ढाँपि रहै।
सजै न सजावै न्यारो निरालो लखावै नहीं,
मरकट वैराग तजि, अंतरहिं राँचि रहै।।

(अपने राग-वैराग्य कूँ दिखाओ मति ना) दिखावा को नाम मर्कट-वैराग्य है। बानर बाहर सों तो सर्वत्यागी परन्तु करनी-करतूति सों महा भोगी होय है।

कवित्त—२

बसन न तन, नहिं रहिवे कूँ भवन है,
वृक्ष वनवास ऐसो, वानर तो योगी है।
फल मूल खाय, जाय नहिं उर वासना है,
भेष तो त्यागी महा, मन रस भोगी है।।
(परन्तु तुमकूँ ऐसो रहनौ परैगो कि)
देह राखिवे कूँ खाओ, पीओ कछु जैसो तैसो,
कामना मिटाय करौ मन प्रेम योगी है।
लगन अगिनि बढ़ै, जारि दैहै जग जार,
वनि जैहै तबै साँचो, तन मन योगी है।।
(अतएव तुम अपने)

कवित्त—३

मति करि थिर बनि, धीर तुम जाओ घर,
लोक ते निराले मति, बनो तुम बावरे।
चाल चलैं जैसे जग, तैसे मिलि चलौ पै,
खीरा जैसे बाहर तो भीतर तीन फार रे।।
लगन की आग जरौ, धुवाँ न निकसि पावै,
समझि सकै न कोई, कैसो 'प्रेम' प्यार रे।

देखि रह्यौ जानि रह्यौ, साँच झूट घटवारो,

साँच की न नाव कभु, डूबै मझधार रे।।

अतएव अन्तर्निष्ठ बनौ तथा लोकवत् व्यवहार करौ श्रीकृष्ण शीघ्र ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे।

रघुनाथ—मेरे दयालु समर्थ प्रभो! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है (घुटना टेक) आशीर्वाद देओ कि आज्ञा-पालन में समर्थ बन सकूँ। अब मोकूँ कोई चिन्ता, दु:ख, भय नहीं है। केवल इतनो ही जानवे की अभिलाषा है कि मोकूँ आपके श्रीचरणन के दर्शन को सौभाग्य अब कब प्राप्त होयगो।

महा०—जब मैं श्रीवृन्दावन के दर्शन करकै नीलाचल कूँ लौट जाऊँगो तब तुम काहु प्रकार सों कोई उपाय करकै मोसों वहाँ आय मिलियो।

रघु०—(हाथ जोड़) दीनबन्धो! मेरी बुद्धि तो एक ही उपाय जानै है—घर ते निकस भागनो। सो तो में कई बार कर करकै हार गयौ। अब में ऐसो कौन-सो उपाय करूँ कि बीच में पकर्यौ न जाऊँ एवं आप के समीप पहुँच जाऊँ?

महा०—(स्मितपूर्वक)

"से काले से छल कृष्ण स्फुरावे तोमारे।
कृष्ण कृपा जारे तारे के राखिते पारे।।

देखो रघुनाथ! जब समय आवैगो तो श्रीकृष्ण ही सब उपाय तुम्हारे हृदय में सुझाय देंगे।

गजल

आने दो समय छल-बल, श्रीकृष्ण बता देंगे।
सकता है कौन बाँध, जब कृष्ण छुड़ा देंगे।।
हथकडियाँ टूटीं, ताले भी खुल गये सब।
बसुदेव जैसे छूटे, तुमको भी छुड़ालेंगे।।
प्रह्लाद को बचाया, ध्रुव को गुरु मिलाया।
रखता खबर वह सबकी, तुमको भी छुड़ालेंगे।।
तुम चाहते हो जितना, उससे अधिक वह चाहें।
आने दो समय 'प्रेम', तुमको भी छुड़ा लेंगे।।

रघु०—जय हो प्रभो! अब मैं निश्चिन्त, निर्भय है गयो। हरि बोल।

महा०—रघुनाथ! अब तुम रक्षकन सहित घर लौट जाओ।

रघु०—जैसी आज्ञा प्रभो! (साष्टांग दण्डवत् करके चला जाता है)

समाज— **चौ०**

पुनि अद्‌भुत चरित प्रगटायो।
रूप ओ विग्रह अभेद बतायो।।

गंगा पार गृह गौरी दासा।
गौर निताई गये जेहिं वासा।।
निताइ निमाइ विग्रह जोरी।
प्रथम प्रगट किये तेहि ठौरी।।
सो चरित कछु बरनन करिहौं।
अनुसरि "दीन कृष्णदास" पद हौं।।

दो०

शान्तिपुर पर पार इक, गाम 'कालना' नाम।
गौरीदास पंडित भगत, वास करत तेहि ठाम।।
गौर भक्त ब्रज सख्य रति, सुबल सखाको भाऊ।
लखत गौर निताई कूँ, मनहु कृष्ण बलदाऊ।।

महाप्रभु—(नित्यानन्द आदि भक्त मंडली सहित संकीर्तन करते हुए)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

(प्रस्थान)

समाज—

एक दिवस प्रभु गौर निताई।
चलै शान्तिपुर ते सुखदाई।।
गंग पार करि कालना आये।
गौरीदास गृह तहाँ धाये।।
आवत लखि चरनन पर्यौ धाई।
बहुत दिनन की आस पुराई।।
भक्तन सहित पूजे दोउ भाई।
प्रभु कृपा निज भाग मनाई।।

गौरीदास—(हाथ जोड़) जय हो प्रभो! जय हो! आप साँचे ही दीनबन्धु, दयासिन्धु हो जो बिना बुलाये स्वयं या दीन-हीन पै कृपा करवे पधारे। आप

कूँ अपनी कुटी में पाय कै आज मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध है गये। मैं कृत-कृत्य है गयो। आप की सदा ही जय हो जय हो।

समाज— **चौ०**

तब बोले प्रभु अद्‌भुत बानी।
महिमा नाम सरस प्रगटानी।।

महा०—गौरीदास जी! मुकुन्द! बड़ी गर्मी लगै है। श्रीकृष्ण नाम-संकीर्तन करौ जासों ताप दूर होवै।

पद (तर्ज रघुपति राघव०)

हरि हरि बोलो गाओ नाम।
बड़ोई आज तपत घाम।।
शीतल होवै तन मन प्रान।
बड़ोई आज तपत०।।१।।
ना जानूँ कृष्ण नाम महा।
कहा रस अमृत भर्यौ अहा।।
सुने बिना सुने हियरा दहा।
कहो लहो हरे कृष्ण नाम।।
देह चहै मैं होऊँ कोटि।
देह देह में वदन हों कोटि।।
वदन वदन में रसना कोटि।
रसना रसना कोटि नाम।।
कर्ण चहै मैं होऊँ कोटि।
सुनि पाऊँ हरिनाम जु कोटि।।
जहाँ जहाँ गावैं भक्त कोटि।
मधुर मनहर कृष्ण नाम।।
कृष्ण कहै सो हितु है मेरो।
गीत 'प्रेम' वह गोत है मेरो।।
जीवन प्राण दाता वह मेरो।
सुनाओ गाओ कृष्ण नाम।।

भक्तवृन्द—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम्।।

समाज— **दो०**

आप नाम रस, रसिक आप आप ही मर्मी सुजान।
नाम प्रेमरस माधुरी, समुझि सकै को आन।।

चौ०

महा महा उत्सव तहाँ माच्यौ।
जन जन तन मन आनन्द राँच्यौ।।
गौरीदास उर भाव उमगायो।
प्रभु पद गहि कहत मन भायो।।
बोलत यद्गद् कण्ठ अनूठे।
भक्त भाव साँचे प्रभु तूठे।।

गौरी०—हे मेरे निताइ गौर दयाल! अब तो तुम दोनों यही रहो।

कवित्त

जाओ ना जाओ ना और, रहौ अब याही ठौर,
दोनों ही निताइ गौर, जोरी मन भाई है।
सुनाओ नित हरिनाम, भक्त संग आठों याम,
नासौ सब मनकाम, भक्ति सुखदाई है।।
(मैं) लखौं मुख अभिराम, सेवौं पद सुखधाम,
वारौं तन मन प्रान, करों सेवकाई है।
नातो है पुरानो खास, कीनी 'प्रेम' अरदास,
जान नहिं दैहै दास, जान चलि जाई है।।

निताई गौर—

आस अरदास गौरी-दास है अनूठी तुव,
भोरे तुम भौरी-भौरी बात जु सुनाई है।
जैसी तुम कही ऐसी कहैं और जन कहूँ,
(तो) कहाँ ते आवेंगे एते, निताइ निमाई है।।
(यदि हम) रहैं जो तिहारे पास, रूठेंगे जे आन दास,
काहे कूँ करान चहौ, हमरी लराई है।
बोलैं नहीं डोलैं नहीं, कलि में देवता 'प्रेम',
मूरति हमारी ताते, लैंहु, पधराई है।।

महाप्रभु— **दो०**

मूर्ति रूप माहिं सदा, करि हौं भवन निवास।
थापहु मूरति मानहु, होउ न हिय निरास।।

समाज— **चौ०**

नहिं मानै धीरज नहिं आनै।
रोवत पुनि-पुनि पग लिपटानै।।
बहु बिधि समझावहिं दोउ भाई।
एकहू बात न हिय ठहराई।।

गौरी०—

इन बातन नहिं भूलौं गुसांई।
जान न दैहौं तुम दोउ भाई।।
पाई निधि कैसे अब खोऊँ।
जो खोऊँ तो प्रानन खोऊँ।।
नयन मणि दोउ फणी मणि हो।
धिक् जीवन विन प्राणधनी हो।।
प्रान-मीन जल विन नहिं बचि है।
मारौ राखौ जस जिय रुचि है।।

समाज— **दो०**

प्रभु गौर निताइ मिलि, कियो उपाय नवीन।
मूरति निज अनुरूप दोउ, प्रगट तुरतहि कीन।

महाप्रभु—(निताई से संकेत पूर्वक धीरे-धीरे) दादा! अब याकूँ अपनी जैसी द्वै मूरति प्रगट करि कै दै देओ। तब ही याके प्राण बचैंगे (गौरीदास प्रति) अच्छो! अब तुम शान्त है जाओ। मेरे पाँबन कूँ छोड़ो! उठो। तुम जीते हम हारे। यह लेओ।

(पर्दा खुलता-विग्रह रूप में निताइ गौर की झाँकी)

समाज— **दो०**

भक्तवाञ्छाकल्पतरु, मूरति द्वय प्रगटाय।
कहत गौरीदास प्रति, लेवहु जो मन भाय।।

महा०—देखो गौरीदास। द्वय तो हम हैं और ये द्वय हमारी मूरति हैं। तुमकूँ जो जोड़ी रुचै सो लै लेओ।

गौरी०—बलिहारी प्रभो! मोकूँ भुलाओ मतिना। में मूरति लैकै कहा करूँगो। मैं तो तुम दोउन को ही लऊँगो।

महा०—गौरीदास! इनकूँ मूरति मत मानौ। ये तो हमारे स्वरूप ही हैं। इनमें और हममें नेकहू भेद नहीं है। मैं साँची कह रह्यौ हूँ। तुम परीक्षा करकै देख लैओ।

समाज— दो०

कबहु इनहिं उनहिं कभु, चितवत गौरीदास।
चल अचल दोउ एक से, आवत ना विश्वास।।
नख शिख लौं एकै बनै, मूरति दोऊ भाई।
लखि चकित पै चतुर चित, बोल्यौ मृदु मुसिक्याई।।

गौरी०—प्रभो! मैं आप की परीक्षा लैवै योग्य कहाँ। मेरी एक प्रार्थना है कि पहले आप चारोन कूँ भोजन कराऊँ। ऐसो सुयोग फिर कहाँ पाऊँगो। पश्चात् जो जोड़ी जँचैगी, वाकूँ राख लऊँगो।

महा०—जैसी तुम्हारी इच्छा। लाओ भोजन। हम चारों पावेंगे।

समाज— दो०

तुरत रसोई कीनी बहु बिस्मय हर्ष अपार।
कौतुक पै कौतुक करहिं, विश्वम्भर कर्तार।।

चौ०

चार थार कीन्ही परसाई।
बैठे जाय निताइ निमाई।।

गौरी०—(मूर्ति प्रति) आप दोनों हू पधारो प्रभो! तब ही तो चार होंगे। चार के भोजन की पक्की ठहरी है।

समाज— दो०

विनय सुनत ही चल पडीं, दोउ मूरति मुसक्याय।
विस्मय हर्ष हृदय सकल, हरि बोल मुख गाय।।
अचल-सचल तो चला-चल, अन्तर कोउ नाहिं।
रूप रंग भूषन बसन, दोउ दोउ सम आहि।।

भोग-पद

देखो रीझ निराली माई।
भक्तभाव वश भोजन करत हैं, द्वै द्वै गौर निताई।।

तपि तपि तप बहु पचि पचि जावैं, हियहू न झलकै आई।
भक्त भवन मधि बोलैं डोलैं, द्वै द्वै गौर०।।
भक्त सकल हरषें निरखें यह, कौतुक कह्यौ न जाई।
गौरीदास भाग बलि-बलि जेंमत द्वै द्वै गौर०।।
भोजन शेष अँचवाये चारन, पुष्पमाल धराई।
पान 'प्रेम' दै अतर लगाये, द्वै द्वै, गौर०।।

समाज— **चौ०**

प्रभु कहत अब बेर न लावहु।
जान देवहु द्वै द्वै तुम राखहु।।

महा०—गौरीदास! अब तुम अपनो काम कर लेओ। हमकूँ तो लौट करके गंगा पार शान्तिपुर पहुँचनो है। यासों जिनकूँ राखनो होय राख लेओ और जिनकूँ, विदा दैनो होय बिदाय दैओ। देर मत करौ।

समाज— **चौ०**

सम्मुख ठाड़े चारों भाई।
गौरीदास मति अति भरमाई।।
इन तन उन तन पुनि पुनि निरखत।
सम ही सम कहुँ विषम न दरसत।।
हँसि हँसि चारों कहत जु 'लैहु'।
देर करत कित जान जु दैहु।।
हानि लाभ दोउ जानि समाना।
लियौ माँग मन मानि परमाना।।

गौरी०—यह जोड़ी होय कै यह जोड़ी! मेरे तो दोनों हाथन में लड्डू है, कोई सही ये सही वे सही। वे सही ये सही। चलो ये ही सही (एक जोड़ी को पकड़) अब आप दोनों कूँ नहीं जान दऊँगो।

महा०—**(दूसरी जोड़ी)** तो हमकूं तो जान देओगे न?

गौरी०—हाँ प्रभो! परन्तु नेक ठहर जाओ। मैं इनकूँ भीतर मन्दिर में बन्द करि आऊँ फिर आपकूं विदाय दऊंगो।

महा०—अब हम नहीं रुकैंगे। हम तो जायं हैं। तुम अपनी जोड़ी कूँ लैके रहौ— हरि बोल

(प्रस्थान भक्त मंडली सहित)

समाज— **चौ०**

द्वार लौं गौरीदास हु आयो।

करि प्रनाम पुनि पाछे धायो।।

दो०

उत घर बाहर वे गये, इन घर भीतर आय।

देखत गौरीदास दोऊ, मूरति अचल सुहाय।।

गौरी०—(आश्चर्य पूर्वक) हैं! ये कहा आश्चर्य? ये कहा साँचेइ मूरति बन गये। मेरे गौर! मेरे निताई! बोलो बोलो! नेक हँसो मुस्कराओ! रुठ गये कहा? (ठहर) अब ये नहीं बोलेंगे। ये तो मूर्ति बन बैठ गये। मैं इनकूं लैकै कहा करूंगो। मैं तो उनकूं ही लऊंगो! उनकूं ही लऊंगो।

(भागता है)

समाज— **चौ०**

दौरत टेरत पाछे धायो।

लऊंगो तुमकूं मतिना जाओ।।

महाप्रभु—(नित्यानन्द-भक्त मंडली का प्रवेश)

गौरीदास—(भीतर से पुकारता है) ठहरो प्रभो! ठहरो! धोखौ दैके मत जाओ! मैं नहीं जान दऊँगो।

(दौड़ते हुए आकर चरण पकड़ लेता)

महा०—कहा बात है? अब कहा बाकी रह गई?

गौरी०—बाकी आप दोनों रह गये। मैं आप दोउन को ही लऊंगो। उनकूं नहीं। मेरी भूल भई! क्षमा करौ! चलौ, लौट चलौ।

महा०—चलौ श्रीपाद! लौट चलौ।

समाज— **चौ०**

ये गृह भीतर जब पग धारे।

वे गृह बाहर निकसि सिधारे।।

मूर्त्ति स्वरूप महा०—गौरीदास! तुम इनकूँ लै आये तो हम अब जायँ हैं।

गौरी०—बलिहारी! बलिहारी! मैंने इतनो निहोरो कियौ परन्तु आप मूर्त्ति ही बनै रहै। बोलै ही नहीं तो मैं इनकूं लै आयौ अब इनकूं ही राखूंगो।

मूर्त्ति स्वरूप—तो हम दोनों चलै (प्रस्थान)

समाज— चौ०

गौरीदास द्वार लौं आयो।
करि प्रनाम पुनि पाछे धायो।।
करि बिदा जब भीतर आयो।
येहू मूरति अचल लखायो।।
विनवत तनिक विश्राम जु कीजै।
चाँपौं चरन सेवा सुख दीजै।।
को बोले को हालै चालै।
भज्यौ गौरीदास तत्काले।।
दौरत टेरत मति ना जाओ।
लऊँगो तुम ही मैं धोखो खायो।

गौरी०—

कहत कहत पर्यौ चरनन आई।
छलहु न बेर बेर गुसांई।।
छल तुम ही न सोहै सांई।
दया करौ चलौ घर मांही।।
उनहीं नहीं तुम हीं कूं लै हौं।
अब कैसे हु जान न दैहौं।।

महा०—(हँसकै) चलौ श्रीपाद! फिर चलौ।

समाज— चौ०

चलि दोउ घर भीतर आये।
तुरत बाहर वे दोउ आये।।

मूर्त्तिरूप—गौरीदास! अब हम जायँ हैं। तुम इनको ही राख लैओ।

गौरी०—(उनकी ओर देखते हुए) रहौ कै जाओ तिहारी मर्जी। मैं कौन-कौन कूं मनाऊं और कहाँ तक मनाऊं। ये बोलैं हैं तो तुम रूठ जाओ हो और तुम बोलौ हो तो ये रूठ जायँ हैं। मैं इकलो एक दीन दुखिया और तुम चार-चार छलिया-बलिया! मैं तुमते कैसे पार पाय सकूँ हूँ। मोपै तो अब कृपा ही करौ और........अरे! ये तो चले गये, जान दैओ, ये तो हैं। मैं इनकूँ जान नहीं दऊंगो।

(इनकी तरण्फ मुड़कर देखता है)

समाज— **दो०**

उनते मुखहिं मोड़ जब हेर्यो इनकी ओर।
देखो मन्दिर में ठड़े, मूरति निताइ गौर।।

गौरी०— **दो०**

इत उत भागि भागि कै, दूखत होंगे पाँय।
अब पौढ़ो विश्राम करौ, दऊं चरण दबाय।।

गौरी०—(हाथ पकड़) चलौ आराम करौ (चौंक पड़ता) अरे! ये तो फिर मूर्त्ति बन गये। (भागता है) प्रभो! प्रभो! बहुत छल्यौ-बहुत धोखो दियौ! अब तो कृपा करौ। शरण हूँ शरण (दौड़कर चरणों को पकड़ लेता है)

समाज— **चौ०**

धाय जाय गहि पद लिपटाने।
कहि मृदु वचन प्रभु समुझाने।।

महा०—गौरीदास! तुम अबहू नहीं समझे! मैंने तो पहले ही कह दियौ हो कि हम मूर्त्तिरूप सों ही तुम्हारे घर में रह सकैं है, साक्षात् रूप सों नहीं। यासों मान जाओ। देखो हम मूर्त्तिरूप सों तुम्हारे यहाँ सदा बने रहेंगे, तुम्हारी सब सेवा ग्रहण करेंगे तथा तुमकूँ सब प्रकार को आनन्द देंगे। अब तुम हमारे मूर्त्तिरूप सों सन्तोष करौ अनुचित हठ मत करौ। जान दैओ हमकूँ।

दो०

तुव इच्छा पूरन करी आय तिहारे द्वार।
निज मूरति प्रगट करि, दई सेवा सुख सार।।

अरिल्ल०—

दई सेवा सुख सार, यही फल भजन को जानो।
नहिं व्यापे संसार, धार चित उलटि समानो।।
हरि सेवा सर्बोपरि, जीव धर्म नहिं आन।
लहौ प्रेम आनन्द अब, मेरे वचन परमान।।

गौरीदास! तुम्हारे ही लिए ये हमारी प्रथम मूर्त्ति आदि मूर्त्ति, निताइ-निमाइ की युगल मूर्त्ति प्रगट भई है अतएव दुःख नहीं, आनन्द मनाओ! उत्सव रचाओ। नाचौ-गाऔ, कीर्त्तन करौ। जाओ लौट जाओ! हरि बोल

(प्रस्थान)

गौरी०—(चुपचाप खड़ा देखता रहता है)

समाज—　　　　**दो०**

हठ दास को तब ही फलै, हरि इच्छा जब होय।
सर्बोपरि हरीच्छा ही मेटि सकै नहिं कोय।।

चौ०

जात हरिहिं हरिदास निहारत।
हेरत हेरत हियो ना हारत।।
नयन ओट जब भये दोउ भाई।
पर्यौ धरन 'हा गौर निताई'।।

गौरी०—　　　　**पद।। सोरठ।।**

प्रीति करै तुम सों जो कोई,
ता सम दुखिया जगनहिं होई।
रोओ आप रुवावत डोलो,
खोलौ बाँधो, बाँधो खोलौ।।
अमृत प्यावत विषहू घोलौ, जीवन मरन न होई।
ता सम दुखिया जगनहिं होई।।
(मैं) सेवा दै हाथन विरमाऊँ,
कथा सुनाय श्रवनन हू भुलाऊँ।
नाम धुनि रट वैनन लाऊँ,
नैन दरस कूँ रोई। ता सम००।।
राखौ मारौ, पकड़ो छोड़ौ,
जाओ पीठ दै मुखहू मोड़ो।
नातौ 'प्रेम' यह कवहु न तोड़ो,
और करौ जोई सोई। ता सम००।।
(गाते गाते प्रस्थान)

समाज—　　　　**दो०**

शान्तिपुर अद्वैत गृह, आय विराजै गौर।
भक्तन संग लीला बहु कीन्ही तिहिं ठीर।।

चौ०

राम गुन महिमा गुप्त मुरारी।
गाये अष्ट श्लोक सुखकारी।।

प्रभु प्रसन्न असीस बहु दीनी।
अचल राम पद भक्ति कीनी।।
चपल गोपाल श्रीवास अपराधी।
नासी ताकी कुप्ट बियाधी।।
माधवेन्द्र तिथि पूजन कीन्हे।
महा महोत्सव सुख सब दीने।।

(बंगला)

एक दिवसेर जतो चैतन्य विहार।
कोटि वत्सरहू ताहा नहि बर्णिवार।।(चै.भा.)

चौ०

एक एक दिन के प्रभु के चरितन।
बरस कोटि लौं होय ना बरनन।।
जिमि पंछी नभ अन्त न पावै।
जिमि जल सरिता चंचु न आवै।।
तिमि चैतन्य चरित अनन्ता।
कृपा कन बल कनहिं भनन्ता।।
भक्त गोष्ठी संग गौरांग जय जय।
जय जय श्रीकरुणासिन्धु महाशय।।

दृश्य—(महाप्रभु, नित्यानन्द, अद्वैत श्रीवासादि भक्तगण)

दो०

दिन दस बसि अद्वैत गृह, बहुविधि लीला कीन्ह।
निताइ अद्वैत आदि ढिग, विदा अनुमति लीन्ह।।

महा०—आचार्य जी! आप सब भक्तजनन के संग यहाँ दस दिन बड़े ही सुख सों बीते। अब आप सब मोकूँ अनुमति प्रदान करौ--मैं नीलाचल जाऊँगो। अब के वर्ष हमारो आप को मिलन यहीं है गयो। यासों आगे रथ यात्रा के समय यहां नदिया ते आप सब कोइ नीलाचल में न आवैं। मैं नीलाचल जाय कै वहाँ ते सूधो श्रीवृन्दावन जाऊँगो।

(सब से मिलते हैं। शची माता आती हैं)

समाज— दो०

निताइ अद्वैत आदि सब, भक्तन भेंटे गौर।
मातृ-चरण बन्दन करि, चाहत आज्ञा गौर।।

महा०—(मातृ-चरण स्पर्श। शची उठा भेंटती हैं) माँ! अब मैं नीलाचल जाऊँगो। वहाँ ते वृन्दावन जायवे को विचार है। आप आज्ञा करौ तो मैं वृन्दावन के दर्शन करि आऊँ।

शची—बेटा! तू तो परम स्वतंत्र है। तेरे लिए मैं भलो कहा आज्ञा कर सकूं हूँ।

महा०—नहीं माँ! आप की आज्ञा मेरे लिए विजय-कवच के समान है। यासों सहर्ष आज्ञा प्रदान करौ।

शची—निमाई! वत्स! तेरी जहाँ इच्छा हो वहाँ जा सुखेन विचर! परन्तु अपनी या बूढ़ी माँ को भूलियो मत। जब तक यह शरीर है—और अब यह थोड़ेइ दिनन को ही है—तब तक मेरे प्राण तोमें ही अटके रहेंगे। यासों मेरी सुधि लैतौ रहियो-भूल मत जइयो।

महा०—माँ! मैंने आज पर्यन्त आपकूं न कभु भुलायो और न आगे भुलाय ही सकूंगो। आप या चिन्ता कूं चित्त ते दूर कर दैओ और ऊषनो आशीर्वाद--अमोघ आशीर्वाद देओ।

शची—जा बेटा! नीलाचलनाथ तेरो सदैव मंगल करैं।

महा०—(भुजा उठा) हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल (कीर्तन करते हुए प्रस्थान। माता को छोड़ सब अनुसरण करते हैं)

समाज— **चौ०**

नीलाचल पुरी मारग धाये।
संग बलभद्र भट्टाचार्य लाये।।
कुमार हट्ट ग्राम प्रभु आये।
श्रीवास गृह मोद बढ़ाये।।
आगे पानी हाटी चलि आये।
राघव पंडित भाग मनाये।।
नित्यानन्द-रहस समुझाये।
"जो मैं सो वे" एक बताये।।
पुनि बराह नगर प्रभु आये।
विप्र "भागवताचार्य" बनाये।।
गंगा तीर ग्राम प्रति ग्रामा।
भक्तन घर घर किये विश्रामा।।

(बंगला)

सभार कोरिया मनोरथ पूर्ण काम।
पुनः आइलेन प्रभु नीलाचल धाम।।

करि जन जन सब पूरन कामा।
आये पुनि नीलाचल धामा।।
(अनुकरण) सुनि सुनि भक्त चले उमगाई।
आरती थार सुमाल सजाई।।

दो०

स्वरूप दामोदर गदाधार, श्रीरामानन्द राय।
सार्वभौम काशी मिश्र पुनि, शिखी माहती आय।।

(एक तरफ से महाप्रभु एवं बलभद्र भट्टाचार्य का प्रवेश। दूसरी तरफ से पूर्वोक्त भक्तमंडली माला, आरती लिए प्रवेश)

संकीर्तन– हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल!

(मालाधारण करा कर आरती एवं स्तुति)

स्तुति

उज्ज्वल वरण गौरवर देहं,
विलसित निरवधि भाव विलासम्।
त्रिभुवन पावन कृपायाः लेशं,
तं प्रणमामि च श्रीशची तनयम्।।
गद्‌गद् अन्तर भाव विकारं,
दुर्जन तर्जन नाद विशालम्।
भवभय भञ्जन कारण करुणं,
तं प्रणमामि च श्रीशची०० ।।

(दण्डवत् प्रणाम)

सार्वभौम–(हाथ जोड़, प्रभो! बड़े आनन्द की बात है कि आप यात्रा करकै सकुशल लौट आये हैं। यह आपने बड़ी कृपा करी जो इतने शीघ्र ही दर्शन दिये।

महा०–(मुस्कराकर गदाधर की ओर देखते हुए विनोद) मैं जननी एवं जान्हवी के दर्शन तो करि आयो परन्तु कहा कहूँ सार्वभौम जी! या गदाधर ने मोकूँ वृन्दावन नहीं जान दियो–मैं याकूँ संग नहीं लै गयो याकूँ मूर्च्छित छोड़ कै चल्यौ गयो–याही अपराध के कारण में रामकेलि ग्राम तक ही जाय सक्यौ

तथा वहाँ रूप सनातन सों मिल करकै लौटि आयो। संग-संग बड़ी भारी भीर चलबे के कारण वृन्दावन नहीं जाय सक्यौ।

"गदाधर छाड़ि गेनु, इहँ दुख पाइलो।
सेइ हेतु वृन्दावन जाइते नारिलो।।

गदाधर—(हाथ जोड़) **दो०**

श्री वृन्दावन आप महँ, आप वृन्दावन रूप।
नाम धाम श्रीविग्रह, तीन नाम इक रूप।।

प्रभो! श्रीवृन्दावन तो आप में ही है, नहीं-नहीं आप ही श्रीवृन्दावन हो। जो तन सोबन, जो वन सो तन। जो धाम सो धामी जो धामी सो.........

महा०—(बात काटते हुए) रहन दै गदाधर अपने भाव की बात और अबके अपनो सहर्ष अनुमति दै जासों निर्विघ्न श्रीवृन्दावन जाय सकूं। अब के मैं इकलो ही जाऊंगो, काहु कूं संग नहीं लै जाऊंगो। तुम सब प्रसन्न चित्त सों अनुमति दैओ।

गदाधर—आज अबै तो आप आये हो और अबै जायवे की इच्छा कर रहै हो। आप की इच्छा में बाधा कौन दै सकै है परन्तु।

दो०

आय रह्यौ आगे प्रभु, वर्षा चातुर्मास।
करौ विश्राम तासों अब, नीलाचल सुखवास।।
ता पाछे करियो सोइ, जो तुम्हरे जिय होय।
इच्छामय स्वतंत्र हो, बाँधि सकै ना कोय।।

सार्वभौम—प्रभो! गदाधर जी साँची कहैं हैं। यही हमारे मन में है। अब ही आप दीर्घयात्रा सों श्रान्तल्कान्त है। कै आये हैं। चातुर्मास्य विश्राम करैं। पश्चात् आप की जैसी इच्छा।

महा०—आप सब भक्तन की इच्छा शिरोधार्य है।

भक्त जन—हरि बोल।

समाज— **(पयार)**

या विधि गौर लीला अनन्त नहिं पार।
सूक्ष्म कही कछु 'प्रेम' मति अनुसार।।
सहस वदन शेष कहै जो अनन्त।
लीला एक दिन की हू पावै नहिं अन्त।।
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।

हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधा गोविन्द।।

इति नीलाचल प्रत्यागमन लीला सम्पूर्ण

❦❖❧

संन्यास-लहरी **त्रयोदश कणामृत**

श्रीवृन्दावन-पथ पर (झारखंड)

पयार

जय जय श्री गौर सुन्दर सर्वगुरु।
जय जय भक्त जनावाञ्छा कल्पतरु।।
जय संन्यासीमणि श्रीवैकुंठनाथ।
जीव प्रति करो प्रभु शुभ दृष्टिपाल।।
भक्त गौष्ठी सहित गौरांग जय जय।
जय जय करुणासिन्धु महाशय।।

चौ०

श्रीवृन्दावन यात्रा अचरज।
गोर चन्द्र की गति विधि अचरज।।
हस्ति बाघ मति पलटी अचरज।
दरस परस सुनि बानी अचरज।।
कृष्ण कृष्ण पशु बौलें अचरज।
भगवत महिमा सब ही अचरज।।

दोहा

चरित सोइ बरनौं कछु, श्रीकृष्ण चैतन्य।
मारग वृन्दाविपिन जिमि, बन जनपद किये धन्य।।
बसै नीलाचल धाम तन, मन वृन्दावन धाम।
भाव गति विधि अटपटी, जानैं विरल सयान।।

चौ०

(प्रभु) भाव मगन अन्तर्मुख डोलहिं।
निजजन बिन नहिं आन सों बोलहिं।।

रामानन्द स्वरूप दामोदर।
कबहु प्राणन सखा गदाधर।।
इन सों बोलैं हित चित खोलैं।
वृन्दावन पल छिन नहिं भूलें।।

दृश्य—(महाप्रभु भावमग्न स्थित। स्वरूप दामोदर एवं राय रामानन्द पार्श्व स्थित)

समाज—

नेही दरशन हित जो आवैं।
वृन्दावन की बात चलावैं।।
"वृन्दावन कब कृपा करि हैं।
दुखी दीन जानी कब ढरि हैं।।
बर्षा विगत शरद ऋतु आई।
पुलिन रास रस सुधि उमगाई।।
शरद रैन चाँदनी सुहाई।
ढिग स्वरूप रामानन्द राई।।
भाव चाव बढ़ि चल्यौ सवाई।
कर गहि विलपत गौरा राई।।

महाप्रभु—(स्वरूप का हाथ अपने हाथों में ले दैन्य-दुःख सहित)

दो०

प्राण सखे! रक्षा करौ, मेरे ब्याकुल प्राण।
बिन वृन्दावन बचैं नहीं, सत्य सत्य लैहु जान।।

(रामानन्द का हाथ पकड़)

तुम ही करौ सहाय अब, रामानन्द सुजान।
श्रीवृन्दावन दरस हित, अटक रहै मम प्रान।।
वृन्दा-वृन्दावन रटत, गये वर्ष दस बीत।
अब प्राणहू बीतन चहैं, राखौं कैसे मीत।।

पद-भीमप०

बीतत दिन दिन बिन वृन्दावन, करौ बेगि सहाई।
आस ही आसा में स्वासा बीतत, आस पुराओ भाई।।१।।
वह मधुवन, वह यमुना पुलिन, तरु तमाल कदम्ब कुंजन।
वह गोकुल वह गो गोपीकुल, नैनन देओ दिखाई।।२।।

(भाव-स्फूर्ति-दर्शन! मुरलीधर रासबिहारी-श्वेत शृङ्गार पृष्ठ पीछे)

वह वंशीवट, वंशी वदन नट,
वह बनमाला विहरन उर तट।
वह कल कल राधा राधा रट,
पल पल 'प्रेम' बौराई।।३।।

हा प्राणनाथ! वृन्दावननाथ! लै चलौ मोकूँ लै चलौ (उठते हुए) आयी मैं आयी प्यारे! वह बजी वंशी! मधुर-मधुर वंशी! मेरोइ नाम लै रही है-राधा-राधा! प्यारे श्याम! श्याम (दौड़ना चाहते। दोनों जने पकड़ लेते-प्रभु मूर्च्छित होकर उनकी गोद में पड़ जाते)

समाज— **दो०**

आप गये कालिन्दी तट, विलसन रास विहार।
देह सम्हारत दोउ जन, करत उपाय विचार।।

स्वरूप—रामराय जी! अब तो जान देओ इनकूँ वृन्दावन। दिन में दस बार इनको यह दशा है जाय है। यह न हम देख ही सकैं है, न रोक ही सकैं हैं। इनके तो नैन, मन, प्राण, वाणी क्रिया, सब में वृन्दावन समाय रहे हैं। फिर इनके तन कूँ ही क्यूँ अटकाय कैं राखैं? जान देओ। वृन्दावन के दर्शन करैंगे तो यह भावावेग कछु शान्त है जायगो एवं प्रकृति हू कछु स्थिर गम्भीर है जायगी।

रामानन्द—कहा कहूँ सखे! प्रभु को स्वरूप कछु और, लीला कछु और बा दिना की बात है जब गोदावरी तट पै या संन्यासी रूप में प्रभु के मोकूँ प्रथम दर्शन भयौ हो तब मैंने इन्हीं आँखिन सों प्रत्यक्ष देख्यो हो कि एक साँवरी मूर्त्ति शीतल सौदामिनी की छटा सों आवृत्त मेरे सम्मुख ठाड़ी है। वह न गौर ही गौर है न श्याम ही श्याम है। वह गौर श्याम को एकीभूत रूप है, महाभाव रसराज मूर्त्ति मेरे नैन-मन-प्राणन में समायी भई है एवं चिरकाल समायी रहैगी। स्वयं प्रभु के भुलायवे पैहू में कदापि भूल नहीं सकूँगो। ऐसे तो ये हैं—स्वयं राधाकृष्ण स्वरूप। परन्तु इनकी लीला तो देखो-कैसी विपरीत है कभु अपने कूँ भक्त जान और कभु राधा जान कै श्रीकृष्ण के लिए रोय रहै हैं। कैसी भूल भूलैयाँ हैं। संसार यदि भूल-भ्रम में पर जाय तो कहा आश्चर्य!!

स्वरूप—यह सब लोक-शिक्षा के लिए लीला है। कोई महापुरुष तो भक्ति को उपदेश ही करै हैं, परन्तु प्रभु भक्ति करकै दिखावैं--वृन्दावन के लिए, श्रीकृष्ण के लिए स्वयं रोय रोय कै रोमनो सिखाय रहै भक्ति को रूप दिखाय रहै एवं प्रेम को पाठ पढ़ाय रहै है।

समाज— **दो०**

वाह्य द्रशा कछु पाय प्रभु, जल्पत नाम पुकार।
संग सखा चेतावहिं, निज निज नाम उचार।।

महाप्रभु—(धीरे धीरे) हा वृन्दावन! यमुने! रासविहारी! प्यारे कृष्ण!

स्वरूप—देखो देखो प्रभु सचेत है रहे हैं। हे प्रभो! दीनबन्धो! सावधान होवें। मैं स्वरूप दामोदर हूँ! मेरी ओर कृपा दृष्टि पात करें।

रामा०—मैं राय रामानन्द हूँ—आप को दीन दास। आप नेक मेरे प्रति शुभ दृष्टि-दान करें।

महा०—(धीरे धीरे उठ बैठते हैं--दोनों का हाथ पकड़ कुछ देर मौन रह) स्वरूप! राम राय! तुम दोनों मेरे परम अन्तरंग जन हो, मेरी आत्मा हो। मेरे कोई विचार, कोई भाव तुम सों गुप्त नहीं हैं। यासों सुनौ। मैं वृन्दावन जानो चाहूँ हूँ। यामें मेरी सहायता करौ।

"मोर सहाय करो यदि तुम दुई जन।
तबे आमि जाइ देखि श्रीवृन्दावन।।

विहाग-केहरवा-पद

रात उठि बन पथ जाऊँगो पलाई।
संग न लऊँ दूजो काहु को भाई।।
सुधि पाय कोई यदि पाछे लागे धाई।
राखि लीजौ कहि सुनि करियो सहाई।।
मुद मन देओ आज्ञा पाओ नहिं दुख।
मारग बनैगो सुखमय तुम्हरे ही सुख।।

यासों प्रसन्न मन सों मोकूँ अनुमति देओ, तब ही मैं निर्विघ्न आनन्दपूर्वक वृन्दावन की यात्रा कर सकूँगो—

स्वरूप—(हाथ जोड़)

जाओ सुखेन जाओ वृन्दावन धाम।
मिलै सुख जैसे आपहिं सोइ हमरो काम।।

(परन्तु प्रभो)

जाओगे एकाकी तो रोयँगे हमरे प्रान।
लैओ संग इक विप्र, सेवक सुजान।।
वसन कौपीन जलपात्र लै चलि है।
भिक्षा हित सुख सुविधा सब करि है।।

इतनी विनती प्रेम लैओं प्रभु मान।
जाओ सुख पाओ जहाँ वृन्दावन धाम।।

महाप्रभु—परन्तु कौन कूँ संग लै जाऊँ। एक कूँ लऊँगो तो दूसरो दु:ख मानैगो। हाँ यदि हमारी भक्त मंडली में सों बाहर को बाहर को कोई भक्त विप्र होवै तो वाकूँ लै चलूँगो।

रामानन्द—प्रभो! बलभद्र भट्टाचार्य ऐसे ही हैं। वे अब कै ही तो नवद्वीप ते आप के संग आये हैं। आप में बड़ी श्रद्धा भक्ति राखैं हैं। तीर्थयात्रा को उनकी अभिलाषा हू है। वे आप की सब प्रकार सों सेवा करेंगे। उनकूँ आप लै जावैं तो हम निश्चिन्त है जायँगे।

महा०—तो अब शीघ्र ही उचित प्रबन्ध करौ। और काहू कूं खबर न परै। मैं आज श्रीजगन्नाथ प्रभु के शयन को दर्शन करूँगो। रात्रि विश्राम करकै प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त मैं चुपचाप निकस जाऊंगो। (पटाक्षेप)

समाज— **दोहा**

प्रभु आज्ञा सिर धारि दोउ, लियो बलभद्र बुलाय।
सेवा भार समर्पि सब, भली विधि समुझाय।।
शयन दरस जगन्नाथ करि, आय प्रभु निज वास।
निशि बिताई माला जपत, मोर गमन सु हुलास।।

चौ०

ब्रह्म बेला उठि च पलाई।
तिथि विजया दशमी सुखदाई।।
संग बलभद्र विप्र बड़ भागी।
वृन्दावन दरसन अनुरागी।।

महाप्रभु—(प्रवेश-बलभद्र सहित-कमंडलु-कौपीन-कन्था लिए) सुनो भट्टाचार्य! हम राजमार्ग छोड़ कै वन मार्ग सों चलैगे एक तो वन को दृश्य सात्विक सुन्दर! दूसरे प्रिय पशु-पक्षी को संग। प्रेम सों कृष्ण कृष्ण गाते चलेंगे। मोसों अनावश्यक वार्ता नहीं करनो। अब चलो चुपके से निकल चलैं। वन में खूब गायँगे-नाचेंगे! यहाँ नहीं।

बलभद्र—में आगे-आगे चलूँगो प्रभो! मार्ग बतामतो भयो।

महा०—जैसी तुम्हारी इच्छा। धीरे-धीरे कृष्ण-कृष्ण कहते चलो।

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे। (प्रस्थान)

समाज— **चौ०**

भोर भयो तहँ प्रभु नहिं पाये।
भक्त विकल खोजत अकुलाये।
राम राय स्वरूप समझाये।
गुप्त गमन वृत्तान्त जनाये।।
रहे तन हारि मारि रहे मन।
मनावैं वेगि मिलै प्रभु दरसन।।
उत प्रभु पथ तजि उपपथ धाये।
दायें कटक करि वनहिं धँसाये।।
वन गम्भीर निर्जन पथ जावहिं।
जेहि मग भूलि चलत, कोउ नाहिं।।

महाप्रभु—(बलभद्र सहित प्रवेश कृष्ण कृष्ण गाते हुए)

(दृश्य—चारों तरफ हिंसक पशुओं के झुंड घूम रहे हैं)

समाज— **चौ०**

हिंस्र पशु जहँ तहँ वन डोलहिं।
लखि प्रभु मारग तजि चलि जावहिं।।
कहूँ मृगन के यूथ किलोलैं।
कहूँ बराहू गन डोलैं बोलैं।।
विचरैं बाघ हस्ती दल भारी।
तिन मधि प्रभु चलैं नाम उचारी।।

महा०—("कृष्ण कृष्ण" कहते हुए उनके बीच में से चलते रहते हैं)

समाज—

आपन भाव महँ आप विभोरा।
लखै कौन बाहर बन ओरा।।

(अनुकरण)

(१) वलभद्र हृदय भय भारी।
प्रभु प्रताप कछु जानत ना री।।
डरपत झिझकत सिमटत जावहिं।
प्रान रुद्ध मुख नाम न आवहिं।।
प्रभु अंग लगि लगि चलत डराये।
पुनि-पुनि देखत आये न धाये।।

(२) जीव जन्तु वहु आवहिं जावहिं।
देखैं कोई, कोई शीश नमावहिं।।
"सिंह एक दिन पथे ब्याघ्र कोरि आछे शयन।
आवेशे तार गाये प्रभुर लागिलो चरन।।"

(अनुकरण)

(३) **दोहा**

सिंह द्वै मारग मधि, सोवत पाँव पसार।
गौर हरि नरसिंह को, लाग्यौ पद सुकुमार।।

सो०

प्रभु तब होय सचेत, 'कृष्ण कृष्ण' उचारहिं।
नाहर प्रेम समेत, 'कृष्ण कृष्ण' कहि नाचहिं।।

चौ०

हरि की कृपा कहा नहिं होई।
आँखिन आगे देखहु सोई।।
(४) हरि वनचर नर हरि अनुसरहीं।
पालित श्वान ज्युँ आचरहीं।।
'कृष्ण कृष्ण' नर हरि मुख गावहिं।
'कृष्ण कृष्ण' बन हरि उच्चारहिं।।

मृग— **पद**

पंथ चलत प्रभु करैं उच्च कीर्तन।
मधुर कंठ ध्वनि सुनि आये मृगीजन।।
ध्वनि सुनि दायें बायें चलैं मृगी संग।
प्रभु कर कमल सों सहरावत अंग।।
गायो श्लोक भागवत कृष्ण वेणु माधुरी।
कृष्ण दरस हित जैसे आईं मृगी जुरी।।

महा०— **श्लोक**

धन्या: स्म मूढ़ मतयोऽपि हरिण्य,
एता या नन्दनन्दनमुपात्त विचित्र वेषम्।
आकर्ण्य वेणु रणितं सहकृष्णसारा:,
पूजां दधृर्विरचिंता प्रणयावलोकै:।। (भाग)

धन्य है धन्य है वृन्दावन के इन मृगिन के सौभाग्य कूँ। ये प्यारे श्यामसुन्दर की मधुर वंशी धुनि कूँ सुन करकै अपने पतिन के सहित दौरी आयीं हैं तथा अपने लोचनन कूं प्रेमाश्रुन सों पूरित करके प्यारे नन्दनन्दन की पूजा कर रही हैं।

भावार्थ— **पद**

धनि ये वृन्दावन की हिरनी।
जदपि मूढ़ रस कहा जानैं, भाग्य महामहिमनी।।
सुनतहि वेणु नाद श्याम को, पतित संग आगमानी।
पीवति वदन कमल मकरन्दहिं, लोचन सुफल लहनी।।
भरि भरि अश्रु अरघ अरपति, पाय जु प्रानन धनी।
कलपति हम बन्दी गृह माँझ, 'प्रेम' पिय विरहिनी।।

(५) बाघ मृग **चौ०**

बाघ सात पाँच तहँ आये।
बाघ हिरन हिरनी मिलि धाये।।
भले बाघ निज हिंस्र सुभाऊ।
भूले मृग भय भीय सुभाऊ।।

(बंगला)

बाघ मृग अन्योन्ये कोरे आलिंगन।
मुखे मुखे दिया कोरे अन्योन्य चुम्बन।।

चौ०

बाघ हिरनि अंग अंगन परसैं।
चूमैं मुख मुख हरषें सरसें।।
लखि वृन्दावन सुध प्रभु आई।
पद वृन्दावन महिमा गाई।।

महा०— **श्लोक**

एषा नैसर्ग दुर्वैराः सहासन् नृमृगादय।
मित्राणीवाजितवास, द्रुत रुट् तर्षणादिकम्।।

सर्वया

सहज स्वभाव वैर हिंसा क्रोध,
बड़े ही अजित, सब जीवन जीते।

मानुष मृग काहु नाहर ढिग,
बची जाय कुशल न जीवन जीते।।
(परन्तु) अजिंत हरि जहाँ वास करैं,
वहाँ अजित स्वभावहु जीवन जीते।
वैर न वैरी वृन्दावन प्रेम,
मित्र ही मित्र सब जीवन जीते।।

धन्य है ऐसे वृन्दावन कूं, जहाँ मनुष्य, मृग एवं सिंह व्याघ्र अपने सहज वैर, हिंसा, भय आदि कूँ त्याग कर मित्र की भाँति एकत्र निवास करैं हैं।

समाज—

'कृष्ण कृष्ण' करुणामय बोलैं।
'कृष्ण कृष्ण' बाघमृग बोलैं।।
बाघ हिरनी सब हिलि मिलि नाचैं।
बोलें कृष्ण, कृष्ण रंग रांचैं।।
लखि बलभद्र प्रभु गुन गावै।
वन जन्तुन बड़ भाग सराहवैं।।

बलभद्र—(स्वगत)

ये जड़ जीव सुकृति गुन हीना।
विन साधन कृतार्थ प्रभु कीना।।
जो धन योगी यति नहीं पावैं।
साधन कोटिक जन्म बितावैं।।
सो धन कृष्ण-प्रेम अनायासा।
बन जन्तुन तन मन परकासा।।
कृष्ण चैतन्य सफल प्रभु नामा।
अचेत चेत करि लेत हरिनामा।।
(जय) श्री कृष्ण चैतन्य श्रीकृष्णदाता।
प्रेम-अवतार प्रेम प्रदाता।।

अनुकरण—(दृश्य—नदी बन गजों का आगमन)

(१) हस्ती **दो०**

एक दिवस सरिता प्रभु, करि रहे प्रातः न्हान।
आये वन गजराज तहँ, करन हेत जल पान।।

चौ०

करुनामय प्रभु कौतुक कीन्हे।
जल उछारि तिन अंगन दीन्हे।।
'कृष्ण कृष्ण' मुख बानी उचारी।
अचरज तबहिं भयो जु भारी।।
कर (सूँड) उठाय करिराजहू बोलैं।
'कृष्ण कृष्ण' कहि झूमत डोलैं।।
लखि बल भद्र हरि हरि धुनि बोलै।
भय गयो भागि निर्भय डोलैं।।
चले जात प्रभु कृपा निधाना।
पग पग कृपा प्रेम करैं दाना।।

(२) मोर—

नाचैं मोर संग लगि धावैं।
'कृष्ण कृष्ण' कहि कुहुक मचावैं।।
कृष्ण कृष्ण कहैं प्रभु पुकारी।
वृक्ष लता फूलैं मुद भारी।।
खग मृग जंगल जन्तु जेते।
तरुवर लता स्थावर जेते।।
थिर चर झारी खंड के सबहिं।
दिये कृष्ण नाम किये मत्तहिं।।

(बंगला)

झारि खंड स्थावर जंगम जत।
कृष्ण नाम दिया कैलो उन्मत्त।।

महाप्रभु—कृष्ण! कृष्ण! हे वृन्दावन के खग मृग! तरुलता! हमारे तुम्हारे सब ही थिरचर के प्राणप्रिय तो कृष्ण ही हैं। वे कहाँ छिप गये! आओ! हम तुम सब मिलकर उनकूँ ढूँढें, उनकूँ पुकारैं, टेरें।

गीत

आओ आओ मिलि टेरैं प्यारे, कृष्ण कृष्ण कृष्ण।
मोर मुकुट मुरली वारे पर तन मन धन सब वारे।
बन के बावरी वन वन डोलें कृष्ण ही कृष्ण पुकारें।।१।।

जोगिन बन मन मोहन की, प्रानन बाजी वारें।
आओ तिहारे चरनन प्यारे, अँसुवन माला डारें।
प्यासे प्रान प्रेम पपैया, बूँद श्याम क्यूँ न डारे।।२।।
कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण (गाते गाते प्रस्थान)

(३) भील—

भील कोल वन जातिन गामा।
सुन्यौ नहीं कानन हरि नामा।।

अनुकरण—

कृष्ण नाम प्रथमहिं सुनि पाये।
लखे जात प्रभु नामहिं गाये।।
ठाड़े ठाड़े बदन निहारें।
मुग्ध मुदित मन नयन न हारें।।
अद्‌भुत रूप छटा मुख माधुरी।
अद्‌भुत नाम कर्णन रस पूरी।।
सुनत-सुनत बोलन हू लागे।
कृष्ण कृष्ण नाम मुख जागे।।
उलटि भागि चलै पुनि गामा।
कहत कृष्ण कृष्ण मुख नामा।।
मारग मिलै भील कछु भाई।
मानहिं अचरज कहा ये गाई।।
देखत सुनत सुनत मन भाये।
कृष्ण कृष्ण कहि नाचे गाये।।
नाचत गावत वे हू भागे।
महा प्रभु निज मारग लागे।।
एकन मुख दूजो सुनि पावै।
सो गावै तीजो हरषावै।।
तीजेन मुख चौथो पाँचों गावैं।
नाचैं हँसैं रोय सुख पावैं।।
अर्थ न जानैं नाम मुख गावैं।
नाम प्रताप प्रगट दरसावैं।।

(बंगला)

सभे कृष्ण हरि बोलि नाचे काँदे हासे।
परम्पराय वैष्णव होइलो सर्व देशे।।

दो०

प्रभु मुख कोउ आन मुख, सुनि सुनि बोलैं नाम।
नाम परम्परा चल परी, वैष्णव भये मग गाम।।
करहिं न प्रभु कछु आपहि होवै।
भानु उदय प्रकाश त्रिज्यूँ होवै।।
मुख श्री लखि लखि नाम श्री सुनि सुनि।
निकसे मुख सों कृष्ण नाम धुनि।।
या विधि प्रभु मारग चलि जावहिं।
वृन्दावन मिष सों नाम प्रचारहिं।।
वीहड़ वन कभु बस्ती न पावैं।
तरु तल वन महँ रैन बितावैं।।
सेवक कन्दमूल लै आवैं।
भोजन करि प्रभु हरि गुन गावैं।।

भिक्षा—

कभु कहूँ विप्र जो मिलि जावै।
सादर बोलि सो भिक्षा करावै।।
कभु बलभद्र वस्तु जुटावै।
कछु बनाय कछु राखि बचावै।।
दिवस तीन चार कभु चलि जावैं।
वन पै वन नहिं गाम लखावै।।
वस्तु बचाई काम तहाँ आवै।
करि सेवा प्रभु बहु सुख पावै।।
झरना जल न्हावैं त्रय बारा।
तपैं अग्नि बन काठ अपारा।।

(**भिक्षा**—अन्त में)

निर्जन वन पथ अति प्रभु भावै।
निज मुख वदत भृत्य सुख पावैं।।

महा०—भट्टाचार्य जी! अब की यात्रा को जैसो सुख मोकूँ तब नहीं भयो हो जब मैं गत वर्ष गौड़ देश की यात्रा में राम केलि गाम तक गयो हो। तब लक्ष-लक्ष जनता को कोलाहल हो और अब शान्त वन, निर्जन पथ सघन वृक्षलता, वन्य पशु-पक्षी दर्शन, कन्द मूल फल भोजन! सब सात्त्विक सुखमय! श्रीकृष्ण-कृपा सों तुम्हारो संग मिल्यो है। तुम्हारी सेवा सों ही मोकूँ यह सुख प्राप्त है रह्यौ है।

बलभद्र— **चौ०**

हौं अधम तुम कृष्ण दयामय।
सहज सदा दीनन पै सदय।।
सबन छाँड़ि मोकूँ संग लाये।
मम कर भिक्षा प्रेम सों पाये।।
कागहिं कियो जु गरुड़ समाना।
तुम स्वतंत्र स्वयं भगवाना।।

समाज—

सेवक शेष प्रसाद हिं पावै।
जन्म सफल कृतकृत्य मनावै।।

महा०—भट्टाचार्य जी! अब तुम हू श्रीकृष्ण को प्रसाद पाओ।

बल०—जो आज्ञा प्रभो! आप विश्राम करैं।

(पटाक्षेप)

समाज— **पद**

ऐसो को उदार जग माहीं।
बन बन जाय बन जीवन सों, कृष्ण कृष्ण बुखाहीं।।१।।
राज पथ तजि वृन्दावन को, अगम बन पथ जाहीं।
दरसन दुर्लभ नाम जु दुर्लभ, सुलभ लुटावत जाहीं।।२।।
जप तप संयम तीरथ व्रत करि, आवत जो मुख नाहीं।
सहज ही विन साधन, सो प्रेम, क्रूर वाघ भील गाहीं।।

इति झारखंड लीला

❖

काशी–आगमन

श्लोक

यत्र यत्र पर्वतञ्ज नदीश्च परमः प्रभुः।
पश्यन् गोवर्द्धनं वृन्दावनं कालिन्दीमप्यसौ।।
मत्त हुङ्कार निर्घोषो मत्त द्विरद विक्रमः।
नृत्यति धावति रौति क्षितौ विलुठति क्वचित्।।
एवं क्रमेण भगवान् काशीमुपजगाम ह।।

कवित्त

नीलाचल धाम तजि, जात वृन्दावन गौर,
तन झारिखंड माँझ, मन जहाँ वृन्दावन।
लखि गिरि होत भ्रम, गिरिराज गोवर्धन,
नदी लखि कालिन्दी तो बन लागे वृन्दावन।।
भाव प्रभाव मत्त नाचैं गावैं हुँकार भरैं,
लोटैं भूतल कभू ऊँचे सुर पुकारन।
पंच दस दिन चलि, बन जीव धन्य करी,
पार करी झारिखंड, आये आनन्द बन।। (काशी)

(बंगला)

एइ मतो नाना सुखे प्रभु आइला काशी।
मध्याह्न स्नान कैला मणि कर्णिकाय आसी।।

कवित्त

आये वाराणसी अविनाशी काशीपुरी शिव,

(अनुकरण)

घाट मणिकर्णिका पावन जगकारी है।
आवैं जावैं न्हावैं गावैं, हर गंगे विश्वनाथ,
बिप्र वैश्य यति सती, भीर नर नारी है।।

(प्रवेश महाप्रभु भाव निमग्न, नतशीश, 'कृष्ण-कृष्ण' उपांशु जपते हुए। सेवक बलभद्र कमंडलु, कौपीनादि लिए।

(अनुकरण)

अवलोक्यो यतिराज, आवत अद्‌भुत एक,
नतशीश भीगे नैन, जपैं कृष्ण हरी है।
हेरत हिरायो हियो, उमगायो 'प्रेम' तव,
बोल उठ्यौ चहुँ ओर, बोल हरि हरी है।।

जनता०—हरि बोल, हरि बोल

समाज— दो०

बोलत हरि बोल हरि, हेरत अद्‌भुत रूप।
अनुमानत यह कौन है, यतिराज अनूप।।

जनता— कवित्त

सोनो सो तपायों रंग, भराये यौवन अंग।
छलकि लावनि परै, रोम रोम भरी है।।
डहडहे कमल से, भरे भराये नयना,
बूँद बूँद मकरन्द रस झरि परी है।
यह रंग रूप यह, यह भाव प्रेम यह,
मति गति हेरि हेरि, मोहै नर नारी है।।
कोई कहैं नरभूप, भयो यतिराज अनूप,
सुर सुरराज कहैं कोई स्वयं हरी है।।

१. पुरुष—भैयाओ! यह तो कोई नवीन संन्यासी राज हमारी काशीपुरी में पधारे हैं। यह कोई राजकुमार तो नहीं हैं जो अब संन्यासी है गये हैं।

२. पुरुष—यह कोई गन्धर्व देवता या स्वयं देवराज इन्द्र तो नहीं हैं जो काहू स्राप सों मनुष्य योनि कूँ प्राप्त है गये हैं और अब अपनी मुक्ति के लिए तपस्या करवे कूँ निकस परैं है।

३. पुरुष—भैयाओ! तुम्हारी बुद्धि के तर्क-अनुमान तो तुम जानो। मेरो हृदय तो कहै है कि ये स्वयं भगवान् हरि ही हैं जो काशी विश्वनाथ-दर्शन कूँ संन्यासी के छद्रम-वेश में पधारे हैं। ये तो मेरे चित्त कूँ वरवश खैंचै ही लेय हैं एवं मेरे मुख सों हू स्वत:—हरि बोल हरि बोल.........

समाज— पद

तपन मिश्र विप्र, करै गंगा स्नान।
लखि गौरचन्द्र उदय, भयो विस्मय ज्ञान।।

तपनमिश्र—(गंगा-स्नानकारी प्रौढ़ बयस का विप्र दौड़ महाप्रभु चरण में प्रणाम) प्रभो! प्रभो! मैं आप को दास तपन मिश्र हूँ।

समाज—

चीन्हि तत छिन धाय आय पर्यौ चरन।
रुदत प्रेम भरि विस्मित सब जन।।
लीन्हे उठाय प्रभु भुज भरि भेंटे आप।
तपन हृदय सुख दुख उमगात।।

तपन०—(नतजानु महाप्रभु का दक्षिण हस्त पकड़े)

पद सोहनी

कहाँ वह रूप तुव, कहाँ वह भेष।
काहे प्रभु डोलो इत, तजि निज देश।।

महाप्रभु—कहत प्रभु जी तुम चीन्हे भले मोकूँ।

तपन०—भूले कैसे कोई लखे, वारेक तुमकूँ।।
बारह वर्ष पूर्व प्रभु दरसन पाये।
गये पूर्व बंग आप, संग छात्र सुहाये।।
(तव सों आप की यह श्री मूर्त्ति)
नैनन धँसि मन मूषि, आत्मा में फँसी।
फँसी सो फँसी कल्प कल्प लौं प्रेम वसी।।

महाप्रभु—परन्तु तब तो मेरो पंडित निमाई को भेष हो परन्तु अब.......
....

तपन०—

आसावरी

भेष दूसरो तो कहा तुम नहीं दूसरे।
मुख नहीं दूसरो नैन नहीं दूसरे।।
लाख लाख तारेन में चन्दा चमके न्यारे।
कोटि कोटि मूरति में, तैसे मुख तिहारो।।
(न भूलवे को एक अन्य कारण हूँ है। आप ही तो मेरे)

तपन०—गुरुदेव परमाराध्य आप ही मेरे।
दियो नाम महामंत्र 'हरे कृष्ण' मोरे।
मंत्र दियो आज्ञा करी बसो काशी जाय।
मिलूँगो मैं वहीं कभु, कोई समै आय।।

(आप की आज्ञानुसार काशी वास करतो भयो मोकूँ)

गिनत गिनत दिन बारह वर्ष बीते।

आशा-निराशा बीच, मरी मरी जीते।।

तप भयो पूरो आज, अबधि भई पूरी।

लही 'प्रेम' आज गुरु, गोविनद पग धूरी।।

अब आप चलिकै दास के घर कूँ पवित्र करैं यही श्रीचरणन में प्रार्थना है।

महा०—अच्छी बात है, परन्तु पहले मणि कर्णिका घाट पै गंगा-स्नान एवं विश्वनाथ भगवान् तथा बिन्दु माधव के दर्शन करनो चाहूँ हूँ।

तपन०—अवश्य मेव प्रभो! स्कन्द पुराण में लिख्यो है कि जाने मणिकर्णिका में गंगा स्नान करके विश्वनाथ जी के दर्शन कर लियो वाने समस्त तीर्थन में न्हाय लियो और बाकी तीर्थ यात्रा पूर्ण है गई। यह सत्य है सत्य है, बार-बार सत्य हैं।" यासों चलिये प्रभो स्नान करवे।

(दोनों का प्रस्थान। पटाक्षेप)

समाज— पद-संकीर्तन

हर हर महादेव, काशी विश्वनाथ शम्भो।

(जोड़) अयोध्या मथुरा माया काशी काँची अवन्तिका।।

सात पुरी ये मोक्षदायिनी, तिन में मुख्याकाशी।

हर हर महादेव०

(काशी) धरती पै है नहीं धरती पै, तीन लोक सों न्यारी।

शंकर के त्रिशूल पै राजति.

जब होवै प्रलय भारी।।

हर हर महादेव०।।

'आनन्द कानन' नाम है दूजो, शंकर कूँ अति प्यारी।

देह तजै यहाँ मुक्त है जावै, ब्रह्म रसायनकारी।।हर०

काशी काशी काशी जपै जो, रहे विदेश हू कोई।

सोहू ब्रह्मपद मुक्ति पावै, कहैं शास्त्र सब कोई।।हर०

विश्वनाथ हर विश्वनाथ, हर विश्वनाथ यह नामा।

जपै तीन काल शिव जी, वाको स्वयं जपै हैं नामा।।हर०

श्लोक

नित्यं विश्वेश विश्वेश, विश्वनाथेति यो जपेत्।
त्रिसन्ध्यं तं सुकृतिनं, जपाम्यहमपि ध्रुवम्।।

हर हर महादेव०

भुजा उठाय कहें शंकर आप, बारम्बार पुकार।
तीन गुनन की सृष्टि बीच, तीन ही वस्तु सार।।हर०
विश्वनाथ लिंग, काशीपुरी, अरु मणिकर्णिका वारि।
सत्य सत्य ये तीन सत्य हैं, शिवजी कहैं पुकारि।।

हर हर महादेव०

(प्रवेश महाप्रभु, तपन मिश्र और बलभद्र)

समाज— **दो०**

न्हाय गंग मणिकर्णिका का, तन मन शीतल प्रान।
विश्वनाथ हर दरस कूँ, चलै हरी भगवान।।

तपन०—प्रभो! मणिकर्णिका पै गंगा-स्नान तो है गयो। अब विश्वनाथ भगवान् के दर्शन के लिए पधारें।

महा०—हाँ चलौ! मार्ग में काशीपुरी की कछु महिमा सुनामते चलौ। यह काशीपुरी शिवजी कूँ अतिशय प्रिय है एवं जीव के लिए सहज मोक्षदायिनी है। यासों याको कछु परम पावन यश मोकूँ श्रवण कराय कै कृतार्थ करौ।

तपन०—हे सर्वज्ञ प्रभो! आपके सम्मुख मैं कहा कहवे योग्य हूँ परन्तु आज्ञा शिरोधार्य करके अपनी जिह्वा पवित्र करवे के तांई यत्किंचित कहूँ हूँ। पुराण शास्त्र के अनुसार यह काशी आद्य वैष्णव स्थान है। अर्थात् पहले यह भगवान् विष्णु की पुरी ही। पश्चात् शंकर भगवान् ने उनसों याचना करकै प्राप्त करी है।

महा०—सो कैसे? याकी कथा तो सुनाओ।

तपन०—पुराण में ऐसी कथा है कि आदि में ब्रह्माजी के चतुर्मुख के ऊपर एक पंचम मुखहू हो। बाकूँ एक बार शंकर भगवान् ने काट डार्यौ। तो वह सिर उनकी हथेली सों चिपक गयो एवं ब्रह्म हत्या उनके पीछे पड़ गई। महादेव जी भागे-भागे डोलवे लगे। बदरी नारायण, कुरुक्षेत्र आदि अनेक तीर्थन में डोलै, परन्तु वह सिर हथेली सों चिपक्यो ही रह्यौ! अन्त में वे काशी आये तो याकी सीमा में प्रवेश करते ही ब्रह्म-हत्या ने उनको पीछो छोड़ दियो एवं गंगा में जब स्नान कियौ तो हथेली सों चिपक्यो सिर हू छूट गयो या कारण

वह स्थान 'कपाल मोचन तीर्थ' के नाम सों विख्यात भयो। काशी क्षेत्र को ऐसो प्रभाव प्रत्यक्ष अनुभव करके महादेव जी ने विष्णु भगवान् सों प्रार्थना करके याकूँ माँग लियो एवं अपनो नित्य निवास स्थल बनाय लियो। यह भगवान् शिव एवं पार्वती जी कूँ अतिशय प्रिय है यासों याकूँ 'आनन्द कानन' हू कहैं हैं। यहाँ देह-त्याग सों मुक्ति प्राप्त होय है यासों याकूँ 'अविमुक्त क्षेत्र' कहैं हैं—"काश्यां हिं मरणान्मुक्तिः" सुप्रसिद्ध ही है।

महा०—हाँ सो तो सुप्रसिद्ध ही है परन्तु यह तो बताओ कि यह मुक्ति कौन की होय है—पापिन की कै निष्पापिन की?

तपन०—वैसे तो दोनों न की ही मुक्ति होय हैं परन्तु पापिन की तब मुक्ति होय है जब वह बाहर को ही पापी होवै यहाँ काशीवास करकै कोई पाप न कर्‌यौ होय। और जो यहाँ वास करके हू नित्य पाप करै हैं, वह तीस हजार वर्ष तक पिशाच-योनि में भैरव-यातना भोग करै है, तब मुक्त होय है। स्कन्द पुराण काशी खण्ड में स्वयं शिव जी के वचन प्रमाण है :—

श्लोक

वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा।
योनिं प्रास्यति पैशाचीं, वर्षाणामयुत त्रयम्।।

तथा यदि ऐसो पापी काशी के बाहर चल्यौ जाय तो यह रुद्र-पिशाच बनै है और तीस हजार वर्ष तो कहा करोड़ न कल्प में हू शुद्ध नहीं होय है। काशी में पाप करवे को ऐसो भयंकर फल है। अब हम विश्वनाथ मन्दिर के समीप आय पहुँचैं हैं या गली सों पधारिये प्रभो। (प्रस्थान)

(पर्दा खुलता है। विश्वनाथ-लिंग-दर्शन)

लिंग के चारों ओर जल हरी नहीं, चौकोन घेरा है। उनके बाहर चारों ओर से कटघरा। बाहर से दर्शन)

महा०—(संकीर्तन मंडली-खोल करताल सहित)

भैरव तीताला

शिव शिव शम्भो, हर हर महादेव।
भस्म अंगधर, जटा गंगधर,
भालचन्द्रधर शिव शम्भो।।
उमा वास धर, धवल धाम धर,
शान्त ध्यान धर शिव शम्भो।।
शिव शिव शम्भो०।।

व्याल माल धर, मुण्ड मालधर,
गरल कण्ठधर शिव०।
कर त्रिशूल धर, डमरू परशु धर,
अक्षमालधर शिव०।।

महा०—(संकीर्तन मंडली मध्य उद्दाम नृत्य-कीर्तन)

समाज— दो०

अद्‌भुत विश्वनाथ दरस, अद्‌भुत दर्शक गौर।
अद्‌भुत कीर्तन-नृत्य-रस, जो देखे सो भोर।।

पुजारी—धन्य है भगवन् आप की शिव भक्ति कूँ। हमारे भोले बाबा कूँ गीत, नृत्य, वाद्य अत्यन्त ही प्रिय हैं। अतएव संकीर्तन के रूप में आप की यह वाङ्मयी नादाञ्जली अवश्य ही उनको स्वीकृत हुई है। अब आप उनके ब्रह्म स्वरूप ज्योति लिंग विश्वनाथ जी के दर्शन करें। उनके द्वादश ज्योति लिंगन में ये विश्वनाथ जी प्रमुख हैं। इनके सम्बन्ध में स्कन्द पुराण, काशीखण्ड में स्वयं सदाशिव भगवान् के वचन हैं कि "वैसे तो मैं सब ही लिंग स्वरूपन में स्थित हूँ परन्तु यह विश्वेश लिंग तो मेरी परामूर्ति है" :—

श्लोक (परन्त्वियम्)

अहं सर्वेषु लिङ्गेषु तिष्ठाभ्येव न संशयः।
परन्तु इयं परामूर्ति र्मम लिङ्गस्वरूपिणी।।

जो प्रतिदिन त्रिसंध्याकाल में "विश्वनाथ, विश्वनाथ, विश्वनाथ जप करता है उसका नाम मैं भी निश्चय ही जप करता रहता हूँ।

नित्यं विश्वेश विश्वेश विश्वनाथेति यो जपेत्।
त्रिसन्ध्यं सं सुकृतिनं जपाम्यहमपि ध्रुवम्।।

ऐसी अपरम्पार श्रीविश्वनाथ एवं विश्वनाथपुरी की महिमा है। अतएव आप सब मिलकर उनकी नाम-ध्वनि का मंगल घोष करें।

संकीर्तन

हर हर महादेव शम्भो, काशी विश्वनाथ गंगे।
(आरती, दण्डवत प्रणाम। महाप्रभु का प्रस्थान)

समाज— दो०

आगे बिन्दु माधव दरस, कीन्हें श्रीहरि गौर।
समय जानि गमने पुनि, तपन मिश्र गृह ठौर।।

चौ०

विप्रसवंश पूजन कीन्हो आदर, मान अधिक ही दीन्हो।
प्रभु चरणोदक पी मतवारा, नाचत मिश्र हर्ष अपारा।।
भोजन शुचि बलभद्र बनाये, करि भिक्षा पौढ़े प्रभु भाये।

दृश्य (महाप्रभु शय्या पर लेटे हैं। १०-१२ वर्ष का बालक रघुनाथ बैठा चरण-सेवा कर रहा है)

दो०

प्रभु पौढ़त, पग चाँपहिं, मिश्र पुत्र रघुनाथ।
वयस बाल पै भाग बड़, पायो पद श्रीनाथ।।

पद

बलि बलि जइये भाग रघुनाथ।
विश्वम्भर पद पद्म पलोटत, प्रेम पुलक भर गात।
जिन पद पद्म पराग कना हित, अद्वैत-शिव ललचात।
अंक लह्यौ मानो रंक महा निधि, कौन पूर्वले भाग।।
बिन साधन सब साधन फल 'प्रेम'।
करुनामय दिये आप।।
बलि बलि जइये या करुणा की।
वारिये साधन लाख।।

चौ०

पद सेवा दै प्रभु सब दीनी।
भक्ति विरक्ति शक्ति निज दीनी।।
आगे धाम वृन्दावन आये।
भट्ट रघुनाथ गोस्वामी कहाये।।

दो०

चन्द्रशेखर भक्त इक, गौर भक्त पद दास।
सखा जु तपन मिश्र के, करत काशीपुरी वास।।

चन्द्रशेखर—(प्रवेश। चुपचाप खड़े दर्शन करता रहता है)

चौ०

समाचार सुनि आतुर धायो।
लखि मुखचन्द्र परम सुख पायो।।

सोवत समुझि मौन विलोकत।
अद्‌भुत माधुरी मनहिं मोहत।।
सहज भाव नयन उधारे।
प्रणमत चन्द्रशेखरहिं निहारे।।

महाप्रभु—ओहो चन्द्रशेखर जी! भले मिले। कहा तुमहू काशी-वास कर रहै हो?

चन्द्र०—बड़ी कृपा करी कृपा सिन्धो! दीन बन्धो! जो हम दीन-दुखी दासन कूँ स्वयं पधार कै दर्शन दियो!

महा०—काशी-वास करकै दीन-दुखी कैसे? श्रीमहादेव जी तो परम वैष्णव हैं—वैष्णवन में अग्रगण्य हैं—"वैष्णवानां यथा शम्भुः" (भाग) जापै भोले बाबा रीझ जायँ हैं, वाके लिए भक्ति को भंडार खोल देय हैं। अतएव उनकी पुरी में, उनकी शरण में आय कै कोई दीन-दुखी कैसे रह सकै है?

चन्द्र०—हे अदोषदर्शी समदर्शी प्रभो! आपको वचन सत्य है। भगवान् शिव की कृपा है तो ऐसी ही जैसे आपने बतायाी परन्तु या काशी में भक्ति के भक्त नहीं, मुक्ति के ही भक्त अधिक है। यहाँ जो कुछ भक्ति है मुक्ति के ही लिए है :-

कवित्त

नाम जाको मुक्तिपुरी, मुक्ति मिलै मरै यहाँ,
महिमा ए सुनि दौरि दौरि जन आवैं हैं।
न्हावैं गंग मुक्ति हेत, मुक्ति हेत शम्भु ध्यावैं,
विश्वनाथ सेबैं नित, मुक्ति फल चाहैं हैं।।
होन चहै कौन कहौ शिवगण शिवदास,
बनै शिव आप शिवोऽहं शिवोऽहं गावैं है।
मुक्ति शुक्ति मानैं ऐसी, भक्ति 'प्रेम' शून्य यहाँ,
मुक्ति के भिखारी भोले भंडारीहि ध्यावैं हैं।।

कवित्त

कथा सुनत काशी में, व्यथा होत चित्त 'प्रेम'
कहै भागवत पर भक्ति न सराहैं हैं।
नाम रूप गुण लीला, माया इन्द्रजाल कहैं,
सार तत्व वस्तु ब्रह्म निर्गुन बतावैं हैं।।
(जा श्रीमद्‌भागवत की रचना करके)

खिल ते अखिल भये व्यासहू बनाय जाहि।
ब्रह्मरूप भूलि शुक श्याम रूप गावैं हैं।
सोई श्याम ब्रह्म झूठो, साँचो ठूँठ ब्रह्म कहि।
पाठ कुपाठ करि पाठ उल्टो पढ़ावैं हैं।।

यह तो इन तपन मिश्र की परम कृपा है जो मोकूँ श्रीकृष्ण कथा नित्य सुनायौ करैं है। श्रीकृष्ण कथा एवं आप के श्रीचरण-ध्यान को ही यह फल है जो सर्वज्ञ प्रभु आपने स्वयं पधार कर कै दर्शन दियो।

तपन०—हे कृपासिन्धो! जैसे आप ने दीनदास के घर पै पधारवे की कृपा करी है, वैसे ही इतनी कृपा और हू है जाय कि जब तक आप काशी में विराजें, तब तक मेरी भिक्षा स्वीकार करैं, अन्य काहू को निमंत्रण स्वीकार न कियो जाय!

महा०—जैसी तुम्हारी इच्छा! अब सायंकाल समीप है। चलौ भगवती भागीरथ के दर्शन करैं। पश्चात् श्रीबिन्दु माधव के आरती-दर्शन कूँ चलैंगे।

तपन-चन्द्र०—चलिये प्रभु! (प्रस्थान)

दृश्य—(महामण्डलेश्वर स्वामी प्रकाशानन्द एवं संन्यासी शिष्य मण्डली की सभा)

समाज— **दोहा**

संन्यासी पुरी शिवपुरी, काशीपुरी विख्यात।
गढ़ जु वेद वेदान्त को, ध्वजा विश्व फहरात।।

कवित्त

शत शत शिष्य मधि संन्यासी-मण्डन महा,
मण्डलेश्वर राजैं ज्युँ, उडुगण ईश हैं।
नाम धन्य श्रील श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती,
वेद वेदशिरोभाग, ज्ञान के अधीश हैं।।
विंद्या मारतण्ड तेज अखण्ड जग छाय रह्यौ,
यथा नाम तथा गुण, नावैं शीश महीश हैं।
(परन्तु) ज्ञान अभिमान 'प्रेम' भक्ति-असम्मान करैं,
इत ह्दै छेदि डारैं, उत पूजैं शीश हैं।।

प्रकाशा०—वेद को महावाक्य है 'तत्वमसि' तत् त्वम् असि—वह ब्रह्म तुम हो। 'असि' पद तद् पदार्थ एवं त्वं पदार्थ का ऐक्य बोधक है तथा अनैक्य

का व्यवच्छेदक है। जीव-ब्रह्मैक्य ही परम सत्य है, ज्ञेय है घ्येय है परम पुरुषार्थ है। इस ज्ञान के बिना मुक्ति असम्भव है। "ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः"

१. **महाराष्ट्री ब्राह्मण**—(प्रवेश कर प्रथम प्रकाशानन्द स्वामी को पश्चात् संन्यासी मण्डली को) ॐ नमो नारायणाय

समाज— दो०

विप्र इक महाराष्ट्र को, करत काशी निवास।
महाप्रभु दरसन करि, आयो सरस्वती पास।।

प्रकाशा०—नारायण नारायण! आओ विप्रदेव आओ! कल तो आप के दर्शन नहीं हुए! मुख मलिन प्रतीत हो रहा है। शरीर तो स्वस्थ है न?

महा० ब्रा०—हाँ भगवन्! शरीर तो स्वस्थ है, चित्त कछु खिन्न है। वे जो नवीन संन्यासी महात्मा यहाँ काशी में पधारे हैं, उनने मेरो निमंत्रण स्वीकार नहीं कियो। मेरो विचार हौ कि आप सब महापुरुष एवं वे हू दास के घर कूँ पवित्र करते तो परस्पर के सत् समागम को अपूर्व सुख प्राप्त हों तो। वासों अब मैं वंचित है गयो।

प्रकाशा०—अरे वह युवक बंगाली संन्यासी नहीं आता है तो न आवे। काशी में संन्यासियों का अभाव क्या? तुम तो पंडित जी! न जाने क्यों उस बंगाली के पीछे पागल-से हो गये हो!

महा० ब्रा०—स्वामी जी महाराज! आप ने उनके दर्शन नहीं किये हैं। नहीं तो ऐसे शब्द न बोलते! में काशी में बारह वर्ष सों वास कर रह्यो हूँ तथा यहाँ के निवासी एवं प्रवासी सहस्र-सहस्र संन्यासी महात्मान के दर्शन किये हैं परन्तु क्षमा करैं इन श्रीकृष्ण चैतन्य देव जैसे अपूर्व संन्यासी न कबहू देख्यौ, न देख ही पाऊँगो। ऐसे हैं वे 'न भूतो न भविष्यति।।'

१. **संन्यासी शिष्य**—(व्यंग पूर्वक) अहा पंडित जी! तुम्हारे नेत्र तो सफल हो गये उनके दर्शन से, आँखें रूप के लिए रूप आँखों के लिए! हमारी आँखें तो अधन्य ही रहीं, कानों को ही धन्य कर दो-उनके रूप-रंग-वर्णन से।

महा० ब्रा०—स्वामी जी! आप अपनी वाणी कूँ आप ही खंडन कर रहे हैं—वदतो-व्यघात-दोष में पतित है रहे हैं। आप ही ने कही कि रूप आँख को विषय है तो फिर वह वाणी को विषय कैसे है सकै है। वाणी को विषय तो प्राकृत शब्द है। शब्द तो केवल अरूप-चित्र खींच सकै है। सरूप-चित्र

खींचनो तो आँख को ही काम है। "गिरा अनयन, नयन बिनु बानी" तथापि जो यदि आप कूँ शब्द-चि सों संतोष होय तो सुनौ। यकिंचित् वर्णन करूँ हूँ।

पद हमीर-३

वह कंचन मूरति रूपमयी, रसभावमयी अनुरागमयी।
(वह) कंचन तरु तन दिव्य रसाल,
परसत जानु सुवाहु विशाल।।
बसन-अरुण रंजित-छवि जाल,
पग पग मंडन अवनीभाल।
वह मूरति लोक अलोकमयी, रसभावमयी०० ।।
(वह) कमलनयन रस भार-भार,
बहैं मोतिबिन्दु वर ढार ढार।
मुख कृष्ण कृष्ण कहें बार-बार,
बरसावत अमृत धार-धार।।
वह मूति कृष्णनाममयी रसभावमयी०० ।।
(वह) भुजा उठाय चहुँ डोल डोल,
नाचत गावत हरि बोल बोल।
कभु हुँकरत 'प्रेम' घोर-घोर,
केसरी किशोर यतिराज गौर।।
वह मूरति मंगल मोद मयी, रसभावमयी०० ।।

अधिक कहा कहूँ, उनके नाम, रूप, गुण, चरित सब ही अनुपम हैं, अलौकिक है, ईश्वर-जैसे हैं। परन्तु यह स्वयं देख करकै ही विश्वास में आय सकै है, केवल सुनकरकै नहीं।

प्रकाशा०—(उपहास पूर्वक) अलं ब्राह्मण देव अलम्। मैं उस बंगाली युवक संन्यासी को खूब जानता हूँ।

छन्द (१)

वह संन्यासी है बंगाली, नदिया उसका गाम है।
गुरु बनाया केशव भारती, पाया चैतन्य नाम है।।
भेष सजाकर संन्यासी का, करता उसे बदनाम है।
ज्ञान ध्यान तजि नाचना गाना, यही चैतन्य का काम है।।१।।
(और गुण उसमें यह है कि)

छन्द (२)

रूप में उसके मोहनी माया, बोल में जादु भारी है।
जो देखे पागल बन जाता, करता जय जयकारी है।।
(और तो और नैयायिक शिरोमणि धुरन्धर विद्वान्)
सावभौम भट्टाचारज पै, फूँक जो ऐसी मारी है।
करें स्तुति हाथ जोड़ के, कहें चैतन्य अवतारी है।।२।।
(परन्तु यह कोरी भावुकता है जीव को ईश्वर मानना)

छन्द (३)

कोरी भावुकता की बातें, सार सचाई न कोई।
नाटक चेटक नट विद्या से, पार न पावे कोई।।
(अतएव) ले जाय भाव गठरिया अपनी,
यहाँ न गाहक कोई।
काशी नगरी ब्रह्मज्ञान की,
यहा न भावुक कोई।।३।।

छन्द (४)

वह संन्यासी नाम मात्र का, इन्द्रजाली है कोई।
दूर रहो छाया से उसकी, लग न जाय हवा कोई।।
बने बावरे भटकोगे कहीं, लोक व परलोक खोई।
सुनो वेदान्त मैं सिंह बनाऊँ, भेड़ बनो मत कोई।।४।।

अतएव पंडित जी उस कपट संन्यासी चैतन्य का संग नहीं मुझ वेदान्ती संन्यासी का संग करो जिससे जीवन-जन्म सुधर जाय! समझे न?

महा० पं०—(दु:खपूर्वक हाथ जोड़) भगवन्! आप नारायण स्वरूप हैं। आप कूँ उत्तर दैवे की धृष्टता मैं नहीं। सकूँ हूँ परन्तु एक अन्य संन्यासी 'नारायण' की निन्दा हू श्रवण नहीं कर सकूँ हूँ। अतएव ॐ नमो नारायणाय।

(प्रस्थान)

प्रकाशा०—(ब्राह्मण को जाते देख) अहो अज्ञजन ज्ञता! अहम्मन्यता! मेरा यथार्थ कथन तो हुआ निन्दा! इसका भावुक प्रलाप हुआ स्तुति! जाओ! खूब स्तुति करो! जीव को ईश्वर कह-कह घोर अपराधी बनो! मूढ़! दिवान्धो!

(उठकर चल देता। शिष्य गण अनुसरण करते हैं)

समाज— **दो०**

सरस्वती सहिना सकी, निन्दा भरे कुशब्द।
उलट अर्थ सुन्दर कियो, स्तुति परक सुखप्रद।।

चौ० "भावुक"

"भावना करै सो भावुक" होई।
भाव बिना नहिं भावना होई।।
भाव न गुणमय मायिक रूपा।
शुद्ध सत्त्व जस भगवद् रूपा।।
भाव प्रेम नहिं अन्तर कोई।
भावाधीन भगवान हू होई।।

दो०

गौर समान त्रिलोक में, दूजो न "भावुक" कोई।
कृष्ण रूप गुण सिन्धु महँ, मन मीन रहै होई।।
"**चैतन्य**" जड़ नहीं वे चिद्घन वपुधारी,
'चैतन्य' नाम सो साँचे पुकारी।
"**संन्यासी**"-वे हरि विश्वम्भर अविनाशी,
साँचे ही "नाम मात्र संन्यासी"।।
"**इन्द्रजाली**"-वे हरि इन्द्र के इन्द्र विघाता।
इन्द्रजाल माया के नाथा।।
जो देखे सो होय मतवारा।
पाय कृपा प्रेम रस धारा।।
लोक-परलोक-वासना नासैं।
प्रेम-मगन हरि रस महँ भासैं।।
या विधि सरस्वती अर्थ लगावै।
निन्दा मध्य स्तुति सुहावै।।

दो०

दुखित चित सो विप्र तब, गमन कियो प्रभु पास।
कहि सुनायो जो सुन्यौ, सहि न सक्यौ उपहास।।
(पर्दा खुलता है। महाप्रभु व तपन मिश्र बैठे हैं)

महा० ब्रा०—(प्रवेश-प्रणति पूर्वक) श्रीचरणन में दास को प्रणाम स्वीकार हो।

महाप्रभु—श्रीकृष्णेमतिरस्तु। आओ विप्रदेव! विराजो। कुशल तौ है? चित्त तो प्रसन्न है?

ब्राह्मण—हाँ भगवान्! आप की चरण कृपा सों वैसे तो सब कुशल ही है परन्तु आज होम करत हाथ जर गयो, यासों चित्त कछु खिन्न है रह्यौ है।

महा०—होम करत हाथ जर गयो? कहा बात है—स्पष्ट कहौ।

ब्रा०—भगवन्! मैं आज काशी के सुप्रसिद्ध महामण्डलेश्वर स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती जी महाराज की सभा में गयो हो। वे अपनी शिष्य-मंडली कूँ अद्वैत वेदान्त की शिक्षा दे रहे हे-तो........(चुप हो जाते)

महा०—तो कहा? चुप कैसे है गये? बोलो। संकोच कहा?

ब्रा०—प्रभो! मेरी बड़ी अभिलाषा ही कि यदि ये महामण्डलेश्वर जी महाराज एक बार आपके दर्शन कर लैते तो अवश्यमेव समझ जाते कि श्रीकृष्ण कहा वस्तु हैं एवं श्रीकृष्ण प्रेम को स्वरूप कहा है। तथा उनकी विद्या सफल है जाती जीवन धन्य है जातो। यासों जब मैं आपको कछु परिचय दैवे लग्यौ तो वे अत्यन्त अवज्ञापूर्वक बोले 'हाँ हाँ! हम जानैं हैं वह एक बंगाली संन्यासी है केशव भारती को शिष्य है, नाम वाको चैतन्य है, काम वाको नाचनो गानो है, गुण वामें एक मोहिनी विद्या है। जो वाकूँ देख लेय है, वह मोहित है जाय है, और वाकूँ ईश्वर मानवे लगै है। वह चैतन्य तो नाम मात्र को ही संन्यासी है, वह तो महान् ऐन्द्रजालिक है। परन्तु काशीपुरी में वाकी माया विद्या नहीं चलैगी। वाके भाव एवं भावुकता को यहाँ कोई गाहक नहीं है। तुय वाके पास मत जाओ नहीं तो तुम्हारे लोक-परलोक दोनों नष्ट है जायँगे। ऐसे-ऐसे अकथ्य, अश्राव्य वाक्यन कूँ सुनकै तो मैं उनकूँ प्रणाम करकै चल्यो आयौं हूँ। चित्त बड़ो सन्तप्त है!!

महा०—(हँसकर चुप रहते हैं)

समाज— **(बंगला)**

शुनि महाप्रभु ईषत् हासिया रहिला।
पुनरपि सेइ विप्र प्रभुरे पुछिला।।

सुनि महाप्रभु नेक हँसि रहै मौन।
पुनि बूझे विप्र सोइ, कारन जु कौन।।

ब्रा०—प्रभो! जब स्वामी जी महाराज के सामने मैंने आपको "श्रीकृष्ण चैतन्य" नाम सुनायो तो बोले 'हाँ हाँ! हमहू जानैं हैं—वाको नाम चैतन्य हैं—

(पयार)--

"दोष देखैं" करैं नहीं नाम उच्चार।
"चैतन्य चैतन्य" उन कही तीन बार।।
तीन बार कृष्ण नाम मुख नहि आयो।
हेला सह नाम लियो, चित्त दुख पायो।।
तुम्हें देख मेरो मुख कहै 'कृष्ण हरि'।
(पर) वे तो नहिं बोलें कहो काहै कृपा करि।।

महा०—प्रभु कहे 'मायावादी कृष्ण अपराधी।
ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य कहैं निरवधि।।

ब्राह्मण देव! मायावादी संन्यासीगण श्रीकृष्ण के निकट अपराधी होय हैं और केवल 'ब्रह्म' 'आत्मा' 'चैतन्य' की ही चर्चा कर्यौ करै हैं।

तातै निज मुख नहिं आवै कृष्ण नाम।
कृष्ण नाम कृष्ण रूप दोनों ही समान।।
नाम, विग्रह-स्वरूप-तीनों एक रूप।
तीने भेद नाहिं तीन चिदानन्द रूप।।
कृष्ण नाम कृष्ण गुण कृष्ण लीला वृन्द।
कृष्ण स्वरूप सम सब चिदानन्द।।

परन्तु मायावादी नाम, रूप, गुण, लीला-सब मायिक मानैं हैं यासों अपराधी हैं—

याहि हेतु कृष्ण नाम मुख नहिं आवै।
ब्रह्म आत्मा चैतन्य ही गावैं अरु ध्यावै।।

और जो स्वामी जी महाराज ने यह कह्यौ कि यहाँ काशी में यह भाव नहीं बिकैगो—यहाँ याको कोई गाहक नहीं है-तो काशी में ही कहा त्रिलोक में हू या 'प्रेम'-भक्ति के गाहक दुर्लभ हैं— (गाना)

१. सवैया हमीर—

लायो हौं लाद कै शीश पै दूर सों,
भाव रु चाव को माल अमोल।
मोल पूरे नहीं थोरेइ मोल में,
दऊँ हूँ मैं तो गठरिया खोल में।।
खोल कहै कोई गाँठ कपट की,
छाँड़ि कै निन्दा कहै हरि बोल।

बोल कहै कोई जौहरी 'प्रेम' ही,
बेचै जो साग करे कहा मोल।।१।।
२. लेओ भले जु न लेओ भले अब,
बाँध गठरिया हमहु चले।
चले जोर है नाम को ठौर सबै,
इक निन्दक मुख लखि मोड़ चले।।
चले वार न कबहू पार चले,
भव धार मँझधार वह डूबि चले।
चले नाम हरि संग धाम हरि,
नहिं भाव विहीन ज्ञान चले।।२।।

(बंगला)

भाव कालि बेचिते आमि आइलाम काशी पुरे।
ग्राहक नाहिं, ना बिकाय, लइयाँ जाबो घरे।।

यासों अब अपने मालकूँ लै कै जाऊँ हूँ जहाँ गाहक मिलैगो वहीं बेचूँगो। काशी में निवास करते आज दस दिना होय हैं। कल प्रात:काल ही श्रीवृन्दावन के लिये चलवे को विचार है।

महा० ब्रा०—(हाथ जोड़) किन्तु करुणासिन्धो! क्षमा करैं मेरी ढीठता।

महा०—कहो कहा कहनो चाहौ हो।

ब्रा०—दीनबन्धो! हमारी तो आशा अभिलाषा ही और अबहू है कि जैसे आपने गौड़ देश में श्रीहरि संकीर्तन की सर्वान्मपावनी भागीरथी प्रवाहित करी एवं निन्दक पाषण्डिन पर्यन्त के कलुषित हृदय को शुद्ध-सरस कर दियौ, वैसे ही यहाँ काशीपुरी में प्रवाहित करके यहाँ के विरोधी विमुख जीवन कोहू उद्धार करते, उनकूँ हू श्रीकृष्ण प्रेमामृत को दिव्य प्रसाद वितरण कर जाते परन्तु आप तो (रुक कर) अपने उपहार कूँ, भण्डार कूँ, वन्द करकै लै जानो चाहो हो।

महा०—(हँस कर) साधु साधु! आपकी ऐसी उदार भावना होनी ही चाहिये। भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीकृष्ण वाकूँ अवश्य ही पूरी करेंगे। साँचे भक्त की साँची शुद्ध भावना यथा समय अवश्य ही सफल होय है। अच्छो, अब चलौ! विन्दु माधव भगवान् की सायं-आरती के दर्शन करकै उनकी अनुमति प्राप्त करें।

ब्रा०—चलिये भगवन्! पधारिये!

महा०—कीर्तन धुन—दादरा-जय कृष्ण हरे गोविन्द हरे

माधव मोहन मुकुन्द हरे।।

(गाते गाते प्रस्थान)

(दृश्य:—मन्दिर चतुर्भुज विन्दु माधव भगवान् की झाँकी यात्रियों का आगमन। पुजारी द्वारा माहात्म्य-कथा श्रवण कराना)

पुजारी—जय विन्दु माधव भगवान् की जय।
जय पंचनद तीर्थ की जय।।

आओ यात्रियो! आओ! विन्दु माधव भगवान् के पावन दर्शन करौ और इनकी कथा श्रवण करो। यह कथा स्कन्द पुराण में विस्तार सहित है—ताको सारांश यह है कि एक समय काशी में सूर्य देव ने बड़ी भारी तपस्या करी। तपस्या-समय उनके अंग सों स्वेद अर्थात् पसीना की धारा बह चली जो एक पुण्यमयी नदी बन गयी। वह "किरण" नाम सों प्रसिद्ध भई। वामें एक दूसरी नदी "धूत पापा" आय मिली, और ये जाय कै गंगा-यमुना-सरस्वती सों मिली। या प्रकार सों यहाँ पाँच पवित्र नदिन को संगम "पंचनद" महातीर्थ के नाम सों प्रसिद्ध है। प्रयाग में तो तीन नदिन को ही संगम है परन्तु यहाँ काशी में पाँच नदिन को संगम है

१. यात्री—उनको नाम एक बार और सुनाय देओ महाराज

पुजारी—किरण, धूत पापा, गंगा, यमुना और सरस्वती ये हैं पाँच पुण्य नदी। या पंचनद में डुबकी लगायवे सों जीव कूँ पुन: शरीर धारण करनो नहीं परै है। वह ब्रह्माण्ड मण्डल कूँ भेदन करकै परम धाम कूँ प्राप्त करै है। या पंचनद महातीर्थ प लक्ष्मी पति नारायण विन्दु माधव जी विराजमान् हैं। या नाम में आधो नाम तो भक्त को और आधो भगवान् को है। ऐसे भक्तन के भक्त-भगवान् हैं ये विन्दु माधव जी।

१. यात्री—सो कैसे महाराज! यह कथा तो अवश्य सुनायवे की कृपा करौ।

(प्रवेश महाप्रभु, तपनमिश्र, महाराष्ट्री विप्र एक और खड़े कथा श्रवण करते हैं)

पुजारी—सुनो भक्तो! या पंचनद तीर्थ में काहु समय एक अग्नि बिन्दु शर्मा नामक विप्र ने कठोर तप कर्यौ हो। वाकी तपस्या सों प्रसन्न है कै भगवान् विष्णु लक्ष्मी जी सहित प्रगट भये और वर माँगवे कूँ कही तो ब्राह्मण ने प्रार्थना करी कि हे माधव। आप या पंचनद तीर्थ में मेरे नाम सों स्थित है कै भक्त-अभक्त सब जीव मात्र कूँ मुक्ति प्रदान करें। जो या तीर्थ में स्नान करवे के पश्चात्

कहीं देशान्तर हू जाय कै मृत्यु कूँ प्राप्त होवै तो वाकूँ हू आप मुक्ति प्रदान करैं।" भगवान् बोले "ऐसो ही होयगो। तुम्हारे नाम के आधे प्रथम भाग 'बिन्दु' के साथ मेरो लक्ष्मीपति नाम 'माधव' मिल करकैं 'बिन्दु माधव' नाम सों मेरी ख्याति होयगी। मेरो यह नाम महापातक नाशकारी होयगौ।" ऐसो यह प्राचीन तीर्थ है।

(आरती करते हुए गायन)

रसिया

जय जय बिन्दु माधव भगवान।
तीरथ पंचनद में विराजैं, मुक्ति करैं नित्य दान।।१।।
सतयुग में पंचनद हो नाम।
त्रेता युग धूत पाप नाम, द्वापर बिन्दु तीर्थ नाम।
कलियुग में पंचनद जु कहायो,
काशी विच परधान।।जय०।।
काशी में इक गंगा सुहावनी, पाँच-पाँच गंगा यहाँ पावनी।
बिन्दु माधव हरि की मन भाबनी,
धन लक्ष्मी और मोक्ष लक्ष्मी
देत पंचनद न्हान।।जय०।।२।।
पग पग तीरथ काशी माहीं,
कोटि अंश याके सम नाहीं,
मन वांछित फल देत सदा ही,
माघ मास भर न्हावै प्रयाग,
यहाँ को एकै नहान।।जय।।
(परन्तु) पंच नद फल सोई पावै,
विश्वनाथ प्रति द्वेष न लाबै।
हरिहर दोऊ की भक्ति सुहावै,
काशी बसे और शिव पै हँसै सो,
होवे पिंशाच निदान।।जय०।।
बिन्दु माधव हरि की यह बनो,
काशी खण्ड में आप वखानी,
हरि-हर-भेद किये गति-हानी,
'प्रेम'—भक्ति हरि-हर-पद आशा,
बारम्बार प्रनाम।।जय०।।

महाप्रभु— **(धुन)**

जय बिन्दु माधव जय विश्वनाथ।
जय रमानाथ, जय उमानाथ।।
हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल।।
(सम्मिलित संकीर्तन—पटाक्षेप)
इति काशी—आगमन-लीला सम्पूर्ण।

❖

संन्यास-लहरी **पंचदश कणामृत**

मथुरा—आगमन—लीला

समाज— **श्लोक**

जयति जयति देवः श्रीशची-गर्भजन्मा,
जयति जयति भक्ति प्रेमदानैकधर्मा।
जयति जयति मेरुस्पर्धि गौराङ्ग-धामा,
जयति जयति धन्यः कृष्ण चैतन्य नामा।।

चौ०

सुनहु गौर चरित अति पावन।
भक्तन सुखकर भाव बढ़ावन।।
पद पद पथ हितकर दरसावन।
सहज सकल जन मानस भावना।।
राम कृष्ण हरि नाम बुलावन।
मंगल मोद मूल सरसावन।।
हृदय विमल प्रेम हुलसावन।
मानुस जन्महिं सुफल बनावन।।

दो०

दिन दस बसि बारानसी, भक्तन जीवन प्रान।
मणि बिनु फणि ज्युँ दीन करि, कीन्हे प्रभु पयान।।

(प्रवेश-भुजा उठाये महाप्रभु धीरे-धीरे गाते हुए। पीछे-पीछे बलभद्र भट्टाचार्य और एक सेवक-कमंडलु, कौपीन, कटिवस्त्र लिये हुए)

महाप्रभु— **पद**

जय वृन्दावन श्री वृन्दावन।
(हा वृन्दावन प्राण वृन्दावन)
गो-गोपाल-गोपीजन--गोविन्द--
नित्यधाम विश्राम वृन्दावन।।जय०।।
(दो चार वार घूमते-कीर्तन करते चले जाते हैं)

समाज— **चौ०**

भक्त विकल पीछे चलै धाई।
जदपि प्रभु सब कीन्हे बिंदाई।।
(प्रवेश गाते हुए) (पूर्व तर्ज)
तपन मिश्र चल्यौ तजि काशी।
चन्द्रशेखर, महाराष्ट्र निवासी।।
जय श्रीकृष्ण, जय कृष्ण चैतन्य।
श्री शची नन्दन, नदिया आनन्दन,
भाव रस प्रेम घन, कृष्ण चैतन्य।।जय०।।

चौ०

रोदन करैं गौर गुण गावैं।
काया संग छाया ज्युँ धावैं।।
(भक्तजन चले जाते। महाप्रभु प्रवेश)

महाप्रभु०—(पूर्व पद) वृन्दावन! प्राण वृन्दावन! गो-गोपाल-गोपीजन-गोविन्द-नित्यधाम विश्राम वृन्दावन।

(पीछे-पीछे तपन मिश्र आदि तीनों)

समाज— **चौ०**

लखे भक्तजन संग लगि धावैं।
करैं प्रबोध बहु विधि समझावैं।।

महाप्रभु—(पीछे मुड़ते-ठहर जाते) प्रिय भक्तजनो! अब तो तुम बहुत दूर आय गये। मेरी बिनती मानो। काशी लौट जाओ।

तपन०—प्रभो! अब हम काशी जाय कै कहा करैंगे। हम तो अब आपके श्रीमुख सों "कृष्ण-कृष्ण"—कीर्त्तन सुनते भये, श्रीचरण-सेवा करते हुए जहाँ आप जायँगे वही जायँगे। हमारी प्रार्थना स्वीकार करैं-निराश न करैं (चरण-ग्रहण)

चन्द शे० महा० विप्र—हे करुणा सिन्धो! कृपा करौ। हम कूँ संग लै चलौ! हमारी अभिलाषा पूरी करौ। हम और कछु नहीं चाहैं हैं। (चरण-ग्रहण)

महाप्रभु—(उठाते हुए) प्यारे बन्धुओ! इतनो दु:ख मत करौ तुमकूँ दुखी देख मोकूँ हु दु:ख होय है। धीरज धरौ कृष्ण नाम गाओ। कृष्ण कृष्ण कहो। शोक, मोह दु:ख ताप नाश करवे की एक ही परमौषधि है—कृष्ण नाम! कृष्ण कहो और जहाँ कृष्ण राख वहीं आनन्द मैं रहौ। उनकी इच्छा भई तो हमारो-तुम्हारो पुनर्मिलाप होयगो।

हरि बोल (चल देते हैं)

भक्त हटकि छिटकि प्रभु धाये।
रहै ठिठकि कछु पार न पाये।।
तनहिं राखि मन संग पठाये।
फिरै काशी हिय आस लगाये।।

(भक्तों का लौट जाना। दूसरी ओर से महाप्रभु आते हैं)

महा०— **पूर्व पद**

जय वृन्दावन श्री वृन्दावन।।
नाम रूप लीला रस वैभव, वेद न पावै जान वृन्दावन।।जय।।
मर्म धर्म को सार भक्ति को, रस को सीम धाम वृन्दावन।।जय।।
मोहे ज्ञानी ध्यानी योगी, मोहे भक्त-भगवान वृन्दावन।।जय।।
मोह लियो निर्मोही गौरांहि,
रोवत "प्रेम" लै नाम वृन्दावन।।जय।।

(गाते-गाते प्रस्थान)

(श्रीकृष्ण गुञ्जामाली—प्रसङ्ग। गर्भाङ्क)

(दृश्य! एक ७-८ वर्ष **पंजाबी लड़का** सो रहा है)

समाज— **दो०**

बालक भाग्यवान इक, सोवत घर लाहौर।
नाम न जानते गौर को, देखत सपनो गौर।।

(महाप्रभु बालक के सिरहाने प्रकट होते हैं। खड़े मुस्कराते हैं)

समाज— **दोहा**—

मधुर मनोहर गौर हरि, करहिं प्रेम पुकार।
बूझत बालक कौन तुम, हेर्यौ प्रथम जु बार।।

महाप्रभु—उठो बालक! देखो मेरी ओर! सुनो मेरी बात

बालक—(आँखें बन्द! लेटे लेटे) तुम कौन हो? बड़े सुन्दर हो। बड़े प्यारे हो! कौन हो?

महाप्रभु—मैं गौरांग हूँ। तुम्हारे ऊपर कृपा करवे आयो हूँ। तुम वृन्दावन जाओ! मैं तुम सों वृन्दावन मिलूँगो। मोकूँ तुमसों विशेष कार्य लैनो है।

(अन्तर्द्धान)

समाज— दो०

नींद नसी बालक जग्यौ, लखि नहिं पायो गौर।
हा गौरांग गौरांग कही, रोवत मति गति बौर।।

(माता-पिता का आना)

मात पिता सुनि रोदन आये। बूझत भेद समझि नहिं पाये।।
बालक टेरत हा गौरांग। रोवत बूछत कहाँ गौरांग।।

(अनुकरण)

कोउ सुन्यौ नहीं नाम गौरांग। बूझत को कैसो गौरांग।।
बालक कहत गौरांग लखाओ। कहाँ गौरांग बेगि बताओ।।
जहाँ गौरांग तहाँ लै जाओ।
मेरे गौरांगहि आन मिलाओ।।

बालक गजल-(तर्ज—जो जाते हो तो०)

कोई तो हाय! बता दे, मेरा गौरांग कहाँ है।
उससे मुझे मिला दे, मेरा गौरांग कहाँ है।।१।।
आँखों में बस गई है, उसकी वह गौर सूरत।
बिन देखे कल नहीं है, मेरा गौरांग०।।२।।
वह रंग रूप उसका, कैसा है क्या बताऊँ।
आँखें ही जाने मेरी, मेरा गौरांग०।।३।।
मेरे सपने में न जाने, कहाँ से घुसा वह कैसे।
पागल मुझे बनाया, मेरा गौरांग०।।४।।
बताया न मुझको कुछ भी, अपना पता ठिकाना।
बस नाम ही बताया, मेरा गौरांग०।।५।।
कहा वृन्दावन जाना, वह वृन्दावन कहाँ है।
जाऊँ वृन्दावन "प्रेम", मेरा गौरांग०।।६।।
हा गौरांग! प्यारे गौरांग (पुकारते-रोते चला जाता)

पंजाबी बालक का गृह-त्याग

समाज— **चौ०**

मात पिता पुर परिजन सारे। चकित न समझे बात कहारे।।
बालक हृदय कछुई न भावै। गौर गौरांग कहि नैन बहावै।।

दोहा—

श्रवनन गूँजि रह्यौ वहीं, प्रभु के पीयूष बैन।
छाय रही लोचन वही, प्रभु की मूरति मैन।।

सो०—

अटक्यो नहीं अटकाय, मात पिता गृह जाल महँ।
चल्यौ झटकि तुड़ाय, साँच किये ध्रुव चरित कहँ।।

चौपाई

सात बरस को बालक भोरा। चित्त चुराय लियो हरि गौरा।।
खोजन निकसि चल्यौ चित्त चोरा। रोवत टेरत गौरांग गौरा।।

(बालक का प्रवेश गाते रोते हुये)

हा गौरांग कहाँ गौरांग।
कहाँ वृन्दावन कहाँ गौरांग।।

(चला जाना)

दोहा—

वृन्दावन को नाम लै, चल्यौ वृन्दावन ओर।
मुख में नाम गौरांग है, मन में मूरति गौर।।
झेलि क्षुधा वाधा बहू, हरि आस हरि धाम।
पहुँच्यौ बहुत दिनन में, तऊ न पूर्यौ काम।।

चौपाई

बूझत डोलत कहाँ गौरांग। कोउ न जाने को गौरांग।।

बालक—(प्रवेश गाता रोता हुआ)

गाना—कोई तो बता दे, कहाँ गौरांग, मेरा गौरांग।
कोई तो बता दे, हाँ कोई तो दिखा दे।।
कोई तो दिखा दे, हाँ कोई तो मिला दे।
प्यारे गौरांग मेरा गौरांग।।

कहा था कि वृन्दावन में मिलूँगा।
कहा था कि कारज तुझसे मैं लूँगा।।
आया हूँ मैं वृन्दावन अब आया।
तेरा दरसन कहीं फिर भी न पाया।।
जाऊँ कहाँ अब पाऊँ तुझे।
प्यारे गौरांग, मेरा गौरांग।।

ब्रजवासी—(प्रवेश कर पूछते) बालक! तू किसे बुला रहा है, यह तेरा गौरांग कौन है।

बालक—लोग पूछे हैं मुझसे क्या मैं बताऊँ।
कौन तेरा गौरांग, रहे कौन गाऊँ।।
गाँव न जानूँ तेरा, नाम ही जानूँ।
रूप दिखाया गौर उसको पहचानूँ।।
आकर आप ही बता दे इनको,
प्यारे गौरांग, मेरा गौरांग।।
कृपा अपार जो रूप दिखाया।
चित्त चुराया मोह नसाया।।
अपने वृन्दावनले मुझे आया।।
लाकर अपना मुख क्यों छिपाया।
आय मिलो "प्रेम" प्रान पुकारे
प्यारे गौरांग मेरे गौरांग।।
(गाता हुआ चला जाता है)

समाज— **चौ०**

बालक लखि सब नेह जनावें। हिय की तपन किसे बुझावें।।
कौन गौरांग कोई ना बोले। ठौर ठौर बालक ब्रज डोले।।
दिवस मास बरस हू बीते। पायो नहीं गौरांग मन चीते।।
गिरि गोवर्धन तट करै वासा। प्यारे गौरांग दरसन आसा।।

सो०

बालक भयो किशोर, चितचोर सुध बाल लई।
आये संन्यासी गौर श्रीवृन्दावन दरस हित।।

महाप्रभु—(प्रवेश कीर्तन करते हुये। सेवक बलभद्र सहित)

हा वृन्दावन! प्राण वृन्दावन
धीर समीर बहै यमुना तट, वंशीवट सुखधाम वृन्दावन,
(गाते गाते प्रस्थान)

चौ०

काशी तजि प्रयागहिं आये।
साँचेइ यमुना अब लखि पाये।।
जो निज अंक वृन्दावन राखै।
जो नित कृष्ण केलि रस चाखै।।
जाके कन-कन जल मधि कृष्ण।
तन मन नाम रूप सब कृष्ण।।
(अनुकरण) सो कृष्णा लखि उमगि तृष्णा।
कूदि परै श्री चैतन्य कृष्णा।।
कृष्णा-कृष्ण-अंक जनु पाये।
डूबि रहै सुध-बुध बिसराये।।
उठत नाहिं बलभद्र डरायो।
कूदि आप प्रभुहिं गहि लायो।।

सो०

करि त्रिबेनी स्नान, किये बेनी माधव दरस।
पुनि संकीर्तन गान, व्यापि रही हरि धुनि चहुँ।।

दो०

तीन दिवस प्रयाग महँ, अद्‌भुत कीर्तन रौर।
लक्ष-लक्ष जन मत्त भये, नाम-प्रेम-रस भोर।।

चौ०

तजि प्रयाग मथुरा मग धाये।
गाम गाम पुर लोक नचाये।।
दक्षिण गये जब दक्षिणवासी।
गाय कृष्ण भये कृष्ण उपासी।।
अब पच्छिम दिसि धन्य बनाये।
विमुख हू वैष्णव दास बनाये।।

(बंगला)

पथे जाहाँ जाहाँ हय यमुना दर्शन।
ताहाँ झाँपि दिया पोड़े प्रेमे अचेतन।।

चौ०

जहँ जहँ यमुना दरसन होई।
कूदि गरैं तन-मन सुधि खोई।।
या विधि वृन्दावन मग धावैं।
पद पद विरह भाव दरसावैं।।
वृन्दावन को प्रेम सिखावैं।
प्रेम को रूप चाह बतावैं।।
चाह को रूप विरह दरसावैं।
विरह सोइ जगसुध विसरावैं।।
विरही बन वृन्दावन जावै।
तब वृन्दावन अंकम लावै।।
अंकलाय निज रूप लखावै।
श्यामा श्याम दरस तब पावै।।
धन्य गौर प्रभु हितकारी।
वृन्दावन-रस-यश परचारी।।

महाप्रभु—(प्रवेश—'कृष्ण कृष्ण' धीरे-धीरे गाते हुए। पीछे पीछे बलभद्र भट्टाचार्य)

(यमुना का दृश्य)

चौ०

श्रवण समीप बलभद्र सुनायो।
बलभद्र—धन्य धाम श्रीमधुपुरी आयो।।
लखहु प्रभु मथुरा अभिराम।
तट कालिन्दी घाट विश्राम।।

महाप्रभु—(हर्षोन्मत्त भुजा उठा) मथुरा! मधुवन! ब्रज! वृन्दावन! यमुना! यमुना! (हाथ जोड़ते हुये) प्रणाम! कोटि कोटि प्रणाम! कण-कण कूँ प्रणाम! जड़ चेतन कूँ प्रणाम! (भू लुण्टन)

बलभद्र—हरि बोल! हरि बोल!

महा०—(बैठते हुये रजको पुनः पुनः मस्तक धारण)

समाज—

प्रभु ब्रजरजहिं शीश चढ़ावैं। ब्रज प्रभु पद हृदय पधरावैं।।
इनके पुलक कृष्ण रज पाये। उनके पुलक कृष्ण पद धावैं।।
उठि प्रभु कूदि परै यमुना जल।

महाप्रभु—कृष्णे! कृष्ण रूपिणी! कृष्ण केलि थल!

श्लोक

चिदानन्द भानोः सदानन्दसूनोः।
परप्रेमपात्री द्रवब्रह्मगात्री।।
अघानां लवित्री जगत्क्षेमधात्री,
पवित्रीक्रियान्नो वपुर्मित्रपुत्री।।

धुन

कृष्णा गाइये, कृष्ण पाइये।
कृष्णा न्हाइये, कृष्णे समाइये।।

छन्द

मधुवनचारिणी मधुरिपु धारिणी,
माधवहारिणी मित्रसुते।
जगदध शोषिणी यमत्रयमोचिनी,
मानसदायिनी संगकृते।
नन्दतनयतन रंजिततनमन,
कौतुकक्रीडन कृष्णरते।
जय यमुने जय कृष्णस्वरूपिणी,
कृष्ण प्रदायिनी प्रेमप्रदे।।
कृष्णा गाइये, कृष्ण पाइये।
कृष्णा न्हाइये, कृष्णे समाइये।।

समाज—

उमगि उमगि यमुना गुन गावैं।
तन मन प्रानन मोद समावैं।।
हुँकारत जल बाहिर आये।
मत्त आवेश कृष्ण हरि गाये।।

नाचत घन घन प्रेम हुँकारा।
चकित लोक भई भीर अपारा।।

जनता—

कोई कृहैं ये कृष्णहि आये।
रूप गौर अब, श्याम बनाये।।
सोवत हमहिं जगावन आये।
भूलेन कूँ चेतावन आये।।
मारग हमहि बतावन आये।
भक्ति प्रेम सिखावन आये।।

समाज—

कृष्ण कृष्ण सब गावैं नाचैं।
मत्त प्रेमभाव रस राँचैं।।
विप्र एक नाचत मतवारा।
निरखि निरखि प्रभु रूप अपारा।।
पुलकित तन मन अति अकुलाई।
धाय पर्यौ चरनन लिपटाई।।
(अनुकरण)

विप्र कृष्णदास—

तुमहि देखत कृष्ण मुख आवै।
तुमहिं देखत कृष्ण मन आवै।।
तुमहिं देखत कृष्ण दिखावैं।
को तुम काहे मन भरमावै।।

समाज— **दो०**

वृद्ध विप्र के कर गहि, भुज भरि भेंटे गौर।
(अनुकरण) मत्त महा नाचत दोऊ, कृष्ण हरि धुनि गौर।।

सो०

संकीर्तन विश्राम, घाट विश्राम बैठे प्रभु।
बूझत विप्रन ठाम, 'कहँ पायो ए प्रेम धन।।

महा०—धन्य है दादा व्रजवासी धन्य है तुमकूँ जो तुमकूँ यह दुर्लभ कृष्ण प्राप्त है जासों सर्वत्र श्रीकृष्ण दीखैं हैं। यह दुर्लभ धन कहाँ ते पायो, बताओ तो?

विप्र कृष्ण०—(हाथ जोड़) प्रेम धन कहाँ मो में तो प्रेम कनहू नहीं है। मैं तो इतनो ही जानूँ हूँ कि एक समय प्रातः स्मरणीय श्रीश्रीपाद माघवेन्द्रपुरी जी महाराज तीर्थ-भ्रमण करते करते यहाँ मथुरा हू पधारे हते, या दास की भिक्षा स्वीकार करी हती तथा दास कूँ अपनो चरण-शिष्य बनायवे की कृपा करी हती। बस उनके ही श्रीचरण कृपा सों मेरे मुख सों कृष्ण-प्रेम निकसै है—प्रेम कहाँ?

महा०—(ससम्भ्रम उठते हुए कृष्णदास का चरण पकड़ना चाहते—वह वाधा देता)

कृष्ण—(हैं हैं भगवन्! यह आप कहा करौ हो। संन्यासी नारायण स्वरूप है कै मेरे पाँव.........।

महा०—(बात काटते हुए) आप मेरे गुरु के गुरुभ्राता हो। जो आप के गुरुवर हैं वही तो मेरे श्रीगुरु के हू पूज्य गुरुवर हैं। यासों आपहू मेरे श्रीगुरु के समान आदरणीय पूजनीय हैं और मैं आपके शिष्य सदृश्य हूँ।

(चरण पकड़ना चाहते)

कृष्ण—(पीछे हटते हुए महाप्रभु के चरणों पर पड़ जाते हैं। महाप्रभु उठाकर हृदय से लगा लेते हैं)

जनता— हरि बोल!

महा०—हे विप्रदेव! एक तो तुम व्रजवासी हो। दूजे मेरे श्रीगुरुदेव के गुरुभ्राता हों। यासों मेरी प्रार्थना है कि मेरे पाँवन को स्पर्श न करैं।

कृष्ण०—परन्तु आप तो संन्यासी शिरोमणि हैं, नारायण स्वरूप हैं। अतएव सदैव वन्दनीय, पूजनीय हैं।

महा०—हाँ! तुम्हारो नाम पूछनो तो मैं भूल ही गयो।

कृष्ण—श्री श्रीगुरु महाराज को दियो भयो एक छोटो सो नाम है—कृष्णदास।

महा०—अहो जैसो सुन्दर नाम है वैसे ही गुण हू सुन्दर हैं। अच्छो कृष्णदास जी! मैं तुमही कूँ अपनो तीर्थ-गुरु वरण करूँ हूँ। तुम मोकूँ मथुरा मंडल के समस्त तीर्थ स्थलन कूँ दर्शन कराय दैनो।

कृष्ण०—अवश्य भगवन् अवश्य! अहो भाग्य मेरे! तो अब मेरी कुटिया कूँ पवित्र करैं और भिक्षा स्वीकार करैं।

महा०—तुम्हारी कुटिया मेरे लिए तीर्थ है वहाँ मेरे परम गुरुदेव पधारे और भिक्षा ग्रहण करी! लै चलौ–मैं वा तीर्थ कूँ प्रणाम करूँगो–वाको पावन रज पै लोटूँगो।

कृष्ण०—चलिये भगवन्!

महा०—किन्तु पहले मोकूँ श्रीकेशवदेव जी के दर्शन कराओ। उनको तुलसी चरणामृत ग्रहण करकै तब प्रसाद पाऊँगो।

कृष्ण०—तो चलिये श्रीकेशवदेव जी के मन्दिर कूँ ही चलिये। (चलते हैं)

महा०—(चलते हुए) तो मथुरा मंडल की कुछ कथा वार्ता ही सुनाते चलो।

भगवन्! शास्त्रन में मथुरा मंडल के पाँच विभाग माने गये हैं :—

(१) प्रथम विभाग १६० कोस को बर्हिमण्डल है—यही व्रज ८४ कोस के नाम सों विख्यात है—यामें ही समस्त तीथन को निवास है। याके लिए ही श्री बाराह भगवान् पृथ्वी सों कहैं हैं कि—

श्लोक

विंश योजन विस्तारो माथुरं मम मण्डलम्।

यत्र प्राणान् विमुञ्चन्त: सिद्धा यान्ति परां गतिम्।।

अर्थात् बीस योजन विस्तार वारो मेरो मथुरा मण्डल है जहाँ प्राण त्याग करवे सों जीव सिद्ध है कै अर्थात् अपने स्वरूप कूँ प्राप्त करके परम गति कूँ प्राप्त होय है। यह दूसरों विभाग है।

(३) तीसरो विभाग हैं २४ कोस को मंडल याके अन्तर्गत २४ वन–उपवन हैं।

(४) चौथो विभाग २० कोस को मंडल है। यह कमलाकार है—विशुद्ध रस रूप है, स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् याकूँ अपनो देहस्वरूप बतावैं हैं नारद जी सों—

"पंच योजनमेवास्ति वनं में देहरूपकम्।"

(५) पाँचवों विभाग ५ कोस की राजधानी श्रीवृन्दावन है। यहाँ योग पीठ है, सभामंडल है। यहाँ कल्पवृक्ष के नीचे रत्न–सिंहासन पै श्रीयुगल श्रीराधा कृष्ण विराजमान हैं।

या मथुरामंडल में ४८ वन, उपवन, प्रतिवन और अधिवन को वर्णन मिलै है परन्तु बारह वन ही मुख्यतः लोक प्रसिद्ध हैं—पाँच यमुना जी के पूर्व में और सात पश्चिम में। पूर्व के पाँच वन हैं— बेलवन, भांडरीवन, लौहवन, भद्रवन और महावन। पश्चिम के सात वन हैं—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, वहुला वन, खिदिर व, काम्य वन और वृन्दावन। आपकी इच्छा भई तो इन सब वनन के दर्शन कराऊँगो। या समय तो सर्वप्रथम आप विश्रामघाट के गतश्रमदेवजी के दर्शन करें—

दृश्य—(मन्दिर-चतुर्भुज गतश्रमदेव की झाँकी)

पुजारी

जय गतश्रम भगवान की जय।
जय कंस संहारी भगवान की जय।।

यह गतश्रमदेव भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप हैं कंस-वध के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने याहि ठौर पै विश्राम कियो हो। याहिसों वे गतश्रमदेव कहलाये और यह घाट विश्रामघाट कहलायो। श्रीबारह भगवान् धरणीदेवी सों कहैं हैं कि—

श्लोक

सर्वतीर्थेषु यत्स्नानं, सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
तत्फलं लभते देवि, दृष्टादेव गतश्रमम्।।

अर्थात् समस्त तीर्थन के स्नान, दर्शन, निवासादि को जो कछु फल है वह समस्त फल एक मात्र गतश्रमदेव के दर्शन मात्र सों ही प्राप्त है जाय है।

जय हो जय हो गतश्रमदेव की जय हो।

महा०—(साष्टांग प्रणामान्ते(हरि बोल (कीर्तन)

समाज— दो०

दरसन करि गतश्रमहरि,
किये घाट बहु स्नान।
नाम चरित महिमा करैं,
कृष्णदास बखान।।

कृष्ण०—(चलते चलते)। भगवन्! या विश्रामघाट के उत्तर एवं दक्षिण में बारह-बारह २४ घाट हैं उनमें २४ तीर्थन की स्थिति है। आदि बाराह पुराण में इनको माहात्म्य लिख्यो है।

समाज— **(बंगला)**

यमुनार चब्बिश घाट प्रभु कैलो स्नान।
सेइ विप्र प्रभु के देखाये तीर्थ स्नान।।(चै०च०)

कृष्ण०—अब आगे दीर्घ विष्णु के दर्शन हैं।

दृश्य (मन्दिर। चतुर्भुजी दीर्घ विष्णु की झाँकी)

समाज— **चौ०**

मथुरा मधि दीर्घ विष्णु अनूप।
पद्मनाभ स्वयम्भु स्वरूप।।
बार एक दर्शन करि पावै।
सफल मनोरथ सफल सुहावै।।

पुजारी—सुनो भाग्यवान भक्तो! ये दीर्घ विष्णु भगवान् स्वयं प्रकट विग्रह हैं। इनके दर्शन सों समस्त अभीष्ट-पूर्ति होय है। इनके सश्बन्ध में हमारे व्रजवासिन में एक किम्वदन्ती प्रसिद्ध है। जब कंस की रंगभूमि में श्रीकृष्ण-बलराम पधारे तो मथुरावासी उनके सुन्दर सुकुमार किशोर स्वरूप के दर्शन से विमोहित है गये तथा आशंका सों उनके चित्त व्याकुल है गये कि ये द्वै बालक कैसे कंस के दानव सरीखे मल्ल-चाणूर, मुष्टिकादिकन सों लड़ सकैंगे—हाय हाय! बड़ो अनर्थ है जायगो। तब उनकी आशंका को निर्मूल करकै उनके स्नेहाकुल हृदय कूँ आश्वस्त करवे के काज, भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकूँ विशाल चतुर्भुजी विष्णु स्वरूप को दर्शन करायो हो। वे ही अब दीर्घ विष्णु नाम सों विख्यात हैं। जय हो जय हो दीर्घ विष्णु भगवान् की जय हो।

महा०—(साष्टांग प्रणाम) हरि बोल (कीर्तन-प्रस्थान) (मार्ग में चलते-चलते) क्यूँ दादा कृष्णदास। तुम्हारे गत श्रमदेव जी चतुर्भुजी, दीर्घ विष्णु हू चतुर्भुजी और केशवदेव जी?

कृष्ण०—वे हू चतुर्भुजी श्रीकृष्ण।

महा०—(हँसते हुए) तो कहा वृन्दावन सों मथुरा पधारते ही श्रीकृष्ण द्विभुज सों चतुर्भुज है जाय हैं।

कृष्ण०—(हँसते हुए) हाँ प्रभो! मथुरापुरी और मथुरावासिन को स्वभाव-प्रभाव ही ऐसो है :—

महा०—सो कैसे भला? नेक समझाय कै तो कहो!

कृष्ण०—आप बड़े चतुर-चूड़ामणि हैं—अपने मन की बात मेरे मुख सों सुननो चाहैं हैं तो सुनिए। यह मथुरा है ऐश्वर्यपुरी। यहाँ की भूमि ऐश्वर्यमयी,

प्रजा ऐश्वर्यमय, भक्ति ऐश्वर्यमयी तो यहाँ श्रीकृष्ण हू ऐश्वर्यमय--चतुर्भुज चक्रधर वसुदेव नन्दन। याके सर्वथा विपरीत वृन्दावन है माधुर्य-महल। वहाँ की भूमि माधुर्यमयी, वहाँ की प्रजा-गोपी-गोप माधुर्यमयी, वहाँ की प्रीति माधुर्यमयी तो वहाँ श्रीकृष्ण हू माधुर्यमय मुरलीधर द्विभुज नन्दनन्दन! जैसो देश तैसो भेष। जैसो भाव वैसो रूप। जैसो भक्त वैसो भगवान् और जैसो भगवान् वैसो ही लीला चरित।

श्रीवृन्दावन के रसिक प्रेमीजन को तो यह सिद्धान्त है कि हमारे श्रीकृष्ण तो ब्रजराज कुमार नन्दलाल गोपाल हैं जो निश्चिन्त चैन की वंशी बजावैं हैं और वृन्दावन में नित्य विहार करै हैं—गोपी-गोपन के संग। वे तो वृन्दावन त्याग कै एक पग हू बाहर नहीं जावैं हैं। बाहर तो वे ही चले गये जो बाहर सों आये रहे— वसुदेवनन्दन!

श्लोक

कृष्णोऽन्यो यदुसम्भूतो यस्तु गोपेन्द्रनन्दनः।
वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।।

सवैया

पदुकुल आये जो देवकी जाये,
कहाये वसुदेवनन्दन जो।
द्वय भुज उनके होवैं कैसे,
पेट सों लाये वे चार भुजन जो।।
(पर) उनते न्यारे जसोदा जाये,
गोकुल महँ नन्दनन्दन जो।
वंशी बजावैं न जावैं वे बाहर,
एक हू पग तजि वृन्दावन जो।।

वार्ता—यह तो व्रजवासिन को भाव है। अब यदि आप की आज्ञा होय तो मैं अपनो भाव निवेदन करूँ।

महा०—हाँ हाँ अवश्य कहो! श्रीकृष्ण-चर्चा में संकोच कैसो? आज्ञा कैसी?

कृष्ण०—तो सुनौ दीनानाथ मेरे डीठ वचनन कूँ—

सवैया (वहाँ वृन्दावन में)

वहाँ भार न सिर पै घर बाहर को
नन्द बाबा को राज चलै है।

कान्ह कुँवर छैला बनि डोलैं
खेलैं रस की रेल चलै है।

(और यहाँ मथुरा में)

इहँ साँझ लौ भौर ओ भौर साँझ लौं,
राज काज में देह गरै है।
पूरो परै नही द्वय हाथन सों,
चार बनाय कै पार करैं हैं।।

एक तो यहाँ राज-काज को बड़ो भार है। दूसरे आये दिन दुष्ट जरासन्ध सों युद्ध चलै है और तीसरे यहाँ मँगताहू बेहद बसैं हैं।

महा०—मँगता कैसे? मेरी समझ में आयो नहीं।

कृष्ण—सब समझ जायँगे। वहाँ वृन्दावनवासी तो—

सवैया

वे चाहैं तो बस येही चाहै,
हम प्रान कान्ह की सेवा करैं।
वे लैवैं तो बस लैवैं यही हम,
लालकी लै कै बलैया मरैं।।
वहाँ अर्थ ओ धर्म ओ काम ओ,
मोच्छ कूँ 'प्रेम' कना पै वारि करैं।
इहाँ चार फलन के मँगतेन के हित,
चारि भुजा हरि काढि धरैं।।

महा०—(हँसते हुए) यह कहा उलटी बात है कि तुम मथुरावासी है कै अपनी जाति-विरादरी वारेन पै ढेल मारौ हो—उनकी हाँसी करौ हो!!

कृष्ण०— प्रभो! मैं मथुरावासी भयो तो कहा उपासी तो श्रीनन्दनन्दन को ही हूँ। श्रीगुरु महाराज ने तो मोकूँ द्विभुज मुरलीधारी नन्दनन्दन के ही श्रीचरण- कमलन में समर्पित कर्यौ है। देह-सम्बन्ध सों तो आत्म-सम्बन्ध ही श्रेष्ठ होय है।

और अब भगवन्! सीधे केशवदेव जी के लिये चलनो चाहिये। विलम्ब हैवे पै दर्शन बन्द है जायँगे। आप ने मुख्य २४ घाटन के तीर्थ स्थल कर लिए। भूतेश्वर, ध्रुव टीला, अम्बरीष टीला आदि कल दर्शन करैंगे। यहाँ तो पद-पद पै तीर्थ हैं। इनमें विश्राम तीर्थ, दीर्घ विष्णु एवं केशवदेव के दर्शन सों समस्त

दर्शन को पुण्य फल मिल जाय है। ऐसो आहि बाराह पुराण में लिख्यो है और यह हू लिख्यो है कि सूर्योदय के समय श्रीहरि को तेज विश्राम तीर्थ में, मध्याह्न में तेज दीर्घ विष्णु में तथा संध्या में तेज केशवदेव में ठहरै है। सो प्रथम द्वय के दर्शन तो आप ने कर ही लिये अब केशवदेव जी के करेंगे। सामने उनको मन्दिर है। व्रजमंडल में चार देव अति प्रसिद्ध हैं वृन्दावन में गोविन्द देव, गोवर्धन में हरि देव, महावन में बलदेव तथा मथुरा में केशवदेव! ये चारों देव भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र अनिरुद्ध के पुत्र वज्रनाम के पधराये भये माने जायँ हैं, परन्तु एक श्रीबलदेव जी कूँ छोड़ कै शेष तीनों देव वर्तमान में व्रजमंडल के बाहर विद्यमान हैं। यहाँ तो उनके प्रतिनिधि स्वरूप विराजै हैं। चलिये भीतर! दर्शन करे। (प्रस्थान)

कीर्तन धुन

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण हे

दृश्य—(चतुर्भुज श्रीकेशवदेव की झाँकी। पुजारी एवं दर्शनार्थी भक्तजन)

पुजारी—जय हो केशवदेव की जय हो।

महा०—(कीर्तन करते प्रवेश) कृष्ण केशव०००० ।।

(उपस्थित भक्तजन भी सम्मिलित हो जाते हैं। कुछ समय तक संकीर्तन)

महा०—(कीर्तनान्ते साष्टांग प्रणाम करते हैं)

पुजारी—

श्लोक

चतुरशीति क्रोशत्वं मर्यादं रक्ष सर्वदा।
नमस्ते केशवायैव, नमस्ते केशी नाशक।।

दो०

केशवदेव श्रीकंठ सों, लै इक कुसुमन हार।
लाय महाप्रभु कंठ पै, दियो पुजारी डार।।

(बंगला)

मथुरा आसिया करिलो विश्राम तीर्थ।
जन्मस्थान केशव देखि करिला प्रणाम।।
लोके हरि हरि बोले कोलाहल होयलो।
केशव सेवक प्रभु के माला पोराइलो।।(चै.चै.)

आरती

केशव जी कल्याण गिरिधरन छबीले लाल।
मदन मोहन श्रीवृन्दावन चन्द,
जय जय राधे कृष्ण राधे कृष्ण राधे गोविन्द।।
देवकी को छैया, बलभद्र जु को भैया लाल।
जाके मुख देखते कटत दुःख द्वन्द्व।
जय जय राधे कृष्ण०००।।
चत्रभुज चक्रपाणि, देवकी नन्दन देव।
नन्द को नन्दन प्यारो असुर निकन्द।
जय जय राधे कृष्ण०००।।
ब्रजपति ब्रजराज सन्तन के सारे काज।
मुरली धरे से नैना देखे ते आनन्द।
जय जय राधे कृष्ण०००।।
यदुपति यदुराय सन्तन सदा सहाय।
यह धुनि गावै नित, स्वामी परमानन्द।।
जय जय राधे कृष्ण०००।।

इति मथुरा—आगमन-लीला सम्पूर्ण।

❖

संन्यास-लहरी **षोछश कणामृत**

श्रीब्रजभ्रमण—लीला

(राधा-कृष्ण कुण्ड-प्रकाश)

मंगलाचरण

मलय सुवासित भूषित गात्रं,
मूर्त्ति मनोहर विश्‍व पवित्रम्।
पदनखराजित-लज्जित-चन्द्रे,
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते।।
सिंह-गमन-जिति-ताण्डव लीला,
दीन-दयामय-तारण-शीला।

अजभव-वन्दित-पद नख चन्द्रे,
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते।।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्त वृन्द।।

समाज— **दो०**

मधुपुरी के तीरथ सकल, दरस परस किये गौर।
गौर दरस करि मधुपुरी, लोक भये सव बौर।।
मतवारे थिर चर किये, अपनो दरसन देय।
आप भये मतवारे पुनि, तिनके दरसन लेय।।
बाढ़ी लालसा उर अति, वन वन देखौं जाय।
गोपी गोप ग्वाल सब, खेलैं जहाँ सुख पाय।।

दृश्य (श्रीमहाप्रभु, बलभद्र भट्टाचार्य एवं विप्र कृष्ण दास बैठे)

महा०—मधुपुरी के तीर्थंन के दरसन तो सब है गये न?

कृष्ण०—हाँ भगवन्! सब ही मुख्य-मुख्य तीर्थन के दर्शन तो आप कर चुकै! श्रीयमुना जी के चौबीसन घाटन के स्नान हू है गये। श्रीकेशवदेव, दीर्घ विष्णु, मथुरा देवी, भूतेश्वर महादेव, ध्रुव-टीला, महाविद्या आदि प्राचीन श्रीमूर्त्तिन के हू दर्शन है गये।

महाप्रभु—यह सब आपकी कृपा है दादा! अब इतनो कृपा और हू करौ कि मोकूँ ब्रज के समस्त वन उपवनन के दर्शन हू कराय देओ। मेरे नैन, मन, प्राण एक-एक लीलाथली के दरस परस कूँ अकुलाय रहे हैं। शीघ्र ही लै चलौ।

कृष्णदास—अहो भाग्य मेरे! एक तो ब्रजभूमि को भ्रमण तथा दूसरो आप को सत्संग-आपके श्रीमुख सों कृष्ण नामामृत एवं कथामृत को पान। आपके संग-सुख के लव लेश के आगे मर्त्त्युसुख तो कहा, वैकुण्ठ सुखहू तुलना नहीं कर सकै है।

तुलयाम लवेनापि, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत् सङ्गिसंगस्य, मर्त्त्यानां किमुताशिषः।।

अतएव आज ही प्रस्थान कर दियो जाय। यहाँ ते मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन होंत भये श्रीगिरिराज महाराज के दर्शन करेंगे। भट्टाचार्य जी! प्रस्तुत है जाओ।

बलभद्र—मैं तो सब समय प्रस्तुत ही रहूँ हूँ। प्रभु को कटिवस्त्र, कौपीन और कमंडलु—ये ही हमारो सामान है। सो नित्य अपने समीप राखूँ हूँ (सामान उठाते हुए) यह लैओ। करो प्रस्थान।

महाप्रभु—तो चलौ दादा चलैं— (उठकर गाते है)

रसिया

कब देखौं ब्रज वन वन जाय,
मेरे प्रान रहे अकुलाय।।
श्रीगिरिराज वह धन्य कहाँ है,
हरिकर कमल पै बास लहा है।
वह हरि में हरिवामें बसैं हैं,
हरि गिरि एक सदाय।।१।।

(गाते २ प्रस्थान। प्रवेश गाते हुए दूसरी ओर से। आगे भी यह क्रम)

राधा कृष्ण कुन्ड सुखकारी,
आप बनाये पिय अरु प्यारी।
हिलि मिलि जाके तीरे नीरे,
खेलैं दोउ सुख पाय।।२।। (प्रस्थान)

(प्रवेश) कुसुम सरोवर कुसुमन क्यारी,
बीनें फूल जहँ भानु दुलारी।
संग सखा लिए बनमाली,
झगरत सखिन सों आय।। (प्र०)

(प्रवेश) बरसानो नंदगाँव कहाँ है,
रस अरु आनन्द धाम महा है।
जहँ फूले द्वय फूल मनोहर,
गौर श्याम फूल आय।। (प्र०)

(प्र०) वृन्दावन बनराज कहाँ है,
प्रेमराज रसराज जहाँ है।
लीलान में सरताज रास जहाँ,
वैकुण्ठ हू जो नाय।। (प्र०)

व्रज वन भूमि लता अरु सरोवर,
इनके भाग्य कूँ तरसैं सुरवर।
एक रेनु ब्रजरज के ऊपर,
कोटि तीरथ बलि जाय।।

नैनन ब्रजवन देखत डोलौं,

प्रानन आरति वारति डोलौं।

मुख सों राधा कृष्ण कृष्ण कहि,

लोटूँ 'प्रेम' रज पाय।।

(भूमि—लुण्ठन। कृष्ण कृष्ण टेरन)

समाज— **चौ०**

लोटत भू पर कृष्ण उचारें।

तन मन पुलक नैन जल धारें।

(जाकूँ सुनि) लता वृक्ष अंकुर पुलकाये।

मधुधारा मिस अश्रु बहाये।।

दो०

तब हरि वंशी बजाय के, थिर चर दिये सरसाय।

अब हरि नाम सुनाय हरि, देत प्रेम उमगाय।।

संगीजन—(विह्वल महाप्रभु को सम्हालते हुए धीरे-धीरे उठाते)

महा०—(भाव विभोर) कृष्ण! कृष्ण! (कहते चलते हैं)

(दृष्टव्य :- आगे की चौपाइयों का **दृश्यात्मक अनुकरण)**

अनुकरण (१) **चौ०**

फूल फूलि फलि झुकि-झुकि आवैं।

प्रभु पद पद्मन भेंट चढावैं।।

बन्धु बन्धु लखि ज्यूँ हरषावैं।

भेंट चढावैं नेह जनावैं।।

नेह पुरातन प्रगट दिखावैं।

सौ गुन प्रभु को भाव बढावैं।।

अनुकरण (२)

धाय प्रभु तरु लता ढिग जावैं।

भुज भरि भेंटि भेंटि हिय लावैं।।

कृष्ण कृष्ण ऊँचे सुर बोलैं।

कृष्ण कृष्ण तरु बल्लरी बोलैं।।

ध्वनि प्रति ध्वनि सम्भ्रम उपजावै।

कृष्ण आप नाम कृष्ण गवावै।।

अनुकरण (३) **सो०**

मृग मृगिन के झुन्ड, आये सुनि प्रभु कन्ठ धुनि।
चाटहिं प्रभु प्रति अंग, संग चलैं रंग नेह भरि।।
ऊँचे करि करि शृंग, विलोकत लोचन डहडहे।
फेरत प्रभु तिन अंग, सुमंगलकर निज कमल कर।।

अनुकरण (४) **चौ०**

भावमय प्रभु भाव भराये।
विलपत हिरनन कंठहि लाये।।

महा०—(एक मृग के कन्ठ से लिपट जाते)

राज खम्भावती—दादवरा

हा हा सुरंग! तुम कृष्ण पियारे।
बोलो कहाँ वे नन्द दुलारे।।
तुम गृह वन संग उनके डोलो।
नाथ तिहारे कित हैं बोलो।।
(श्याम हमारे, प्रान पियारे कित हैं०)

(एक मृगिनी प्रति)

हा हा सुरंगिनि! राधापियारी।
कित विराजति भानु दुलारी।
ललिता विशाखा संग सहेली।
उन बिन तुम कित फिरो अकेली।।
(अरी रंगिनी! श्रीराधा जू तो तिहारे)

चौ०

गहिं गहि कन्ठ बहु लाड़ लड़ावैं।
मनि कंचन वर हार धरावैं।।
कोमल तृन निज कर लै चरावैं।
लै अंकम अति नेह जनावैं।।
तुम रंगिनि वे सुरतरंगिनी।
बोलो कहाँ मम प्रान संजीवनी
हा हा राधे! जीवन राधे! प्राण राधे प्राणाराधे!!

दृश्य (झीने पर्दे में ध्यानस्थ श्रीराधा)

महा०—हा राधे! रासेश्वरी राधे! करुणामयि! कुंजेश्वरी राधे (तिहारो यह) ऋणिया श्याम पुकारे राधे।

चेरो 'प्रेम' तिहारो राधे।।

समाज— दो०

राधा टेरें राधा हेरें, राधामय वनदेश।
भावसिन्धु हरि गौर में, कृष्ण भाव आवेश।।

महाप्रभु— पद दुर्गा-दादरा

यह देखो राधा, वह देखो राधा।
आगे राधा पीछे राधा।।

दादरा

दाहिने राधा वामे राधा। ऊपर राधा भूपर राधा।।

केहरवा

अंग अंग राधा, तरु तरु राधा। पात पात राधा ही राधा।।
तन मन धरन नभ दिशि भुवन, राधा राधा राधा।।
(राधा रा-धा.........रा.........पतन.........मूर्च्छा)

समाज—

प्रिया-प्रीति वश मुरझाये।
परे धरन सुध-बुध विसराये।।
संगीजन आतुर सम्हरावैं।
वसन भिजोय नेत्र मुख लावैं।।
व्यार ढरावैं वदन सिरावै।
कृष्ण कृष्ण नाम कर्ण सुनावैं।।
कृष्ण कृष्ण पुनि ऊँचे गावैं।
कृष्ण-प्रेभ पुनि हृदय-जगावैं।।

संगीजन (कीर्त्तन)—

कृष्ण हे कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण हे कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।

समाज—

सुनि धुनि चेतदशा कछु आई।
'बोल बोल' कहैं कह्यो न जाई।

संगीजन—(पुनः कीर्तन करते) कृष्ण हे कृष्ण हे०००।।

महा०—कृष्ण! कृष्ण! (कहते हुए शनैः शनैः उठ बैठते)

(पुनः कीर्तन) कृष्ण हे कृष्ण हे००००।।

(कुछ समय कीर्तन-नृत्य। प्रस्थान)

समाज—

प्रेम मगन प्रभु नाचत जावैं।
कृष्ण कृष्ण संगीजन गावैं।।
वन वन प्रभु अवलोकत डोले।
भाव विभोर वहु भाँति किलोले।।

(प्रवेश महाप्रभु-संगीद्वय)

समाज—

जबहिं गाँव 'आरीट' नियराये।
ह्वै सचेत प्रभु वचन सुनाये।।

महा०—दादा कृष्णदास! या गाँव को नाम कहा है।

कृष्ण०—अरे भैया व्रजवासियो! ओ भैय्याओ! सुनौ हो न?

(प्रवेश तीन-चार बड़े-बूढ़े व्रजवासी)

ब्रजवासी—को है भैया? कहा है?

कृष्ण०—भैया! हम हैं परिक्रमा वारे! यह कौन सो गाम है?

ब्रज०—(महाप्रभु को देख) दण्डवत् महाराज! नमो नारायण या गाम को पुरानो नाम तो "अरिष्ट" है। अब तो याकूँ 'आरिट' कहै हैं।

महा०—दादा व्रजवासियो! राधा कुन्ड, कृष्ण-कुन्ड यहीं कहूँ न?

ब्रज०—कैसो राधा-कुन्ड, कृष्ण-कुन्ड महाराज? ये नाम तो हमने आज ही सुने। (एक वृद्ध से) क्यों बाबा! तुमकूँ मालुम है? पास-परौस में हैं कोई या नाम के कुन्ड?

वृद्ध० ब्रज०—पास परोस तो कहा लाला! दूर दूर तक इन नामन के कोई कुन्ड नहीं हैं। मैं ब्रज के एक एक कुन्ड, पोखर, सरोवरन कूँ जानूँ हूँ।

परन्तु राधा कुन्ड कृष्ण कुन्ड नाम के कुन्ड तो आज तांई कहूँ नहीं देख्यौ—सत्तर बरस को है गयो।

महा०—अच्छो बाबा! या आरिट गाम में भगवान् श्याम सुन्दर ने—तिहारे नन्दलाला ने—कहा कोई लीला करी हती?

१. वृद्ध—हाँ हाँ! करी क्यूँ नहीं! लीलान के ऊपर ही ब्रज के गामन के नाम परै भये हैं।

कवित्त

शकटन के डेरा को, नाम 'छटीकरा' नाम।
गरुड़ चढ़ि खेल्यो सो, गरुड़ गोविन्द नाम है।।
चराये बछरा बच्छवन, मोह्यौ ब्रह्मा चौमुहाँ।
"छातै" सिर छत्र घरे, भूप राम श्याम है।।
कियो रण "रणवारी" राधा सखी श्याम संग।
बनीं उमराव राधा, 'उमरायो' गाम है।।
जावक दियो 'जाव' में, अंजन 'आंजनोक' में।
अरिष्टासुर मार्यौ इहाँ, 'आरिट' गाम है।

नन्दलाला ने यहाँ अरिष्टासुर नाम के राक्षस कूँ वध कर्यौ हो। जो बैल को रूप बनाय कै ब्रज में उत्पात मचाय रह्यौ हो। यासों या ठौर कूँ 'आरिट' कहैं हैं।

महा०—तो वा राक्षस रूपी बैल कूँ मारवे सों जो हत्या लगी वा ते शुद्ध हैवे के तांई ही कृष्ण कुन्ड में समस्त तीर्थन कूँ बुलाय करकै नन्दलाला ने स्नान कर्यौ हो और वहीं राधा कुन्ड हू है।

१. वृद्ध—महाराज! यह तो आप ने एक नयी कथा सुनायी। तो ये कुन्ड कौन-सी ठौर पै हैं—याको पतो कैसे परैगो? कौन बतावैगो। हाय हाय! हमारी या ब्रजभूमि में न जानै कितेक तीर्थ कहाँ कहाँ लोप परै हैं। कौन उनको उद्धार करैगो?

२. वृद्ध—महाराज! दुनिया कहै है और हम सुन लेय हैं कि हमारी याही व्रजभूमि पै पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म नन्दलाला बन कै खेल्यौ हो और व्रजवासिन ने उनकूँ खिलायो हो कि जाके तांई :—

कवित्त

शत शत वर्ष लगि, सहसन ऋषि मुनि,
लाख लाख होम करि, दरस ना पायो है।

तन कूँ तपाय, मन वासना मिटाय जोग
जुगति जगाय, नहिं अलख लखायो है।।
जग भ्रम गाय, खेल माया को बताय, जीव
आप ब्रह्म कहि, ब्रह्म गन्धहु न पायो है।

(वाही ब्रह्म कूँ)

आँखिन सो देखै ताहि, छातिन सों लाय 'प्रेम',
गोदिन में ब्रजवासी, ब्रह्म लै खिलायो है।

२. वृद्ध (जाकूँ)

यज्ञ पुरुष कहैं कोई, विष्णु विराट कहैं,
नारायण बैकुंठवासी, कोई बखाने हैं।।
ज्योति पुरुष ओंकार, निरंकार कहैं कोई,
सहस्रार सेज पौढ़े, जोगी विरमाने हैं।
अलख अगम अज, अव्यय अनादि आदि,
नाम रूप बिनु बहु, विधि वेद गाने हैं।।
जोगिन को ध्येय, प्रेम ज्ञानिन को ज्ञेय, गोप
गोपिन को लाल ब्रह्म, गोद लै खिलाने हैं।।

३. ब्रज—महाराज! ऐसो सौभाग्य और सुख जिनको हो उनको हो। हमारे भाग्य में वह सब कहाँ। हमारे लिए तो अब एकै आधार रह गयो है--यह भूमि।

कवित्त

याही रज हाथ पाँय टेकि चल्यौ ब्रह्म वह,
रज सों बिरज सो, बिरज (ब्रज) रज सानी है।
लुठाने लिपटाने लै गटक गटक खाने,
कीच खिरकन साने जु शोभा सुहानी है।।
गायन के गोपन के, गोपिन के संग डोले,
याही रज गली गली गेह गेह छानी है।
अतो पतो आपनो वो आप ही दै गयो 'प्रेम',
कन् कन् यह ब्रजराज, ब्रह्म की निशानी है।।

या कारण सों यह व्रजराज तो वा ब्रह्म को पतो ठिकानो है, वाकी मोहर छाप है, वाकी अचूक निशानी है।

१. **वृद्ध**—परन्तु महाराज! यह तो भाव की बड़ी ऊँची बात है। भाव-आँखिन सों ही निरख्यो-परख्यो जाय सकै है। हम जैसे बाहर की आँखिन वारेन कूँ तो बाहर की भूमि ही दीखै है। आप जैसे ब्रज-प्रेमी सन्त महानुभाव बड़ी दूर-दूर ते आवैं हैं। कितनी श्रद्धा कितनी जिज्ञासा उनमें होय है। पर हम मूर्ख अपढ़ व्रजवासी, न शास्त्र जानैं हैं, न कछु सत्संग ही हमकूँ मिलैं है। फिर कैसे कोई बताय सकै है कि नन्दलाला ने कौन-सी ठौर पै कौन-सी लीलाकरी है। बड़े-बूढ़ेन के मुख सों सुनी-सुनायी बातन कूँ, उलटी-सूधी झूठी-साँची कछु कह देय हैं और अब तो.........।

२. **वृद्ध**—(बात काटते हुए) और अब तो उन पुरानी बातन कूँ जानवे-मानवे वारे हू उठते जाय रहे हैं। नयी पीढ़ी तो परायी बनती जाय रही है। उनकूँ घर की वस्तुन सों कोई लैनो दैनो नहीं। आकाश पाताल की, सात समुद्र पार की खबर वे राखै हैं परन्तु अपने घर को, अपनी धरती और धर्म को, अपनी धरोहर को, ज्ञान नहीं पुरानी गाथा जानै नहीं हैं—थोरो-बहुत जानैं हैं तो मानै नहीं हैं फिर राधाकुन्ड श्याम-कुन्ड कूँ कोई कैसे जानैगो और बतावैगो।

३. **ब्रज०**—हाय भगवन्! आज हम अपने घर की अमूल्य निधि कूँ विसराय कै बाहर के कंकर-पत्थरन कूँ, बटोरवे में ही बड़ो भारी गर्व को अनुभव करै हैं—कृतार्थ मानैं हैं।

सवैया

सुध कौन करे दुख कौन हरै,
जब घर के ही होन पराय लगै।
न लगै वन नीके कदम्ब करील,
अब भौन अटा मन भान लगै।।
ए लगै ब्रजनाम ही नाम रहै,
सब रूप ओ रेख निशान भगै।
अभगे व्रजवासिहिं काहे जिवावै,
ब्रज ही जब मिटि जान लगै।।

१. **वृद्ध**—(व्याकुलता पूर्वक) अरे कन्हैया! यदि तेरी ऐसी ही इच्छा हैं कि तेरे ही भक्त कहायवे वारे तेरी जन्मभूमि कूँ मिटाय के ही सुख-समृद्धि भोग करैं, तो लाला! बाते पहले हम अभागे ब्रजवासिन कूँ ही क्यूँ नहीं मिटाय देय है!!

सवैया

(हाय) देखैं सुनैं ओ सहैं कब लौं दु:ख,
तोकूँ ही 'प्रेम' सुनावैं हरे।
तुम द्वारिका तो आप डुबोय गये,
कित ब्रज कूँ नाहिं डुबोयो हरे।।
न रहते ब्रज ब्रजवासी तौ,
को सकतो छाती जराय हरे।।
यह हाँसी नहीं व्रजवासिन की,
यह हाँसी तेरी ही उडावैं हरे।।

महाप्रभु—प्यारे ब्रजवासियो! धन्य है तुम्हारे ब्रज-प्रेम कूँ। परन्तु इतने दु:खी मत होओ। याकूँ सब अपने नंदलाला को ही खेल समझौ। वाको एक नाम 'काल' है। वह अपने समय पै ही सब काम करै है। जीव तो केवल निमित्त मात्र है। इच्छा तो उसी की है, सोचो तो :—

कवित्त

एक समै ब्रह्ममुख देखैं असुरन ने हू,
एक समै भक्त आज टेरि-टेरि रोवैं हैं।
एक समै जहाँ तहाँ, चरन-चिन्ह जगमगे,
एक समै लाय धूरि, जिय विरमावैं हैं।।
एक समै देवता हू दौरि दौरि आये व्रज,
एक समय लोग व्रज छोड़ि छोडि जावैं हैं।
समै कहौ काल कहौ, कारो कहौ, कान्ह कहौ,
दूसरो न कों 'प्रेम' कान्ह ही नचावैं है।।

कृष्णदास—मैं हू कछु अपनो दु:ख सुनामनो चाहूँ हूँ।

महा०—हाँ हाँ अवश्य।

कृष्णदास—

एक समै आप ही तो, भूतल पै ठाठ रचैं,
एक समै ठाठ वारह बाट करि जावैं हैं।
एक समै लच्छमी आय, घर घर किलोलीं ब्रज,
एक समै व्रजवासी, नौन चून खावैं हैं।।
एक समै काम धेनु कोटि कोटि डोली व्रज,
एक समै घूँट मठा, खोजै नहीं पावैं हैं।

काल रूप कान्हा प्रेम, मोहन के मोह नहीं,
लाय फुलवारी आप, आप ही मिटावैं हैं।।

महा०—प्यारे व्रजवासियो! चिन्ता दुःख छोड़ो! सुनौ! तिहारे कन्हैया की इच्छा सों ही अब व्रज को शीघ्र ही प्रकाश होयगो। बड़े-बड़े आचार्य, सन्त महानुभाव व्रज में पधारेंगे! व्रज की लीला स्थलिन को प्रकाश करैंगे तथा ब्रज की उपासना को प्रचार करैंगे। तब विश्व तुम्हारे व्रज कूँ जानैगो, मानैगो और पूंजैगो। तिहारी सर्वत्र जयजयकार होवैगी। प्यारे ब्रज बन्धुओ! तिहारे अंक में जो एक निधि है वह त्रिभुवन में तो कहा, वैकुण्ठ में हू नहीं है। अतएव दुःख चिन्ता सब त्याग देओ। आनन्द-मगन रहौ। और अब चलौ उन कुण्डन को पतो पारेंगे। तुम सब सहायता करौ—हरि बोल

ब्रज०—हरि बोल।

महाप्रभु—(कीर्तन) हरि बोल हरि बोल हरि हरि बोल

हरि बोल हरि बोल हरि को मोल

(संकीर्तन धुनि सुन बहुत से ब्रजवासियों का आना और कीर्तन में योगदान करना)

समाज— **चौ०**

हरि गावत हरि चले सुखदाई।
प्रेम भक्ति रसधार बहाई।।
कीर्तन करें मुख गौर निहारें।
रहैं ठगे-से प्रानन वारें।।

ब्रजवासी—

कोई कहत ये कहां ते आये।
वयस नवीन गेह तजि धाये।।
रूप मनोहर मोहनी बैना।
भरे भाव रस ढरैं द्वै नैना।।
कोई कहत थे नहीं संन्यासी।
कहि न सकौं मो मन जो भासी।।
तात मात सुत प्रानते प्यारो।
परम मीत यह कोई हमारो।।

समाज—

तरु तमाल श्याम तल जाई।
बैठे प्रभु परम हरषाई।।

ब्रजवासी— दो०

लखो लखो ये पक्षी कुल, करत दरस ढिग आय।
'कृष्ण-कृष्ण' शुक पिक कहैं, नाचैं मोर सुहाय।।
अचरज प्रेम अचरज चरित, देत भ्रम उपजाय।
गौर रूप यति वेष धरि, कहा कृष्ण रहे आय।।

ब्रजवासी—पद (हमीर-बहार)

१. तरु तरु पर पक्षी बोल बोल,
स्वागत सुस्वागत गाय रहै।
ये लता बल्लरी डोल डोल,
झुकि झुमि झुमि सिर नाय रहे।।
तरुवर ये कुसुमन फूल फूल,
पुहुपांजलि भरि वरसाय रहे।
आनन्द भयो आनन्द 'प्रेम',
नंदलाल गोपाल धर आय रहे।।१।।
२. इत हिरनी हिरना आय आय,
लोचन उठाय मुख हेरि रहे।
उत मोरनी मोरहू गाय गाय,
निरतत पंख पसारि रहे।।
सब पुच्छ उठाय जु धाय धाय,
आवत हैं गाय चहुँ घेरि रहे।
आनन्द भयो आनन्द 'प्रेम',
नंदलाल गोपालहिं हेरि रहे।।२।।

समाज— चौ०

प्रभु सर्वज्ञ कुन्ड कहाँ जानें।
प्रगट करन उर अन्तर ठानें।।
उठि चले आगे वन माहीं।
लगि पाछे जन गन सब जाहीं।।

(महाप्रभु के पीछे-पीछे सब चले जाते हैं)

दृश्य—(बन धान के खेत खड़े है)

महाप्रभु—(प्रवेश—पीछे पीछे जनता)

समाज— चौ०

खेत धान जहँ कछु ठाड़े।
गये प्रभु जन कौतुक वाढ़े।।
बोले बचन मधुर सुखदाई।
उत्कंठ जिय जनन जगाई।।

महा०—दादा ब्रजवासियो! ये जो धान के खेत हैं। इनके मध्य में इत् उतकूँ जो ये द्वै गढ़ैला हैं—ये ही राधा कुन्ड, कृष्ण कुन्ड की प्राचीन ठौर है। इनमें थोरो-थोरो पानी अब हू दीखै है।

१. ब्रज०—कहा ये ही है राधा कुन्ड, कृष्ण कुन्ड?

२ ब्रज०—अरे! हम तो इनकूँ कारी-धौरी कुन्ड कहैं हैं।

महा०—तो साँचीइ कहौ हो। राधा जु गौरी सौ उनको कुन्ड धौरी कुन्ड और कृष्ण कारे को कुन्ड कारो कुन्डा सठीक नाम करण है। छोटे को छोटो और मोटे को मोटो!!

महा०—आज मेरे बड़े दिनन की साध पूरी भई राधा कृष्ण कुन्ड के दर्शन पाये। अब इनमें स्नान करके पवित्र होंनो चाहिये। (पंचांग प्रणाम करते)

राधिकासम सौभाग्य! सर्वतीर्थ प्रवन्दित।
प्रसीद राधिकाकुण्ड! स्नामि ते सलिले शुभे।।

अर्थ—हे राधा कुन्ड! राधिका के समान ही तुम्हारो सौभाग्य है। समस्त तीर्थ तुम्हारी वन्दना करैं हैं। मेरे ऊपर प्रसन्न होओ! कृपा दृष्टि करौ। मैं तुम्हारे पवित्र प्रेममय जल मैं स्नान करूँ (स्नान-काल में पर्दा)

(अन्य सब लोग बाहर खड़े रहेंगे)

समाज— (बंगला)

तीर्थ लुप्त जानि प्रभु सर्वज्ञ भगवान।
दुइ धान्य क्षेत्रे अल्पजले कैला स्नान।।

दो०

प्रभु राधाकुन्ड में, न्हावत भाव विभोर।
ग्रामवासी ठाड़े लखत, मन विस्मय नहिं थोर।।
राधाकुन्ड न्हाय पुनि, कृष्णकुंड करैं न्हान।
नेम-प्रेम प्रगटहिं प्रभु, जा विधि जग कल्यान।।
(पर्दा खुलता है। महाप्रभु हाथ जोड़े खड़े हैं)

समाज—

करत स्तुति न्हाय के, महिमा प्रगटत गौर।
जय जय राधाकुन्ड जय, कुन्डन में सिरमौर।।

महाप्रभु-द्रुत-चौताला

जयति जयति राधा तुल्य राधाख्य कुण्ड।
जयति जयति साक्षात् कृष्ण वत् कृष्ण कुण्डम्।।
कुमुदकमलषण्डैर्-मण्डित कुण्ड युग्मं।
नयन युगल तुल्यं पश्य गोवर्धनस्य।।

दादरा—

जय जय श्रीराधा तुल्य राधाकुन्ड जय जय।
जय जय श्रीकृष्ण तुल्य कृष्ण कुन्ड जय जय।।
गोवर्धन नयन युगल तुल्य कुन्ड जय जय।।

श्लोक (पूर्व लय में)

यथा राधा प्रिया विष्णुः, तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्व गौपिषु सैवैका, विष्णोरत्यन्त वल्लभा।।
गोपिन में श्रीराधा जैसी, कृष्णप्रिया हैं सिर मौर।
कुन्डन में राधाकुन्ड तैसे कृष्णप्रिय है सिर मौर।।

झिंझोटी कल्याण— पद

राधा कुण्डे नित्य कृष्ण राधाजु के संग।
नीरे जल केलि करैं, तीरे रस संग।।
राधा कुन्डे एक बार करैं जो नहान।
राधा सम निज जन कृष्ण लेय मान।।
राधा कुन्डे एक बार करे जो नहान।
राधा सखी मण्डली में लिखैं ताको नाम।।

राधा कुन्डे एक बार करै जो स्नान।
राधा सम शुद्ध प्रेम करैं श्याम दान।।
राधा कुन्ड रूप श्रीराधा ही को जान।
राधा कुन्ड महिमा श्रीराधा ही की जान।।

धुन

राधे.ऽ.ऽ.ऽऽ राधे ऽऽऽऽ राधे राधे राधे राधे।।राधे०।।
कुण्डेश्वरी राधे, वृन्दावेश्वरी राधे, वृषभानु दुलारी-राधे!
राधे ऽऽऽऽ राधे ऽऽऽऽ राधे राधे राधे राधे।।राधे०।।
कुण्डेश्वरी राधे, कृष्ण प्राणेश्वरी राधे,
सर्वेश्वरी प्यार-राधे०।।

(कीर्तन-नृत्य)

समाज— **(बंगला)**

एइ मते स्तुति कोरे प्रेमाविष्ट होइया।
तीरे नृत्य कोरे कुण्डलीला स्मरिया।।

दो०

उत्कंठा बाढ़ी अधिक, व्रजवासिन उर माहिं।
राधाकुंड गुनगान सुनि, लीला जानन चाहिं।।

ब्रजवासी—

बार बार वन्दन करैं, अपनो भाग मनाय।
हम अनाथ सनाथ भये, दरस तिहारे पाय।।
सखा बन्धु गुरुनाथ तुम, कृपा करी जु आय।
कुंड युगल प्रगट किये (अब) लीला दैहु सुनाय।।

महाप्रभु—प्यारे ब्रजवासियो! सुनौ। राधा-कृष्ण-कुंड कौन प्रकार सों प्रगट भये-सो कथा सुनाऊँ हूँ। बड़ी मधुर मंगल प्रेम रस भरी कथा है। तिहारे नन्दलाल एवं भानुलली के कौतुक-विनोद सों इनकी उत्पत्ति है। जा दिना श्याम-सुन्दर ने अरिष्टासुर को वध कियो, वा दिना रात्रि में जब वे निकुंज में पधारे तो ललिताजी उनकूँ रोक कर बोलीं।

दृष्टव्य—(झीने पर्दें के अन्दर लीला-प्रदर्शन। बाहर महाप्रभु)

ललिता—लाल जी! तिहारी ड्यौड़ी बन्द है।

श्रीकृष्ण—कारण?

ललिता—आज आप ने गोहत्या जो करी है।

श्रीकृष्ण—कैसी गोहत्या?

ललिता—(हँसते हुए) बैल नहीं ललिते। राक्षस-अरिष्टासुर कंस को भेज्यो भयो। वा राक्षस कूँ मार्यौ है।

श्रीकृष्ण—परन्तु जा समय आप ने मार्यो वा समय तो वाको रूप बैल को ही हो न?

श्रीकृष्ण—हाँ हो तो बैल को रूप ही।

ललिता०—और जब आपने सींग पकड़ कै घुमायो हो तो सींग बैल के हे कै राक्षस के?

श्रीकृष्ण०—सींग तो बैल ही के रहे?

ललिता—तो आप ने बैल के सींगन को पकरि कै बैल की देह कूँ घुमाय घुमाय कै बैल कूँ मार्यौ हो कै नहीं?

श्रीकृष्ण—परन्तु वह तो मरते समय अपने असली रूप में आय गयो हो-राक्षस बन गयो हो।

ललिता०—मरकर कै देवता बने, भूत-प्रेम-राक्षस बनैं, हमें वाते कहा मतलब। हम तो जींवते के रूप कूँ देखैं हैं। आप ने जन्मत ही तो स्त्री-हत्या पूतना की करी। सो यशोदा मैया ने गो मूत्र सो न्हवाय, गोबर को टीको लगाय, गौ पूँछ सों झाड़ो दै दै कै गौ माता की कृपा सों गौ-हत्या कूँ दूर करी। आज फिर आप वही गौ-माता के बेटा कूँ मार आये हो। यशोदा मैया ने अच्छे सपूत जाये हैं सो हत्या करते ही डौलौ हो जैसे तो और कछु काम ही न होय।

विशाखा—सखी! ये ऐसे चमत्कारी आये हैं कि जा काहु कूँ हाथन सों छी देह हैं वाको रूप ही पलट देय हैं।

दो०

या कारे के परस सों, गोरो रहै न गोरी।
सब कारे बनि जात हैं, गोरो रहै न कोरी।।

ललिता—(व्यंग पूर्वक) गोपाल जी महाराज! सौ बातन की एक बात सुन लेओ कि जब तक आप गोहत्या सों शुद्ध नहीं है जाओगे तब तक हम आप कूँ प्रिया जू के साथ एक आसन पैं बैठवे नहीं देंगी।

विशाखा—बैठवो कहा छीबे तक नहीं देंगी। समझे?

गाना— कृष्ण कुण्डाष्टक (भिन्न-भिन्न तर्ज में)

सब सखी—

करौ परस न ढरौ नियरे जु, हम शुचि व्रजनारी हो।
तुम हो कारे करम कारे, वृषभ हत्याकारी हो।
जाओ नहाय तीरथ आओ, सकल पाप हारी हो।।

समाज—

(जय) राधिके कुण्डेश्वरी तुव
लीला ए मनोहारी हो।।१।।

श्रीकृष्ण—सखियो! तीरथ तो तीन सौ अड़सठ करोड़ हैं। उनमें न्हामत न्हामत तो आयु ही बीत जायगी। मेरो कहा मैं तो चल्यौ जाऊँगो? तुम ही रोओगी। कहा करूँ, चल्यौ जाऊँ?

ललिता—हमने कह तो दीनी सौ बातन की एक बात-आप कूँ शुद्ध है कै ही आमनो परैगो। अब आप के मन में आवै सो करौ।

विशाखा—लाल जी! हमको कहा डरपाओ हो! हमारे बिना एक दिन हू आप नहीं रह सकौ हो।

श्रीकृष्ण—(हँसते हुए) मेरे बिना तुम नहीं रह सकौ हो और तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकूँ हूँ। और शुद्ध हू होनो ही परैगो। यासों एक समझौता कर लेओ—

गाना

जाऊँ कहाँ कहाँ तीरथ धाऊँ, लोक लोक सारे हो।
बोलूँ यहीं तुम देखौ सही, तीरथ सब अपारे हो।।
(कहते हुए वाम चरण की एडी से पृथ्वी पर ठोकर)

समाज—

तुरत नाथ पद आघात, भूमि माथ मारे हो।
(जय) राधिके कुण्डेश्वरी, बलि कौतुक रंग तिहारे हो।।
भयो तेहि छिन भूमि गर्त, चरन घात भारे हो।
फूटी धरनी निकसी झरनी, भोगवती की धारे हो।।
पाताल गंग, धवल रंग, कुंड भयौ जु सारै हो।
(जय) राधिके कुंडेश्वरी, बलि कौतुक रंग तिहारे हो।।

महाप्रभु—तो व्रजवासियो! भगवान् की एड़ी की ठोकर सो भूमि में गढ्ढ़ो पर गयो और वामें सों फट निकसी एक स्वच्छ धारा पाताल-गंगा भोगवती की! परन्तु श्रीराधा जू अनजान-सी वन कै बोलीं—

श्रीराधा—हम न जानैं कैसे मानैं, कहाँ की ए वारी हो।

समाज— (तब तो)

भोगवती भईं भोगवती जू तुरत मूरति धारी हो।
(देवी रूप में भोगवती होकर हाथ जोड़)
जोरि पाणी बोलीं बाणी, नाम निज उचारी हो।
(मैं पाताल निवासिनी भो० गंगा हूँ। मेरो प्रणाम स्वीकार हो)

समाज— (जय)

राधिके कुण्डेश्वरी, तुव लीला ए मनोहारी हो।

महाप्रभु—भोगवती के पश्चात् भगवान् एक-एक तीर्थ को आह्वान करवे लगे।

समाज—

नाम लै लै नाथ बोलैं, आवैं तीर्थ भारी हो।
मूर्त्तिमान मूर्त्तिमती, नर हैं कोई नारी हो।।

श्रीकृष्ण—मन्दाकिनी, भागीरथी, कालिन्दी हू पधारी हो।

(एक एक नाम पर एक एक देवी प्रकट होंगी)

समाज—

जय राधिके कुण्डेश्वरी, तुव लीला ए०० ।।

श्रीकृष्ण—

कृष्ण ताम्रपर्णी हे, गोदावरी कावेरी हे।
सरस्वती हे गंडिकी हे रेवा सरजू प्यारी हे।
हे पुष्कर प्रयागराज सिन्धु आज्ञाकारी हे।।
(ये तीनों देवता रूप में प्रकट होंगे)

समाज— (जय)

राधिके कुण्डेश्वर, तुव लीला ए०० ।।
(आगे सब देवता रूप में)
सर नारायण, मानसर, बिन्दुसर पधारे हो।
क्षारसिन्धु क्षीरसिन्धु, सप्तसिन्धु सारे हो।।
भारी भीर कुंड तीर, जयति जय पुकारे हो।
(जय) राधिके कुंडेश्वरी, बलि कौतुक रङ्ग तिहारे हो।।

महाप्रभु—या प्रकार सों श्रीकृष्ण वुलामते गये और तीर्थ प्रगट होंते गये और अपनौ नाम बोलि-बोलि कै वा कुंड में जल डारते गये। भगवान् की एड़ी की ठोकर सों जो एक बड़ो-सो गर्त्त (गड्ढा) बन गयो हो वाकूँ तीर्थन ने अपने पवित्र जल सों भर दियो। तब कौतुकी भगवान् बोले—

श्रीकृष्ण—देख लियौ न सखियो! समस्त तीर्थन को जल या कुंड में आय गयो। मैं अब यामें स्नान करकै पवित्र होऊँ हूँ।

(पर्दा में स्नान)

महाप्रभु—भैयाओ! जो श्रीहरि भगवान् को

गाना

एक नाम तीरथ धाम, भुवन पावनकारी हो।
भूलेहु मुख बोले सकल पाप भस्मकारी हो।।
वे हरि न्हावैं गोपी रिझावैं, हत्या शींशधारी हों।
(जय) राधिके कुंडेश्वरी, तुव लीलाए मनोहारी हो।।

या प्रकार सों यह कृष्ण कुन्ड प्रगट भयो। जा भगवान् को नाम 'हरि' है। जिनको कोई एक नाम धोखे सों हू काहु के मुख सों निकस जाय तो वाके जन्म जन्मान्तर के समस्त पाप-राशि भस्म है जायँ हैं, वे ही स्वयं भगवान् हरि, ब्रजगोपिन के प्रेम में विके भये, उनके कहवे सों राक्षस के वध कूँ बैल की हत्या मान लेयँ हैं और वासों शुद्ध हैवे के तांई तीर्थन कूँ बुलाय कै उनमें स्नान करैं हैं। ऐसे कौतुकी लीला प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण है।

१. ब्रज०—महाराज! श्रीकृष्ण ने तो गोपिन कूँ रिझायो पर हमारे लिए तो घर बैठे ही समस्त तीर्थ ब्रज में आय गये।

२. ब्रज०—और हम ऐसे अन्धे गँवार हैं जो तीर्थ न्हायवे कूँ दुनियाँ भर में धक्के खामते डोलै हैं। गयो सो गयो। अब आगे मैं कहूँ नहीं जाऊँगो। याही कृष्णकुंड में नित्यानी नहीं तो ग्यारस, पूनौ-मावस कूँ तो जरूर ही गोता लियौ करूँगो।

अन्य ब्रज०—(हाँ में हाँ मिलाते हैं)

महाप्रभु—दादाओ! राधाकुण्ड की कथा तो अबै शेष हैं। वाकूँ सुन लेओगे तो सही कचाई हू निकस जायगी और फिर जन्म भर राधाकुण्ड न्हाओगे—कभू चूकौगे नहीं।

वृद्ध—साँची कहौ हो महाराज। एक पंडित जी कह रहै कि जानै बिना प्रतीति नहीं होय है। प्रतीति बिना प्रीति नहीं उपजै है। और प्रीति बिना निष्ठा

नहीं होय है। और निष्ठा बिना भक्ति टिकै नहीं है। चिकने घड़े पै जैसे पानी ढरक जाय है, यासों राधाकुंड की कथा हू कृपा करके सुनाय देओ।

महाप्रभु—सुनौ। जब कृष्ण कुंड में श्रीकृष्ण न्हाय चुकै तो राधाकुंड कूँ प्रगट करवे के तांई गोपिन सों कौतुक करके बोले :—

समाज—

बोले श्याम कौतुक धाम,
(श्री०कृ०) न्हाओ तिहारी पारी है।

श्रीकृष्ण०—

तुम न जाओ, कभु नहाओ, तीरथ व्रज ब्हारी है।।
तिहारे भाग जागे आज, आये ए तीरथ द्वारी हो।।

समाज— (जय)

राधिके कुंडश्वेरी, तुव लीला ए मनोहारी है।।

राधा कुण्डाष्टक

श्रीराधा—अजी! अब तो हत्या तिहारे अंग सों निकसकै तिहारे कुंड में आय गई है। यासों हम तो यामें नहीं न्हायँगी।

गाना

तुम तो न्हाय, हत्या वहाय, कर दई जलकारी हो।
हम जो न्हावें, हत्या पावैं, ह्वै हैं गोरी सों कारी हो।।

(यासों हम तो)

रचि हैं हमारो, कुंड न्यारो, संग सखिन हजारी हो।
समाज—(जय) राधिके कुंडेश्वरी०० ।।

ललिता—बड़ो सुन्दर विचार है प्यारी जू! हम इनके हत्या वारे कारे कुंड में क्यूँ न्हावैं। हम अपनो न्यारो कुंड बनायँगी। हमारे संग हजारिन सखी है। सब मिल करकै अब ही बनाय लैंगी।

श्रीकृष्ण—कौन-सी ठौर बनाओगी गर्वीली जू!

ललिता—बगल के धान के खेत में बनायँगी-तिहारे कुंड की बरोबरी में।

श्रीकृ०—और बनाओगी काहे सों हठीली जू?

ललिता०—अपने हजारन हाथन सों। आप के दायें चरन में बल है तौ हमारी बार्यीं भुजान में बल है। गढ़ैले की मिट्टी तो गीली है ही। वामें जलहू थोरोइ है। सो-दो सौ सखी वामें घुस जायँगी और वामें सों मिट्टी काट-काट कै निकासेंगी और हम बाहर सों हजारन सखी लै लै के डेलान कूँ चारों ओर जमाय देंगी। सोई कुंड बन कै तैयार है जायगो।

विशाखा—(श्रीराधा प्रति) हे स्वामिनी जू! आप अपने हाथन सों नेक मुहूर्त्त कर दैओ। फिर देखियो हम सब सखी द्वै-चार घड़ी में ही कुंड तैयार कर देंगी।

ललिता—और सुन्दर बनाय देंगी—इनके कारे कुंड ते।

श्रीकृ०—क्यूं अपनी सुन्दर सुकमार काया कूँ कीच-गारेन में साननो चाहौ हो। मान जाओ। मेरे कुंड में ही न्हाय लेओ।

ललिता—अब आप बोलो मतिना। चुप ठाड़े रहौ। हाँ लाड़िली जू! आप थोरी-सी मिट्टी निकास करके मुहूर्त्त तो कर देओ।

श्रीराधा—(थोढ़ी-सी मिट्टी निकाल कर देती हैं)

समाज— **(गाना)**

कुंड श्याम, पच्छिम धाम, गर्त्त गीलो भारी हो।

दृश्यात्मक—

धार्यीं गोपी, वचन रोपी, राधा संग हजारी हो।।

अनुकारण—

फरिया छोर, कटि महँ जोर, कसि कसि किनारी हो।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, तुव लीला ए मनोहारी हो।।
कुन्ड माटी, गीली काटी, गोले बहू पारे हो।
सहस दैवें, सहस लैवें, सहस लै लै डारे हो।।
मची जु धूम, सखियाँ झूमि, झुकैं उठैं न हारे हो।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, ए कौतुक रंग तिहारे हो।।

समाज—

ऐसो खेल रंग रेल, लखि कहैं गिरिधारी हो।

श्रीकृष्ण—

गई हौ हारी, हे सुकुमारी, तजो श्रम अति भारी हो।।
तिहारो काम, करूँ मैं श्याम, सदा ही आज्ञाकारी हो।

(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, तुव लीला अति मनोहारी हो।।

महाप्रभु—परन्तु वा भारी कोलाहल में काहू के कान में श्यामसुन्दर की बात न पहुँची। वे विचारे टेरते-पुकारते ही रह गये।

समाज—

सुनै सो कौन, बोलैं न मौन, गरब गुमान भारी हो।
घड़ी द्वै मध्य, कुन्ड भव्य, रचि डारे सुकुमारी हो।।
कौन-सी बात, जहाँ श्री-आप, सर्वेश्वरी प्यारी हो।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, तुव लीला अति मनोहारी हो।।

महा०—कुंड तैयार है गयो तो परमविनोदी प्रभु हँसते भये बोले।

श्रीकृष्ण—बलिहारी सखियो! बलिहारी! कुंड तो बड़ो सुन्दर बनाय लियो- लम्बो-चौड़ो-गहरो-सब बढ़िया परन्तु.....जल तो है ही नहीं! कहाँ कीच में न्हाओगी।

(गाना)

सूखो कुन्ड, रुन्ड, मुन्ड, आनो कहूँ ते वारी हो।
नहीं तौ मानौ, हठ न ठानौ, लेओ मो कुन्ड वारी हो।।
करहु धन्य, तीरथ वृन्द, देओ स्वकुंड ठौरी हो।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, तुव लीला अति मनो०० ।।

श्रीकृष्ण—हे किशोरी जू! मेरी बात मान लैओ। मेरे कुंड में ते जल लै लेओ। इन तीरथन कूँ अपने कुंड में बास देओगी तो इनको हू जीवन धन्य है जायगो।

श्रीराधा—अजी! अपने कुंड के जल कूँ तो देखो-कैसो कारो है यामें गौ- हत्या अवश्य आय गयी है। फिर हम कैसे लैं!!

श्रीकृ०—अजी सुनो! एक हत्या तो कहा कोटि-कोटि हत्याहू मेरी छाँह कूँ नहीं छी सकै हैं। मेरी छाँह ही समस्त पाप-तापन कूँ, हरलेय है। तापै तौ या कुंड के जल ने मेरी पूरी देह कूँ अपने अंक बीच धारण कियो है। यासों यह गंगा कीहू महा गंगा, तीरथ कोहू महा तीरथ बन गयो है और आपहु यदि स्नान कर लैओगी तो यह महा-महा तीर्थ है जायगो! और ललिता-विशाखा हू न्हाय लैंगी तौ यह महा-महा—महा।

ललिता—(बात काट कर) बात मत बनाओ ज्यादा।

बातन सों कहीं हत्या दूर होय है। देखै लैओ यह जल तो कारो को कारो ही है।

श्रीकृ०—यह कारो तो तिहारी आँखिन को काजर श्याम रंग है। जैसो मैं- वैसो मेरो कुंड-वही रूप, वही रंग! कारो जल बुरो तो कारो श्याम अच्छो कैसे?

श्रीराधा—सखी! ये तो बातन में रात निकाल दैंगे। छोड़ इनकूँ और चलौ सब पवित्र जल लै आवैं—मानसी गंगा को।

(गाना)

हम न लैहैं, कभु न छीहैं, हत्या जल ए कारी हो।
पुन्य जल, अति, विमल, लावैं मानस वारी हो।।
लै कै गगरी, भर दैं सगरी, छिन में सहस नारी हो।

समाज— (जय)

राधिके कुन्डेश्वरी, तुव लीला अति मनो००।।

महा०—या प्रकार सों मधुर प्रणय कलह करके श्रीराधाजु सहस्त्र-सहस्त्र सखी परिकर कूँ लै कै मानसी गंगा जायवे कूँ प्रस्तुत भई। तब तो भगवान् श्यामसुन्दर ने जो तीर्थ वहाँ देवी-देवतान के रूप में वहाँ ठाड़े रहै, उनके प्रति संकेत कियो।

श्रीकृ०—(संकेत करते कि श्रीराधा समीप जाकर प्रणति-स्तुति करें)

समाज—

लखि प्रिया हठ, नागर नट, तीर्थन प्रति निहारे हो।
समुझि सैन, आज्ञा बैन, राधे ढिग पग धारे हो।।

तीर्थ वृन्द—(जय)

राधे रानी, श्यामारानी जय जय जय कारे हो।

समाज— (जय)

राधिके कुन्डेश्वरी बलि कौतुक रंग तिहारे हो।।

तीर्थ वृन्द-स्तुति **मालकोष दादरा**

जय जय राधे, करुणागाधे, कृपा की कोर हेरिये।
हेरि नैन, मधुर बैन, मृदुल हँसि उचारिये।।
"आओ वसो कुन्ड मेरे, तुम सहेली प्यारिये।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, करौ कृपा बलिहारिये।।१।।
२. ब्रह्मा ध्यावैं, लखि न पावै, चरन नख निहारे हो।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, करौ कृपा बलिहारे हो।।२।।

३. कल्पतरु वाञ्छातरु, कोटि जिन पै वारिये।
सोई चरण, हम हैं शरण, दीनन दूर न टारिये।।
दीजै वास, कुन्ड खास, विरद निज सम्हारिये।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, 'प्रेम' चरण-शरण राखिये।।

(साष्टाँग प्रणति)

महा०—या प्रकार जब सब तीर्थन ने मिलकर सर्वेश्वरी श्रीराधा जु की बहु विधि प्रार्थना करी तो करुणामयी प्रसन्न है गईं और आज्ञाकरी।

श्रीराधा—हे तीर्थवृन्दो! तुम सब सुखेन मेरे कुंड में आय कै सदा निवास करौ।

तीर्थवृन्द (१) चलौ! चलौ! बीच के मेंड कूँ तोड़कर या कुंड सों वा कुंड में प्रवेश करो।

(२) आज हमारे भाग्य खुल गये। हमें श्रीराधा कुण्ड में निवास प्राप्त भयो।

(३) जय कुण्डेश्वरी 'जय सर्वेश्वरी! राऽऽऽधे! (पर्दा०)

समाज—

दया निधान, कुँवरी भान, विनती सकी न टारी हो।
आज्ञा दई, जिय की भई, उमगे तीरथवारी हो।।
चलै जोर, मेंड़ तोर, भयो जो शोर भारी हो।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी! तुव लीला अति००।।

महा०—श्रीराधा जू की आज्ञा पाय कै तीर्थ सब उमगि चले। बीच की मेंड़ तोड़ दीनी और राधाकुण्ड में प्रवेश करकै जल सों परिपूर्ण कर दियो। अब तों राधाकुण्ड एवं कृष्णकुण्ड की जुगल जोड़ी प्रगट है गई। जिनके दर्शन करकै कोटि-कोटि कण्ठन सों मंगल जय जयकार ध्वनि सों दिशा गूँज उठी

(नेपथ्य में)

जय राधा कुण्ड की जय। जय कृष्ण कुण्ड की जय।।
जय राधा कृष्ण कुण्ड की जय जय जय।।

महा०—तब ती श्रीराधा कुण्ड के दर्शन सों पुलकायमान है कै श्रीश्याम सुन्दर एवं सखियां)

(हे प्रिये)

श्रीकृष्ण छाया वसन्त केहरवा

कुन्ड तिहारो, अति ही प्यारो, जैसे तुम अति प्यारी हो।
तैसीइ महिमा, नाहिंन सीमा, मो कुन्डहू ते भारी हो।।
नाम ए राधा, कुन्ड ए राधा, युगल मूरति धारी हो।
(जय) राधिके कुन्डेश्वरी, तुव लीला अति०० ।।

महा०—प्राणनाथ के श्रीमुख से अपनी और अपने कुण्ड की अतिशय प्रशंसा सुनकर प्रियाजू अत्यन्त लज्जित है गईं तथा गद्‌गद् कण्ठ सों बोलीं—

गाना

धरम मेरो करम मेरो, नेम व्रत यही धारे हो।
नाम कृष्ण कुन्ड कृष्ण, कृष्ण तुल्य प्यारे हो।
नित्य आऊँ, कुन्ड न्हाऊँ, सखिन संग सकारे हो।।

समाज— **(जय)**

राधिके कुण्डेश्वरी, बलि कौतुक रंग तिहारे हो।।
और जो कोई जीव आपके या
कुन्ड श्याम, करै प्रनाम, तट मुकाम डारे हो।
कुन्ड न्हावै वारि पीवै, रज लै अंग धारे हो।।
(ऐसो जीव यदि कोटि अरिष्टासुर जैसो दुष्ट हू होवे)
होवै कोटि, अरिष्ट पापी, श्याम सम मोहिं प्यारे हो।

समाज— **(जय)**

राधिके कुन्डेश्वरी, बलि कौतुक रंग तिहारे हो।।

महा०—या प्रकार सों यह राधाकुंड श्रीकृष्ण कूँ राधा समान ही प्यारो है और यह कृष्णकुंड श्रीराधा कूँ श्रीकृष्ण समान ही प्यारो है। यह है इन युगल कुण्डन के प्रगट हैवे की कथा—

१. वृद्ध—महाराज! यह कौन से महीना, कौन-सी तिथि की घटना है। मालूम हैवे पै वा दिन उत्सव मनायो करैंगे।

महा०—कार्तिक बदी आठैं की ठीक आधीरात कूँ युगल कुण्डन को निर्माण- कार्य पूर्ण भयो हो।

२. वृद्ध०—ओहो महाराज! यह तिथि तो 'अहोई आठैं' के नाम सों ब्रज में प्रसिद्ध है। आधीरात को बड़ी दुनियाँ आय कै न्हावै इन कुंडन में!

१. वृद्ध०—परन्तु सन्तान की कामना वारे स्त्री-पुरुष ही ज्यादा न्हावैं हैं। असली 'महातम' तो आप की कृपा सों आज ही मालूम पर्यौ।

महा०—परन्तु सब सों मीठी बात तो अबै बाकी है।

२. वृद्ध०—तो कह दैओना महाराज! कहौ क्यूँ नाई।

महा०—(मुस्कराते हुए) मैं तो कहवेइ वारो हो तुम बीच में बोल उठे। सो बात रह गई। अब सुन लेओ मीठी बात यही है कि पश्चात् रासविलास भयो हो।

१. वृद्ध—रास विलास भयो हो! कहाँ--कौन-सी ठौर पै?

महा०—दोनों कुण्ड के मध्य की भूमि पै आधी रात के समय श्रीराधाकृष्ण ने सखी सहेलिन सहित रास कर्यौ हो।

(पर्दा खुलता—पीछे रास मंडलाकार में नृत्य)

समाज— **पद**

मंडल रास विलास महारास,
मंडन श्रीवृषभानु दुलारी।
पंडित कोक संगीत, भरी गुन,
कोटिन राजति घोष कुमारी।।
प्रीतम के भुज दंड पै शोभित,
संग में अंग अनंगन वारी।
तान तरंग रंग बढ्यौ ऐसे,
राधिका माधव की बलिहारी।।

२: **पद**

छुम् छननन नूपुर बाजे,
चलत चाल मतवारे गज की।
भृकुटि कुटिल लट छूटी घुंघुरवारी,
सटकारी कटि काछनी की।।
मुरली की धुनि पीत वसन सोहे,
लटकन मोर मुकुट की।
सूर प्रभु नंदलाल, संग लिये
गोपवाल, (भकन्तन) करें निहाल, संग चटकी।।

(पर्दा)

महा०—रास-विलास के पश्चात् दोनों कुंडन के संगम-स्थल पै रत्न सिंहासन पै श्रीयुगलप्रिया-प्रियतम विराजमान भये। सखिन ने उनकी आरती-स्तुति करी—

दृश्य— (सिंहासन पर राधा-कृष्ण।)

सखियाँ—(आरती उतारती-गाती हैं)

पद

जय राधा राधा कुन्ड। जय कृष्ण कृष्ण कुंड।।
राधा कुंड कृष्ण कुंड गिरि गोबर्धन।
मधुर मधुर वंशी बाजे एइ वृन्दावन।।
एइ वृन्दावन भजो एइ राधा वन।
एइ राधा वन भजो एइ कृष्ण धन।।
जय राधा राधा कुंड। जय कृष्ण कृष्ण कुंड।

(पर्दा)

महा०—(बलभद्र भट्टाचार्य प्रति) भट्टाचार्यजी ! तुम राधा कुंड की मृत्तिका लै चलौ। यह मिट्टी नहों श्रीराधा चरण रेणु है। याके द्वारा जो अंगन में तिलक करै है वह श्रीराधाचरण रेणु द्वारा ही तिलक करै है तथा श्रीकृष्ण कूँ वशीभूत कर लेय है कारण कि श्रीराधा चरण रज श्रीकृष्ण वशीकरण मंत्र है:—

"सद्यो वशीकरण चूर्णमनन्त शक्तिं,
तं राधिका चरण रेणु मनुस्मरामि।

गाना (बंगला)

राधिका चरण रेणु, भूषण कोरिया तनु,
अनायासे पावे गिरिधारी।
राधिका चरणा श्रय, जे कोरे से महाशय,
तारे मुइ जाइ बलिहारी।।

(गाते हुए राधाकुंड रज से तिलक करते है—प्रणाम करते रज पर लोटते हैं। बलभद्र कुंड-मृत्तिका लेकर वस्त्र में बाँध लेता है।

महाप्रभु—जय राधा राधा कुंड। जय कृष्ण कृष्ण कुंड
हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल!!

इति—राधा-कृष्ण-कुण्ड-लीला सम्पूर्ण।

❖

ब्रज—भ्रमण—लीला (२)

(श्रीगिरिराज परिक्रमा)

मंगलाचरणः—

श्लोक

भक्तिं कन्दलयन्, कलिं कवलयन्, प्रेमाब्धि मुद्वेलयन्।
मोहं व्याकुलयन्, रसंच कलयन्, लोभं च निर्मूलयन्।।
पापं निर्बलयन्, धृतिं सबलयन्, कल्लोलयन् मानसं।
देवः कोऽपि चमत्कृतो विजयते चैतन्य चन्द्रः।।

श्रीकृष्ण! कृष्ण चैतन्य! ससनातनरूपक।
गोपाल! रघुनाथाप्त! बजवल्लभ पाहि माम्।।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द!
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधा गोविन्द।

दोहावली—पूर्वाभास

व्रज वन-वन-विहरन-चरित, गौर हरि के अपार।
यथा मति कहौं अल्प अति, चरित मुख्य द्वै चार।।
कुण्ड युगल प्रगट किये, पुनि गोवर्धन जाय।
हरिदेव जु दरसन किये, मानस गंगा न्हाय।।
गिरि परिक्रमा दै पुनि, दरसन श्रीगोपाल।
अपनाये कृष्णदासहिं, पंजाबी जो बाल।।
नन्दगाँव नन्दलाल के, दरसन कीन्हे जाय।
चरित अभित मति अल्प 'प्रेम' करौ गौर सहाय।।

लीलारम्भ—

चौ०

राधा कृष्ण कुन्ड प्रगटाये।
ब्रजवासिन आनन्द बढ़ाये।।
आगे कुसुम सरोवर आये।
लखि लखि वन शोभा हरषाये।।

महाप्रभु—(प्रवेश! गाते हुए। पीछे-पीछे कृष्णदास, भट्टाचार्य कमंडलु, कौपीन, कटिवस्त्र लिए तथा एक ब्रजवासी पंडित राधाचरण)

पद हमीर बहार

(श्री) ब्रजभूमि निराली निराली है।
तन मन रोम रोम सिरावत,
पात पात डाल डाली है।।
आम, कदम्व नीम बट पीपर,
शिखर सघन सुहाय रहे।
मालती माधुरी चम्पा चमेली,
वेली तरु लिपटाय रहे।
डार डार झुकि झुकि रस,
भूमि चूमि सिर नाय रहे।
कहा पाय रहे, कहा चाय रहे,
क्युँ इतने भाव भराय रहे।
यह गति मति जग सों निराली है।।
लता बेलि बहु फूलि-फूलि मद,
फल हृदय दरसाय रहे।
अलि कुल गुंजत बोलत खग कुल,
शुकपिक गीत सुनाय रहे।
शिखि कुल विहरत कहकत मत्त,
निरतत नैन चुवाय रहे।
कहा दरसि रहे कहा परसि रहे,
क्यू इतने तन सरलाय रहे।।
रीति प्रीति ए जग सों निराली है।।
हरियाली वन वन कौ निराली ही,
डार डार हरि छाय रहे।
अवलोकत ही अघात न लोचन,
लाख लाख ललचाय रहे।
मेरे प्रान कहैं, नहिं भूल कहैं,
मेरे प्रीतम श्याम समाय रहे।।
ब्रज 'प्रेम' पुरी ए जग सों निराली है।।

धुन

हरि बोऽऽऽल हरि बोऽऽऽल।
हरि बोल हरि बोल हरि बोल।।

समाज— चौ०

आगे कुसुम सरोवर आये।
लखि शोभा सुषमा हरषाये।।

(दृश्य—कुसुम-सरोवर एवं फुलवारी)

महा०—दादा कृष्णदास। यह सरोवर कितनो रमणीक है। चारों ओर लता-बेलि कुसुमन सों छाय रही है। बन कहा कुसुम कुंज है। कहा नाम है या ठौर को?

कृष्णदास—प्रभो! या वन कूँ कुसुम वन एवं सरोवर कूँ कुसुमसरोवर कहैं हैं। याहि ठौर पै फूल बीनवे के तांई श्रीराधा जू सखिन समेत पधार्यौ करती तथा गाय चरामते भये श्यामसुन्दर पधार्यौ करते। यहीं दोनों को मिलन भयो करतो। वे फूल बीनती और वे मना करते-

समाज— दो०

कुसुम सरोवर कुसुम वन, कुसुमन शोभा भार।
कुसुम बीनतीं राधिका, झगरत नन्दकुमार।।

दृश्य (झीने पर्दे के अन्दर श्रीराधा-ललितादि फूल बीन रही हैं। श्रीकृष्ण रोक रहे हैं)

श्रीकृष्ण— पद

अरी तुम कौन हो री फुलवा बीनन हारी।

श्रीराधा आदि—

अरे तुम कौन हो जी, हमकूँ हटकन हारे।।

श्रीकृष्ण—

नेह लगन को लग्यौ है बगीचा, फूल रही फुलवारी।
बिन बूझे तुम फुलवा बीनत, को तुम हो सुकुमारी।।

ललिता—

ललिता कहै तुम नहीं जानौ, यह वृषभान दुलारी।
तुम जु कौन हमें हटकन हारे, वह फुलवारी हमारी।।

(पर्दा)

महाप्रभु—(ध्यानस्थ खड़े है—नेत्रों से अश्रुधारा)

समाज— दो०

लीला लखत प्रत्यच्छ प्रभु, नैन वहैं जलधार।
अचरज लखि कै संगीजन, कहत कछु निरधार।।

कृष्णदास—भट्टाचार्य जी! लगै है प्रभु कूँ लीला के प्रत्यक्ष दर्शन है रहे हैं। तव हो भाव समाधि में डूब गये हैं। हरि बोल!

महा०—हरि बोल! हरि बोल (गाते हुए चले जाते) (पुनि दूसरी ओर से प्रवेश करते)

समाज— दो०

नारद कुन्ड आये प्रभु, जहँ नारद तप कीन्ह।
वृन्दा देवी कृपा करी, सखी वपु जु दीन्ह।।

पं० राधाचरण—प्रभो! यह नारदकुंड है कुसुमसरोवर की बायीं ओर। यहाँ देवर्षि नारद ने पूर्वकाल में तपस्या करी हती।

महा०—कहा उद्देश्य सों?

राधा च०—गोसी स्वरूप-प्राप्ति के उद्देश्य सों।

महा०—याकी कथा तो कछु सुनाओ।

राधा च०—पद्म पुराध के पाताल खण्ड में वृन्दावन-माहात्म्य में यह कथा लिखी है कि एक समय नारद जी भगवान् शंकर सों गोपाल मंत्रराज ग्रहण करके यहाँ तपस्या करवे लगे। तप जप करते करते मंत्र के प्रभाव सों उनमें गोपी भाव सों भजवे की लालसा उदय भई। तब शंकर भगवान् ने आज्ञाकारी कि तुम श्रीवृन्दादेवी की शरण जाओ। वे शरणागत भये तो वृन्दादेवी ने कुसुम सरोवर में स्नान करवे को आदेश दियो। सो स्नान करते ही उनकूँ दिव्य गोपी देह प्राप्त है गई। तब वृन्दा देवी ने उनकूँ श्रीराधा कृष्ण की अष्ट कालीन लीला श्रवण करायी। ऐसो या कुसुम सरोवर को माहात्म्य है। भक्ति के आचार्य श्रीनारद जी की मनोकामना यहीं पूर्ण भई।

महा०—(हरि बोल००) (गाते चले जाते-पुनः दूसरी ओर से आते हैं)

कृष्ण०—प्रभो! या कुसुमसरोवर कीं दाहिनी और पश्चिम कोने में भगवान् श्यामसुन्दर के परम अन्तरंग सखा महाभागवत श्रीउद्धवजी लता रूप सों विराजैं हैं।

महा०—उनके दर्शन तो मोकूँ अवश्य कराओ "आसामहो चरणरेणु जुजाम्" के कथनानुसार उननै यही तो लालसा प्रगट करी हती कि मैं व्रज को कोई गुल्म लता बन जाऊँ कि जासों गोपी पद रज सों मेरो अभिषेक होतो रहै।

कृष्ण—सो लालसा यहीं पूरी भई है। स्कन्द पुराण के भागवत-माहात्मय में या को स्पष्ट उल्लेख है। वहाँ लिख्यौ है कि—

श्लोक

गोवर्द्धन गिरि निकटे सखीस्थले तद्रज काम!!
तत्र्यांकुर वल्लीरूपेणास्ते स उद्धवो नूनम्।।

अर्थात् गोवर्धन गिरि के समीप "सखीस्थल" पर गोपी पदरज की कामना सों तहाँ उद्धव जी लता-बेलि के रूप में निश्चय ही विराजमान हैं।

महा०—यह "सखीस्थल" कौन-से ठोर कौ नाम है दादा?

कृष्ण०—अब वाकूँ 'सखीथरा' कहैं हैं। या नाम की एक बस्ती समीप ही है। देखो प्रभो! वह सामने सघन लतान की झाड़ी, यही उद्धव-लता कहावै है।

महा०—(हाथ जोड़ नमन करते हुए भाव विह्वल) हे महाभागवत्! हे हरिदास! हे हरि के दयित सखे! आपके श्रीचरणन में कोटि-कोटि नमस्कार! गोपी-प्रेम के साँचे पारखी जौहरी तो एक आप ही हो! व्रज देविन को श्रीकृष्ण प्रेम जैसो अद्वितीय है तैसो ही आप को गोपी-प्रेम हू अद्वितीय है। गोपी-प्रेम में कहा अपूर्व रस है, कहा मादक मिठास है, यह तो श्रीकृष्ण ही जानैं हैं अथवा तो गोपी-पद-पंकज-पराग कूँ शीश पै धारण करके हे महा भाग! आप कछु जानौ हो। और दूसरो कोई नहीं जानै हैं विश्व ब्रह्माण्ड में।

समाज— **दो०**

वा रस की कछु माधुरी, ऊधो लही सराहि।
पाबै बहुरि मिठास वह, अब दूजो को आहि।।(रसखान)

पं० राधाचरण—हाँ भगवन्! और तो सब शुक-पाठ करैं हैं—सुनीं सुनायी पढ़ी-पढ़ायी को ही गान करैं हैं। रस तो उद्धव जी ने ही पान कर्यौ एवं पान करके श्रीकृष्ण कूँ हू भूल गये।

दो०

प्रान सखा श्रीकृष्ण कूँ, ऊँधो गयो भुलाय।
रह्यौ व्रज में मास षट्, गोपिन लियो रमाय।।

मथुरा में भगवान् माथुराधीश श्रीकृष्ण—

जा ऊधो के अंक महँ, युगल चरन पधराय।
जो मथुराधीश पौढ़ते, उन कुँहू गयो भुलाय।।

श्रीकृष्ण के श्रीचरण कितने दुर्लभ हैं कि—

दो०

जे पद अज शिव ध्याबहिं, तिनकूँ गोद खिलाय।
गोपी-प्रेम महँ डूबि कै, ऊधो रह्यौ भुलाय।।

इतनो ही नहीं प्रभो! आश्चर्य-महानाश्चर्य तो यह है :—

दो०

हरि पद सेवा सब चहैं, ता पायी सेवा त्याग।
बनवे में व्रज की लता, मान्यौ ऊधो भाग।।

ऐसी जो गोपी प्रेम की मादक मधुरिमा है कि जाकूँ पान करकें :—

दो०

भूले हरिदास हू हरी, जा मादकरस चास।
कनहू को कन ताको मिलै, यही 'प्रेम' अरदास।।

(कहते हुए महाप्रभु के चरण पकड़ते)

महा०—(उठाकर हृदय लगाते हैं)—हरि बोल

(कीर्तन-नृत्य)

दृश्य—(इधर बाहर महाप्रभु एवं संगीजन का संकीर्तन-नृत्य, उधर)

उद्धव—(लताकुंज में प्रकट हो कीर्तन धुन)

"वल्लवी-वल्लीभ, गोपीजन वल्लभ"

महा०—"हरि बोल" (कीर्तन करते हुए चले जाते)

उद्धव प्रति लक्ष्य नहीं)

समाज— चौ०

आगे पोखर ग्वालहि आये।
"रतन सिंहासन" ठौर लखाये।।

कृष्ण०—प्रभो! वह सामने ही 'ग्वाल-पोखर' नाम को कुंड है। जहाँ मध्याह्न-काल में श्रीगोपाल प्रभु अपने गौउन कूँ पानी पिवाय करते। याके समीप ही यह ठौर 'रत्न सिंहासन' के नाम सों प्रसिद्ध है। होरी के पूनौ के दिन

होरी-खेल के समय श्रीराधिका जू यहाँ रत्न सिंहासन पै विराजी हीं। वासमय कंस को राक्षस 'शंख चूड़' आय कै राधा जू कूँ सिंहासन समेत उठाय कै लै भाग्यौ हो। तय भगवान् ने वा राक्षस को सहार कर्यौ हौ अब नेक दूर आगे सों गिरिराज के दर्शन ह्वैवे लगेंगे।

महा०—हरि बोल (कीर्तन करते जाते हैं)

समाज— **चौ०**

गिरि गोवर्धन प्रभु नियराये।
शिला खंड जित तित प्रगटाये।।
जहँ तहँ लता गुल्म तरु सोहैं।
डौलैं मृगा मोर कुहुको हैं।।

दृश्य—(चौपाइयों के अनुसार गिरि शिलाएँ-लता खंडन के दर्शन है रहे हैं। यहाँ पै गोवर्धन पर्वत भूमि में समाये भये हैं यासों केवल उनके शिखर भाग की शिलान के ही जहाँ-तहाँ दर्शन होयँ हैं।

महा०—(हाथ जोड़ भाव विह्वल) हे हरिदासवर्य! हे हरि स्वरूप गिरिराज! आप कूँ कोटि-कोटि नमस्कार।

(साष्टांग प्रणाम एवं भू—लुण्ठन)

समाज— **(बंगला)**

'गोवर्द्धन देखि प्रभु होइला दण्डवत्।
एक शिला आलिंगिया होइया उन्मत्त।।'

(अनुकरण) **चौ०**

शिला खंड इक शीश चढ़ाये।
हृदय लाय जल नैन बहाये।।
गद्‌गद् गिरा स्तुति बहु गावहिं।
पुनि पुनि सेवा-भाग सराहहिं।।

महा०— **श्लोक**

हन्तायमद्रिरबला हरिदास वर्यो—
यद्राम कृष्ण चरण स्पर्श प्रमोद:।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयो र्यत्,
पानीय-सुयवस-कन्दर-कन्द-मूलै:!!

हे गिरिराज गोवर्द्धन! आप अपनी समस्त देह सों श्रीकृष्ण बलराम की नाना विध सेवा करौ हौ। याहि कारण आपने 'हरिदासवर्य'—हरिदासन में श्रेष्ठ-ऐसी पदवी पायी है। आपने—

कवित्त—

बास ब्रजभूमि राम कृष्णपद खास पायो
हर्यौ भर्यौ रहौ तासों, मोद ना समायो है।
गौअन कूँ तृन घास जल को सुपास बहु
कन्द मूल फल राशि राशि उपजायो है।।
खेलन कूँ गुहा बहु, सोवत कूँ सेज शिला
बैठन कूँ सिंहासन, तन कूँ बनायो है।
तन मन रोम रोम सेवा की सौंज सजि
दासन में श्रेष्ठ हरि-दास पद पायो है।।

पं० राधा०—प्रभो! आज्ञा होय तो मैं हू कछु गुण गाय लऊँ।

महा०—अवश्य पंडित जी! अवश्य! बड़ी कृपा होयगी।

पं० राधा०- **कवित्त**

त्रास कियो नाश वास ब्रजवासिन कूँ दियो।
सात द्यौस रैन तन छत्र ज्यूँ वनायो है।।
आस हरि दर्शन की पूरी ब्रजबालान की,
चन्द्र ओ चकोरिन को संग करायो है।
पायो सुमेरु ने तो, तन केवल कंचन को,
सेवा-सौभाग्य 'प्रेम' गोवर्धन पायो है।।
हरिकर कमल पै मधुप ज्यों वास करि,
दासन में श्रेष्ठ हरि-दास पद पायो है।।

महा०—सुन्दर! अति सुन्दर! "चन्द्र ओ चकोरिन को संगम करायो है।" असम्भव सम्भव है गयो। मधुर! मधुर! और हू महिमामृत पान कराय कै मेरे हृदय कूँ शीतल करें।

पं० राधा०—भगवन्! आप तो श्रीकृष्ण-लीला सब जानौ ही हो। श्रीगिरिराज की तरहटी-घाटी, शिला-शिखर, गुहा-गह्वर, तरुवर-सरोवर-ये सब प्यारे नन्दलाल गोपाल की क्रीड़ा-सामग्री हैं। अपनी सखा-सखिन के संग यहीं उनको मधुर रस-रंग नित्य होयो करतो। याहि सुख के लिये तो वे

नन्द-से बाबा एवं यशोदा-सी मैया के वात्सल्य रस कूँ भुलाय बन कूँ आयो करते। गौ-चरन तो एक मिष है—बहानो है।

कवित्त

भोरहि उठि कै हरि, माखन हू भूल जात
माता की ममतामयी अंकहून भायो है।
तात की हू गोदी लागे ताती, अकुलाती छाती
सिराती तब ही जब, गिरि गुहा पायो है।।
श्याम को स्वरूप गिरि श्यामा कूँ मिलावै नित
ताते श्याम नैन मन, प्रानन रमायो है।
इष्ट हरि जनन को, हरि हू को इष्ट तासों
दासन में श्रेष्ठ पद, हरिदास पायो है।।

महा०—साधु! साधु! "हरि हू को इष्ट" यह गिरि गोवर्धन! सुन्दर! अति सुन्दर!

राधा च०—हाँ भगवन्! जीव एवं जगत् के इष्ट तो श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण के हू इष्ट हैं गिरिराज महाराज! जय हो गिरिराज महाराज की जय हो जय हो।

कृष्णदास—प्रभो! एक दिना श्याम सुन्दर ने सखा मधुमंगल सों एक-साथ सात प्रश्न कर डारें :—

(१) कवित्त

मोरन की मंडली में, नाचूँ कहाँ मोर नाच,
चहुँ ओर पशु पंछी मंडल रचायो है।
(२) तन को आकार कहो, मोर-को सो कौन को।
(३) मोर को ही रूप धरि, कौने मो रिझायो है।
(४) ब्रज को रखवार
(५) गौ—गोपन को आधार को।
(६) मेरो हू आधार कौन,
(७) प्रिया मन भायो है।
बोल्यौ हँसि मन सुखा, ऐसो तो गिरिराज ही।
(तासों) दासन में श्री श्रेष्ठ हरि—दास पद पायो है।।

महा०—सत्यं सत्यम्! ऐसो ही स्वरूप है श्रीगिरिराज गोवर्धन को। ये सबन की सब प्रकार की लौकिक-पारलौकिक कामनान कूँ पूर्ण करवे वारे हैं!! और हू कछु कहो! स्वादु स्वादु पदे पदे।

कृष्ण०—भगवन्! श्रीगिरिराज जी को शृङ्गार हू श्रीगिरिधारी जी जैसो ही है अर्थात् जो जो वस्तु श्रीगिरिधारी जी के अंग पै विराजै हैं वेइ वे वस्तु श्रीगिरिराज जी के अंग पै हू शोभित हैं।

महा०—अहा हा! कहौ तो सही ऐसी वे वस्तु कौन-कौन-सी हैं।

कृष्ण०— **कवित्त**

श्याम कर वेणु उत गावैं वेणु कुल इत,
राधा राधा नाम नित, दोउन ने गायो है।
भाल पै तिलक उत राजैं इत तरु तिलक,
उत गुंजाहार इत गुंजावन छायो है।
जलधर नील दोऊ गेरु हरताल मुख,
मोर पच्छ उत इत मोर शीश लायो है।।
ओढ़ि पट पीत 'प्रेम' कुसुम कदम्बन के,
हरि को स्वरूप हरि—दास आप पायो है।

ब्रजवासी वृन्द—(परिक्रमा वारे प्रवेश रसिया गाते हुए)
(तर्ज—जपे जा राधे-राधे)

रसिया

श्री गोवर्धन महाराज
(जय गोवर्धन०० गिरि गोवर्धन महाराज)
ए व्रज के दई देव।। टेक।।
ये सात कोस के देवा, जाके कंकर कंकर सेवा।
मन भावै जाकूँ सेव, ए ब्रज के दई देव।।१।।
विन मन्दिर रहैं उघारैं, दै दै जु दरसन तारैं,
चाहे व्रामन हो कै मेव, ए व्रज के०।।२।।
कोई अन्नकूट धरवावैं, कोई अंजलि जल सों नहवावैं।
ये भूखे भाव के देव, ए व्रज के०।।३।।
कोई देवैं खड़ी परिक्रमा, कोई पड़ी पड़ी लम्बे लम्बा।
ये सब की मानी लेय, ए व्रज के०।।४।।

जो दरस नहीं कर पावैं, घर परे परे ही ध्यावैं,
ये उनकी हू सुध लेय, ए व्रज के० ।।५।।
कोई बद्री-केदारहि जावैं, रामेश्वर द्वारिका धावैं,
हम बिकें तेरे पद देव, (हे) व्रज के० ।
हम गोपी गोप तिहारे, तू गोधननाथ हमारे,
नातो बडो 'प्रेम' देव, (ए) व्रज के०० ।।

कृष्णदास—राम राम भैयाओ! राम राम! परिक्रमा दै रहे हो कहा—

व्रजवासी—हाँ भइया राम राम! (महाप्रभु प्रति) दण्डवत् बाबा महाराज!

महा०—श्रीकृष्णेमतिरस्तु! धन्य है ब्रजवासियो तिहारे भक्ति भाव कूँ, गिरिराज निष्ठा कूँ! तुम्हारो गीत सुनै बड़ो आनन्द आयो।

१. ब्रज०—हम गँवार ग्वारिया कहा गाय के जानैं हैं। उल्टो-सूधो रसिया गाय कै गोधननाथ कूँ सुनावैं हैं। हमारे तो सब कछु जेइ गिरिराज महाराज ही हैं—

कवित्त

बन्धु ब्रजवासिन को न गोधन समकोई,
आड़ै समै ठाडे रह, करै जो सहैया है।
अन्न उपजैया, दूध पूत को दिवैया, घर
जोति को जगैया, बाजे मंगल बधैया है।
संकट हरैया सब मनसा पुरैया, मातु
पितु मैया इष्ट गुरु, भव को खिवैया है।
तीन लोक पूजै जाकूँ, वोहु पूजै याकूँ 'प्रेम'
ऐसो पुजबैया गोधन, पुजारी कन्हैया है।।

(गिरिराज महाराज की जय। गोवर्धन नाथ की जय चले जाते हैं)

महा—

श्लोक दादरा

स्मरध्वं गिरीन्द्रं, शृणुध्वं गिरीन्द्रं।
भजध्वं गिरीन्द्रं, जयध्वं गिरीन्द्रं।।
नमध्वं गिरीन्द्रं गृणध्वं गिरीन्द्रं।
गिरीन्द्रं गिरीन्द्रं गिरीन्द्रं गिरीन्द्रम्।।

धुन

गिरि गोवर्धन जय गोवर्धन।
गिरि गोवर्धन जय गोवर्धन।।

(गाते हुए महाप्रभु आदि चले जाते है)

समाज— **चौ०**

आगे गाम गोवर्धन आये।
दरसन मानसी गंगा पाये।।
आप हरि मनसा प्रगटाई।
मानसी गंगा नाम सुहाई।।
(दृश्य मानसी-गंगा। प्रवेश महाप्रभु आदि)
वह गंगा पद पद्म विहारिणी।
यह गंगा मनसा अवतारिणी।।
वह गंगा जु भगीरथ लाये।
यह गंगा हरि जु प्रगटाये।।
वह गंगा कब गोविन्द न्हाये।
यह गंगा हरि राधा न्हाये।।
चढ़ि नौका कब गंगा डोलैं।
गोपिन संग इहँ हरि किलोलैं।।

कृष्ण०—प्रभो! अब हम गोवर्धन गाम में आय पहुँचे हैं। यह सम्मुख मानसी गंगा के दर्शन हैं। यह भगवान् श्यामसुन्दर ने दीपावली के दिन अपने मन सों प्रगट करी ही।

महा०—या की कथा सुनायवे की कृपा करौ दादा।

कृष्ण०—काहू एक समय नन्दबाबा आदि गोप गंगा स्नान के तांई हरिद्वार जायवे की तैयारी करवे लगे। यह देख लाला कन्हैया बोले 'बाबा! काहे कूँ इतेक दूर जायवे की कष्ट उठामनो चाहौ हों। गंगा जी तो हमारे गिरिराज जी की तरहटी में ही वह रही हैं। न मानो तो चलौ-दिखाय दऊ।' सो नन्दबाबा आदि गोपन कूँ लै कै यहाँ गोवर्धन आये और अपने मन सों गंगा प्रकट करकै दरसाय दियो। तब तो ब्रजवासिन कूँ बड़ो आश्चर्य और आनन्द हू भयो। उननै हरिद्वार जायवे को विचार त्याग दियो और मानसी गंगा में ही स्नान करकै कृतार्थ भये। कार्त्तिक अमावस दिवाली के दिना मानसी गंगा को प्रागट्य है— यासों ब्रजवासिन ने रात्रि में मानसी-गंगा में दीपदान दियो। तब सों दिवाली को रात्रि कूँ मानसी गंगा पै दीप-दान को महोत्सव चल पर्यो है।

पं० राधा०—भगवन्! अब आप मानसी गंगा में आचमन लैवें।

महा०—(पंचांग प्रणाम कर जल हाथ मैं लेते है—)

(तीन बार आचमन)

पं० राधा०— **श्लोक**

गंगे दुग्धमथे देवि! भगवन्मानसोद्भवे।
नमः कैवल्यरूपाढ्ये! मुक्तिदे! मुक्तिभागिनि।।

हे गंगे देवि! आप दुग्धमयी हो! भगवान् के मानस सो प्रगट भई हो मुक्ति स्वरूपिणी हो तथा मुक्ति दैवे वारी हो! आप कूँ नमस्कार है।

महा०—(पुनः प्रणाम पूर्वक) पंडित जी! आपने मानसी गंगा के लिए दुग्धमयी देवी को सम्बोधन दियो न?

राधा०—हाँ भगवान्! मानसी गंगा को जल दुग्धमय ही है। जा काहु पै कृपा होय है वही वाके दुग्धमय स्वरूप के दर्शन कर सकै है।

महा०—(हाथ जोड़ नमस्कार पूर्वक! जय हो मानसी गंगे! जय हो! अब तो श्रीहरिदेव जी के दर्शन कराओ। जब ते मथुरा सों चलै हैं, कोई श्रीविग्रह के दर्शन प्राप्त नहीं भये हैं। चलौ शीघ्र ही दर्शन कराओ। (प्रस्थान)

दृश्य (मन्दिर-गोवर्धनधारी) श्रीहरिदेव जी)

पुजारी—श्रीहरिदेव भगवान् की जय।

गोवर्धनधारी भगवान् की जय।

(प्रवेश—महाप्रभु एवं सखाजन!

पुजारी—अहो! यह तो कोई बड़े सुन्दर नवीन संन्यासी राज पधारे हैं। ॐ नमो नारायणाय! स्वागत देव! सुस्वागतम्! भले पधारे देव! दर्शन करें। ये हमारे श्रीहरिदेव जी—ये भगवान् श्रीकृष्ण को गोवर्धनधारी स्वरूप है। सात वर्ष की अवस्था में आपने गिरिराज धारण कर्यौ हो। वही सात वर्ष के स्वरूप सों यहाँ विराजै हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्रीव्रजनाभ जी ने स्वयं इनकी प्रतिष्ठा करी है। आओ! सब मिल करके इनकी स्तुति गावै :—

स्तुति— **(कल्याण)**

ॐ जय जय जय हरिदेव।
गिरिवरधर जय ब्रज दु:ख हर जय, इन्द्र दर्प हर देव।।१।।
मथुरा में श्रीकेशव देव, श्रीवन गोविन्द देव।
महावन में बलदेव विराजे, गोवर्धन हरि देव।।२।।
इत गोवर्धन उत राधाकुन्ड, मध्य विराजें देव।
मानसी गंगा दासी सेवती, पूजती पद हरिदेव।।३।।

दक्षिण कर राजे कटि ऊपर, बायें उठाये देव।
सात कोस गिर भार यूँ धारे, फूल गेंद ज्युँ देव।।४।।
वाम चरन पर ठाड़े आड़े, दायें पद दिये देव।
बायें लटक मुकुट ग्रीवा की, दृष्टि वाम प्रति देव।।५।।
पीत वसन कटि फेंटा बाँधे, काठ कसाये देव।
भक्तवच्छल यह बानो बलि बलि, तैसेइ चरित देव।।६।।
मीत, नाथ, व्रजनाथ तुम्हीं हो, सब देवन के देव।
नाम धाम 'प्रेम' अपनो दीजै, सब सुख तुव पद देव।।

पुजारी—अब आप सब प्रणाम करें। मैं मंत्र बोलूँ हूँ।

श्लोक

करोद्धृत नगेन्द्राय, गोपानां रक्षकाय ते।
सप्ताब्दरूपिणे तुभ्यं हरिदेवाय ते नमः।।

अर्थात् जिन प्रभु ने अपने गोपकुल की रक्षा के लिये अपने हस्तकमल पै गिरिराज कूँ धारण कर्यौ, उन सात वर्ष की अवस्था वारे श्रीहरिदेव जूं को नमस्कार है।

महाप्रभु—(आदि सब साष्टांग प्रणाम करते। पश्चात् उठ करके)

धुन (कीर्तन)

श्री हरिः शरणं! जय हरिः शरणम्।

समाज— **(बंगला)**

प्रभु-प्रेम-सौंन्दर्य देखि लोक चमत्कार।
हरि देवेर भृत्य प्रभु कोरिलो सत्कार।।

दो०

रूप मधुर ओ भाव मधुर, मधुर गौर हरि नृत्य।
विस्मित ब्रजवासी सवै, करैं विविध सत्कृत्य।।

चौ०

प्रभु सेवक बलभद्र गुसांई।
किये पाक ब्रह्म कुंड न्हाई।।
ब्रह्म कुंड महाप्रभु न्हाये।
भिक्षा हरि प्रसादहिं पाये।।

रहै रैन हरिदेव सु मन्दिर।

करत विचार प्रभु उर अन्तर।।

दृश्य—(तख्त पर गेरुआ चादर बिछी—अर्ध-लेटे हुये महाप्रभु)

महा०—(उठकर बैठते-विचार मग्न) ये श्रीगिरिराज तो हरिदास वर्य हैं—श्रीकृष्ण के परम अन्तरंग सेवक हैं। ऐसे महा-भागवत के श्रीअंग के ऊपर पाँव रखते भये भलो मैं कैसे चढ़ सकूँ हूँ। न चढ़ूँ तो श्री श्रीपरम गुरुदेव श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद जू के प्रगटाये श्रीविग्रह श्रीगोपाल जू के दर्शन कैसे है सकै हैं (ठहर सोचते हुय) ना ना! ऊपर नहीं चढ़ूँगो। नहीं रक्खूँगो पाँव गिरिराज जी के ऊपर। परन्तु गो......पाल के दर्शन किये बिना लौट हू कैसे सकूँ हूँ! हा गोपाल! कहा करूँ? कैसे दर्शन पाऊँ।

"गोवर्द्धन ऊपरे, आभि कभु ना चढिबो!
गोपालरायेर दर्शन केमने पाइबो।।"

हे गोपाल! **दो०**

संकट अब मेरे हरौ, हाथ तिहारे लाज।
चढि सकौं हिम गिरि शिखर (पै)
चढि न सकौं गिरिराज।।

प्यारे गोपाल! इतनी दूर जगन्नाथ पुरी सो।

दो०

अपने द्वार वुलाय अब, मूँदौ काहै किवार।
घर आये पाहुनेन को, करो 'प्रेम' सत्कार।।

(ध्यान—मुद्रा में बैठे रहते है। पर्दा)

दृश्य—(पंजाबी बालक-१४-१५ वर्ष की अवस्वा-भूमि पर पड़ा सो रहा। आँखें बन्द! मुख से "रुक-रुककर" "गौर! गौरांग")

समाज— **दो०**

बालक जो लाहौर को, लखि सपने हरि गौर।
तजि घर ब्रज डोलत फिर्‍यौ, बसत इहीं गिरि ठौर।।
सात बरसको बाल तब, अब भयो चौदह किशोर।
लगी लगन छूटी नहीं, दिन दिन बाढै जोर।।
सोवत हू में नाम मुख, निकस गौरा गौर।
गौर कृपा को फल यही, श्वास श्वास पै गौर।।
नाम प्रताप नामी तहाँ, आये आप हरि गौर।

महाप्रभु—(प्रवेश! सोये हुए बालक प्रति देखते हुए) मेरे प्यारे बालक! सात वर्ष पहले जाकूँ तुमने स्वप्न में देख्यौ हो वाकूँ कल अपने नेत्रन सों प्रत्यक्ष देख पाओगे।

(चले जाते)

चले बोल सुनाय कै "दर्शन पै हौं भोर"।।

चौ०

उठ्यौ बाल चकित अकुलाई।

"गौर! आये गौर!" धुन लाई।।

बालक—(हड़बड़ा कर उठता! इधर-उधर देखते हुये व्याकुल पुकारता है) गौरांग! मेरे गौरांग कहाँ गये? अब ही तो यहीं खड़े थे अब ही कहाँ छिप गये? कल मिलोगे कल? अब ही क्यों नहीं? 'कल कल' करते तो सात साल बीत गये पर वह कल न आयी! अरे! आ गयी! कल आ गयी! कल दर्शन होंगे! स्वप्न में नहीं! साक्षात् दर्शन! आँखें खोल के दर्शन! प्यारे गौरांग के दर्शन! चित्त चोर के दर्शन! कल दर्शन! हाँ हाँ कल! कल!

गीत

आयी आयी वह कल अब आयी,

मिलेंगे प्रान प्यारे! मिलेंगे गौर प्यारे।।

कल कल करते निकल गये कब,

ये सात बरस दिन सारे।

मिलेंगे प्राण प्यारे! मिलेंगे०।।१।।

एक वह दिन था जब पहले मिले थे,

सोया पड़ा था मैं, तुम पास खड़े थे।

जगा के सोते को, दिखाके मुखड़ा,

ले गये चित्त हमारे।

मिलेंगे प्रान प्यारे, मिलेंगे००।।२।।

नाम बताया नहीं गाम बताया।

काम क्या मुझ से न कुछ भी बताया।।

कहीं से आकर अजान पाहुने, वन गये मीत हमारे,

मिलेंगे प्रान पियारे, मिलेंगे००।।३।।

तेरे हुकुम ते प्यारे ब्रज में भी आया,

वस्ती वन छान डाला तुझे न पाया।

हारे थके हुये सोते को फिर,
आकर जगा गया प्यारे, मिलेंगे०० ।।४।।
आँखों में मेरी तू, जीभ पै बैठा,
परदे में दिल के अन्दर घुस बैठा।
बोलेगा 'प्रेम' अब पोंछेगा आँसु,
घूंघट हटा के पियारे।
मिलेंगे००० ।। गौर गौर गौऽऽऽ र गौर गौर गौराङ्ग ।।
(गाते गाते चला जाता)

दृश्य—(पर्दा खुलता! महाप्रभु तख्त पर शयन कर रहे। गेरुआ चादर ऊपर पड़ा है)

समाज— सो०

कैसे दरसन होय, गौर हरि चित सोच लखि।
रच्यौ उपाय सोय, कृष्ण हरि गोपाल जे।।

श्रीगोपाल—(सिरहाने पर प्रकट होते! वंशी हाथ)
(सोते हुये महाप्रभु प्रति दृष्टि पूर्वक)

ये गौर हरि मेरे ही स्वरूप हैं। मो सों अभिन्न है। तथापि लीला हेतु भक्त भाव अंगीकार करके भक्ताभिमानी बने भये हैं। अतएव भक्त स्वभाव दैन्य के कारण गिरिराज-शिलान के ऊपर चरण रखते भये ऊपर चढ़नौ नहीं चाहैं हैं। यासों अब मोकूँ ही नीचे उतर कै इनकूँ दर्शन दैनो परैगो। याको उपाय अब मोकूँ ही करनो परैगो। सो मैं ब्रज मैं यह हवा फलाय दऊँ कि यवन सेना दिल्ली ते आय रही है यह सुनत ही मेरे सेवक-पुजारी मोकूँ शिखर पै ते हटाय कै कहूँ वन में या गाम में दुबकाय देंगे। पहले हू कई बार ऐसो कर चुकैं हैं। तब गौरचन्द्र कूँ नीचे ही मेरे दर्शन है जायेंगे। सो आज रात्रि में वह सब काम है जानो चाहिये कल इनकूँ मेरे दर्शन मिल जाये।

(अन्तर्द्धान पर्दा)

समाज— दो०

अन्नकूट गिरि गाम को, दूजो नाम आन्यौर।
यदुवंशी रजपूत बहु, वास करत जेहि ठौर।।
निशि मधि दौरत तहँ इक आयो।
ब्रज वासिन सों टेरि सुनायो।।

एक ब्रजवासी दूत—(दौड़ता-पुकारता हुआ प्रवेश करता) अरे ओ! आन्यौरवासियो! अरे भैय्याओ! जागो! जागो! कहा सोय रहै हो! उठो! भाग चलो! अबै भाग चलौ। रातौ रात निकल चलो। जागो! भागो!!

(दो चार गाम के ब्रजवासी घबड़ाते-कपड़ा सम्हालते-प्रवेश)

ग्रामवासी—अरे को है तू! काहे कूँ आधी रात कूँ हल्ला मचाय रह्यौ है?

दूत—भैयाओ! मैं होड़ल ते भग्यो आय रह्यौ हूँ-खबर करवे! वे-वे आय रहे हैं (प्र० कौन वे-वे?) वे तेंमद-लुंगी वारे! वे-वे कुल्ला वारे! कलमी दाढ़ी बारे! बिना चुटिया वारे! वे-वे मुगल पठान, इन्सान, हैवान! वे-वे मन्दिर तोडवे वारे, मूर्त्ति फोड़वे वारे! वे! वे! अरे गोपाल जी को बचाओ। कहूँ लै जाय कै छिपाओ। अबै रात में ही गाम खाली कर देओ! जल्दी करौ।

हरीसिंह—भइया भिक्कू! छज्जु! बल्लो! तुम तो सब गाम भर में खबर कर देओ और हम पुजारी-सेवकन कूँ लै कै ऊपर मन्दिर कूँ जायँ है और गोपाल जी कूँ कहूँ लै जायवे को उपाय करै हैं।

छज्जु०—कहाँ लै जाओगे? श्याम ढाक? कै ढोंड के घने में?

हरी०—मेरी राय में तो गाँठौली पास ही है। वहाँ गुलाल कुंड पै घनी झाड़ी है। वहीं लै चल्यौ। आगे जैसे पाँच जने कहेंगे। अब तुम सब जाय कै घर-घर में खबर करौ और हम पुजारी सेवकन कूँ लै कै ऊपर जायँ हैं।

(अलग अलग सब चले जाओ)

समाज— **(बंगला)**

ऐछे म्लेच्छ भये गोपाल भागे बारे बारे।
मन्दिर छाँड़ि कुंज रहे कि वा ग्रामान्तरे।।

दो०

म्लेच्छन के भय बार बार, मन्दिर तजैं गोपाल।
वसैं वन कुंजन गाम में, लीलाप्रिय दयाल।।
गौर हेत गोपाल जु, लीला रची यह रात।
उत गौर चन्द्र हू उठे, विकट जान प्रभात।।

चौ०

मानस गंगा जायसु न्हाये।
गिरि परिक्रमा हित उमगाये।।

कृष्णदास बलभद्र गोसांई।
सेवक संगी हितू सहाई।।
गावत गोवर्धन गुन जावैं।
भाव प्रेम पग पग उमगावैं।।

(प्रवेश महाप्रभु-संगीजन कृष्णदास, बलभद्र भट्टाचार्य और पं० राधाचरण)

महाप्रभु— **कीर्तन**

गिरीन्द्रं गिरीन्द्रं गिरीन्द्रं गिरीन्द्रम्।
स्मरध्वं गिरीन्द्रं शृणुध्वं गिरीन्द्रम्।।
भजध्वं गिरीन्द्रं जयध्वं गिरीन्द्रं।
गृणध्वं गिरीन्द्रं नमध्वं गिरीन्द्रम्।।
किन्नैव सन्ति गिरयो मलया चलाद्या,
ख्याता परार्तिहरणैक दृढ़ब्रता ये।
तेष्वेव भूधरपतिं प्रतिनन्दयामो
गोवर्द्धनं युगल केलि कला निधानम्।।

भावार्थ—

गिरि तो बहु भूमंडल सोहैं जहँ सिद्ध,
यतिकुल वास करैं।
जहाँ गंगगोदावरी नर्मदा पावन,
पाप ताप त्रय नास करैं।
मलयाचल बिंध्य हिमाचल राजैं,
शम्भु कैलास निवास करैं।।
(परन्तु) भाग्य बदौं गोवर्धन को,
जहाँ राधा कृष्ण विलास करैं।
गिरीन्द्रं गिरीन्द्रं गिरीन्द्रं गिरीन्द्रम्।।
(प्रस्थान)

समाज— **चौ०**

गिरि परिक्रमा मग चलि जावैं।
मगन भाव कबहु कछु गावैं।।
परासौली गाम प्रभु आये।
रास बसन्त जहँ श्याम स्याये।।

(प्रवेश महाप्रभु संगीजन)

राधा च०—भगवन्! अब हम गिरिराज जी परिक्रमा में परासौली गाम में आय पहुँचे हैं। यह सामने चन्द्रसरोवर बड़ो रमणीक स्थल है। यह हू भगवान् श्रीकृष्ण को रास-स्थल है।

महा०—रासस्थल तो वृन्दावन है।

राधा०—वर्तमान श्वेत बाराह कल्प को रासस्थल तो वृन्दावन ही है परन्तु सारस्वत कल्प को रासस्थल चन्द्रसरोवर ही मान्यौ जाय है। श्रीजयदेव जी अपने गीत गोविन्द में जो वसन्त रास गायौ है वह याही ठौर को मान्यौ जाय है—

समाज— बसन्त

ललित लवङ्गलता परिशीलन, कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल-कूजित कुञ्ज कुटीरे।।
विहरति हरिरिह सरस बसन्ते।
नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरही जनस्य दुरन्ते।।

राधा०—(मार्ग में चलते चलते) तो वा वसन्त रास श्रीराधा जू मानवती है कै रास मंडल त्यागकर चली गयीं।

महा०—हाय! हाय! तब तो रास विलास भंग है गयो होयगो।

राधा०—हाँ प्रभो! रासेश्वरी बिना रास-कैसो! तब तो रासविहारी अत्यन्त व्याकुल है गये—

यद्यपि निकट कोटि कामिनी कुल।
धीरज मन नहिं आने।।

अतएव कोटिन ब्रज सुन्दरिन कूँ त्याग करके आप हू पीछे-पीछे चले गये। अब भयो कहा कि गोपिन के तो यूथ के यूथ श्रीकृष्ण कूँ ढूँड़ रहे हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधा जू कूँ ढूँढ़ रहें हैं।

महा०—बड़ी मनोहर कौतुक लीला है। तो रासेश्वरी पाप गईं?

राधा—कहाँ पाय जाती! श्रीकृष्ण वन वन में ढूँढ़ते डोल रहे हैं और पीछे लगी आय रही हैं गोपिन की झुन्ड! सो आप बचते-दुबकते डोलै! परन्तु कहाँ तक बचते!! कोटि-कोटि गोपिन न चारों ओर ते घेर ही लियो। यह आगे वही ठौर है। यहाँ अब "पैठा" गाम बसै है। जब घिर गये तो एक सघन कुंज के भीतर जाय बैठे और चतुर्भुजी बन गये।

(महाप्रभु आदि चले जाते)

दृश्य—(चतुर्भुजी श्रीकृष्ण बैठे है।)

(प्रवेश गोपियों का एक यूंथ गाते हुए)

गोपीवृन्द— सोरठा-तिताला

मन मोहन नयनमणि, छिप बैठे कित प्राणधनी।
तुम ही जीवन प्रान हमारे, मात पिता सखा बन्धु हमारे।
तुव पद पद्म 'प्रेम' हमारे, हृदयमणि चिन्तामणि।।

(चतुर्भुजी श्रीकृष्ण प्रति दृष्टि पड़ती है)

गोपियाँ—ये रहै! ये रहै प्यारे! (दौड़कर पास जाती-जाती ठिठक जाती हैं)

१. (गोपी)—नहीं! नहीं! ये तो चार भुजा वारो कोई देवता है।

२. (गोपी)—रंग-रूप, वेष-भूषा नख-शिख लौं तो सब प्यारे को जैसो ही हैं।

३. (गोपी)—तो कहा भयो! ये हमारे प्राणनाथ तो नहीं है। उनके तो हमारो जैसी द्वै भुजा हैं। चार भुजा वारे सों हमारो कहा काम।

४. (गोपी)—छोड़ो इन्हें! चलौ आगे। हा श्यामसुन्दर! मन-मोहन! आप कहाँ छिपै बैठे हो?

(चली जाती हैं। दूसरी ओर से दूसरा यूथ प्रवेश करता गाते हुए)

गोपी यूथ विहाग-केहरवा

हा मनमोहन घनश्याम। हा जीवन धन। हा दया धाम
(दुगुन) प्राण पियारे, नैनन तारे, मुरली वारे श्याम!!
हा मन मोहन०।।

(चतुर्भुजी श्रीकृष्ण पर दृष्टि पड़ती है)

१. गोपी—(चकित होकर) सखियो! ये को बैठो है चार भुजा बारो।

२. गोपी—कोई देवता है सखी! बड़े भाग्य देव-दर्शन भये। यह देवता अवश्य ही हमारे प्यारे कूँ बताय सकैगो।

सब गोपी—(हाथ जोड़ सिर झुकाती है) हे चार भुजा के देवता। हम दुखियान को दुःख हरौ। हमारे प्यारे नन्दलाल हमकूँ छोड़ कै छिप गये हैं। सो कहाँ हैं, बताय देओ! देवता सों कोई बात, कोई ठौर छिपी नहीं रहै है।

चतुर्भुजी श्रीकृष्ण—(मौन साधे हिलते तक नहीं। पलक भी नहीं पड़ती)

१. गोपी—सखियो! यह तो हले-डुलै नहीं है। पलकहू नहीं परै हैं। यह देवता नहीं कोई मूर्त्ति है।

१. गोपी—मूर्त्ति ही है सखी! कौन से ऐसी सुन्दर मूर्त्ति झाडिन में छिपाय कै धर दीनी है।

३. गोपी—होयगी काहू ने। हमकूँ कहा करनो। छोड़ो या मूर्त्ति कूँ। चलौ आगे।

(नाम ले ले पुकारती हुई चली जाती है)

चतुर्भुजी श्रीकृष्ण—हार गयी! मेरी ईश्वरताई हू हार गयी, गोपी-प्रेम के आगे। में वही तो हूँ—वही रूप-रंग, वही नाक-मुख, वही वेश-भूषा-नखते शिख लौं मैं वही नन्दलाल ही तो हूँ—बस द्वै भुजा ही तो अधिक हैं और मुख में वंशी नहीं है। बस इतने ही सों मैं गोपिन की आँखिन सों उतर गयो-हेय, नगण्य, तुच्छ है गयौ! ये गोपी न तो मेरी ईश्वरताई की तेजसों डरीं, न मेरी माधुरी के ही मोह में परीं। निर्विकार, उदासीन चली गयीं। इनकी आँखिन कूँ धन्य है। इनके प्रेम को प्रणाम है। देखौ

दो०

तीन लोक की आँख महँ ईश्वर रह्यो समाय।
(पर) श्याम रंग रंगी गोपिजन, चलीं ईश्वर ठुकराय।।
चौदह लोक बैकुण्ठ लौं, यह आँखि कहूँ नाय।
ये आँखि तो प्रेम की, गोपिन भाग में आय।।

(**पर्दा**—प्रवेश महाप्रभु एवं संगीजन)

पं० राधा च०—(भीतर से ही कहता हुआ) तो प्रभो या प्रकार सों गोपिन ने वा चार भुजा वारे श्रीकृष्ण कूँ कृष्ण ही नहीं मान्यौ। काहू ने देखे और आँख हटाय लीनी। कोई बोलीं नाय बोली काहु ने देवता जान हाथ जोड़ दिये तौ काहू ने हाथ हू नाय जोड़े ओर चल दीनी। श्रीकृष्ण चार भुजा बनाय करकै गोपिन के हाथ सों तो बच गये परन्तु श्रीराधा जू के हाथ सों नहीं बच पाये।

महा०—सो कैसे?

राधा०—सो ऐसे कि गोपिन के सब यूथ जब चली गयीं तो एक दूसरी ओर ते श्रीराधिका जू अपनी सखिन सहित पधारीं। अब ही वे बाहर दूर ही

रहीं कि उनके श्रीअंग की अपूर्व सुगन्धि कूँ लै कै वायु को झकोरो आयो और चतुर्भुजी श्रीकृष्ण की नासिक में प्रवेश कर गयो वा श्रीराधा अंग वायु में न जाने कहा ऐसी सामर्थ्य ही, कहा मंत्र हो कि सर्व शक्तिवान् भगवान् हू थर–थर काँपने लगे।

(कहते–कहते सब चले जाते)

(पर्दा खुलता–चतुर्भुजी श्रीकृष्ण बैठे हैं)

श्रीकृ०–(काँपते हुए) अरे! यह मोकूँ कहा है गयो। मेरी देह काँप रही है और ये द्वै अधिक हाथ तो देह भीतर घुस जानौ ही चाहैं हैं। इन्हीं द्वै हाथन ने ही तो मोकूँ गोपिन पै ते बचायो। जो अब ये द्वै हाथ नहीं रहै तो मैं पकर्यौ जाऊँगो। (नेपथ्य में नूपुर की छम् छम् ध्वनि समीप आती हुई) ओह! यह तो नूपुर बज रहै–प्रिया जू के चरण–नूपुर! वे आय रही हैं। अब कैसे बचूँ? ये द्वै हाथ तो भीतर घुसै ही जाय रहैं हैं। मैं रोकनूँ चाहूँ हूँ, रुकै पहरं हैं। मेरो जोर नहीं चल रह्यौ है। मेरो संकल्प व्यर्थ मेरी शक्ति व्यर्थ (नूपुर ध्वनि और समीप आती) आय पहुँची। ये हाथ हू घुसै भीतर। अब भगवान् बन कै नहीं रह सकूँगो। नहीं रह सकूँगो। ओह आय गयीं। ये आयीं।

(प्रवेश श्रीराधा एवं सखीजन, श्रीकृष्ण की दो भुजाओं का लोप)

श्रीराधा–(श्रीकृष्ण प्रति एक दृष्टि) ओह! यहाँ छिपे बैठो हो (मुख मोड़ लेती पीट फेर खड़ी हो जातीं है)

श्रीकृ०–(उठकर दौड़ते। श्रीराधा के चरणों को पकड़ लेते)

पर्दा

सब भक्तन के शीश पै, हरि ईश्वर नन्दलाल।
सो श्रीराधा पग तरे, उलटी प्रेम की चाल।।

श्लोक

भुजाश्चतुष्टयं क्वापि, नर्मणा दर्शयन्नपि,
वृन्दावनेश्वरी प्रेम्णा, द्विभुजं क्रियते हरिः।
(उज्ज्वल नीलमणि)

दो०

नन्दलाल विष्णु वने भुजा चार प्रगटाय।
जय जय राधा प्रेम की द्विभुज दियो बनाय।।
(प्रवेश महाप्रभु एवं संगीजन)

पं० राधा०—(अन्दर से ही कहते हुए) यह हैं महा-भावमयी श्रीराधा जू को स्वरूप। वाकूँ निरूपण करवे में वाणी मूक हैं कल्पना कुण्ठित है, बुद्धि स्तब्ध है। उनकी तो वसनांचल की वायु ही ईश्वरताई कूँ उड़ाय ईश्वर को स्वपाद में लुठाय देय है।

महा०—(अचानक पछाड़ खाकर गिर पड़ते) हा रा ऽ ऽ प्रेम ऽ ऽ 'ऽ मयी।

समाज— **सो०**

सकै न बेग सम्हार, उमग्यौ प्रेम प्रबल हिय।
गिरै खाय पछार, भूमि परै जु अचेत प्रभु।।

चौ०

व्याकुल संगी जन घबराये।
उठाय शीश अंक पधराये।।
बसन पात लै व्यार ढुराये।
कृष्ण कृष्ण प्रिय नाम सुनाये।।
भाव वेग पुनि कछु शिथिलाई।
उठि बैठे प्रभु गौरा राई।।
'कृष्ण कृष्ण' संगीजन गाये।
कृष्ण कृष्ण प्रभु मुख गाये।।

संगीजन—कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।

महा०—(कीर्तन करते हुये चलते-पीछे संगीजन जाते हैं)

समाज— **दो०**

कृष्ण नाम सुनि सुनि श्रवण, जाग्यौ भक्त स्वभाव।
कृष्ण कृष्ण गावत चलै, रह्यौ न भगवद् भाव।।
(पुनः प्रवेश महाप्रभु एवं संगीजन)

पं० राधा—या कारण सों या गाम को नाम "पैंठा" है। चतुर्भुजी भगवान् की द्वै भुजा भीतर "पैठ" गई। यासों "पैंठा" नाम पर्यो।

कृष्णदास—हाँ प्रभो! व्रज में ऐसे अनेकन गाम हैं जिनके नाम कोई न कोई लीला के ऊपर परै हैं। वे नाम ही बताय देयँ है कि वहाँ अमुक लीला करी है। पैंठा से आगे परिक्रमा में 'आन्यौर' गाम है। यह हू नाम लीला पै ही है।

महा०—यहाँ की लीला है सोहू सुनाय देओ दादा।

कृष्ण—याको शुद्ध नाम तो 'अन्नकूट' गाम है। जब हमारे श्री श्रीगुरुदेव श्रीमन्माधवेन्द्रपुरी महाराज गोवर्धन पधारे रहै तो आगे जो गोविन्द कुंड आयगो वाके समीप ही ठहरै है। उननै रात्रि में आदेश पाय कै श्रीगोपाल जू को पृथ्वी-गर्भ सों निकसवाय उनकी प्रतिष्ठा करी ही। वा प्रतिष्ठा-महोत्सव में प्रथम अन्नकूट-महोत्सव मनायो गयो-जासों या को नाम 'अन्नकूट ग्राम' पर गयो। एक दूसरी दन्त-कथा यह हू है कि जब नन्दलाला के कहवे पै इन्द्र-पूजा की ठौर पैं गोवर्धन-पूजा भई तो वा समय श्रीगिरिराज जी ने प्रगट ह्वै कै भोग आरोग्यो हो। अपनी विशाल भुजान कूँ पसार कै "आनो और-आनो और" कहकह कै गोप-गोपिन पै ते भोग लै लै कै आरोग्यो हो। यासों या ढौर को नाम 'आन्यौर' पर गयो। यह आगे 'आन्यौर' गाम ही है। यहाँ ब्रज को प्रसिद्ध 'गोविन्द कुंड' है। अब वाके दर्शन कूँ चलनो चाहिये। (प्रस्थान)

समाज— चौ०

आगे गाम आन्यौर जु आयो।

अन्नकूट को गाम कहायो।।

तहँ गिरि तट कुंड गोविन्द सौहै।

महिमा ताकी कहै अस कोहै।।

दृश्य—(गोविन्द कुंड। प्रवेश महाप्रभु एवं संगीजन)

कृष्ण०—प्रभो! यइ गोविन्द कुंड है। यामें श्रीगोविन्द जू के अभिषेक को परम पावन जल भर्यौ भयो है।

महा०—कौन-से अभिषेक को?

कृष्ण—देवराज इन्द्र द्वारा किये गये अभिषेक को। श्रीगोविन्द जू के विरुद्ध आचरण करके इन्द्र ने जो महदपराध कियो हौ, ताकूँ क्षमाकरायवे के लिये इन्द्र यहाँ आयौ हो तथा कामधेनु और स्वर्ग गंगा को जल हू लै आयो है। वा दिव्य जल तथा पृथ्वी के समस्त तीर्थन के जल सों या तरहटी पै भगवान् श्रीकृष्ण को अभिषेक कियो हो तथा उनकूँ गौ अन को रक्षाकारी गौअन को इन्द्र 'गोविन्द' नाम सों उनकी स्तुति करी हती। सो वा अभिषेक के जल सों या कुंड परिपूर्ण है गयो। बोलो गोविन्द कुंड की जय! अब आप याके दिव्य जल को आचमन करौ। मैं मंत्र बोलूं हूँ।

महा०—(प्रणाम कर-शीश पर जल छिड़क तीन आचमन करै।

कृष्ण— **श्लोक**

गोविन्दस्नपनोद्‌भुत तीर्थराज नमोऽस्तु त।
अभिषेक जलै: रम्यै: गोविन्द कुण्ड सञ्ज्ञक:।।

हे गोविन्द कुण्ड! हे तीर्थराज! आप श्रीगोविन्द के स्नान सों प्रगट भये हो एवं अभिषेक जल सों रमणीक पावन बने भये हो। आप कूं नमस्कार है।

महा०—(पंचांग प्रणाम कर कीर्तन करते हैं)

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे।
गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण।।
गोविन्द गोविन्द रथांग पाणे।
गोविन्द दामोदर माधवेति।।

(कीर्तन करते हुए प्रस्थान)

समाज— **चौ०**

गोविन्द कुंड दरस बहु भाये।
गोविन्द गावत मोद बढाये।।
चलि आगे ढिग पूंछरी आये।
मोर रूप गिरि पुच्छ कहाये।।

कृष्ण०—प्रभो! या ठौर को नाम पूछरी है। पूछरी अर्थात् गिरिराज की पूँछ। गिरि गोवर्धन को आकर मोर जैसो है। वाको मुख राधाकुंड और पूँछ यहाँ। मध्य में सात कोस दीर्घ शरीर है। या पूछरी पै पूर्व की ओर की आधी परिक्रमा पूरी होय हैं और पश्चिम की ओर की परिक्रमा आरम्भ होय है। अब आगे श्री श्रीगुरुदेव यतिराज श्रीमन्माधेवन्द्रपुरी जी के नाम पै बस्यौ भयो, 'जतीपुरा' गाम है।

महा०—क्यो दादा! यहाँ कोई गाँठौली गाम है?

कृष्ण०—हाँ प्रभो! जतीपुरा की बायीं ओर थोरी दूर पै गाँठौली है।

महा०—तो दादा वहीं चलौ। जतीपुरा रहन दैओ।

कृष्ण०—जैसी आज्ञा प्रभो! (प्रस्थान)

समाज— **चौ०**

कहत सुनत गिरि कथा सुहाई।
जात परिक्रमा प्रभु सुखदाई।।
गौर हृदय लालसा अति भारी।
श्रीगोपाल दरस सुखकारी।।

जानैं गौर, गौपाल की लीला।
गये गाँठौली तजि गिरिटीला।।
चलै आप हिरदै हरषाये
गाम गाँठौली डिग नियराये।।

(प्रवेश महाप्रभु—संगीजन)

महा०—क्यूँ दादा! या गाम कू गाँठौली क्यूँ कहै हैं।

कृष्ण०—यहाँ प्रिया-प्रियतम की गाँठ जुरी हती यासों गाँठौली कहै हैं।

महा०—तो कहा यह उनके विवाह की ठौर है?

कृष्ण०—विवाह तो नहीं, होरी लीला की ठौर है। होरी खेल करकैं सबन ने कुंड में स्नान कर्यौ हो। सो उनके अंगन के गुलाल सों जल गुलाबी है गयो-जासों गुलाल कुंड कहायो स्नान के पश्चात् जब युगल सरकार सिंहासन पै जाय विराजै तो ललिता जी ने चुपके-से उनके नीलाम्बर पीताम्बर में गाँठ लगाय दीनी। सो जब वे ठाड़े भये तो आँचर-गाँठ कूँ देख कै बड़े लज्जित भये। और सखी सब मुख में वस्त्र दै दै कै हँसवे लगी। सों ऐसी प्रेम-रसमयी लीला या ठौर पै भई हतीं। तासों गाँठौली नाम पर्यौ है।

महा०—दादा! मोकूँ लगै है कि गोपाल जी या ही ग्राम में पधारे भये हैं। सो तुम गाम जाओ और पतो पारौ तब तांई हम गुलाल कुंड के दर्शन करै हैं।

कृष्ण०—जो आज्ञा (प्रस्थान। पर्दा)

दृश्य—(मन्दिर। श्रीगोपाल जी विराजमान)

पुजारी—बोलो गोपाल जी की जय। श्रीगोवर्धननाथ की जय।

(प्रवेश महाप्रभु एवं संगीजन)

पुजारी—ॐ नमो नारायणाय! भले पधारै भगवन्! दर्शन करें। ये हमारे ठाकुर गोपाली जी महाराज हैं। ये श्रीश्री श्रीयतिराज श्रीमाधवेन्द्रपुरी के पधराये भये ठाकुर हैं। इनकी कथा थोरे-में ही सुनाऊं हूँ।

पद-सारंग केहरवा

ॐ जय जय देव गोपाल।
भक्तन हित नित नव नव कौतुक, ढंग बेढंगी चाल।।१।।
आये गाम माधवेन्द्रपुरी, विन भिक्षा बेहाल।
ग्वालरूप धरिदूध लै पहुँचे, करि दीन्हे जु निहाल।।२।।
रजनी दियो सपनो यती जी कूँ, मैं ही वह ग्वाल।
बास करौं इहँ भू गर्भ माहीं, काढ़ि लैओ तत्काल।।३।।

बहुत दिनन के भूखे निकसे, पावैं गाड़ा भर माल।
अन्नकूट के बड़े खवैया, छोटे-से गोपाल।।४।।
राज करैं गिरिराज के ऊपर, ब्रजबासिन प्रतिपाल।
गोधननाथ नाम तो मोटो, छोटो नाम गोपाल।।
रोम रोम में कोटि ब्रह्मांड, दृष्टि-सृष्टि महाकाल।
भागै मच्छर म्लेच्छ भय सों, नर लीला के ख्याल।।
राज ताज इनकूँ नहि भावै, महल खजाना माल।
गोपी गोप गौअन के प्यारे, नाम वेष गोपाल।।
अधर मुरलिया मधुर बजावैं, मोर पिच्छ सुढाल।
राज करौ बनराज लाडिले, लखि लखि 'प्रेम' निहाल।।

समाज— **दो०**

सुनि गोपाल चरित मधुर, लखि गोपाल स्वरूप।
भक्त 'गोपाल' कहि कहि, नाचत गौर अनूप।।

महा०— (धुन)

गोपाल गोपाल हरि गोपाल गोपाल।

पुजारी—(संकीर्तन मध्य गोपाल जी के कण्ठ से गुंजमाला निकाल महाप्रभु को पहना देता है भगवन्) वह गोपाल जी की प्रसादी गुंजमाला है)

पंजाबी बालक—(प्रवेश करता "गौरा गौरांग प्यारे गौरा गौराङ्ग धुन गाता-नाचता हुआ महाप्रभु पर दृष्टि पड़ते ही चकित ठिठकता-फिर दौड़ता है) वही! वही! मेरे गौरांग! प्यारे गौरांग (चरणों पर गिरकर लिपट जाता है)

महाप्रभु—(नृत्य बन्द हो जाता व नेत्र खुल जाते हैं। चरणों पर बालक पड़ा देखकर उठाकर हृदय से लगा।)

संगीजन—हरि बोल।

समाज— **चौ०**

बाल विवश प्रभु अंकम सोहै।
विश्राम परम पद प्रेम जोहै।।
जनम जनम दुख दारिद मेटे।
सब साधन फल हरि उर भेंटे।।

(अनुकरण)

पुनि पुनि मंगलकर करुनाकर।
फेरत शीश सरसावत अन्तर।।

महाप्रभु—प्यारे बालक!

खोलहु नैन लखो मो ओरी।
होहु सचेत तजो मति भोरी।।

बालक—(धीरे-धीरे सचेत-सावधान होकर महाप्रभु के दर्शन करते हुए हाथ जोड़ता है)

महा०—मेरे प्यारे बालक मैंने तुमकूँ।

दो०

लाय ब्रज दरसन दियो, कियो पूरन काम।
अब कारज मेरो करौ, जावहु अपने गाम।।

सो०

जाय करहु प्रचार, कृष्ण भक्ति जन-जन महँ।
होवै जीव-उद्धार, गाय गाय कृष्ण राम हरि।।

बालक—हे मेरे गौरांग प्रभो! मैं एक मूर्ख बालक हूँ। कृष्ण-भक्ति कहा होय है मैं नहीं जानूँ। फिर प्रचार कैसे करूँगो? आज्ञा-पालन कैसे करूँगो?

महा०—श्रीकृष्ण अपनो काम जाप करायलेंगे। तुम काहु प्रकार की चिन्ता मत करौ। लेओ! यह प्यारे गोपाल की प्रसादी गुंजा माला (स्वकण्ठ से उतार बालक के गले मेंडाल देते हैं। वह दोनों चरणों को पकड़ कर बैठ जाता)

संगीजन—हरि बोल! हरि बोल!

समाज— **दो०**

गुंजमाल निज कंठ ते, बाल कंठ पै डार।
प्रेम भक्ति शक्ति सबै, दीनी उर संचार।।

महा०—(चरणौ पर बैठे बालक के शीश पर दक्षिण हस्त रख) वत्स! आज सों तुम्हारो नाम 'कृष्णदास गुंजामाली' भयो गुंजामाली गोविन्द तुम्हारे नित्य प्रभु हैं और तुम उनके नित्यदास हो! तुम्हारे द्वारा पंजाब प्रान्त में श्रीकृष्ण-भक्ति को प्रचार होयगो। अब तुम अपने देश कूँ लोट जाओ। कृष्ण गाओ और कृष्ण गबाओ। हरि बोल।

बालक—(रोते हुए खड़ा होकर हाथ जोड़) हे मेरे सर्वस्व गौरांग प्रभो! मेरी एक ही कामना है और एक ही याचना।

गज़ल

आँखियों में रहे मेरी मूरति यह गौर तेरी।
मूरति यह गौर तेरी, सूरत यह गौर तेरी।।२।।
ले जाओ जहाँ जी चाहे, करवाओ जो जी चाहे।
(बस) देखूँ मैं सोते सपने, मूरति यह गौर तेरी०।।
(हे मेरे गौरांग!! मैं यहाँ ब्रज में)
अपनी खुशी न आया, न अपनी खुशी जाता।
इस नाच का नचैया।।
(इस खेल का खिलैया) मूरति यह तेरे०।।३।।
(जब मैंने पहली बार स्वप्न में देखा था)
जब देखा तुझ को रोया, जब पाया तुझ को रोया।।
(इससे यह समझा कि)
मिलती है रोने से ही, मूरति यह गौर तेरी०।।३।।
(यहाँ ब्रज में जब आया था तो)
आया था नाम लेते, गौरांग गौर कहते।
जाता हूँ यहाँ से लेके, मूरति यह गौर तेरी।।४।।
कहने का क्या रहा अब, पाने को क्या रहा अब।
जब मिल गई है 'प्रेम' मूरति यह गौर तेरी०।।५।।
(कहते कहते महाप्रभु के चरणों से लिपट जाना)

महाप्रभु—(उठाकर हृदय से लगा लेते हैं)

संगीजन—हरि बोल! हरि बोल! हरि बोल

संकीर्तन—आरम्भ

महाप्रभु—(बालक का हाथ पकड़ नृत्य करते हैं)

संगीजन—(चारों ओर मंडल में नृत्य करते हैं)

संकीर्तन-पश्चात्

बालक—(महाप्रभु की आरती उतारता)

समाज—श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।

हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधा गोविन्द।। इति

इति श्रीगोवर्धन भ्रमण लीला

☙❖❧

श्रीवृन्दावन—आगमन—लीला

मंगलाचरण

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्त वृन्द।।

श्लोक

वृन्दावने स्थिरचरान् नन्दयन् स्वावलोकनैः।
आत्मानञ्च तदालोकात गौराङ्गो परितोऽभ्रमन्।।

पूर्व प्रसंगा—　　　　　　**दोहा**

ब्रज के वन उपवन बहु, कृष्ण हरि के ठौर।
विहरत कृष्णदास संग, कृष्ण चैतन्य गौर।।
राधाकुंड ओ श्यामकुंड, मानस गंगा न्हाय।
गोवर्धन गोपाल लखे, गाम गाँठौली जाय।।
नन्दगाम नन्दलाल लखि, पावनसर करि न्हान।
कामादि वन विहरे प्रभु, चरन पहाड़ी ठाम।।
भांडीर लोह भद्रवन, महावन गोकुल गाम।
मत्त प्रेम आवेश प्रभु, विचरै लीला धाम।।

चौ०

गोकुल लखि मथुरा पुनि आये।
　　　　पुनि कृष्णदास भवन बसाये।।
जन गन भीर होत नित भारी।
　　　　दरस हेत आवैं नर नारी।।
बाहर भीर लखि अकुलावैं।
　　　　अन्तर पीर वृन्दावन जावैं।।

दृश्य महाप्रभु—(महाप्रभु, बलभद्र और कृष्णदास)

पद (मिश्रकाफी)

लै चलहु लै चलहु वृन्दाबन,
　　　　कृष्ण जीवन आनन्द वृन्दावन।

जहाँ वंशीवट बजे नित वंशी।
सो दिखराबहु बेगी नयनन।
कूल कालिन्दीमंजु पुलिन जहाँ,
निरतत रास रमणीरमण।।२।।
मेटत श्रम सुख पौढ़त जहँ मिलि,
देखौं सोइ निकुंज निधुवन।
तरु तरु लता बेलि बेलि प्रति,
लिपटि लिपटि सिराहिहौं तन।।
मधु ब्रजभूमि मोहत पद-पद,
उमगत भरि भरि हियरा लोचन।
पजिहै चिर अभिलाषा कव,
पाय अपूरव 'प्रेम' निज धन।।

कृष्ण०—भगवन्! मैं तो आप की आज्ञा को ही बाट देख रह्यौ हौ। पधारो वृन्दावन के लिए। मैं तो प्रस्तुत हूँ।

बलभद्र—और कृष्णदास जी! अब यहाँ दर्शन-प्रेमिन की बड़ी भीर हैवे लगी है। प्रभु कूँ कष्ट होय है। यासों या कोलाहल ते दूर प्रभु कूँ लै चलो!

कृष्ण०—तो चलो! उठाओ दंड-कमंडलु और कटिवस्त्र प्रभु के!

महा०—(उठते हुए) चलौ भैयाओ! लै चलौ शीघ्र वृन्दावन कूँ! पहुँचाय देओ! दिखाय देओ वृन्दावन! पूरी कर देओ चिरकाल की आश-अभिलाष।

महाप्रभु—(चलते हुए गाते जाते हैं) सारंग

जय वृन्दावन श्री वृन्दावन।
गो-गोपाल-गोपीजन-गोविन्द-
नित्य धाम विश्राम वृन्दावन।
मदनगोपाल-मोहन-मुरली-मद-
कलरव-गुंजित धाम वृन्दावन।।
ललित लाल ललना कुल विलसत,
नव नव 'प्रेम' रस धाम वृन्दावन।।
(प्रस्थान। मार्ग बन दृश्य)

समाज— चौ०

तजि मथुरा वृन्दावन धाये।
प्रथम अक्रूर घाटहिं आये।।

(दृश्य वन-यमुना। प्रवेश महाप्रभु-संगीजन)

कृष्णदास सब कथा सुनाई।
लायो अक्रूर इहाँ दोउ भाई।।

कृष्ण०—मन अति दुखी कहा हौं कीन्हों।
व्रज जीवन प्राण हर लीन्हो।।

(अर्थ करेगा)

करुण विलाप गोपिन सुधि आवे।
धीरज बहे नयन बहि जावै।।
इक चिन्ता पुनि दूजी सताई।
दुखित भूलि प्रभु की प्रभुताई।।
कोमल कुसुम ए दोउ भाई।
कंस कठोर कुलिस महाई।।
हाय हाय! अनुचित हौं कीन्हो।
सिंह बदन शश शिशु लै दोन्हो।।

दो०

मध्य दिवस समय लखि, यमुना तट नियराई।
रथ ठाडो करि तरु तरै, धसै यमुन जल जाई।।
चिन्ताहर चिन्तामणि, जानि भक्त बेहाल।
जल अन्तर निज दरस दै, निर्भय किये तत्काल।।

महा०—(भाव विह्वल हो) धन्य अक्रूर जी! धन्य! जो तुमकूँ दर्शन भये। मैं हू दर्शन करूँगो-करूँगो। प्यारे कृष्ण! कृष्ण (कहते यमुना में कूद पड़ते हैं)

समाज—(अनुकरणात्मक दृश्य)

चौ०

भाव मत्त धाये हुँकारी।
कूदि परै जमुना जल भारी।।
उछरैं ना, रहै डूबि जल माहीं।
संगी विकल सूझत कछु नाहीं।।
(तब) कूदि बलभद्र पर्यो तेहि ठौरा।
बूड़े प्रभु कूदि जा ठौरा।।

बहु बेर खोजत प्रभु पाये।
काढ़ि जतन करि वाहर लाये।।
सूखे बसन कौपीन धराये।
प्रभु अचेत जन सब घवराये।।
व्याकुल उपाय न कोई सूझे।
हारे को हरि विन को दूजे।।
कृष्ण कृष्ण धुनि कृष्ण पुकारे।
कृष्ण कृष्ण कर्णपुटन उचारें।।

संगीजन—(महाप्रभु के दोनों कर्णों में कृष्ण कृष्ण सुनाते हुए कीर्तन करते)

कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।
(द्रुत) कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे। कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे। कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।

समाज— **चौ०**

घडी काल बीती दुखदाई
नैन उघारै पुनि सुखदाई।।
भक्तन तनु प्रान जनु आये।
आनन्द घोष हरिबोल सुनाये।।
संगी—जन हरि बोल! हरि बोल।
सघन तरु तरे प्रभुहिं पौढ़ाये।
कृष्णदास ढिग गामहिं धाये।।

कृष्णदास—भट्टाचार्य जी! आप प्रभु की सेवा में सावधान रहैं। मैं गाम जाय कै प्रभु की भिक्षा के लिये कछु फल मूल गोरस आदि को प्रबन्ध करूँ हूँ। (प्रस्थान)

समाज— **दो०**

हरि इच्छा ब्रजवासी, गोरस कदली लाय।
आये हुलसाये हिये, धनि धनि दर्शन पाय।।

ब्रजवासी दल—(प्रवेश-पाँच सात स्त्री-पुरुष-बालक, दूध, दही, खीर, माखन, केला आदि फल लिये।)

(दुकान की मिठाइयाँ नहीं होवै)

समाज—

बाल वृद्ध नर नारी आये।
धरि धरि वस्तु शीश नमाये।।
"कृष्ण कृष्ण" प्रभु मधुर उचारें।
'कृष्ण कृष्ण' नर नारी पुकारें।।
रूप निहारें बलि बलि जावैं।
बड़ो भाग अपनो जु मनावैं।।

ब्रजवासी—

बड़ी कृपा कृपाल जु कीन्ही।
आय आप पग धूरि दीन्ही।।
तन पवित्र मन मृदुल वनाये।
प्रान सरस प्रेम उमगाये।।
लखि लखि तुमहिं कृष्ण हिय आवै।
मुख हू वरवस कृष्णहिं गावै।।
जीव जिय के प्रानन प्यारे।
हेरत हेरत हियो नहिं हारे।।
तुम सों निधि घर बैठे पाई।
करैं कहा सेबा कछु नाई।।

दो०

दूध दही फल मूल सब, तुम्हारो ही गोपाल।
अपनी वस्तु आप लै, जूँठन देओ लाल।।

सो०

परे चरन अकुलाय, खोये धन पाये रंक जनु।
हरि बोल हरि गाय, भेंट प्रभु निज जनन सब।।

चौ०

लै उठाय प्रभु जन जन भेंटे।
अंकम लाय विरह दुख मेटे।।
वे समुझैं 'हम कृष्ण हि पाये'।
ये समझे 'कृष्ण हों' पाये।।
मुग्ध नारी नर तन मन वारैं।
कृष्ण कृष्ण कहैं लोचन ढारैं।।

प्रिय-मिलन सुख कह्यौ न जाई।
गूँगे को गुड़ प्रेम सदाई।।

महाप्रभु—(कीर्तन आरम्भ करते। ग्रामवासी योग देते हैं)

आसावरी

कृष्ण कृष्ण ऽऽऽ कृष्ण कृष्ण ऽऽऽ
मेरे प्यारे नन्दलाल, यमुमति के दुलाल।
राधा प्यारी उर माल, हरि गोविन्द गोपाल।।
कृष्ण कृष्ण ऽऽऽ कृष्ण कृष्ण ऽऽऽ

समाज—

इहि विधि मत्त कृष्ण गुन गावैं।
आप नचैं अरु सबन नचावैं।।
अद्‌भुत आनन्द रस बरसावैं।
जड़ चेतन हरषैं सरसावैं।।
कृष्ण संग सुख लहैं लहावैं।
नव नव प्रेम भाव उमगावैं।

दो०

बीतत तीजो पहर दिन, संगीजन अकुलाय।
करि मनुहार प्रसाद हित, लिये प्रभुहिं मनाय।।

कृष्ण०—(हाथ जोड़) भगवन्! अब हम जीवन के प्रति नेक कृपा दृष्टि करौ। हम आप की कहा बरोबरी कर सकैं हैं, आप तो कृष्ण-रस सों परिपूर्ण हैं और हम अन्न-रस के लिय व्याकुल है रहै हैं।

बलभद्र—हाँ प्रभो! प्रात: काल मथुरा सों चले हैं और अब तीसरो पहर है आयो है। हमारे मुख में अन्न-जल कछु नहीं पर्यो है। यासां अब आप विराजो और इन प्यारे व्रजवासिन को लायो भयो दूध, दही, माखन मिश्री कछु आरोगो।

ब्रजवासी—हाँ महाराज! हमारो पत्र पुष्प स्वीकार करौ।

विशेष दृष्टव्य :—

(१) महाप्रभु का आसन उनके ही गेरुआ चादर का होवे।

(२) भोजन में खीर, पूड़ी, दही, माखन, फल टेंटी, साग, कढ़ी-ग्रामीण सादा भोजन। बाजार की मिठाइयाँ नहीं।

(३) महाप्रभु के मुख में कोई ग्रास न देवे। जो कुछ भी देना हो वह परोस देवें—हाथ से न खिलावें।

(४) पत्तल दोने सकोरे हों। धातु पात्र नहीं।

समाज— **चौ०**

करि करि बहु मनु हार जेंमावैं।
लखि प्रभु छवि अति सुख पावैं।।
(मनुहार अगली चौपाइयों में)

ग्रामवासी—

कोई कहै ल्यौ ए सद्माखन।
मिश्री मिली सुमधुर सुहाबन।।
कोई कहै प्रभु खीर ही पाओ।
प्रथम याको भोग लगाओ।।
कामधेनु मेरी श्यामा गैया।
पय अमृत सम पुष्ट करैया।।
कोई परोसे कढ़ी सुहाई।
व्रजवासिन अति प्रिय सदाई।।
दुर्लभ ब्रज की कढ़ी गुसांई।
इन्द्रराज के सुरसुर नाई।।
एक कहत चाखौ फल टेंटी।
सव मेवा या आगे हेंटी।।
यह टटी गोपाल ही भावै।
शबरी बेर ज्यूँ राम सुहावै।।
प्रभु मौन बोलें कछु नांहि।
मन्द मृदु मुसकावत जाहीं।।
भाब भोगी सदा नन्द लाला।
तजि बैकुंठ बने गोपाला।।
भोग समापन प्रभु जी कीन्हा।
अँचै धोय मुखवास जु लीन्हा।।
गयो दोज संध्या नियराई।
किये बिदा जन गन सुखदाई।।

महा०—प्रिय बन्धुओ! आज तुमने मोकूँ बड़ो सुख दियो। अपने गोपाल को नाम सुनायो और गोपाल को गोरस पिवायौ। मेरे पास तुमकूँ दैवे कूँ कछुइ

नहीं है। मैं तो एक भिक्षुक हूँ—तुम ते लैवे ही आयौ हूँ। अपने गोपाल के प्रति तुम्हारो जैसो सरस भाव है, जैसी ममता भरी लाड़ है—वैसोइ कछु मोकूँ हु मिल जाय-ऐसो आशीर्वाद दैओ। (गद्गद् कण्ठ) तुम्हारो गोपाल, तुम्हारो-नन्दलाल मोकूँ हू प्यारो-प्या--रो लगै! हा! कृष्ण।

सब— हरि बोल! हरि बोल।

१. वृद्ध ग्रामवासी—भगवन्! कृपा करकै आप कछु दिना यहीं निवास करैं। आपके संग हम हू कीर्तन कर्यौ करेंगे।

(अन्य ग्राम वासियों का भी आग्रह)

महा०—प्रिय बन्धुओ! मोकूँ प्रथम वृन्दावन के दर्शन कर लैने देओ! वृन्दावन अबै कितेक दूर है?

२ ग्राम०—यह सामने वृन्दावन ही है। सीमा पै ही आप विराजे भये है। मील भर मार्ग है। जब इच्छा भई चले गये और लौट आये।

३. ग्राम०—वहाँ कोई वस्ती तो है नहीं। वन-घोर वन है। यासों दर्शन करकै आप यहीं लौट आवैं और कछु दिना यही निवास करैं।

महा०—भैयाओ! प्रथम वृन्दावन दर्शन। पश्चात् अन्य विचार। अब सन्ध्या है गई है। तुम सब दोपहर के आये हो। यासों जाओ! अपने काम-काज की सुध करौ।

ग्राम०—(१) आप हम कूँ भूल न जावैं। शीघ्र लौट आवैं।

(२) हमारी विनती ध्यान रहै। कछु दिना यहाँ निवास अवश्य करैं!

(प्रणाम करके सब चले जाते हैं)

समाज— **पद यथाराग**

मन तू वृन्दावन मारग लाग,
कोउ न तेरो तू न काहू को, माया मोह तज भाग।।१।।
गो गिरि सर सरिता वन कुंजन,
इन सों कर अनुराग!!

सवैया

नाहिं तुले बैकुंठहु को सुख,
घोष की ज्युँ कबहू सम तोलैं।
जा ब्रजहि सब आनन्द में,
गिरिधारी की बाह की छाँह किलोलैं।।

'नागर' काढ़ दियो जिनकूँ अब,
वे भटकें मन मारि मलौलैं।।
देश विदेश अभागे फिरैं बड़भागी,
सोइ ब्रजभूमि में डोलैं।।
वृन्दावन मारग लाग।।

दो०

देश विदेश भिखारिया, जहाँ जाव तहाँ भीख।
(श्री) वृन्दावन कन कौर बिनु, बैकुंठहू दुर्भीख
वृन्दावन मारग०।।
'व्यासदास' श्रीराधाघव के, व्रजवासिन कौर माँग
मन तू वृन्दावन मारग०।।

दो०

निशि बिनाय अति भोरहीं, चले वृन्दावन ओर।
कृष्णदास वलभद्र हू, अनुसरहीं प्रभु गौर।।

पद भैरवी

पग पग भाव हिलोर उठत उर,
को कहि पावै छोर।।

महाप्रभु—(प्रवेश-भुजा उठाये 'कृष्ण कृष्ण! वृन्दावन! कहते डगमगाते चरण। पीछे संगी युगल)

अन्तरा

'कृष्ण कृष्ण कबहु मृदु उचरत,
प्रेम भाव विभोर जोर।

(अनुकरण)

कबहुँ मत्त हुँकरत गरजत,
उमगत आनन्द जोर।।२।।
कबहुँ ठाड़े हेरत तरु बेलि,
सजल विलोचन कोर।
कबहुँ धाय लिपट रहैं भुज भरि,
अचरज मति गति गौर।।

चलत परत दृष्टि कभु भूपर,
सुध आवत कछु और।
चितै चकित रहैं, बैठ परैं पुनि,
भाल भिराबत ठौर।।

महा०—"ये पद चिह्न व्रज बनितनि पाये,
पाये पुनि चितचौर"।
लखि पायो चिह्न वे ही अब, लखि हौं श्याम किशोर।।
कहाँ देव कहाँ दयित कहाँ हे प्रानरमन हरि मोर।
वदन लखाओ, वचन सुनाओ मेरे सर्वस्व चोर।।

महाप्रभु—भीम पलाश—केहरवा

मेरे नैनहर हरि मेरे मन हर हरि।
मेरे दुःख हर हरि मेरे सुख हर हरि।।
हरि हरि हरि हरि।
मेरे मति हर हरि, मेरे पति हर हरि।
मेरे सति हर हरि, मेरे रति हर हरि।
हरि हरि हरि हरि।।
मेरे चीरहर हरि, मेरे धीर हर हरि,
मेरे भीर हर हरि, मेरे पीरहर हरि-हरि हरि०।।

समाज— चौ०

विरह प्रेम भर प्रभु चलि जाहीं।
लखि बन भूमि तन पुलकाहीं।।
प्रभु विलोकि पिक पंचम गावहिं।
गूंजत भृंग निकर संग धावहिं।।
उडि शुक सारी तन पै बैठहीं।
युगल रूप गुन मनहर गावहिं।।
लता बेलि तरु अंकुर सरसहिं।
मधु धारा मिस अश्रुन वरसहिं।।
फूलन भार डार तरु नमहिं।
मनहु बन्धुहिं भेंट समर्पहिं।।

महा०—(प्रवेश भुजा उठाये, अश्रुपूर्ण नेत्र, डगमग चरण "मेरे हऽऽरि हऽऽरि हऽऽरि हरि........" कहते हुए।

समाज— (बंगला) पद कीर्तन

(विहरे) ब्रज वने विरहिणी प्राण गौरा राय।
राधा भावे कृष्ण विरहिणी प्राण गौरा राय।।
देखो प्राण गौरा राय।
कृष्ण विरहे उन्मादिनी-प्राण गौरा राय।।देखो ब्रज बने०।।

अनुकरण **दो०**

हेरि हेरि वन माधुरी, हरि सुध हरत विभोर।
"हरि हरि, छिपि रहै कित" कहि कहि रोवत गौर।
देखो प्राण गौरा राय, ब्रज वन।।

अनुकरण **दो०**

लिपटि लता तरु सो लखि, उमग्यो भाव विलास।
धाय पसारि भुज मिलैं, श्याम संग अभिलाष।।
देखो प्राण गौरा राय।। ब्रज वन।

अनुकरण **दो०**

मोरी मोर निरतत तहाँ, 'नीलकंठ लखे गौर।
ठाड़े अवलोकत रहै, नीलमणि चित चोर।।
देखो प्राण गौरा राय। ब्रज वन०।

महाप्रभु— **दो०**

मिलै मेरे नीलमणि, छिपि हौ अब कित जाय।
करि राखौं हृदय मणि, चलै जु पकरन धाय।।

समाज— **सो०**

गयो मोर पलाय, उड़ि बैठे तरु डार पै।

अनुकरण

गिरै धरन मुरझाय, दौरि सम्हारत संगीजन।
देखो प्राण गौर००।।

महा०—(रोते हुए) मेरे नील.......मणि,
हृदय......मणि......श्याम.......प्यारे।।

समाज **सो०**

माधुरी कृष्ण अपार, पार न पावत महाप्रभु।
राधा भाव उधार, पी पी प्यासे तरफर्हि।।
देखो प्राण गौर०।।

महाप्रभु—बोलो बोलो यह नाम कृ......ष्ण हरि......हरि मेरो हरि०।।

संगीजन— **(कीर्त्तन)**

"हरि बो ऽऽऽ ल हरि वो ऽऽऽ ल
राधा प्राणधन हरि हरि वोल"
(कीर्तन करते हुए प्रस्थान)

कवित्त

राजैं जगन्नाथ जब, जैसो प्रेमावेश होत।
वृन्दावन हेत चलै, बाढ़ै शत गुनो है।।
पग पग बढ़ि बढ़ि, मथुरा पग धारे जब।
केशौ राय हेरत बाढ्यौ सहस गुनो है।।
राधाकुंड कृष्णकुंड, नन्दगाम भूमि व्रज।
वृन्दावन धाये जब, बाढ्यौ लाख गुनो है।।
वृन्दावन दशा 'प्रेम' प्रभु की न कही जाय।
कोटि कोटि गुनो सब, भयो ऊनो ऊनो है।।

समाज— **(बंगला)**

वृन्दावने होइलो प्रभुर जतेक विकार।
कोटि ग्रन्थे अनन्त लिखिते ना पार।।
(प्रवेश महाप्रभु एवं संगी युगल)

कृष्णदास—प्रभो! यह सामने यमुना पुलिन है। यहाँ धीर समीर—बहै है (दृश्य-यमुना-वंशीवट)

वहीं श्रीवृन्दावन बिहारी की सुप्रसिद्ध रासस्थली है।

कवित्त

बहै धीर समीर इहाँ, उहाँ वंशीवट लखो,
ठाड़े नन्दलाल जहाँ, बाँसुरी बजायी है।
कोस सोल्ह मध्य गोपी, सुनि पन-प्रेम रोपी,
चढ़ि कै मन्मथरथ, श्याम ढिग आयी हैं।।

कहै श्याम बार बार, जाओ जाओ लौटि घर,
धर्म लोक वेद शीश, प्रेम जय पायी है।
रच्यौ तब महारास, यमुना पुलिन माँझ,
कार्तिक पूनम सोई, आज पुनि आयी है।।

समाज— **चौ०**

सुनत छद्‌म गयो विसराई।
ठाड़े गौर त्रिभंग सुहाई।।

अनुकरण—

अंग नील मणि आभा दमके।
गौर अंग मधि श्याम जु झलके।।

(दृश्य—मंच पर आगे महाप्रभु त्रिभंग ठाड़े-वंशी वादन मुद्रा पीछे झीने पर्दे के अन्दर मंडलाकार रास-नृत्य)

कृष्णदास—(स्वगत) अहा! यह कैसो अद्‌भुत दृश्य! अलौकिक रास! **गोपी-कृष्ण! गोपी-कृष्ण।** कहा यह सत्य है—स्वप्न तो नहीं? कहा यह गौर संन्यासी नहीं-रास बिहारी हैं? (आश्चर्य मौन देखता रहता-इतने में रास-नृत्य अदृश्य हो जाता)

समाज— **दो०**

पर्यौ दंडवत् गौर पद, बुद्धि विकल विभोर।

(अनुकरण)

बाणी मौन भ्रमित मन, कौन संन्यासी गौर।।

महा०—उठो कृष्णदास! सावधान होओ! तुम तो रास-वर्णन कर रहे हे। चुप कैसे है गये। आगे सुनाओ।

कृष्ण—तो जब श्याम सुन्दर ने वंशी बजायी तो।

कवित्त

याहि ठौर बंशी सुनि, दौरि दौरि आयीं गोपी,
तोरि तोरि प्रीति हरि, गोपिन रुवाये हैं।।
याहि ठौर खोलि खोलि, हृदय सम्पुट गोपी,
तौलि तौलि नेम धर्म, तुच्छ ठहराये हैं।।
याहि ठौर बैठीं गोपी खोज खोज हारीं जब,
अमर गीत गोपी गाय, नाथ कूँ रिझाये हैं।।

याहि ठौर हरि हरि पाँव परै गोपिन के,
तीन लोक नाथ 'प्रेम' रिनिया कहाये हैं।।

कवित्त

याहि ठौर श्याम गोरी, युगल करोर जोरी,
भुज भुज जोरि जोरि, रास प्रगटायौ है।
याहि ठौर नृत्य गान, रास आलिंगन दान,
महा माधुरी वितान, रस रंग छायो है।।
याहि ठौर शिव-अरी, मदन मर्दन करी,
मदन मोहन हरी, नाम जग पायो है।।
याहि ठौर डंका 'प्रेम', त्रिभुवन बंका बाज्यो,
महादेव ईश्वर रूप, गोपीश्वर पायो है।।

समाज— **दो०**

महिमा गोपी प्रेम सुनि, जाग्यौ गोपी भाव,
लखैं श्याम सम्मुख खड़ै, भुज भर भेंटन चाव।।

दृश्य— (पर्दा-पार्श्व मैं श्रीकृष्ण खड़े)

महा०—वह रहै प्यारे! श्याम! मोहन! (भुजाएँ बढ़ा दौड़ते-स्फूर्ति लोप हो जाती—गिर पड़ते हैं)

समाज— **चौ०**

अचेत धरन रहै मुरझाई।
हृदय श्वास गति रुद्ध लखाई।।
सेवक संगी विकल सम्हारत।
करत पवन शीतल जल लखत।।
करि करि जतन रहै जब हारी।
रास गान उपाय निरधारी।।

कृष्ण०—भट्टाचार्य जी! रास श्रवण करकै ही प्रभु कूँ प्रेम मूर्च्छा भई है। यह रास-श्रवण सों ही सचेत होंगे। यासों ईनकूँ रास-गान ही श्रवण कराओ।

गाना— **केदारा (विलंबित)**

अंगना मंगना मन्तरे माधवं,
माधवं माधवं चान्तरेणांगना।

इत्थमा कल्पिते मण्डले मध्यग:,
संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः।।१।।
(द्रुत) क्वापि वीणाभिरा राविणा कम्पितः,
क्वापि वीणाभिरा किङ्किणी नतितः।।
क्वापि वीणाभिरामान्तरं गावितः,
संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः।।२।।

महा०—(धीरे-धीरे सचेत होते हुये) रास बिहारी! बिहारी।

धुन केदारा दादरा

रास बिहारी, मुरलीधारी बनवारी घनश्याम।
(गाते हुये चलते रहते हैं)

बलभद्र—कृष्णदास जी! तीसरो पहर बीत गयो-संध्या हैवे बारी है। अब इनकूँ जैसे बने वैसे लौटाय अक्रूर घाट लै चलनो चाहिये।

कृष्ण०—हाँ चलो! प्रभु कूँ सम्हालते चलौ।

महा०—"रासबिहारी मुरलीधारी, बनवारी घनश्याम (गाते-गाते चलते हैं—संगीजन दोनों ओर से सम्हालते ले जाते हैं)

समाज— **दो०**

गुन गावैं नाचैं कभु, रुदन करैं कभु जोर।
कृष्ण भाव मिलन महँ, दिवस बिताये गौर।।
संध्या समय अक्रूर तीर्थ, लौटे महाप्रभु जाय।
भिक्षा करि विश्राम सुख, रजनी तहाँ बिताय।।

पद

आये हैं कृष्ण हरि आये हैं। आये हैं।।४।।
जब सों गौर वृन्दावन आये,
जन जन मुख यही गाये हैं।
सुनि सुनि भीर बहु चलि आवैं,
दरसन करि सुख पाये हैं।।
जनरव सुनि कौतुक वश जनहू,
मधुपुरी सों हू आये हैं।।
(प्रवेश मथुरा वासियों का दल)

१. मथुरा०—क्यों गुरु! यह बात साँची है कि वृन्दावन में कृष्ण प्रगट भये हैं।

२. मथुरा०—या बात को हल्ला तो बहुत मच रह्यौ है। चलौ न वृन्दावन–साँच झूठ को पतो पर जायगो।

३. मथुरा०—जरूर चलनो चाहिये गुरु! रास्ते में अक्रूर घाट कूँ होते चलेंगे। वे नवीन संन्यासी मथुरा ते जाय कै वहीं ठहरे भये हैं। उनके हू दर्शन करते चलेंगे।

१. मथुरा०—वे तो बड़े चमत्कारी महात्मा हैं। वह तो मथुरावासिन पै जादू डार गयौ है। वह माथुरिया कृष्णदास तो उनके संग ही संग लग्यो डोलै है।

२. मथुरा०—अरे वह तो बाके तीर्थ-गुरु बन्यो भयो है। वाही ने उनकूँ ब्रज परिक्रमा करायी है। वह संग ही होयगो—हमारो काम हू वन जायगो। बाके पास घोट-छान करकै तब चलैंगे वृन्दावन।

३. मथुरा०—गुरु! वहाँ घोटवे-छानवे के नाम पै हरि बोल ही मिलैगो। हरि बोल करनो होय तो चलौ! संन्यासी महात्मा के दर्शन तो है जायँगे।

(प्रस्थान)

पूर्व पद

आये हैं आये हैं आये हैं।
आये हैं कृष्ण हरि आये है।।
जनरव सुनि मथुरा बहुजन।
वृन्दावन कूँ धाये हैं।।
राजत अक्रूर तीरथ महाप्रभु।
आय शीश नमाये है।।
(मथुरावासियों का आना—प्रणाम करना)
मृदु मुसिक्याय महाप्रभु बूझत,
को तुम कित सिधाये है।।

महा०—भक्तजनो! आप सब कहां ते आये हैं?

मथुरा०—रहैं मधुपुरी जात वृन्दावन,

कृष्ण वहाँ प्रगटाये हैं।

महा०—अच्छो! तो कहा काहूने श्रीकृष्ण के दर्शन हू करैं है।

मथुरा०—बहु-बहु जन हमरे मथुरा सों,

करि करि दर्शन आये हैं।।

महा०—वहां वृन्दावन मैं कौन-से ठौर पै दर्शन भये हैं।

मथुरा०—निशि बेला कालिय ह्रद पै,

नित प्रति कृष्ण लखाये हैं।।

निरतत दीसैं कालिय फन पै,

आँखिन लखि लखि आये हैं।।

यासों हम हू दर्शन के लिये जाय रहे है। अब रात हू है वे वारी है। सो आज्ञा मिल जाय।

महा०—हाँ हाँ! अवश्य जाओ। लौटते समय हमकूँ हू समाचार सुनाय वे की कृपा करनो।

मथुरा०—जैसी आज्ञा।

(प्रणाम कर प्रस्थान)

समाज—

पग वन्दन करि वृन्दावन धाये,
गौर हरि मुसक्याये हैं।
साँच झूठ कहा कोई न जाने,
'प्रेम' सबै भरमाये हैं।।

बलभद्र—प्रभो मोकूँ हू आज्ञा मिल जाय तो मैं हू इनके संग जाय कै भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन कर आऊँ।

महा०—(बलभद्र के पीठ पर थप्पड़ मार हँसते हुए) अरे भट्टाचार्य कहाय कै मूर्ख लोगन के संग मूर्ख मत बनो—

कृष्ण केनो दर्शन दिवे कलि काले।
निज भ्रमे मूर्ख लोक कोरे कोलाहले।।

या कलियुग में जहाँ-तहाँ श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं होय हैं। लोगन कूँ भ्रम है गयो है। कल जब ये मथुरावासी लौटकर आयँगे तब यदि बात साँची निकसी तो कलरात्रि हम-तुम दर्शन कर आयँगे) (पर्दा)

दृश्य—(यमुना-कालियदह! रात्रिकाल! एक नौका-मध्य भाग में एक लठ पर जलती मशाल। पीछे एक मल्लाह खड़ा।

समाज— चौ०

निशि कालिय देह भीड़ जु भारी।
दरसन दैहैं कृष्ण मुरारि।।

दूर प्रकाश कालिन्दी माँही।
लखि लखि अचरज मन भरमाहीं।।
(प्रवेश मथुरावासियों का दल)

(अनुकरण)

कोई कहै कालिय दह देखो।
फन पै मणि चमकै वह देखो।।
कोई कहै मणि थिरकत देखो।
मुरलीधर निरतत वह देखो।।
कोई कहै हम नित प्रति देखैं।
ऐसे ही फणि-मणि मूरति देखैं।।
धन्य-धन्य बहु भाग्य हमारे।
दुर्लभ दर्शन सहज हमारे।।
अचरज आनन्द बाढ्यौ भारी।
जय जयकार करैं पुकारी।।
ज्युँ ज्युँ ढिग ज्योति नियरावै।
कौतुहल बाढ़त ही जावै।।
जबहिं नौका नियरे आयो।
मिट्यौ भरम मरम लखि पायो।।

१. मथुरा०—धत्तेरे! यह तो नौका और मल्लाह है।

समाज— दो०

नाग फणि नहीं मणि नहीं, नहीं तहाँ नन्दलाल।
ठाड़ो मल्लाह नाव मधि, जरत जोति मशाल।।

मथुरा०—अरे तू कौन है?

मल्लाह—आदमी हूँ और कौन। दीखें नहीं है कहा?

मथुरा०—मल्लाह है कहा?

मल्लाह—हाँ हाँ मल्लाह! माझी! नाववारो! और बताऊँ।

१. जनता—तू कलहू आयो कहा? (म०) हाँ आयो हो।

२. जनता—और परसों-तरसों?

मल्लाह—हाँ परसों आयो-तरसों आयो-आज आठ दिना सों मोकूँ रीजीना पल्ली पार ते लौटते देर है जाय है।

१. जनता—वाह रे हम! और हमारी आँख!

२. जनता—बिना आँख के ही अन्धे होयो करै हैं पर आँख बारे अन्धे तो हम ही निकसे! पूरे उल्लू!!

१. मथुरा०—और तुम आँधरे उल्लून के पीछे चलवे बारे हम कैसे जो मथुरा सों आँख बन्द करकै भागे आये श्रीकृष्ण दर्शन के तांई।

१. मथुरा०—अरे वाह गुरु! कितनो बढ़िया स्वांग! कालिय तो बन गयो नौका-फणि की मणि बन गई मसात और नन्दलाल बन गयो माँझी लाल! कनुआ के ठौर पै कलुआ। हमारे भाग्य ने सब उलट दियो असल नकल बनाय दियो!!

३. मथुरा०—अन्धे के पीछे अन्धे, अन्धे के पीछे अन्धे! अन्धेन को मेला जुर गयो।

समाज— **पद**

यह जग है अन्धों का मेला।
देखैं न आप दिखावैं और कूँ,
अन्ध दोऊ गुरु चेला।।१।।
वस्तु भीतर बाहर ढूँढ़ैं, मारत डोलैं डेला।
डेल लगै ना भूल मिटैं न।
बढ़तो ही जाय झमेला।।२।।
जहाँ कृष्ण तहाँ ना देखैं, जहाँ नहीं तहँ हेला।
झूठे के पीछ बने बावरे, साँचे सों नहीं मेला।।
"आये कृष्ण-वृन्दावन आये", है साँचो यह हेला।
गौर कृष्ण हैं जानै न 'प्रेम', यही भूल गढेला।।
(पटाक्षेप)
प्रातः समय श्रीगौर हरि, चीरघाट करि न्हान।
चलै जहाँ 'इमली तला', पुरातन! प्राण लीला थान।।

महाप्रभु—(प्रवेश गाते हुए)

हा वृन्दावन! प्राण वृन्दावन!
गो गोपाल गोपीजन गोविन्द, नित्यधाम विश्राम वृन्दा०।
धीर समीर सुखद यमुना तट, वंशीवट सुखधाम वृन्दा०।।

कृष्ण०—भगवन्! अब आगे वन में इमली को एक अत्यन्त प्राचीन वृक्ष है। कहैं हैं कि वह वृक्ष श्रीकृष्ण अवतार काल को है। वाके सम्मुख

यमुना पुलिन दूर-दूर तक फैले भई है। मध्य में यमुना प्रवाहित है रही हैं। ऐसी कथा सुनवे में आवै है कि स्वयं वृन्दावन बिहारी ने काहू समय प्राणेश्वरी श्रीराधा जू के विरह में वा इमली वृक्ष के नीचे विराज करकै 'राधा-राधा' नाम-महामंत्र जाप कर्यौ है। ऐसो व अपूर्व सौभाग्यशाली वह दिव्य इमली वृक्ष है! देखो प्रभो! देखो! वह रह्यौ इमली वृक्ष (पर्दा खुलता है)

दृश्य— (प्राचीन इमली वृक्ष)

महा०—(उन्मत्त दौड़कर वृक्ष से लिपट जाते हैं)

समाज— (बंगला सुर)........देखो प्राण गौरा राय

ब्रज वने विरहिणी, राधा भावे कृष्ण विरहिणी।
कृष्ण विरहिणी उन्मादिनी प्राण गौरा राय-देखो०।।

महा—दादरा शिवरंजनी-दादरा+केहरवा

दरस कियो मेरो कृष्ण, धन्य हो तुम धन्य हो।
दरस कियो, परस कियो, सरस कियो अपनो हियो
धन्य हो तुम धन्य हो।।
सुने तुमने प्यारे बैन, सुधा सने, सुख के दैन।
लखे तुमने प्यारे नैन, चितवन सरस, करुणा ऐन
धन्य हो तुम धन्य हो।।

(अरे धन्य वृक्ष!)

केहरवा

कहौ तो तुमने कहा सुन्यो,
लियो मेरा नाम कहा तुमने सुन्यो,
राधा राधा राधा नाम तुमने सुन्यो।
दादरा (तब तो)
भूले नहीं हैं नाम लियो, अभागिनी कूँ याद कियो।
नाम लियो मेरो नाम लियो, राधा राधा राधा नाम लियो।।
मैं न सुने तुम सुने, धन्य हो तुम धन्य हो।
(परन्तु कहूँ वे रोय तो नहीं रहे हे?)

दादरा

कहो तो तुमने कहा देख्यो, नाम लियो जब कहा देख्यो।
राधा राधा राधा नाम लियो, नाम लियो जब कहा देख्यो

आँखि कहा वे गीली देखीं, कपोलन पै मोती देखी।
कहा प्यारे रोते देखे, मेरे लिये रोते देखे।।
हाय! कैसे धीर धरूँ, कहा करूँ कहाँ मरूँ।
तुमकूँ सदा दुख ही दियो, सुख कभु नहीं दुख दियो।।

केहरवा

भूलि जाओ ऽ ऽ ऽ भूलि जाओ।
लैओ न नाम राधा, अपराधिनी राधा।।

दादरा

दुक्ख अपनो देओ मोहीं, माँगौं नित 'प्रेम' यही।
सुख सो नाम मेरे रहौ भूलि राधा सुख सों रहो
(धन्य तुम धन्य हो)
(वृक्ष से लिपट रोने लगते-संगीजन सम्हारते)

समाज—

कृष्ण विरहिणी उन्मादिनी प्राण गौरा राय देखो।
राधा भावे कृष्ण विरहिणी प्राण गौर राय देखो।।
ब्रजवने विरहिणी प्राण०००

संगीजन—(कीर्तन करके महाप्रभु को सचेत करते हैं)

कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण हे ऽऽऽ कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।

महा०—(सचेत हो नेत्र खोलते हैं)

संगी०—हरि बोल हरि बोल हरि बोल।

(कीर्तन। आरती। विश्राम)

हरि ॐ तत्सदिति वृन्दावन आगमन लीला

❖

ग्रन्थ—परिशिष्ट

श्री वृन्दावन-त्याग से तिरोभाव पर्यन्त का अत्यन्त संक्षिप्त विवरण

(१) पठान-वैष्णव :—श्रीवृन्दावन में महाप्रभु दिव्योन्माद की स्थिति में रहा करते थे—प्राय: यमुना में कूद पड़ते। संगीजनों को उनकी सुरक्षा की बड़ी चिन्ता बनी रहती। इसलिए उन्होंने बड़ी युक्ति पूर्वक उनके पुरी लौट चलने के लिये सम्मत कर लिया। जब वृन्दावन से चलकर महावन पहुँचे तो गायें चराते हुए ग्वाले की वंशी-ध्वनि को सुन मूर्च्छित होकर गिर पड़े। संयोगवश दस पठान घुड़सवार अपने सरदार बिजली खाँ और गुरु मौलवी के साथ उधर आ निकले। उन्होंने यह समझा कि एक युवक संन्यासी को लूटने के लिए इन लोगों ने कुछ खिलाकर बेहोश कर लिया है। संगीजनों को बाँध लिया। मार डालना चाहा। इतने में महाप्रभु हुँकार करते हुए उठ बैठे और 'हरि बोल' कीर्तन करते नृत्य करने लगे। तब पठानों का भ्रम-भूल दूर हुआ। उन्होंने क्षमा माँगी। मौलवी की महाप्रभु से कुछ धर्म-चर्चा हुई। वे सब महाप्रभु के शरणागत हो गये और कृष्ण कीर्त्तन करने लगे। प्रभु ने सरदार बिजली खाँ का नाम 'रामदास' रखा। ये 'पठान-वैष्णव' के नाम से प्रसिद्ध हुए और इन्होंने महाप्रभु का बड़ा प्रचार किया।

(चै० च० २।१८।२७)

(२) प्रयाग में श्रीरूप का मिलन एवं रूप को शिक्षा :— महाप्रभु यात्रा करते-करते प्रयाग जा पहुँचे। कुम्भ का अवसर था। अपार जन-समुदाय एकत्रित था। प्रभु के मोहन रूप, मंगल नाम-कीर्त्तन, मधुर नृत्य एवं प्रेमावेश ने हजारों को कृष्ण-प्रेम में मतवाला बना दिया। वहीं श्रीरूप भी आ मिले। श्रीरूप-सनातन के महाप्रभु से प्रथम मिलन पृ० २६९ में लिखा जा चुका है। तब ही दोनों भाइयों ने राज-काज त्याग कर देने का निश्चय कर लिया था। इसलिए अपनी धन-सम्पत्ति का यथोचित बँटवारा करके श्रीरूप अनुज अनुपम को लेकर घर से निकल गये। वे ही दोनों यहाँ प्रयाग में महाप्रभु से आ मिले। महाप्रभु ने उनको बड़े आदर से अपने पास दस दिन तक रखा और श्रीरूप को परम अधिकारी समझ कृष्ण-भक्ति-रस के समस्त तत्त्वों की शिक्षा सूत्र रूप में प्रदान की। यही शिक्षा दुबारा पुरी में आगे मिलने पर भी दी है। इन्हीं के आधार पर श्रीरूप ने सुप्रसिद्ध 'भक्ति रसामृत सिन्धु' एवं 'उज्ज्वल नीलमणि' ग्रन्थरत्न द्वय की रचना की। श्रीरूप महाप्रभु के साथ जाना चाहते थे परन्तु उन्होंने आदेश दिया कि "अभी तुम वृन्दावन जाकर रहो। पीछे पुरी आकर

मिलना"। ऐसा कह कर अपना वरद हस्त उनके शीश पर पधरा कर उन्हें बिदा कर दिया।

(३) अड़ैल (प्रयाग) में श्रीवल्लभाचार्य मिलन :—श्रीमन्महाप्रभु के प्रयाग-आगमन का समाचार त्रिवेणी-पार अड़ैल गाम में श्रीवल्लभाचार्य को मिला। वे प्रयाग आकर महाप्रभु को नौका द्वारा अपने घर ले गये। श्रद्धा भक्तिपूर्वक धूप दीपादि से उनका पूजन किया। नैवेद्य अर्पण किया। सत्संग का लाभ उठाया और सायंकाल पुनः प्रयाग पहुँच गये।

(चै० च० २।१९।१२३-१४३)

(४) काशी में श्रीसनातन मिलन एवं सनातन-शिक्षा :—श्रीरूप तो घर से निकल गये पर श्रीसनातन को पीछे से बादशाह ने कैद कर लिया। किन्तु वे किसी उपाय से निकल भागे और पैदल चलते हुए बड़े-बड़े बाधा-विघ्नों को पार करके काशी पहुँचे जीर्ण काया, दाड़ी-केश बढ़े हुए। कम्बल ओढ़े! एक दीन दरवेश जैसा बैठा था महाप्रभु के द्वार पर! कौन? गौड़ देश के बादशाह का वजीर! महाप्रभु ने अन्दर बुलवाया और हृदय से लगा लिया! क्षौराद्रि कर्म करवाये। कटि वस्त्र पहनाया और दो महीना अपने समीप रखकर कृष्ण भक्ति- तत्त्व-सिद्धान्त में पारंगत कर दिया। महाप्रभु की वही शिक्षा 'सनातन-शिक्षा' के नाम से प्रसिद्ध है। उसी के आधार पर श्रीसनातन ने श्रीबृहद्भागवत, श्रीबृहद् वैष्णव तोषिणी, आदि ग्रन्थों की रचना की। वे भी महाप्रभु के संग पुरी जाना चाहते थे पर प्रभु ने श्रीरूप की भाँति उनको भी यही आदेश दिया—"तुम वृन्दावन जाकर रहो। चार कार्यों का भार मैं तुम्हारे ऊपर सौंपता हूँ:—(१) ब्रज के लुप्त तीर्थस्थलियों का उद्धार (२) शुद्ध भक्ति सिद्धान्त का प्रचार (३) श्रीकृष्ण-विग्रह प्रकट करना (४) वैष्णव स्मृति ग्रन्थ द्वारा वैष्णव-सदाचार का प्रचार करना। ऐसा आदेश कर अपना वरद हस्त श्रीसनातन के मस्तक पर रख उनको भी बिदा किया।

(५) श्रीप्रकाशानन्द का उद्धार :—श्रीवृन्दावन जाते समय जब महाप्रभु काशी आये थे तो भक्तों के आग्रह करने पर भी संन्यासी महामंडलेश्वर स्वामी प्रकाशानन्द से मिले बिना वृन्दावन चले गये थे। (पूरा प्रसंग पृ० ३३९ पर)। परन्तु अब के काशी आने पर भक्तों का आग्रह टाल न सके। भक्तों ने श्रीप्रकाशानन्द की अध्यक्षता में संन्यासियों की एक विराट् सभा की आयोजन की। उसमें महाप्रभु भी पधारे।

महाप्रभु ने सभा में प्रवेश करते ही हाथ जोड़ सब को प्रणाम किया। पैर धोते की जगह पर पैर धोये और वहीं पर बैठ गये!! यह देख स्वयं अध्यक्ष

महोदय श्रीप्रकाशानन्द दौड़कर आये और महाप्रभु का हाथ पकड़ ले जाकर सादर अपने समीप बैठाया। महाप्रभु की इस निरभिमानता पर सब चकित-विस्मित थे। वार्तालाप आरम्भ हुआ।

श्रीप्रकाशानन्द :—आप संन्यासी होकर संन्यासी का धर्म-वेदान्त-पाठ, ध्यानादि छोड़ कर भावुकों की भाँति क्यों नाचते गाते हैं? महाप्रभु :—"गुरु ने मुझे 'मूर्ख' समझ 'वेदान्त का अधिकारी' नहीं माना और कहा कि कलियुग में तो "हरेर्नाम हरेर्नाम हरेतीमैव केवलम् ही सर्वसाधन सार है। कलि में नाम के बिना अन्यथा गति ही नहीं है।" तो मैं गुरु के आज्ञानुसार कृष्ण नाम जपने लगा। जपते-जपते मेरी प्रकृति ही बदल गयी। मैं गाने, नाचने, हँसने, रोने लगा। मैंने भयभीत हो गुरु से पूछा तो उन्होंने कहा कि तुम्हारा मंत्र सिद्ध हो गया है। तुमको कृष्ण-प्रेम प्राप्त हो गया है। इस प्रेमानन्द सिन्धु के आगे ब्रह्मानन्द एक बिन्दु के समान है। तो मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया और मैं नित्य निरन्तर कृष्ण नाम-जप करने लगा। मैं जो नाचता-गाता हूँ सो अपनी इच्छा से नहीं। यह नाम ही मुझे नचाता-गवाता हँसाता, रुलाता है।" महाप्रभु के दीन भाव से परमार्थ-कथन को सुनकर श्रीप्रकाशानन्द विमुग्ध हो गये परन्तु विद्या-बुद्धि का अहंकार बना रहा। अत: बोले "यह तो ठीक है। परन्तु आप वेदान्त क्यों नहीं पढ़ते?" महाप्रभु ने जो उत्तर दिया उसका सारांश यह है कि (१) भगवान् वेद व्यास ने वेद का अर्थ वेदान्त सूत्र में स्पष्ट किया है और श्रीमद्भागवत में उसी अर्थ की सविस्तार सरल व्याख्या की है। श्रीभागवत स्वयं व्यास कृत वेदान्त सूत्र का सरल भाष्य है। उसके ऊपर अन्य भाष्य की आवश्यकता नहीं (२) श्रीपाद शंकराचार्य ने अभिधावृत्ति का मुख्यार्थ त्याग कर लक्षरता वृत्ति द्वारा गौणार्थ प्रतिपादन किया है। (३) वेदान्त का अद्वय ब्रह्मतत्त्व निर्गुण निराकार नहीं, सगुण साकार है और वह स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उनकी अंग कान्ति ही निराकार ब्रह्म है। अतएव साकार ब्रह्म श्रीकृष्ण ही निराकार ब्रह्म ज्योति के आश्रय हैं—"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम्" (गीता) (४) भगवान् के श्रीविग्रह, धाम, परिकरादि प्राकृत सत्त्व के विकार मायिक नहीं, अप्राकृत शुद्ध सत्त्वात्मक हैं। (५) श्रीकृष्ण भक्ति ही परम साधन एवं परम साध्य है पंचम पुरुषार्थ है। इसकी तुलना में मोक्ष का ब्रह्मानन्द तृण के समान है :—

पंचम पुरुषार्थ प्रेमानन्दामृत सिन्धु।
ब्रह्मादि आनन्द, जार नहे एक बिन्दु।।

(चै० च० आ० ७।८४-८५)

वेदान्त की इस अपूर्व नवीन व्याख्या से श्रीप्रकाशानन्द का ज्ञान-चूर-चूर हो गया! विद्या-बुद्धि गलित हो गयी पर हृदय द्रवित होना आवश्यक था—हृदय-विजय ही वास्तविक विजय है।

सो एक दिन काशी में भगवान् बिन्दु माधव के मन्दिर में जब श्रीगौर सुन्दर संकीर्तन कर रहे थे तो श्रीप्रकाशानन्द भी अपने संन्यासी शिष्य मंडल सहित वहाँ पहुँच गये। भुवन मोहन गौर सुन्दर के अद्भुत भाव-विभावित कनकोज्ज्वल श्रीविग्रह एवं संकीर्तन नृत्य-माधुरी के दर्शन करते-करते वे आत्म हारा हो गये। लोक-लाज और मान-मर्यादा को तिलांजलि दे दी। और दोनों भुजाएँ उठाकर नृत्य करने लगे!! कौन? संन्यासी राज महामंडलेश्वर! पर प्रकाशानन्द नहीं 'प्रबोधानन्द!! महाप्रभु की कृपा-सृष्टि के कारण भक्ति पीयूषधारा ने 'प्रकाश' (ज्ञान) के बोध को प्रेम के 'प्रबोध' में परिणत कर दिया था! अब वे महाप्रभु के श्रीचरणों में सर्वतोभावेन समर्पित हो चुके थे।

उन्होंने भी श्रीमहाप्रभु के संग चलने का आग्रह किया पर उनको भी श्रीरूप-सनातन को भाँति श्रीकृष्ण-प्रेम धाम वृन्दावन जाने का आदेश हुआ। उनके विरचित दो ग्रन्थ सुप्रसिद्ध हैं। (१) श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम् (१४३ श्लोक) एवं (२) श्रीवृन्दावन महिमामृत शतकम् (सौ शतक में से १७ ही उपलब्ध हैं)। उन्होंने जो कुछ अपने आँखों से प्रत्यक्ष किया, अपनी वेदान्त-निष्णात् बुद्धि कसौटी पर कसा और तब अपने हृदय-सिंहासन पर जिनको परमाराध्य देव के रूप में प्रतिष्ठित किया। उस स्वानुभव के उद्गारों से यह ग्रन्थ ओत-प्रोत है। कुछ उदाहरण संक्षिप्त रूप में :—

"चैतन्याकृति वाले ब्रजपति कुमार को नमस्कार है, जिनकी उदारता परम अद्भुत है हद से बेहद है, जो अपनी उन्मादक प्रेम रस माधुरी की आप आस्वादन करने तथा औरों को प्रदान करने के लिए नवद्वीप धाम में अवतीर्ण हुए हैं।" (मंगला० श्लोक १) "वे मीन, कूर्म आदि की तरह अंशकलावतार नहीं, पूर्णावतार हैं" (१४२) "उनके साथ शंकर, ब्रह्मा, नारद, लक्ष्मी, बलराम, यदुवंशी परिकर और ब्रज के गोप-गोपी भी अवतीर्ण हुए हैं" (५२) "वह निरंकुश कृपा, वह अद्भुत वैभव वह वत्सलता शौरि (कृष्ण) रूप में नहीं जो गौर रूप में है। (६७) "प्रेम नामक पंचम पुरुषार्थ को, नाम की सर्वोपरि महिमा को, वृन्दावन की परम माधुरी को तथा माधुर्य-रस की पराकाष्ठा श्रीराधा को कौन जानता था? ये सब चैतन्यदेव ने ही करुणा करके प्रकट किया है।" (१२) "गौरचन्द्र न तो पात्रापात्र की, न देय-अदेय की, न अपने पराये की, किसी बात की भी छान-बीन नहीं करते। वे तो श्रवण, दर्शन,

स्पर्शन, नमन, स्मरण, मात्र से दुर्लभ प्रेम भक्ति रस प्रदान कर देते हैं।" (७७; ११२) अतएव "हे साधुजनों! मैं दाँतों में तिनका दाबकर पैरों में पड़कर, सैकड़ों बार हा-हा खाकर प्रार्थना करता हूँ, कि सब कुछ छोड़कर गौर चरणों से अनुराग करो" (१२०) "जैसे-जैसे गौरचन्द्र के चरणों की भक्ति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे हृदय में अकस्मात् 'राधापदाम्भोज' की 'सुधा राशि' हिलोरें लेने लगती हैं" (८९) (प्र०-जी! आपके इन वाक्यो के लिए शास्त्र-प्रमाण कहाँ हैं? तो स्वानुभव जन्य प्रगाढ़ निष्ठा का उद्घोष करते हैं-)

"यत्तद् बदन्तु शास्त्राणी,
यत्तद् व्याख्यान्तु तार्किका"

जीवनं मम चैतन्य पदाम्भोज सुधैब तु। (१०४) (कहने दो जो चाहे शास्त्र कहे! करने दो जो चाहे व्याख्या तार्किक करें। मेरे तो जीवन श्रीचैतन्य चरण कमलों की सुधा राशि ही है) यह वचन किनके हैं? उनके जो भारत के संन्यासी सम्प्रदाय के मुकुटमणि महामंडलेश्वर हैं श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती पाद के! वक्ता के गौरव से वक्तव्य की गुरुता सौगुनी बढ़ जाती है।' अस्तु।

जैसे "श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्" में श्रीकृष्ण चैतन्यदेव का चरमोत्कर्ष गान किया है वैसे ही "श्रीवृन्दावन महिमामृतशतकम्" में श्रीवृन्दावन का परमोत्कर्ष वर्णन किया है। वृन्दावन महिमा पर इसकी जोड़ का दूसरा ग्रन्थ 'न भूतो न भविष्यति'। इन्होंने अपना शेष जीवन वृन्दावन में व्यतीत किया। इनकी समाधि कालिय देह के समीप अवस्थित है।

(६) पुनः नीलाचल में आगमनः— श्रीरूप सनातन को वृन्दावन भेजकर और श्रीप्रकाशानन्द का उद्धार करके महाप्रभु झारखंड के वन मार्ग से नीलाचल पहुँच गये। इस समय महाप्रभु की आयु तीस वर्ष की है—२४ वें वर्ष में संन्यास और छः वर्ष भारत भ्रमण अब आगे १८ वर्ष अखण्ड नीलाचल-निवास। इस अवधि के चरित के लिए तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ चाहिये। हम केवल कुछ थोड़े-से मुख्य प्रसंगों का संक्षिप्त परिचय ही यहाँ दे सकते हैं।

भक्त कुत्ता :—महाप्रभु के पुरी लौट आने का समाचार जैसे ही नवद्वीप पहुँचा कि वहाँ के भक्त-परिकर शिवानन्द की देख-रेख में पुरी को चल पड़े। शिवानन्द के साथ एक भक्त कुत्ता भी जा रहा था। एक दिन मार्ग में उनका नौकर उस कुत्ते को रात में प्रसाद देना भूल गया तो कुत्ता गायब! बहुत खोजने पर भी न मिला। पर जब भक्त मंडली जगन्नाथ में महाप्रभु के समीप पहुँची तो देखा कि वह भाग्यशाली कुत्ता प्रभु के चरणों के समीप बैठा है और

प्रभु अपने हाथों से नारियल का गिरि–प्रसाद तोड़–तोड़ कर उसके आगे डाल रहे हैं और हँसते हुए कह रहे हैं "हरे कृष्ण बोलो", और खाता और हरे कृष्ण बोलता जा रहा था। भक्त सब चकित–पुलकित खड़े देखने लगे। शिवानन्द ने उसको साक्षात् प्रणाम करके अपने अपराध की क्षमा माँगी। इसके बाद वह कुत्ता फिर कहीं नहीं दिखायी दिया। महाप्रभु के सुदुर्लभ पदों के समीप बैठकर, उनका सुनाया हुआ महामंत्र "हरे कृष्ण" गाकर वह उनके परम पद को प्राप्त हो गया!!

(७) पुरीदास कवि कर्णपूर वन गया :— शिवानन्द सेन की पत्नी गर्भकाल में महाप्रभु ने कहा था कि जब तुम्हारे पुत्र हो तो उसका नाम पुरीदास रखना। वह पुरीदास अब पाँच वर्ष का हो गया था। इस बार वे उसे भी पुरी ले आये थे। उसको उन्होंने महाप्रभु के चरणों पर डालकर कहा 'प्रभो! अपने पुरीदास पर कृपा करें। 'प्रभु ने अपने पैर का अंगूठा' उसके मुँह में दे दिया। वह बड़े प्रेम से चूसने लगा। प्रभु प्रसन्न हो बोले 'पुरीदास! कृष्ण कहो।' पुरीदास चुप। महाप्रभु ने बार–बार कहा पर वह मौन बना रहा। महाप्रभु आश्चर्य और दु:ख से बोले—मैंने पशुओं तक से हरि नाम कहलाया पर आज इस बालक से न कहला सका?" पास ही बैठे स्वरूप दामोदर ने कहा "आप के मुख से निकले हुये कृष्ण' नाम को बालक ने इष्ट–मंत्र मान लिया है। इसीलिये वह मन ही मन जप रहा है!" प्रभु संतुष्ट होकर बोले "पुरीदास! कृष्ण नाम नहीं तो और कुछ बोलो"। तो आदि कवि वाल्मीकि की भाँति उस पाँच वर्ष के बालक के मुँह से यह नवीन श्लोक निकल पड़ा :—

श्रवसोः कुवलयमक्षणोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणि दाम।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति।।

(जो वृन्दावन की रमणियों के कानों के नीलकमल, आँखों के लिए अंजन, वक्ष:स्थल के लिए इन्द्रनीलमणिमय हार एवं समस्त भूषण रूप हैं—श्रीहरि की जय हो) श्रोता सब विस्मित एवं विमुग्ध थे एक बालक की अपूर्व नवीन रचना पर। निस्सन्देह श्रीमहाप्रभु ने अपना अंगुष्ट पानकरा कर उसमें अद्भुत कवित्व- शक्ति का संचार कर दिया था।

महाप्रभु ने तब उसका नाम 'कवि कर्णपूर' रख दिया क्योंकि उसने ब्रजांगनाओं के कर्ण–भूषण से अपना श्लोक प्रारम्भ किया था। इनके द्वारा रचित "श्रीचैतन्यचन्द्रोदय (नाटक) एवं "श्रीचैतन्यचरितामृत" (महाकाव्य) गौर लीला के प्रामाणिक ग्रन्थ है। इनके द्वारा रचित "श्रीआनन्द वृन्दावन चम्पू" एवं "अलंकार—कौस्तुभ" भी विद्वानों में प्रसिद्ध हैं।

(८) नीलाचल में श्रीरूप का आगमन :— श्रीवृन्दावन जाकर कुछ ही समय के बाद श्रीरूप और अनुपम नीलाचल के लिए गौड़ देश होकर चले। गौड़ देश में अनुपम का देहान्त हो गया। सो श्रीरूप अकेले ही पुरी को चले। मार्ग में एक रात्रि श्रीसत्यभामा ने स्वप्न में आदेश दिया कि "तुमने श्रीकृष्ण की ब्रजलीला और द्वारिका लीला को एक ही नाटक में लिखने का संकल्प किया है, ऐसा नहीं करना। मेरा सम्बन्ध तो द्वारिका लीला से है। उसका नाटक अलग लिखना।" यही आदेश महाप्रभु ने भी पुरी पहुँचने पर दिया कि "तुम जो नाटक लिख रहे हो उसमें श्रीकृष्ण को ब्रज से बाहर मत करना 'श्रीकृष्ण ब्रज छोड़ बाहर नहीं जाते हैं। इसी कारण उन्होंने दो पृथक् नाटक लिखे—(१) "विदग्ध माधव:" में ब्रजलीला और (२) "ललिता माधव" में द्वारिका लीला। इनका अधिकांश भाग पुरी में ही लिखा था और महाप्रभु ने श्रवण करके सराहना भी की थी।

एक बार रथ यात्रा के समय श्रीजगन्नाथ जी के रथ के सामने नृत्य करते हुए महाप्रभु के मुख से 'काव्य प्रकाश' ग्रन्थ का एक श्लोक निकला जिसे सुन श्रीरूप ने उसी के भाव के अनुरूप एक नवीन श्लोक बना छिपा रखा था। अकस्मात् वह महाप्रभु के हाथ पड़ गया उस श्लोक में श्रीराधा कह रही है—हे सखी! मेरे अति प्रिय कृष्ण मुझे आज कुरुक्षेत्र में मिले हैं। मैं वही राधा हूँ। ये वही कृष्ण हैं। वही हम दोनों का वही सुखकर मिलन है। तथापि (वह वृन्दावन का सा सुख नहीं है, तभी तो) मेरा मन क्रीड़ाशील इन कृष्ण की मुरली के पंचम सुर से आनन्द-प्लावित कालिन्दी कूल स्थित वन के लिए लालायित हो रहा है।" यह है देश का प्रभाव! वृन्दावन की महिमा। यह श्लोक पढ़कर महाप्रभु ने श्रीरूप की पीठ ठोंक कर कहा "अहा! तुमने मेरे मनोभाव को कैसे जान लिया?" स्वरूप ने कहा "आपने जो उनमें शक्ति-संचार कर दिया है। ये आप के परम कृपापात्र अन्तरंग जन हैं।" महाप्रभु ने श्रीरूप को दस मास अपने समीप रखा और रसशास्त्र में पारंगत कर दिया तथा आदेश दिया कि "अब तुम वृन्दावन जाओ। वहाँ रह करके रस-शास्त्र का निरूपण करना, कृष्ण-भक्ति का प्रचार करना और वृन्दावन के लुप्त तीर्थों का उद्धार करना।"

(९) नीलाचल में श्रीसनातन का आगमन :— श्रीसनातन गोस्वामी भी वृन्दावन में कुछ समय रहने के बाद नीलाचल को चल पड़े। झारखंड का विकट वन मार्ग! कष्ट, उपवास, जल-दोषादि के कारण उनके शरीर में खुजली हो गयी—फुँसिया निकल आयीं, पीप बहने लगा। मन में संकल्प कर

लिया कि इस शरीर को लेकर न श्रीजगन्नाथ और न श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन को जाऊँगा। इसकी तो रथ–यात्रा के समय रथ के पहिये के नीचे डालकर प्राण त्याग दूँगा।

यह संकल्प ले करके पुरी पहुँचे और श्रीहरिदास की कुटी पर जा ठहरे। महाप्रभु समुद्र–स्नान करके वहाँ नित्य आया करते। सनातन को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उनके पीछे हटने और अपने को भरसक बचाने पर भी महाप्रभु ने बल–पूर्वक उनको विशाल भुजाओ में भर कर हृदय से चिपका लिया। अब तो यह क्रम नितप्रति चलने लगा। खुजली का मवाद प्रभु के सारे शरीर में लग जाता। वह नित्य का आलिंगन सनातन को असह्य हो उठा और वे किसी प्रकार भी प्राण त्याग देने की बात सोचने लगे। तो सर्वज्ञ प्रभु एक दिन बोल उठे "सनातन देह–त्याग से कृष्ण–प्राप्ति नहीं होती है—वह तो भजन से होती है! और तुमने तो मुझे आत्म–समर्पण किया है। तुम्हारी देह तो मेरा निज धन है। दूसरे का धन नाश करने का तुम को क्या अधिकार है?" सनातन का सिर नीचा हो गया और उन्होंने आत्म–हत्या का संकल्प त्याग दिया।

परन्तु महाप्रभु द्वारा नित्य–आलिंगन वैसा ही चलता रहा अन्त में अत्यन्त व्यथित होकर श्रीसनातन बोल उठे, "प्रभो आपको तो मेरे इस सड़े शरीर से घृणा नहीं होती पर मुझे तो अपराध लगता है और मेरा सर्वनाश हो जाता है। इसलिए आप आज्ञा दें तो मैं वृन्दावन लौट जाऊँ।" महाप्रभु बोले "सनातन। दु:ख क्यों मानते हो? बालक का मैला माता को जैसे चन्दन के समान लगता है वैसे ही तुम्हारा आलिंगन करने में मुझे चन्दन–कस्तूरी की गन्ध आती है। तुम निश्चिन्त रहो—तुम्हें कोई अपराध नहीं लगता है।" ऐसा कहते–कहते सर्व समर्थ प्रभु ने सनातन को आलिंगन किया और आलिंगन के साथ ही न खुजली, न पीप! काया कंचन–सी दमकने लगी!!

दोल–यात्रा तक अपने समीप रखकर जो साधन–साध्य–सम्बन्धी शिक्षा काशी में प्रदान की थी उसी की विस्तृत आलोचना करके भक्ति–शास्त्र में निष्णात करके तब महाप्रभु ने सनातन को वृन्दावन के लिए बिदा किया!!

(१०) छोटे हरिदास को दण्ड :— छोटे हरिदास महाप्रभु के एक प्रिय कीर्तनीया थे। एक बार 'भगवान् आचार्य' ने महाप्रभु को भिक्षा कराने के लिए छोटे हरिदास से एक वृद्धा वैष्णणी माधवी देवी के पास से महीन चाँवल मँगवाये। महाप्रभु ने प्रसाद पाते समय पूछा 'इतने बढ़िया चाँवल कहाँ से लाये।" जब उनको सब वृत्तान्त मालूम हुआ तो उन्होंने रुष्ट होकर आदेश दिया "आज से हरिदास मेरे पास न आने पावे।" हरिदास पर मानो वज्रपास हो

गया! वह अन्न-जल छोड़कर पड़ गया। तीन दिन पीछे स्वरूप दामोदर ने साहस करके प्रभु से इस दण्ड का कारण जानना चाहा तो वे बोले "जो वैरागी होकर स्त्री से बातचीत करता हैं मैं उसका मुख देख नहीं सकता (चै० च० अ० २-११७-११८)। कुछ दिन बाद भक्तों ने मिल करके फिर क्षमा की याचना की पर प्रभु का क्रोध शान्त न हुआ। वे जगन्नाथ छोड़ अलालनाथ चले जाने को तैयार हो गये। अब कुछ और कहने का साहस भक्तों को नहीं हुआ। उन्होंने हरिदास को ही समझा- बुझाकर उसका अनशन छुड़वाया। अब वह छिप करके ही महाप्रभु के दर्शन करता, सामने कभी नहीं पड़ता। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया पर प्रभु प्रसन्न न हुए। तब तो हताश होकर हरिदास प्रयाग चला गया और महाप्रभु के चरण-सेवा का संकल्प करके पावन त्रिवेणी संगम में द्वेह-विसर्जन कर दिया! परिणाम यह हुआ कि समस्त भक्तों के मन में महाभय समा गया और उन्होंने स्वप्न में भी स्त्री-सम्भाषण करना छोड़ दिया।

यह माधवी देवी कौन थीं? श्रीमन्महाप्रभु के भक्त-परिकर में केवल साढ़े तीन व्यक्ति ही श्रीराधिका जी के परिकर माने जाते हैं—(१) स्वरूप दामोदर (२) श्रीरामानन्दराय (३) शिखी माहिती और 1.2 आधी उनको बहन माधवी देवी—एक वृद्धा तपस्विनी वैष्णवी! ऐसो धन्या मान्या माता से सम्भाषण का यह दण्ड!! तो फिर....!! महाप्रभु का आदर्श उनके साथ ही लोप हो गवा!!

(११) ठाकुर श्रीहरिदास का निर्याण :— श्रीमन्महाप्रभु के परिकरों में श्रीहरिदास का एक विशिष्ट स्थान है। यह यवन कुलाम्पन्न होने पर भी परम भागवत थे। इन्हें ब्रह्म हरिदास एवं ठाकुर हरिदास के नाम से भी सादर स्मरण किया जाता है प्रह्लाद जी की भाँति सुदृढ़ नामनिष्ठ थे। प्रह्लाद जी ने नाम के पीछे पिता के हाथों अत्याचार सहे और हरिदास जी ने यवनराज के हाथों कोड़ों की मार एक करोड़ नाम-कीर्त्तन न छोड़ा। एक मास में एक करोड़ नाम-कीर्त्तन का इनका नियम था। इसी कारण प्रायः सवा तीन लाख नाम दिन रात में पूरा करके तब मुँह में कुछ देते थे। दुष्टों ने इनको भ्रष्ट करने के लिए वेश्या भेजी। इन्होंने नाम-कीर्त्तन न सुना कर उसे वैष्णवी बना दी और अपनी भजन-गुफा उसे सौंप करके शान्तिपुर में श्रीअद्वैताचार्य के समीप चले गये। वहाँ से नवद्वीप आकर महाप्रभु के भक्त-परिकरों में सम्मिलित हो गये। नदिया में नाम-प्रचार में श्रीनिताई प्रभु के साथ इनका विशेष योगदान रहा महाप्रभु के संन्यास के कुछ समय बाद ये भी श्रीजगन्नाथ चले गये। पर अपने को म्लेच्छ यवनमान कर मन्दिर में तो क्या मन्दिर के मार्ग पर भी नहीं जाते। दूर एक उद्यान में रहा करते और मन्दिर के शिखर के दर्शन से ही अपने को

कृतार्थ मानते थे। इसी आश्चर्य दीनता के कारण दीनबन्धु महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। महाप्रभु स्वयं इनकी कुटी पर नित्य प्रति दर्शन दे जाया करते थे।

अब हरिदास जी बहुत वृद्ध हो चले थे। तब भी नित्य सवा तीन लाख नाम-कीर्त्तन का नियम अटूट रहा। लेटे-लेटे भी नाम-संख्या पूरी कर लेते। एक दिन महाप्रभु ने पूछा "हरिदास! स्वस्थ तो हो तो बोले "प्रभो! शरीर तो स्वस्थ है पर मन स्वस्थ नहीं क्योंकि वृद्धावस्था के कारण नाम-संख्या पूरी करने में कठिनता होती है।" महाप्रभु बोले "तुम तो सिद्ध हो। केवल लोक-शिक्षा के लिए तुम इतना नाम-कीर्त्तन करते हो। अब वृद्ध हो गये हो, तो नाम-संख्या कुछ कम कर दो।" हरिदास जी ने प्रार्थना की "नाथ! अब तो यही अभिलाषा है कि आप के चरण-कमल मेरे हृदय के ऊपर हो! आप का मुख कमल मेरी आँखों के सामने हो, और आपका मधुर मंगल नाम मुख से लेता हुआ मेरे प्राण निकल जायँ बस यही वर दे दो।" महाप्रभु रो पड़े और हरिदास से लिपट गये!!

भक्तवाच्छा कल्पतरु प्रभु ने हरिदास की मनोवाच्छा पूरी की। एक दिन भक्त मंडली के मध्य में विराजे महाप्रभु के युगल चरणों को अपने हृदय पर पधराकर, उनके मोहन चन्द्र वदन को अपलक देखते हुए। मुख से "हा गौरांग" कह कर हरिदास उनके धाम को प्राप्त हो गये। महाप्रभु ने अपने प्यारे भक्त की देह को गोद में उठा लिया और उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे तथा आँखों से हर्ष शोक की गंगा-यमुना धारा से अभिषेक करने लगे। पश्चात् हरिदास के शरीर को समुद्र ले गये—स्नान कराया और बोले "आज से समुद्र महातीर्थ हो गया।" समुद्र-तट पर गढ्ढा खोदा गया और उस पावन पार्थिव देह को उसमें शयन कराया गया। स्वयं महाप्रभु ने अपने हाथों से बालुका डाली और भक्तों के साथ कीर्त्तन नृत्य करते हुए समाधि की प्रदक्षिणा की। (उस समाधि स्थल पर वर्तमान में एक विशाल दर्शनीय मन्दिर अब-स्थित है)

इसके बाद महाप्रभु भक्तों सहित सिंह द्वार आये। वहाँ प्रसाद विक्रेताओं के आगे अपना बहिर्बास फैलाकर बोले "मेरे हरिदास के महोत्सव के लिये मुझे भिक्षा दो" देखते-देखते प्रसाद की पचासों डलियाँ आ गयीं। राजा ने और भक्तों ने भी सामग्री का पहाड़ खड़ा कर दिया। विराट महोत्सव हुआ। महाप्रभु स्वयं अपने हाथों से परोसने लगे। अन्त में महाप्रभु एवं समस्त भक्तजनों ने मिल करके महाप्रसाद पाया। भोजन के उपरान्त महाप्रभु ने दोनों भुजाएँ उठाकर मधुर कीर्तन आरम्भ किया।

जय जय जय जय हरिदास।
नामेर महिमा जैइ कोरिला प्रकाश।।
(चै० च० अ० २।११।९८)

(१२) श्रीरघुनाथदास पर कृपा :— श्रीरघुनाथ का महाप्रभु से प्रथम मिलन का पूरा प्रसंग पृ० २८५ में लिखा जा चुका है। उससे आगे का चरित अति संक्षेप में सुनिये। अब उनके प्राण गृह त्याग कर महाप्रभु के पास चले जाने के लिए तड़फड़ाने लगे। पर उन पर कड़ा पहरा रहता था। कहीं भी अकेले नहीं जा सकते थे। पहरेदार साथ रहते थे। भाग्यवश एक बार उनके अपने ही क्षेत्र के अन्तर्गत पानिहाटी ग्राम में श्रीनिताई प्रभु पधारे। तो रघुनाथ जी माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके उनके पास गये। निताई प्रभु के आदेश से रघुनाथ ने वहाँ महोत्सव किया जो 'चिउड़ा महोत्सव' के नाम से प्रसिद्ध है। पश्चात् निताइ प्रभु ने आशीर्वाद दिया कि "तुमको शीघ्र ही गौर चरण कमलों के दर्शन प्राप्त होंगे।"

इस आशीर्वाद से एक दिन रघुनाथ को घर से निकल भागने का सुयोग भी मिल गया। उन्होंने जगन्नाथ का राजमार्ग पकड़ लिये जाने के भय से छोड़कर बीहड़ वन मार्ग पकड़ा। काँटे-कंकड़, जंगली जानवर, डाकुओं की चिन्ता भय नहीं, भूख प्यास का दु:ख नहीं! विश्राम नहीं! २० दिन का मार्ग १२ दिन में पूरा कर लिया। इस बीच केवल तीन दिन ही पेट में कुछ दिया। 'हा गौरांग!' हा गौरांग पुकारते जगन्नाथपुरी पहुँच ही तो गये! कौन? अपार सम्पत्ति का एक मात्र उत्तराधिकारी सन्तान लाड़ला रघुनाथ! अब कष्ट क्लेश से जर्जर अस्थि-पंजर!! पर त्याग वैराग-अनुराग की साक्षात् मूर्ति, साष्टांग अपने चरणों पर पड़ा देख महाप्रभु ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और अपनी अश्रुधारा से रघु के तन, मन, प्राण, आत्मा-शील कर दिया।

पश्चात् रघुनाथ का हाथ स्वरूप दामोदर के हाथ में देकर कहा "मैं रघुनाथ को तुम्हें सौंप रहा हूँ। इसे अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करो।" पाँच दिन तक तो रघुनाथ ने महाप्रभु का अवशेष प्रसाद पाया! उसके बाद अयाचित वृत्ति पकड़ ली। रात्रि के समय सिहद्वार पर चुपचाप खड़े हो जाते और जो कुछ मिल जाता उससे निर्वाह करते। पर भिक्षा की आशा से खड़े रहने को वेश्यावृत्ति जैसा बुरा समझ कर अन्नक्षेत्र में कंगाल भिखारियों के बीच बैठकर खाने लगे। इसमें भी अर्थ-दोष देखकर छोड़ दिया और बाजार में फेंके हुए वासी सड़े महाप्रसाद को जल से धोकर जो कुछ मोटे दाने निकल आते उन्हें ही नमक मिला कर खा लेते। महाप्रभु प्रत्येक दिन अपने रघु की बात पूछते

और उसके वैराग से प्रसन्न होते। एक दिन तो महाप्रभु ने चुपके से जाकर रघुनाथ के पत्ते पर से ऐसे महाप्रसाद को बलपूर्वक छीन कर उसका आस्वादन किया और बोले—"मैं नित्य नाना प्रकार के प्रसाद पाता हूँ पर ऐसा दिव्य स्वाद तो किसी में नहीं पाया"!! नहीं प्रभो! पाया था पर बहुत पहले शबरी, सुदामा और विदुराइन के पदार्थों में!

एक दिन स्वरूप दामोदर के अनुरोध पर साध्य–साधन का सार महाप्रभु ने अपने रघु को बताया :—

ग्राम्य कथा ना सुनिवे ग्राम्य वार्ता ना कहिबे।
भालो ना खाइबे, भालो ना पोरिबे।।
अमानी मानद, कृष्ण नाम सदा लबे।
ब्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे कोरिबे।।

(चै० च० अ० ३।६ २३४–२३५)

(ग्राम्य कथा न सुनना, ग्राम्य बात न कहना। अच्छा न खाना। अच्छा न पहरना। आप अमानी रह कर दूसरों को मान देना। कृष्ण नाम सदा लेना और ब्रज में राधा कृष्ण की मानसी सेवा करना) इस प्रकार महाप्रभु ने बाह्य–साधन का सार कृष्ण नाम जप और अन्तरंग साधन राधा–कृष्ण की मानसी सेवा बतलायी।

महाप्रभु रघुनाथ के प्रेम–वैराग्य से बहुत प्रसन्न थे। इसलिए उन्होंने अपनी दो अमूल्य निधि के उपहार से रघुनाथ को कृतार्थ कर दिया (१) गोवर्धन शिला और (२) गुंजामाल + इनको देते हुए कहा "इस शिला को जल और तुलसी–मंजरी से नित्य सेवा करना। तुम्हें कृष्ण–प्रेम धन की प्राप्ति होगी। सोलह वर्ष तक रघुनाथ नीलाचल रहे और महाप्रभु के अन्तर्द्धान होते ही उनके विरह से उन्मत्त हो उनकी प्रदान की हुई दो दिव्य निधि को लेकर वृन्दावन चले आये। श्रीराधाकुंड को अपना स्थायी निवास बनाया। आज वहाँ उनकी भजनकुटी एवं समाधि–मन्दिर एक प्रमुख दर्शनीय स्थल है। उनके भजन–साधन के नियम पत्थर की लकीर की तरह अमिट थे। वे दिन में ५६ घड़ी भजन में लीन रहते और बाकी चार घड़ी में आहार–निद्रादि समस्त देह–कर्म पूरा कर लेते। आहार के नाम पर चौबीस घंटा में पाव भर मठा पीकर तुष्ट–पुष्ट रहते! महाप्रभु की अन्तिम गम्भीरा लीला के प्रत्यक्षदर्शी थे। उनके शिष्य कृष्णदास कविराज ने उनके मुख से सुनी घटनाओं के आधार पर ही श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य लीला सविस्तार वर्णन की है।

(१३) श्रीरघुनाथ भट्ट पर कृपा :— महाप्रभु काशी में पं० तपन मिश्र के गृह ठहरे थे। उनके ही पुत्र रत्न हैं रघुनाथ भट्ट! तब आयु ७-८ वर्ष की थी। महाप्रभु की चरण सेवा करने और उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। (देखिये पृ० ३३६ पर पूरा प्रसंग) तब से महाप्रभु के पुनः दर्शन के लिये व्याकुल रहते। पढ़-लिखकर बड़े हुए तो एक बार माता-पिता की आज्ञा लेकर जगन्नाथ पहुँचे। महाप्रभु ने उनको आदर प्रेमपूर्वक आठ कहा "रघुनाथ! काशी जाओ। विवाह करो। वृद्ध माता-पिता की सेवा करो। किसी वैष्णव से श्रीमद्भागवत पढ़ो। तब फिर यहाँ नीलाचल आना।" रघुनाथ काशी लौट गये। भागवत-अध्ययन किया चार वर्ष बाद माता-पिता का देहान्त हो गया!! तब वे नीलाचल चले गये। महाप्रभु ने प्रेमपूर्वक पुनः आठ महीना अपने पास रखा और फिर आदेश दिया, "रघुनाथ! अब तुम वृन्दावन जाओ! वहाँ रूप सनातन का संग करना। नित्य भागवत-पाठ करना और कृष्ण नाम जपना।" ये वृन्दावन पहुँचे। वहाँ नित्य सन्ध्या समय श्रीगोविन्द देव के मन्दिर में सुललित स्वर में श्रीभागवत कथा किया करते। इनके ही सेव्य निधि श्रीगोपीनाथ जी हैं जो अब जयपुर में विराजते हैं। इनके ही शिष्य राजा मानसिंह थे जिन्होंने इनकी आज्ञा से प्राचीन गोविन्ददेव का निर्माण कराया था। गौड़ीय सम्प्रदाय के छः गोस्वामियों में एक रघुनाथ भट्ट भी हैं!!

(१४) श्रीबल्लभाचार्य का महाप्रभु से पुनर्मिलन :— एक बार रथ-यात्रा से कुछ पहले श्रीबल्लभाचार्य जी पुरी पधारे! महाप्रभु की वन्दना कर उन्होंने कहा "आपका दर्शन साक्षात् भगवान् का दर्शन है। आपने कृष्ण-भक्ति और कृष्ण नाम संकीर्तन का जगत में प्रचार किया। आप के दर्शन मात्र से कृष्ण-प्रेम की प्राप्ति हो जाती हैं। यह भी आप की भगवत्ता का प्रमाण है" इत्यादि। महाप्रभु ने दीनता सहित अपने को अयोग्य बताते हुए कहा "मैं मायावादी संन्यासी हूँ। भक्ति की बात क्या जानूँ। अद्वैताचार्य और नित्यानन्द साक्षात् ईश्वर हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्दराय, स्वरूप दामोदर, हरिदास, गदाधर आदि भक्ति के एक-एक महारत्न हैं। इन सबके संग से ही मुझमें भक्ति का संचार हुआ है।" ऐसा कहकर प्रभु ने अपने को छिपाया।

एक दिन श्रीबल्लभाचार्य जी बोले "मैंने भागवत की एक टीका लिखी है। उसमें श्रीकृष्ण नाम के बहुत-से अर्थों की व्याख्या की है।" इस पर महाप्रभु बोले "श्रीकृष्णनाम के अनेक अर्थों को मैं नहीं मानता। श्रीकृष्ण— श्रीश्यामसुन्दर यशोदानन्दन हैं—केवल इतना ही जानता हूँ।" एक दिन श्रीबल्लभाचार्य जी ने अद्वैताचार्य प्रभु से पूछा—"जी प्रकृति है और कृष्ण

पति। अतएव पतिव्रता जीव किस प्रकार दूसरों के सामने पतिरूप श्रीकृष्ण का नाम उच्चस्वर से कीर्त्तन कर सकता है?' अद्वैत प्रभु ने महाप्रभु से पूछने को कहा। तब महाप्रभु ने उत्तर दिया "स्वामी की आज्ञा-पालन करना ही पतिव्रता का धर्म है। पति ने जब निरन्तर अपना नाम उच्चारण करने का आदेश दिया है तो पतिव्रता उसका कैसे उल्लंघन कर सकती है।" एक बार श्रीमद्‌भागवत की श्रीधरी टीका की भी समालोचना हुई। एक दिन श्रीबल्लभाचार्य जी ने महाप्रभु के समस्त परिकर को भोजन के लिये आमंत्रित किया। महाप्रभु ने सबसे उनको परिचय कराया। उनके तेज को देखकर श्रीबल्लभाचार्य जी बड़े चमत्कृत हुए और माला-चन्दनादि से उनका विधिवत् आदर सत्कार किया!!

(१५) श्रीगोपीनाथ पट्‌टनायक की शूली से मुक्ति :– गोपीनाथ श्रीभवानन्द के पुत्र और रामानन्दराय के छोटे भाई थे। राजा प्रताप रुद्र के एक प्रदेश के राजस्व अधिकारी थे। एक बार गोपीनाथ ने राजकोष का कुछ धन नष्ट कर दिया। इस कारण समय पर दो लाख मुद्रा का राज्यकर चुका न सके। कुछ कारणों से युवराज उनसे अप्रसन्न थे उसने इस बहाने से गोपीनाथ को चांग पर चढ़ाने का आदेश दे दिया (चांग एक ऊँचा मंच होता था। नीचे खुला खड्‌ग रहता था। अपराधी को मंत्र पर चढ़ा, हाथ पैर बाँधकर, नीचे तलवार के ऊपर फेंक दिया जाता और उसके दो टुकड़े हो जाते थे)।

कुछ भक्तों ने गोपीनाथ को बचाने के लिए महाप्रभु से अनुरोध किया तो महाप्रभु नाराज होकर बोले—"राजा तो अपना कर वसूल करेगा ही। गोपीनाथ ने जैसा किया वैसा भरे।" उधर युवराज ने गोपीनाथ के दूसरे भाई वाणीनाथ को भी सपरिवार बन्दी बना लिया। तब स्वरूप दामोदर ने अनुरोध किया "प्रभो रामानन्द के परिवार तो सब आप के दास हैं। उनके प्रति उदासीन रहना क्या उचित है!" महाप्रभु क्रुद्ध होकर बोले 'तो क्या मैं राजा के पास जाकर गोपीनाथ के परिवार के लिए, आँचल पसार कर दो लाख मुद्रा की भीख माँगू?" अब तो किसी को भी और कुछ कहने का साहस न हुआ। उसी समय समाचार मिला कि गोपीनाथ को चांग पर से खड्ग पर फेंकने की तैयारी हो रही है। तो महाप्रभु बोले—"मैं क्या कर सकता हूँ। जगन्नाथ प्रभु सर्व समर्थ हैं। तुम सब मिलकर उनसे ही प्रार्थना करो। मैं तो अब अलालनाथ चला जाऊँगा। यहाँ मुझे बार-बार यह विषय-वार्ता सुननी पड़ती है।"

अब तो भक्तों के प्राण सूख गये। राजा को भी खबर पड़ी कि महाप्रभु जगन्नाथ छोड़कर चला जाना चाहते हैं। राजा को अब मालूम हुआ कि उसके

पुत्र युवराज की यह सब करतूत है। वह अत्यन्त दु:खी होकर बोला—"दो लाख रुपये तो क्या मैं अपना राज्य भी प्रभु के चरणों पर न्यौछावर कर सकता हूँ। उन्होंने तुरन्त गोपीनाथ को चांग पर से उतरवा कर प्राण-दान ही नहीं किया, दो लाख रुपये भी छोड़ दिये और उनके शीश पर पगड़ी बाँध करके दुगुने वेतन और चौगुने सम्मान के साथ उसी पुराने राजपद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

महाप्रभु को भक्तों ने पीछे बताया था कि जब गोपीनाथ को बाँधकर राज कर्मचारी ले जा रहे थे तब वह "हरे कृष्ण हरे कृष्ण" महामंत्र का उचारण कर रहे थे और अंगुलियों पर मंत्र की गणना कर रहे थे।" यह सुन महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए और बोले 'यही है शुद्ध भक्ति का मुख्य फल। विपत्ति-नाश, विषय-प्राप्ति तो फलाभास है।" धन्य हैं ऐसे भक्त जो प्राण-संकट के समय भी प्राण-रक्षा को भूल प्राणनाथ प्रभु को ही स्मरण करते हैं। और धन्य हैं ऐसे प्राणनाथ प्रभु भी जो प्रत्यक्ष में तो कठोर उदासीन न्यायकारी प्रतीत हुए भी परोक्ष में अपने अभय हस्त की छाया में भक्त को निश्चिन्त निर्विकार रखते हैं।

(१६) देवदासी का "गीत गोविन्द-गान" :— एक दिन कहीं दूर पर एक देवदासी श्रीजयदेव का मंगलगीत "श्रित कमला कुच००" सुमधुर कंठ से गा रही थी। महाप्रभु के श्रवण में पड़ते ही उन्हें भावावेश हो आया। कंठ किसका है—पुरुष का या स्त्री का? यह सोचे-समझे बिना देह-सुध-बुध भूल दौड़ पड़े- कंटकमय पथ से ही। सेवक गोविन्द जान रहा था कि यह एक देवदासी गा रही है और प्रभु तो स्त्री की छाया से भी दूर भागते हैं पर इस समय एक स्त्री की ही तरफ भागे जा रहे हैं। इसलिये गोविन्द भी पीछे-पीछे भागा। महाप्रभु उस देवदासी के समीप पहुँचे ही थे कि गोविन्द ने पीछे से उनको अपनी भुजाओं में भर लिया और कान में कहा "यह तो स्त्री गा रही है प्रभो! "स्त्री" नाम सुनते ही प्रभु को बाह्य ज्ञान हो आया और वे बोले "गोविन्द! आज तुमने मेरा जीवन बचा दिया। स्त्री का स्पर्श हो जाता तो मेरी मृत्यु हो जाती। मैं तुम्हारा यह ऋण कभी नहीं चुका सकूँगा।"

(चै० च० अ० १३-८५-८६)

इस लीला के द्वारा महाप्रभु ने साधक जीव को सावधान किया कि श्रीकृष्ण- गान-श्रवण के बहाने स्त्रियों का गान सुनना उचित नहीं। अब ठीक इसकी विपरीत घटना सुनिये और समझिये कि महापुरुषों के आचरण कितने दुरुह-दुर्वोध होते हैं!

(१७) महाप्रभु और भक्त महिला :— एक दिन महाप्रभु को रात्रि स्वप्न में रास-लीला के दर्शन हुये। वे उसमें इतने तन्मय हो गये कि देर तक सोते रहे। गोविन्द ने जगाने की चेष्टा की। जगकर रास-दर्शन से 'वंचित हो जाने के कारण प्रभु विरह-विह्वल हो गये। अभ्यासवश नित्य कृत्य सम्पन्न करके श्रीजगन्नाथदेव के लिए मन्दिर पहुँचे। और गरुड़ स्तम्भ पर हाथ रखकर दर्शन करने लगे। प्रभु का स्वप्नावेश अब भी गया नहीं था। वे अपने को वृन्दावन में ही देख रहे थे और श्रीजगन्नाथ की जगह मुरलीधर श्यामसुन्दर का दर्शन कर रहे थे।

मन्दिर में बड़ी भारी भीड़ थी। एक उड़िया वृद्धा महिला किसी प्रकार भी दर्शन कर नहीं पा रही थी। अधीर आतुर होकर वह गरुड़ स्तम्भ पर चढ़ गयी और एक पैर महाप्रभु के कन्धे पर रखकर दर्शन करने लगी। यह देश घबड़ा कर गोविन्द ने उसे उतारने की चेष्टा की तो प्रभु ने मना करते हुए कहा "रहने दो गोविन्द! उसे जी भर कर दर्शन करने दो।" अब तो महिला को बाह्य ज्ञान हो आया और वह लज्जित होकर नीचे उतर प्रभु के चरणों पर पड़ गयी और रो- रोकर क्षमा-प्रार्थना करने लगी। महाप्रभु बोले "माँ! धन्य हो तुम और तुम्हारी आर्त्ति (आतुरता)—दर्शन के लिए! यह आर्त्त भाव मुझे प्राप्त नहीं हुआ। तुम तो वन्दनीय हो। मैं तुम्हारी कृपा की प्रार्थना करता हूँ जिससे मुझे भी ऐसी आर्त्ति प्राप्त हो जाय"। अब महाप्रभु को पूर्ण बाह्य ज्ञान हो गया। वे अब वृन्दावन में नहीं, जगन्नाथदेव के सम्मुख गरुड़ स्तम्भ के समीप खड़े दर्शन कर रहे थे। गोपीजन वल्लभ रास-विहारी को खोकर दुःखी मन से अपने स्थान को लौट गये।

है न यह लीला (१६) में वर्णित लीला से विपरीत। उसमें तो स्त्री-स्पर्श से रक्षा कर देने के लिये गोविन्द के ऋणी बने। और इसमें उसी गोविन्द को फटकार स्त्री-स्पर्श को सहर्ष सहते रहे!! पर इसमें विरोध नहीं, विरोधाभास है। महाप्रभु और महिला—दोनों ही बाह्य प्राकृत देह ज्ञान शून्य तन्मय श्रीकृष्णमय भाव में हैं—प्राकृत देह में ही स्त्री-पुरुष का भेद है शुद्ध आत्मा में भेदभाव कहाँ? इस समय न तो वह स्त्री ही स्त्री है और न महाप्रभु ही संन्यासी है फिर संन्यास-धर्म- लोप का प्रसंग ही नहीं।"

★ ★ ★

श्रीकृष्ण-प्रेम की जो दिव्य धारा महाप्रभु के हृदय में गया धाम में उच्छलित हो उठी थी वह मुख्यतः करुणा धारा के रूप में प्रवाहित होती हुई प्रायः बीस वर्ष तक जीवोद्धार के मंगल कार्य में तत्पर रही। उस करुणाधारा

ने जिस श्रीकृष्ण-नाम- प्रेम की बाढ़ से समस्त भारत को प्लावित कर दिया था उसी की पावन लहरियों में आज समुद्र पार के लाखों विदेशी विधर्मी भी गोता लगा-लगा कर वैष्णव भक्त बने हुए संकीर्तन-नृत्य में उन्मत्त बने हुए हैं। महाप्रभु ने तो भारत भूमि के नभ-मंडल को "हरे कृष्ण हरे राम" की मंगल ध्वनि से गुंजा दिया था परन्तु उनकी करुणा विश्व के धरनगगन को आन्दोलित कर रही है और करती रहेगी।

यही तो श्रीमन्महाप्रभु के अवतार का प्रकट प्रयोजन था। वह अब सम्पन्न हो चुका था। अतः अब उनके हृदय में अन्तर्हित वह कृष्ण-प्रेम की धारा सब ओर से सिमट एक मुखी होकर श्याम सिन्धु संगम के निमित्त तीव्र से तीव्रता बन कर प्रधावित होने लगी। और यही महाप्रभु के अवतार का निगूढ़ अन्तरंग प्रयोजन हैं—राधा भाव के द्वारा श्रीकृष्ण माधुर्यास्वादन करके श्रीराधा सुख का उपभोग करना। अतएव अब गौरांग प्रभु ने गौरांगी राधा भाव सिन्धु में अहनिंश डूबते-उतरते हुए बारह वर्ष व्यतीत किये। यह उनकी 'गम्भीरा-लीला' के नाम से सुप्रसिद्ध है इस समय अधिकतर काशी मिश्र के घर एक छोटी-सी कोठरी में कृष्ण विरहिणी-दशा में व्याकुल विभोर पड़े रहते। इसी अवसर का नाम दिव्योन्माद है। कभी अन्तर्दशा में भाव समाधि होकर लीला रस का आस्वादन करते और कभी अर्द्ध वाले दशा में स्वरूप दामोदर (ललिता) और रामानन्दराय (विशाखा) के गले लिपट-लिपट कर "सखियों! कृष्ण मिला दो" कह-कह कर विलाप किया करते। वे उनके भावानुकूल श्लोक और पद गा-गा कर सान्त्वना प्रदान किया करते। इस प्रेमोन्मादमयी अवस्था में जो प्रदीप्त सात्त्विक विकार उनके श्रीअंग में प्रकट होते वे सब आज तक कहीं किसी में देखने-पढ़ने-सुनने में भी नहीं आये। उनका यहाँ वर्णन असम्भव है। यहाँ तो हम गम्भीरा-लीला के चार प्रसंगों का दिग्दर्शन करा कर परिशिष्ट को समाप्त करते हैं।

(१८) दिव्योन्माद--श्री अंग की दीर्घाकृति एवं कूर्माकृति :— उसी दिन की बात है जिस दिन मन्दिर में पूर्वोक्त घटना घटी थी। मन्दिर से लौटकर दिन भर विरहाश्रु बहाते रहे। स्वरूप एवं राम राय नाना प्रकार से सान्त्वना देते। रात्रि में विरह अधिक बढ़ गया। धैर्य का बाँध टूट गया। दोनों भुजाएं स्वरूप और रामानन्द के गले में डाल कर व्याकुल क्रन्दन करने लगे। भावानुकूल पद व श्लोक गा-गा कर सान्त्वना देते-देते आधी रात हो आयी अः जैसे-तैसे शयन कर दोनों बाहर आये। तीनों द्वार के साँकल चढ़ा दिये गये। राम राय तो घर चले गये। स्वरूप और गोविन्द द्वार पर लेटे रहे।

कुछ देर तक तो अन्दर से नाम-कीर्तन की ध्वनि आती रही। हठात् कीर्तन बन्द। सब शान्त नीरव। सो गये क्या? स्वरूप ने धीरे से साँकल खोलकर देखा तो महाप्रभु नहीं! शून्य कक्ष! कहाँ कैसे चले गये? हा-हाकार मच गया। दीप जलाकर भक्त लोग चारों ओर दौड़े तो काशीमिश्र के गृह से बाहर दूर मन्दिर के सिंह द्वार के उत्तर में एक खुली जगह अचेत पड़े मिले। पर यह क्या दशा? उनके हस्त-चरण, ग्रीवा आदि की अस्थि-ग्रन्थियाँ खुल गयीं थी। बीच में एक-एक बालिस्त चर्म मात्र!! हाथ-पैर तीन-तीन हाथ के और शरीर पाँच हाथ का लम्बा! आँखें चढ़ी। श्वास बन्द-मुख से फेन बह रहा! भक्तों ने कृष्ण-कीर्तन कर सचेत किया। घर ले गये। पूछने पर प्रभु बोले—"मुझे कुछ पता नहीं। केवल इतना स्मरण है कि कृष्ण दर्शन देकर विद्युत के समान अदृश्य है गये।"

ऐसी ही अलौकिक घटना दूसरी बार भी घटी। उस दिन भी स्वरूप और राम राय आधी रात को प्रभु को शयन करा कर चले गये। गोविन्द द्वार लेटा रहा। तो कीर्तन करते-करते अन्तर्द्धान! उसी प्रकार भक्तों की चारों ओर दौड़-धूप! तो सिंह द्वार के दक्षिण में जहाँ तैलंगी गायें बँधी हुईं थीं, उनके बीच में पड़े मिले। दशा देख भक्तजन काँप उठे!! कुष्मांडाकृति! कुम्हडा की तरह गोलाकार! हाथ-पैर कछुए की तरह पेट के भीतर घुसे हुये! मुख से फेन, आँखों से अश्रू गायें घेर कर खड़ी अंग सूँघ रहीं! हटाये न हटें! उसी प्रकार भक्तों का नाम-संकीर्तन! पर सब व्यर्थ! प्रभु वैसे ही पड़े रहे। अन्त में उसी अवस्था में गम्भीरा ले गये। कानों के पास उच्च स्वर से कृष्ण नाम कीर्तन करने के पश्चात् चेतना आयी! हाथ-पैर बाहर निकल पड़े। शरीर पूर्ववत् हो गया। इधर-उधर देखते हुए बोले, "तुम मुझे कहाँ ले आये। कृष्ण की वंशी सुनकर में वृन्दावन गया हुआ था। वहाँ राधा और गोपियों के साथ कृष्ण का नृत्य-गीत, हास परिहास देख रहा था कि उसी समय तुम लोग कोलाहल कर मुझे यहाँ लाये।"

(१९) चटक-पर्वत में गोवर्द्धन-दर्शन :— एक दिन समुद्र-स्नान को जाते समय चटक पर्वत पर दृष्टि पड़ी तो गोवर्धन का भ्रम हो गया (चटक पर्वत उस बालुका के ऊँचे टीले का नाम है जो आइटोटा गोपीनाथ के मन्दिर के सामने समुद्र-तट पर स्थित है)। गोवर्धन सम्बन्धी एक श्लोक भागवत का पढ़ते हुए महाप्रभु इतने वेग से चटक पर्वत की ओर भागे कि भक्त लोग कोई पकड़ न सके। पर सहसा प्रभु की देह स्तम्भित होकर गिर पड़ी। रोम कूप माँस-फोड़ के समान। कदम्ब-पुष्प के समान रोमावली। रोम में से रुधिर-

प्रवाह! कण्ठ में घरघराहट! नेत्रों से अश्रुधारा! रंग शंख की तरह श्वेत!! भक्त लोग आ पहुँचे। संकीर्तन आरम्भ किया। बहुत देर बाद "हरि बोल" कहते हुए उठ पड़े। विस्मय के साथ इधर-उधर देखते हुए कहने लगे, "मुझे यहाँ क्यों ले आये। मैं गोवर्धन में कृष्ण लीला देख रहा था। गोवर्धन शिखर पर से गोविन्द ने वेणु बजायी। राधा दौड़ती हुई आयीं। उन्हें ले कृष्ण कन्दरा में प्रवेश कर गये। एक सखी ने मुझे फल लाने को कहा। इसी समय तुम्हारे कोलाहल ने मुझे यहाँ लाकर डाल दिया। तुमने क्यों मुझे दु:ख देने को ऐसा किया?" इतना कह क्रन्दन करने लगे और सब भक्त भी रोने लगे!!

यह है दिव्योन्माद की एक अनिर्वचनीय स्थिति! इसी को "विषामृत" का एकत्र मिलन भी कहा जाता है बाहर देह की यह अकथनीय दुर्दशा और अन्तर संयोग सुख की पराकाष्ठा यह हमारे मन बुद्धि से अगम है। लोक में कहीं पढ़ने-सुनने-देखने को नहीं आता! अब एक अन्तिम प्रसंग प्रस्तुत है।

(२०) महाप्रभु का समुद्र-पतन :— शरदकाल की एक उज्ज्वल चाँदनी रात थी। महाप्रभु कृष्ण-विरहिणी राधा भाव में श्रीमद्‌भागवत के रासलीला के श्लोक श्रवण-कीर्त्तन करते हुए उद्यानों में भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते-करते एक स्थान से अकस्मात् समुद्र दिखलायी दिया। नीलसिन्धु की उछलतीं तरंगें चाँदनी में झिलमिला रही थीं। महाप्रभु को यमुना में गोपी-कृष्ण की जलकेलि की स्मृति उद्दीप्त हो उठी वे। विद्युत वेग से दौड़ समुद्र में कूद पड़े। संगी भक्तों को पता ही न चला कि प्रभु कहाँ कैसे चले गये। भक्त लोग चारों ओर दौड़े। रहने की सब ही जगहें तलाश ली, दौड़-खोज में रात बीतने को आयी। हाय! क्या प्रभु हमें छोड़ चले गये। फिर भी आशा के सहारे ढूँढ़ते रहे।

उधर समुद्र में गिरते ही प्रभु मूर्च्छित हो वह चले! डूबते-उतराते-बहते-बहते कोणार्क के समीप जा पहुँचे (कोणार्क प्राचीन सूर्य मन्दिर-जगन्नाथ से उत्तर प्राय: २० मील दूर) स्वरूप दामोदर कुछ भक्तों के साथ समुद्र के किनारे-किनारे खोजते जा रहे थे। एक मल्लाह उन्मत्त बना आ रहा था—कभी हँसता, कभी रोता, कभी हरि बोल' कह नाचता हुआ। स्वरूप ने कारण पूछा तो बोला—'मेरे जाल में एक भूत आया है। मैंने समझा कोई बड़ी मछली है। उसका शरीर पाँच सात हाथ लम्बा है। हाथ-पैर तीन-तीन हाथ लम्बे हैं। कभी गोँ-गोँ करता है, कभी अचेत पड़ा रहता। उसको छूने से ही मेरी यह गति हो गयी। वह मुझ पर चढ़ बैठा है। हाय! अब मेरे बाल-बच्चों का क्या होगा! मैं भूत छुड़वाने ओझा के पास जा रहा हूँ। तुम लोग कोई उधर मत जाना-चढ़ बैठेगा वह भूत!"

स्वरूप सब समझ गये और बोले "मैं एक बड़ा ओझा हूँ। तुम्हारा भूत तीन थप्पड़ में भगा देता हूँ।" ऐसा कह कुछ बुद-बुदाते हुए तीन थप्पड़ मार कर बोले "लो! तुम्हारा भूत भाग गया! अरे! जिसको तुमने जाल में पकड़ा है वह भूत नहीं, भगवान् हैं। उनके स्पर्श से ही तुम में प्रेम का उदय हुआ है! तुम बड़े भाग्यशाली हो! अब हमें शीघ्र उनके दर्शन करा दो।" वहाँ पहुँचे तो प्रभु पूर्व वर्णित अवस्था में बालुका पर पड़े थे। गीली कौपीन हटा सूखी पहनायी। उच्च स्वर से संकीर्तन करने लगे कर्ण में 'कृष्ण-कृष्ण' नाम सुनाने लगे। कुछ समय बाद सचेत हो इधर-उधर देखते हुए बोले—"हाय! मैं कहाँ चला आया। मैं तो वृन्दावन में यमुना तट पर खड़ा जल-केलि देख रहा था। सहस्र-सहस्र गोपियाँ और सहस्र-सहस्र कृष्ण! एक-एक कृष्ण और एक-एक गोपी एक दूसरे पर जल उछाल रहे थे। उसके पश्चात् वन-भोजन लीला आरम्भ हुई। उसे देखते-देखते मैं यहाँ कैसे आ गया और तुम मुझे लेकर यहाँ क्यों खड़े हो?" स्वरूप ने सब वृत्तान्त सुनाकर कहा "तुम तो वृन्दावन में लीला-दर्शन का आनन्द ले रहे थे और हम तुम को रात भर खोजते-खोजते विरह-दु:ख में मरे जा रहे थे: चलो अब घर चलें!" तब प्रभु को भक्त लोग आनन्दपूर्वक गम्भीरा ले गये।

(२२) महाप्रभु का लीला-संगोपन :—

मातृ-भक्ता महाप्रभु प्रतिवर्ष श्रीशची माता आश्वासन को श्रीजगदानन्द पंडित को वस्त्र और महाप्रसाद देकर नवद्वीप भेजा करते थे। एक बार जगदानन्द लौटकर पुरी आये तो महाप्रभु को श्रीअद्वैताचार्य की एक पत्रिका दी जिसमें एक पहेली लिखी हुई थी जिसका शब्दार्थ हैं-'बाउल' (प्रेम पागल) से कहना कि लोग 'बाउल' (प्रेम में पागल) हो गये हैं इस लिए हाट में चाँवल (प्रेम) बिक नहीं रहा है 'बाउल' (महाप्रभु) से कहना कि अब 'आउल' (प्रेमातुर अद्वैताचार्य) का कार्य नहीं रहा। 'बाउल' को कह देना यह 'आउल' ने कहा है।" इस पहेली को सुनकर प्रभु कुछ हँसे और "आचार्य की जो आज्ञा" कह कर चुप हो गये। स्वरूप के पूछने पर प्रभु ने संकेत मात्र दिया—'पुजारी (अद्वैताचार्य) देवता (महाप्रभु) का आवाहन करता है, और पूजान्त में विहार्जन कर देता है" अर्थात् जिन्होंने महाप्रभु को प्रकट किया उन्होंने ही इस पहेली के द्वारा "गौर हाट" उठाने की अनुमति दे दी। इस पहेली के पाने पर महाप्रभु की विरह-ज्वाला और अधिक धधक उठी। विरहोन्माद में प्रभु गम्भीरा की दिवालों पर मुँह रगड़ा करते थे। कभी महा भावावेश में दस प्रकार के चित्र जलप उद्गार प्रकट होते थे * * *' अद्वैताचार्य पुजारी की इच्छा का संकेत मिल गया माता शची का भी देहावसान हो गया। अवतार का

प्रयोजन भी पूर्ण हुआ। अत: प्रभु ने लीला संवरण करने का निश्चय कर लिया।

इस अप्रकट लीला का श्रीचैतन्यभागवत एवं श्रीचैतन्यचरितामृत में कहीं कोई उल्लेख नहीं है। केवल ठाकुर लोचनदास ने अपने चैतन्य मंगल ग्रन्थ में अति संक्षेप में वर्णन किया है। उसका सारांश यह है :—

शाके १४५५ (सम्वत् १५९० ई० सन् १५३३) का आषाढ़ महीना, शुक्ल पक्ष, सप्तमी तिथि, रविवार, तीसरे पहर का समय था। काशी मिश्र के गृह में श्रीमन्महाप्रभु भक्तों के मध्य में विराजे हुए स्वरूप दामोदर के मुख से कृष्ण कथा श्रवण कर रहे थे। आज वे अन्य दिनों की अपेक्षा अत्यधिक गम्भीर थे। सहसा वे उठे और वायु की गति से जगन्नाथ मन्दिर की तरफ भागे। स्वरूप आदि उनके पीछे-पीछे भागे पर कोई उनको पकड़ न सका। महाप्रभु आज गरुड़ स्तम्भ पर नहीं रुके। वे सीधे मन्दिर के दरवाजे पर चले गये और मन्दिर में प्रवेश कर गये। महान् आश्चर्य! मन्दिर के कपाट अपने आप बन्द हो गये! भक्तगण सब बाहर खड़े रह गये। ऐसा तो प्रभु ने कभी नहीं किया था। सब चिन्ता में निमग्न हैं कि आज क्या होने वाला है!!

उस समय मन्दिर में गुंजाभवन में एक पुजारी था उसने देखा कि श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेव के सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं और आँसु बहाते हुये गद्गद् कण्ठ से प्रार्थना कर रहे हैं—"हे दयामय! हे दीनबन्धो! सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगों में कलियुग का तो एक मात्र धर्म श्रीकृष्ण संकीर्तन ही है। अब घोर कलियुग आ गया है। हे जगन्नाथ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि ये कलिहत जीव निरन्तर आप के नामों का कीर्तन करते रहें। इनको श्रीचरणों में आश्रय दीजिये? ऐसा कहते-कहते प्रभु श्रीविग्रह लिपट गये और सचल जगन्नाथ अचल जगन्नाथ में लीन हो गये। बाहर खड़े भक्तों ने जैसे-तैसे किबाड़ खुलवाये और पुजारी ने रोते-रोते सब वृत्तान्त सुना दिया।

भक्तों पर व्रजपात हो गया। स्वरूप के प्राण उसी समय निकल गये। कोई समुद्र में कूद पड़े कोई "हा गौर! हा गौर!" कहते, रोते विलखते भटकते फिरे। बहुत-से तो नीलाचल ही छोड़ करके अन्यत्र चले गये।

श्रीनीलाचल धाम गौड़ीय वैष्णवों का महातीर्थ बन गया। गौड़ीय भक्तजन श्रीजगन्नाथ के दर्शन को ही श्रीमन्महाप्रभु का दर्शन मानते हैं और इसीलिए प्रति वर्ष श्रीजगन्नाथ-दर्शन को जाते हैं। इति शम्।

बोलो अचल-सचल जगन्नाथ की जय

।। निताई गौर हरि बोल।।

शुद्धिपत्र

पृ० सं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	पहली	आगच्छनाम्	आगच्छताम्
	दूसरी	सुप्रसाद	सुप्रभात
	,,	तीर्थ पादभवद्	तीर्थपाद भवद्
१७	श्लोक	सर्वपापानि वे	सर्वपापानि व
१९	नौवीं	श्रीअंश	श्रीअंग
५७	चौदहवीं	हनर	हमीर
६१	बारहवीं	तो अशाध	तो आगध
६२	तेरहवीं	अरति यट्	अटति यद्
	इक्कीसवीं	दिशि	निशि
६३	पहली	व्यतिरंग	व्यक्तिरंग
	चौथी	यन्निजूदनम्	यन्निषूदनम्
६८	सातवीं	निहसी	तिहारी
७१	आठवीं	मीना	मीन
	पन्द्रहवीं	चैश	चैत्र
७४	छटवीं	प्रनामि	प्रनमि
७५	सातवीं	खम भक्त	राम भक्त
७८	बारहवीं	मुख वन	मुख वैन
८४	नीचे से चौथी	तो खोओतो	न खोओ
९६	नीचे से पांचवीं	सों वारि	सो बरि
१०८	नीचे से सातवीं	सुरभिरवालयन्तं	सुरभिरालयन्तम्
१११	पाँचवीं	गायन बसैं	गायन में बसैं
१२३	छटवीं	वैष्णवना	वैष्णवता
१२८	दसवीं	पचांसर	पम्पासर
१४०	सातवीं	इढ़ावे	दृढ़ावे
१४२	नीचे से	पांचवीं मुनि....नलिमं	मुनि.....नलिनं

१५०	छटवीं	इत कुकर्म	उत कुकर्म
	सातवीं	हीन मत	हीन मति
१५४	पाँचवीं	फटै भाग	फूटै भाग
	नीचे से नौवीं	वर्थ कोउ	बचै कोउ
१७० ,,	दूसरी	जमख	जनरव
१७१	चौथी	आकुत	आकुल
१७६	श्लोक	हर	हरे
१८३	नौवीं	सार्वभौम	सार्वभौम भार्या
१९३	नौवीं	बैष्णव	वैष्णव
	ग्यारहवीं	उतरा या	उतरा था
२०७ ,,	निज भबय	निज भवन	
	नीचे से दसवीं	अन्न नदी न	अन्न नींद न
२१८	तीसरी	दिलकर	दिलवर
२१९	पाँचवीं	बिन्दुओं	हिन्दुओं
२४३	नीचे से सातवीं	आनीम	अन्तिम
२४९	दसवीं	मन मोन	मनमोहन
२५२	आठवीं	पर वार	परवार
२५५	नीचे से तीसरी	पख्यसनिनी	परव्यसनिनी
२५८ ,, ,,	नौवीं	सर्पन	सपन
२७२ ,, ,,	नौवीं	वाफिक	वाकिफ
२७४	दसवीं	मन्दारमूखे	मन्दारमूले
	तेरहवीं	स्वरैस्तव	स्वैरैस्त्वं
२८५	दूसरी	जन्तु	जनु
२८६	ग्यारहवीं	भेजहै	भेज
	तेरहवीं	सरीखो	सरीखो है
२९५	चौथी	इन बातन	इन बातन नहिं भूलौं
३०३	पाँचवीं नौवीं	जगनहिं	जग नहिं
३०५	नीचे से दूसरो	ऊषनो	अपनो

३०७		दसवीं	विलासम्	विदेहम्
३१६		नौवीं	उठि च	उठि चलै
३१८		सातवीं	सिंह	(काट दो)
३१९		नीचे से दूसरी	भले	भूले
३३५	,, ,,	छटवीं	परन्त्वियम्	(काट दो)
	,, ,,	पाँचवीं	परन्तु इयं	परन्त्वियं
३५०	,, ,,	तीसरी	तीर्थ प	तीर्थ पै
३६०		पाँचवीं	किसे	कैसे
३६२		नीचे से सातवीं	अभिराम	अभिरामा
	,, ,,	आठवीं	विश्राम	विश्रामा
३६३		नौवीं	छात्री	कर्त्री
		नीचे से आठवीं	यमत्रय	यमभ
३६४		बारहवीं	भलेन	भूलेन
३७३		तेरहवीं	उापसी	उपासी
३७६		सातवीं	लज्जितचन्द्रे	लज्जितचन्द्रं
		ग्यारहवीं	यदनखचन्द्रे	पदनखचन्द्रं
३८२		नीचे से सातवीं	ढरावै	ढुरावै
३९४	,, ,,	पाँचवीं	रस संग	रास रंग
३९६	,, ,,	दूसरी	भूत प्रेम	भूत-प्रेत
३९८		आखिरी	फट	फूट
४१३		श्लोक चौथी	चन्दूः	चन्द्रः प्रभुः
४१५		छटवीं	सरलाय	सरसाय
४२२		श्लोक पहली	हरिदास वर्यो	हरिदासवर्यों
४२९		नीचे से आठवीं	मायसी	मानसी
४३५	,, ,,	दसवीं	फलाय	फैलाय
४३७	,, ,,	१२ वीं	विकट	निकट
४३८		ऊपर से चौथी	परातिणैक	परार्तिहरणैक

४३९	,, ,,	नौवीं	लवङ्गालया	लवङ्गलता
	,, ,,	१३ वीं	वसन्त रास	वसन्त रास में
४४४		नीचे से ७ वीं	ईश्वर को	ईश्वर कूँ
४४७		ऊपर से पहली	जलहूल	जलहू लै
	,, ,,	११ वीं	नमोऽस्तु त	नमोऽस्तु ते
	,, ,,	१२ वीं	सज्ञक:	संज्ञक:
१५२	,, ,,	७ वीं	काम जाप	काम आप
४५५		नीचे से ९ वीं	पजिहै	पूजिहै
४६२		ऊपर से ११ वीं	यह टटी	यह टेंटी
	,, ,,	१९ वीं	गयो दोज	गयो द्योस
४६४		नीचे से ७ वीं	बिनाय	बिताय
४६५	,, ,,	चौथी	विह्वज	विह्वल
४७०	,,	से ११ वीं	हरि हरि	हारि हरि
४७८		ऊपर से तीसरी	पुरातन प्राण	पुरातन
	,, ,,	दसवीं	फैले भई	फैली भई

ग्रन्थ परिशिष्ट

१	नीचे से चौथी	धम-चर्चा	धर्म-चर्चा
२	ऊपर से १२ वीं	रखा आर	रखा और
४	नीचे से १० वीं	हरेतोमैव	हरेर्नामैव
५	ऊपर से १० वीं	लक्षरता	लक्षणा
७	नीचे से ५ वीं	शास्त्राणी	शास्त्राणि
१५	ऊपर से तीसरी	कुलोम्पन्न	कुलोत्पन्न

❖